इकाई 1 अनुबन्धः अर्थ विशेषताएं एवं प्रकार (Contract Meaning, Characteristics & Types)

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 अनुबन्ध का अर्थ
1.3 ठहराव
1.3.1 ठहराव की वैधानिकता
1.3.2 ठहराव एवं अनुबन्ध
1.3.3 सभी अनुबन्ध ठहराव होते हैं
1.3.4 सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं होते
1.4 अनुबन्ध की विशेषताएं
1.5 अनुबन्ध के प्रकार
1.5.1 वैधानिकता के आधार पर अनुबन्ध
1.5.1.1 वैध अनुबन्ध
1.5.1.2 अवैध अनुबन्ध
1.5.2 प्रवर्तनीयता के आधार पर अनुबन्ध
1.5.2.1 व्यर्थ अनुबन्ध
1.5.2.2 व्यर्थनीय अनुबन्ध
1.5.2.3 प्रर्वतनीय अनुबन्ध
1.5.2.4 अप्रर्वतनीय अनुबन्ध
1.5.3 संरचना के आधार पर अनुबन्ध
1.5.3.1 स्पष्ट अनुबन्ध
1.5.3.2 गर्मित अनुबन्ध
1.5.3.3 अर्ध अनुबन्ध
1.5.4 निष्पादन के आधार पर अनुबन्ध
1.5.4.1 निष्पादित अनुबन्ध
1.5.4.2 निष्पादनीय अनुबन्ध
1.6 अन्तर एवं तुलना
1.6.1 ठहराव एवं अनुबन्ध में
1.6.2 व्यर्थ एवं व्यर्थनीय ठहराव में
1.6.3 वैध एवं अवैध अनुबन्ध में
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 बोध प्रश्न
1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.11 स्वपरख प्रश्न
1.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- अनुबन्ध क्या होते हैं, का वर्णन कर सकें ।
- अनुबन्ध ठहराव से उत्पन्न होते हैं, की व्याख्या कर सकें ।
- ठहराव एवं अनुबन्ध में क्या सम्बन्ध एवं अन्तर है, का वर्णन कर सकें ।
- अनुबन्धों की विशेषताओं का वर्णन कर सकें ।
- ठहराव कितने प्रकार के होते हैं, का वर्णन कर सकें ।

1.1 प्रस्तावना

विश्व के सभी विकसित एवं विकासशील देशों में एवं सभ्य समाज में व्यापार सदा से किसी न रूप में होता चला आ रहा है।

जब सभ्यता का विकास नहीं हुआ था तब भी व्यापार होता था। जब विनिमय का माध्यम अर्थात् मुद्रा नहीं थी, एवं किसी प्रकार के कानून प्रचलन में नहीं थे तब भी व्यापार होता था। वर्तमान में हमारे सामने एक विकसित एवं सभ्य समाज है और हम देखते हैं कि व्यापार अब देशों की सीमाओं को पार कर वैश्विक स्तर पर हो रहा है। व्यापार में विकास एवं प्रगति तभी सम्भव है जब व्यापार में व्यापारियों के मध्य विश्वास एवं ईमानदारी हो।

जिस प्रकार से मानव के आचरण को नियमित एवं नियंत्रित करने के लिए विभिन्न प्रकार के कानून बने उसी प्रकार से व्यापारियों के आचरण एवं व्यवहार को नियमित एवं नियंत्रित करने के लिए विभिन्न प्रकार के व्यापारिक कानूनों का निर्माण किया गया। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 भी उन अधिनियमों में अग्रणी एवं आधारभूत है।

एक उदाहरण देखिए। रमेश सूती कपड़ों का उत्पादक है। उसके उत्पादन प्रक्रिया में सूत का प्रयोग होता है। वह एक सूत की कताई करने वाले उत्पादक महेश से उसके द्वारा बताए गए मूल्य पर सूत की आपूर्ति करने के लिए कहता है। महेश इसके लिए तैयार हो जाता है। परन्तु किसी तीसरे व्यक्ति के द्वारा रमेश से भी ऊंची कीमत दिए जाने की बात पर महेश इस तीसरे व्यक्ति को सूत विक्रय कर देता है। इस परिदृश्य पर विचार करिए। ऐसी स्थित में रमेश का उत्पादन तो कच्चेमाल (सूत) के बिना रूक जाएगा और उसे व्यापार में हानि उठानी पड़ेगी। रमेश के पास क्या उपाय है जिससे वह अपनी हानि की क्षतिपूर्ति करवा सके। ऐसी स्थिति में नियमों की आवश्यकता होती है कि महेश अपने वचन से न विरत हो। अनुबन्ध अधिनियम में ऐसे विभिन्न नियम हैं जिससे कि व्यापार से सम्बन्धित पक्ष अपने–अपने वचन का पालन करें, व्यापार संयमित एवं नियमपूर्वक तथा ईमानदारी से करे। यदि कोई पक्ष अपने वचन का पालन नहीं करता है तो दूसरे पक्ष को अधिकार है कि वह अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत, कानून की सहायता से दूसरे पक्ष से क्षतिपूर्ति प्राप्त करे अथवा उसके वचन का पालन करवा सके। अनुबन्ध का अध्ययन करके हम इस तथ्य को अच्छी तरह समझ सकते हैं।

1.2 अनुबन्ध का अर्थ (Meaning of Contract)

उपरोक्त उदाहरण में हमने देखा कि एक पक्ष के द्वारा अपने वचन का पालन न करने से दूसरे पक्ष को असुविधा का अथवा हानि का सामना करना पड़ता है। हानि उठाने वाला पक्ष कानून की सहायता से अपनी हानि की रक्षा

अथवा क्षतिपूर्ति करवा सकता है। हम अपने रोजमर्रा के जीवन में ऐसे अनेक उदाहरणों का अनुभव करते हैं। जब दो पक्ष किसी विषय पर सहमत होते हैं तो इनमें ठहराव उत्पन्न होता है। परिवार में अथवा मित्रता में अनेक ठहराव होते रहते हैं और सभी ठहराव पूरे नहीं भी होते हैं। सभी मामलों में पक्षकार कानून की शरण में भी नहीं जाते हैं। परन्तु जब पक्षकारों का ठहराव करते समय ऐसा भाव होता है कि यदि दूसरा पक्ष अपने वचन का पालन नहीं करेगा तो वह कानून की सहायता से उसके वचन का पालन करवाया जा सकता है अथवा क्षतिपूर्ति प्राप्त की जा सकती है तो ऐसे ठहरावों को अनुबन्ध कहा जाता है।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(एच) के अनुसार ''एक ठहराव जो राजनियम द्वारा प्रर्वतनीय हो अनुबन्ध कहलाता है''। इस परिभाषा के अनुसार ऐसे ठहराव जो राजनियम (कानून) के द्वारा प्रर्वतनीय हो अर्थात् क्रियान्वित करवाए जा सकते हैं अनुबन्ध कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में पक्षकारों के मध्य ठहराव होना चाहिए और उस ठहराव को राजनियम के द्वारा प्रर्वतित या क्रियान्वित करवाया जा सकता है। उपरोक्त के आधार पर यह स्पष्ट है कि अनुबन्ध के लिए ठहराव का होना चाहिए और उस ठहराव में वैधानिक प्रर्वतनीयता होनी चाहि। इस बिन्दु को और स्पष्ट करने के लिए हमें ठहराव को समझना पड़ेगा।

1.3 ठहराव (Agreement)

ठहराव का अर्थ सहमत होना है। जब दो व्यक्ति किसी विषय पर पारस्परिक रूप से सहमत हो जाते हैं तो कहा जाता है कि उनमें सहमति अथवा ठहराव हो गया है।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियमय की धारा 2(ई) के अनुसार ''प्रत्येक वचन अथवा वचनों का प्रत्येक समूह जो एक दूसरे का प्रतिफल हो, ठहराव कहलाता है''।

परिभाषा के अनुसार ठहराव को वचनों अथवा वचनों के समूह को जो एक दूसरे के लिए प्रतिफल हो के रूप में परिभाषित किया गया है। किसी भी वचन के लिए आवश्यक है कि दोनों पक्षों में उसे पूरा करने की बाध्यता हो, और यह बाध्यता वैधानिक हो। वचन एक दूसरे के लिए प्रतिफल हो इसका आशय है कि पक्षकारों को अपने वचन का निष्पादन करने के बदले में कुछ प्राप्त भी होता हो। वचन, प्रस्ताव व स्वीकृति से उत्पन्न होते हैं जिसका अध्ययन हम आगे के अध्यायों में करेंगे। प्रतिफल का अध्ययन भी आगे के अध्यायों में किया जाय जाएगा।

ठहराव को और अच्छी तरह से समझने के लिए इसकी विशेषताओं को देखना पड़ेगा जो निम्न है–

- ठहराव के लिए कम से कम दो पक्षों को होना चाहिए। दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच में ही किसी प्रकार की सहमति अथवा ठहराव हो सकता है।
- ठहराव का उद्देश्य होता कि पक्षकारों में वैधानिक दायित्व हो।
- पक्षकरों का दायित्व एक दूसरे को स्पष्ट होना चाहिए।

1.3.1 ठहराव की वैधानिकता (Legality of Contract)

जैसा कि हमने उपरोक्त पंक्तियों में अध्ययन किया है कि ठहराव के अन्तर्गत पक्षकारों के मध्य पारस्परिक वचन होता है और यदि एक पक्ष अपने वचन का

परित्याग करता है तो दूसरे पक्ष को हानि से अपनी रक्षा करने के लिए वैधानिक उपाय उपलब्ध होते हैं। यहाँ एक बात स्पष्ट कर लेना चाहिए कि वचन का आशय वैधानिक दायित्व से है, अर्थात् पक्षकरों को प्रारम्भ से ही स्पष्ट होना चाहिए कि यदि उनमें से कोई अपने वचन का पालन नहीं करेगा तो कानून हस्तक्षेप करके उनसे उनके वचन का पालन करने को बाध्य कर सकता है अथवा क्षतिपूर्ति निर्धारित कर सकता है। जैसा कि उपर वर्णित उदाहरण से स्पष्ट है कि कानून महेश को सूत की आपूर्ति करने का आदेश दे सकता है या रमेश को होने वाली हानि की पूर्ति करने का आदेश दे सकता है। अतः ठहराव में वैधानिक प्रर्वतनीयता होती है।

पुन स्पष्ट कर लेना चाहिए कि ठहराव में वैधानिकता तभी उत्पन्न होगी जब पक्षकार इस बात को स्वीकार करें कि वह वचन को पूरा करने के लिए वैधानिक रूप से उत्तरदायी है। प्रायः ऐसे वचन व्यापार, सेवाओं से सम्बन्धित होते हैं। मित्रता के अथवा निकट सम्बन्धों के वचन जैसे कि जन्मदिन की दावत अथवा अच्छे परीक्षाफल पर पुरस्कार देने आदि की वैधानिकता नहीं होती है वरन् नैतिकता होती है। यदि किसी ने वचन देकर भी दावत नहीं दी या पुरस्कार नहीं दिया तो ऐसे वचनों को पूरा कराने के लिए कानून हस्तक्षेप तभी करेगा जब दूसरे पक्ष को वास्तविक हानि हो गई हो अथवा इसकी प्रबल सम्भावना हो।

1.3.2 ठहराव एवं अनुबन्ध (Agreementt and Contract)

प्रायः ठहराव एवं अनुबन्ध को पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया जाता है, परन्तु दोनों में मूलभूत अन्तर है। यद्यपि अनुबन्ध ठहराव से ही उत्पन्न होता है पर केवल वही ठहराव ही अनुबन्ध के रूप में परिणत होते हैं जिनका उद्देश्य प्रारम्भ से ही वैधानिक दायित्व उत्पन्न करना होता है। सभी ठहराव पक्षकारों को वैधानिक रूप से बाध्य करते हों ऐसा नहीं होता। अनुबन्ध शब्द का प्रयोग होते ही वैधानिक प्रभाव होने का अनुभव होता है। हम लोग पहले ही देख चुके हैं कि आपसी मित्रता, और सम्बन्धों में प्रायः अनुबन्ध होते रहते हैं परन्तु सभी का उद्देश्य दूसरे पक्ष को वैधानिक रूप से बाध्य करना नहीं होता है।

1.3.3 सभी अनुबन्ध ठहराव होते हैं (All Contracts are Agreeemnt)

उपरोक्त पंक्तियों में आप ने अध्ययन किया कि सभी ठहराव जो वैधानिक दायित्व उत्पन्न करते हैं वही अनुबन्ध के रूप में जाने जाते हैं। अर्थात् अनुबन्ध के मूल में ठहराव होते हैं। अनुबन्ध की परिभाषा भी यही इंगित करती है कि ''अनुबन्ध एक ऐसा ठहरव है जो राजनियम द्वारा प्रर्वतनीय हो''। कोई ठहराव जो वैधानिक दायित्व उत्पन्न नहीं करता है अनुबन्ध के रूप में परिणत नहीं हो सकता हैं वैधानिक दायित्व उत्पन्न करने वाले ठहराव ही अनुबनध के आधार में होते हैं। बिना ठहराव के अनुबन्ध नहीं हो सकता। कई ठहराव ऐसे भी होते हैं जो ठहराव तो कहलाते हैं पर जिन्हें अनुबन्ध नहीं कहा जा सकता (जैसे कि मित्रता के अथवा निकट सम्बन्धों के ठहराव)। ऐसे अनुबन्धों का वैधानिक नहीं वरन् नैतिक प्रभाव होता है। ठहराव को अनुबन्ध होने के लिए पक्षकारों के मध्य प्रस्ताव एवं स्वीकृति होना चाहिए। ठहराव ऐसा हो कि उसे वैधानिक रूप से प्रर्वतित भी कराया जा सके तथा पक्षकारों को अनुबन्ध करने योग्य होना चाहिए। ठहराव पारस्परिक रूप से एक दूसरे का प्रतिफल भी होना चाहिए, तथा पक्षकारों ने ठहराव के लिए प्रस्ताव तथा स्वीकृति स्वेच्छा से दी हुई हो। जिस ठहराव में उपरोक्त लक्षण होंगे

उन्हें ही अनुबन्ध कहा जा सकता है। उपरोक्त वर्णन के आधार पर हम कह सकते हैं कि अनुबन्ध के आधार में ठहरहाव होते हैं। अतः सभी अनुबनध ठहराव होते हैं।

1.3.4 सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं होते (All Agreements are not Contract)

सभी अनुबन्ध ठहराव नहीं होते हैं, इस वाक्य पर भी विचार कर लेना चाहिए। हमें ज्ञात है कि अनुबन्ध में पक्षकारों के द्वारा प्रस्ताव तथा स्वीकृति होती जो वचन का रूप होती है। इस प्रकार के वचन का वैधानिक प्रभाव होता है। हम यह भी जान चुके हैं कि ऐसे अवसर आते हैं कि व्यक्ति एक दूसरे से किसी बात पर सहमत हो जाते हैं अथवा सहमति प्राप्त कर लेते हैं परन्तु उनका अभिप्राय वैधानिक रूप से बाध्य होने अथवा बाध्य कर देने का नहीं होता है। कभी–कभी ऐसा भी देखा जाता है कि व्यक्तियों के बीच कि अवैधानिक कार्य को करने के लिए भी सहमति हो जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि जिन ठहरावों का वैधानिक प्रभाव नहीं होता है अथवा जिनका उद्देश्य एक दूसरे को वैधानिक रूप से बाध्य करना नहीं होता है अथवा जिनका उद्देश्य अवैधानिक हो, ऐसे ठहराव कभी भी अनुबन्ध नहीं हो सकते हैं। एक पुराने वाद श्रीमती बेलफर बनाम श्री बेलफर के वाद में यह स्पष्ट हो चुका है कि बेलफर द्वारा दूसरे स्थान पर रह रही उनकी पत्नी श्रीमती बेलफर को वचन देने के बाद भी खर्च की राशि देने में असमर्थता को अनुबन्ध को श्रेणी में नहीं माना गया। उपरोक्त पंक्तियों का अवलोकन करने के पश्चात् यह निष्कर्षित किया जा सकता है कि वैधानिक उत्तरदायित्व अनुबन्ध का मुख्य घटक है। इसलिए सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं हो सकते हैं। अतः यह कथन सिद्ध होता है कि ''सभी अनुबन्ध ठहराव होते हैं पर सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं होते''।

1.4 अनुबन्ध की विशेषताऐं (Characteristics of Contract)

अनुबन्ध की विशेषताओं को जानने के लिए हमें पुनः अनुबन्ध की परिभाषा पर ध्यानस्थ होना पड़ेगा कि भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(एच) के अनुसार ''एक ठहराव जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय हो ठहराव कहलाता है''। हमने उपरोक्त पक्तियों में इस परिभाषा का अवलोकन किया तथा उसके मुख्य घटक ठहराव का अध्ययन किया। इनके आधार पर अनुबन्ध की विशेषताओं को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

- अनुबन्ध में कम से कम दो पक्षकारों का होना अनिवार्य है।
- अनुबन्ध पक्षकारों के आपस में सहमत होने से उत्पन्न होता है।
- पक्षकारों के मध्य प्रस्ताव एवं स्वीकृति होने से ठहराव होता है।
- प्रस्ताव एवं स्वीकृति हो जाने से पक्षकार पारस्परिक रूप से वचनबद्ध हो जाते हैं।
- अनुबन्ध पक्षकारों के मध्य वैधानिक दायत्वि उत्पन्न करता है।
- अनुबन्ध में पक्षकारों को वैधानिक अधिकार प्राप्त होता है कि वह दूसरे पक्षकार से उसके वचन का पालन करवा सकें।

1.5 अनुबन्ध के प्रकार (Kinds of Contract)

विभिन्न आधारों पर अनुबन्ध को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है।

1.5.1 वैधता के आधार पर ठहराव (Contracts On the Basis of Legality)

वैधता के आधार पर अनुबन्ध को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया हैः

1.5.1.1 वैध अनुबन्ध (Valid Contract)

भारतीय अनुबन्ध की धारा 10 के अनुसार सभी ठहराव अनुबन्ध है यदि उनमें पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति है, प्रतिफल है तथा वैध उद्देश्य है तो ऐसे अनुबन्ध वैध कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में ठहरावों में वह सभी लक्षण विद्यमान होने चाहिए जो उसे वैधानिक स्वरूप प्रदान करते हों (इनका विश्लेषण आगे के अध्यायों में विस्तृत रूप से किया गया है) उदाहरण के लिए अ अपनी मोटर गाड़ी 1 लाख रुपये में विक्रय करना चाहता है और ब उसे उस मूल्य पर क्रय करने के लिए तैयार हो जाता है।

1.5.1.2 अवैध अनुबन्ध (Invalid contract)

जैसा कि शीर्षक के द्वारा स्पष्ट है कि ऐसे ठहराव विधि विपरीत होते हैं। ऐसे ठहराव की विधान के समक्ष कोई मान्यता नहीं होती हैं ऐसे ठहरावों को क्रियान्वित नहीं कराया जा सकता है। इस प्रकार के अनुबन्धों के पक्षकार भी वैधानिक रूप से दोषी घोषित किये जा सकते हैं।

1.5.2 प्र्वतनीयता के आधार पर (Onthebasis of Enforceability)

प्र्वतनीयता के आधार पर अनुबन्ध को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया हैः

1.5.2.1 व्यर्थ अनुबन्ध (Void Contract)

व्यर्थ शब्द का विधान के अनुसार अर्थ होता है शून्य एवं प्रभावहीन, जिसका कोई वैधानिक अस्तित्व न हो। ऐसे अनुबन्धों को विधि द्वारा किसी प्रकार से भी क्रियान्वित नहीं कराया जा सकता है। इनमें ऐसा कोई भी तथ्य नहीं होता है जिसको विधि परिभाषित करती हो। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 10 के अनुसार जो ठहराव विधि द्वारा क्रियान्वित न करा जा सकते हों, वह व्यर्थ कहलाते हैं।

सरल शब्दों में कहा जाए तो व्यर्थ ठहराव एवं उससे उत्पन्न अनुबन्धों की कानून या न्यायालय के समक्ष ऐसी स्थिति होती है कि जैसे ठहराव/अनुबन्ध हुआ ही न हो।

कभी–कभी ऐसी स्थिति भी हो सकती है कि कोई अनुबन्ध वैध ठहराव से उत्पन्न हुआ हो पर बाद में किसी परिस्थितिवश या किसी कानून के क्रियाशील होने पर उसे क्रियान्वित न कराया जा सकता हो, तो भी ऐसे अनुबन्धों को तब से व्यर्थ मान लिया जाता है जब से वह अप्रवर्तनीय हो गये हैं। (धारा 2(जे) के अनुसार)

निम्न उदाहरणों से इसे स्पष्ट किया जा सकता है–

1. सुरेश जो कि वस्त्रों की बिनाई के लिए उपयोग में आने वाले किसी सिन्थेटिक धागों का विक्रेता है, रमेश जो कि एक कपड़ा मिल चलाता है को ऐसे धागे को विक्रय का अनुबन्ध करता है जो जापान से आता है। जिस जहाज से सुरेश का माल आ रहा था वह समुद्र में डूब जाता है। ऐसी स्थिति में सुरेश और रमेश के मध्य हुआ अनुबन्ध परिस्थितिजन्य कारणों से व्यर्थ हो जाएगा।
2. महेश जो कि रसायनों का विक्रेता है, गणेश जो कि पेन्ट उत्पादक है, को एक विशेष प्रकार का रसायन बिक्री करने का अनुबन्ध करता है जिसकी आपूर्ति दिसम्बर को होनी है। 1 दिसम्बर से पहले सरकार द्वारा वह विशेष

रसायन प्रतिबन्धित कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में भी अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा।

3. अ, ब को पहले से ही प्रतिबन्धित रसायनिक दवा एफिड्रीन की विक्रिय करने को सहमत हो जाता है। ऐसी सहमति और संग्रामी अनुबन्ध प्रारम्भ से व्यर्थ है तथा अवैध भी है।

1.5.2.2 व्यर्थनीय अनुबन्ध (Voidable Contract)

व्यर्थनीय का अर्थ है जिसे व्यर्थ घोषित किया जा सकता हो। यह ऐसे अनुबन्ध होते हैं जिन्हें अनुबन्ध के किसी एक पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थ घोषित किया जा सके। ऐसे अनुबन्धों में पक्षकार अनुबन्ध को पूरा करा सकते हैं अथवा अपनी इच्छा पर व्यर्थ घोषित कर सकते हैं। ऐसे अनुबन्धों में ध्यान रखना चाहिए कि व्यर्थ घोषित कर देने के लिए पर्याप्त आधार होना चाहिए। केवल इच्छामात्र ही सब कुछ नहीं है। ऐसी स्थिति में दूसरा पक्षकार को यदि हानि हो तो वह न्यायालय की शरण लेकर अनुबन्ध को क्रियान्वित कराने का आदेश प्राप्त कर सकता है।

उदाहरण के लिए यदि अनुबन्ध हो जाने के पश्चात् एक पक्षकार को यह पता चलता है कि दूसरे पक्षकार ने किसी अवसर पर मिथ्या वर्णन किया था। ऐसी स्थिति में पहला पक्षकार ऐसे अनुबन्ध को व्यर्थ घोषित कर सकता है और यदि वह (पहला पक्षकार) झूठ बोलने की बात को अनदेखा कर दे तो वह अनुबन्ध को चालू रख सकता है। एक बात और स्पष्ट हो जानी चाहिए कि यदि एक पक्ष द्वारा अनुबन्ध को व्यर्थ घोषित किये जाने के परिणामस्वरूप दूसरा पक्ष को अकारण हानि होती है तो वह (हानि वहन करने वाला) न्यायालय की शरण लेकर अनुबन्ध को क्रियान्वित कराने का आदेश प्राप्त कर सकता है।

कुछ ऐसी दशाएं हैं जब अनुबन्ध को व्यर्थ घोषित किया जा सकता है जैसे जब अनुबन्ध के पक्षकार या पक्षकारों की सहमति, उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, मिथ्यावर्णन एवं कपट के द्वारा प्राप्त की गई हो। ऐसी दशा में पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थ (वैधानिक रूप से) घोषित किया जा सकता है।

1.5.2.3 प्रवर्तनीय अनुबन्ध (Enforceable Contract)

प्रवर्तनीय अनुबन्ध ऐसे सामान्य रूप से पाए जाने वाले ठहरावों के रूप होते हैं जिन्हें सभी लक्षणों के साथ राजनियम के द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। इनमें किसी प्रकार की कोई वैधानिक कमी अथवा दोष नहीं पाया जाता है। इनमें वैध अनुबन्ध के सभी लक्षण होते हैं। उदाहरण के लिए जैसे राम जो एक वस्तु का उत्पादक है, अपने उत्पाद का विक्रय करने के लिए श्याम के पास प्रस्ताव रखता है और श्याम उसे स्वीकार कर लेता है तथा निश्चित समय पर दोनों पक्ष अपने–अपने वचन का निष्पादन कर देते हैं तथा अनुबन्ध क्रियान्वित हो जाता है।

1.5.2.4 अप्रर्वतनीय अनुबन्ध (Unenforceable Contract)

अप्रवर्तनीय अनुबन्ध वह होते हैं जिन्हें किसी दोष अथवा त्रुटि के कारण वैधानिक रूप से क्रियान्वित नहीं कराया जा सकता है। इनके दोष वैधानिक त्रुटियाँ अथावा तकनीकि कारण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए 'लिमिटेशन एक्ट' के अनुसार समय सीमा का बीत जाना, स्टाम्प एक्ट के अनुसार उचित स्टाम्प का न लगा होना, या अनुबन्ध का रजिस्र्टड (यदि अपेक्षित हो तो) न होना। इस प्रकार की कमियों अथवा त्रुटियाँ या भूल के होते हुए कोई पक्षकार अनुबन्ध को वैधानिक

रूप से क्रियान्वित नहीं करवा सकता है। एक बात और ध्यान देने की है कि यद्यपि ऐसे अनुबन्ध क्रियान्वित भले न कराए जा सकते हों पर आवश्यक नहीं कि ऐसे ठहराव व्यर्थ या व्यर्थनीय हों। अर्थात् ऐसे अनुबन्धों के अन्य प्रभाव विद्यमान रहेंगे जैसे कि स्वतंत्र सहमति, अनुबन्ध करने की योग्यता अथवा प्रतिफल इत्यादि।

1.5.3 संरचना के आधार पर अनुबन्ध (Contracts the basis of Formation)

संरचना के आधार पर अनुबन्ध को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है:

1.5.3.1 स्पष्ट अनुबन्ध (Express Contract)

स्पष्ट ठहराव से आशय है कि जब पक्षकार ठहराव करने के लिए अपने—अपने निर्णय पर अडिग हो, तथा इसके लिए अपना प्रस्ताव तथा स्वीकृति स्पष्ट रूप से एक दूसरे को लिखित या मौखिक प्रेषित करें। इसके अतिरिक्त अन्य जो अन्य आर्हताएं हैं उन्हें पूरा करते हों। उदाहरण के लिए मोहन एक कपड़ों का थोक विक्रेता सोहन जो कपड़ों का फुटकर विक्रेता है उसे कपड़े विक्रय का प्रस्ताव करता है तथा सोहन उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। यह स्पष्ट अनुबन्ध होगा।

1.5.3.2 गर्भित अनुबन्ध (Implied Contract)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 9 में वर्णित है कि गर्भित ठहराव में दोनों पक्ष अपना प्रस्ताव अथवा स्वीकृति लिखित या मौखिक रूप से न देते हों तो ऐसे अनुबन्ध गर्भित अनुबन्ध कहलाते हैं। यहां पर शब्दों से अधिक पक्षकारों का आचरण अथवा व्यवहार महत्व रखता है। इसके अतिरिक्त व्यापारिक रीति—रिवाज और परिस्थिति को भी ध्यान में रखना पड़ता है। उदाहरण के लिए एक फल का फुटकर विक्रेता फलों को ठेले पर रखकर विक्रय करने के लिए सड़क के किनारे खड़ा हो जाता है, तभी सड़क से जा रहा एक व्यक्ति वहाँ रूकता है और फल के ठेले से एक केला उठा कर खाने लगता है। इसका अर्थ यह निहित है कि वह व्यक्ति केले का मूल्य चुकता करेगा और वह ऐसा कर भी देता है। यह एक गर्मित अनुबन्ध का उदाहरण है।

1.5.3.3 अर्ध अनुबन्ध (Quasi Contract)

अर्ध अनुबन्ध वह होते हैं जिनमें पक्षकारों के मध्य अधिकार एवं दायित्व, अनुबन्ध के द्वारा नहीं वरन् कानून के क्रियाशील होने से उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार के अधिकार एवं दायित्व विधान के द्वारा एक प्रकार से आरोपित किए जाते हैं जो पक्षकारों के मध्य किसी विशेष परिस्थिति अथवा घटना पर आधारित होते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो अर्ध अनुबन्ध वह होते हैं जो पक्षकारों द्वारा औपचारिक रूप से किए नहीं जाते हैं वरन परिस्थितियों के कारण उनके सम्बन्ध अनुबन्ध के सम्बन्धों जैसे हो जाते हैं और कानूनी रूप से प्रभावी भी होते हैं। उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति का मित्र मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जाता है और वह व्यक्ति अपने मित्र के परिवार की देखभाल करता है तो ऐसा व्यक्ति अपने द्वारा किए गए व्ययों को अपने मित्र की सम्पत्ति (यदि कोई हो तो) से प्राप्त कर सकता है।

1.5.4 निष्पादन के आधार पर अनुबन्ध (Contracts on the Basis of Performance)

निष्पादन के आधार पर अनुबन्ध को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है:

1.5.4.1 निष्पादित अनुबन्ध (Executed Contract)

जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि जहाँ पर पक्षकारों ने अनुबन्ध के अन्तर्गत अपने–अपने दायित्वों का निर्वहन कर दिया है वह निष्पादित या क्रियान्वित हो चुका ठहराव कहलाता है। उदाहरण के लिए सुरेश एक टन वनस्पति तेल को रमेश को विक्रय करता है जिसका मूल्य 1,50,000 रु0 है। रमेश मूल्य चुकता कर देता है और सुरेश तेल को सुरेश को सुपुर्द कर देता है। यह एक निष्पादित अनुबन्ध है जहाँ पर दोनों पक्षों ने अपने–अपने दायित्वों को पूरा कर दिया है।

1.5.4.2 निष्पादनीय अनुबन्ध (Executory Contract)

यह ऐसे ठहराव होते हैं जहाँ पर पक्षकारों को अपने दायितवों को भविष्य की किसी तिथि पर पूरा करना है। उदाहरण के लिए राम 1000 रु0 मूल्य की एक वस्तु को विक्रय करने का प्रस्ताव श्याम के समक्ष रखता है। श्याम उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। वस्तु की सुपुर्दगी एवं मूल्य का भुगतान आगामी 1 जुलाई को होना है। यह एक निष्पादनीय अनुबन्ध है। यहाँ पर दोनों पक्षों ने अभी अपने दायित्व का निर्वहन नहीं किया है जो आगामी 1 जुलाई की तिथि पर होगा।

1.6 अन्तर एवं तुलना (Difference and Comaprisions)

ठहराव एवं अनुबन्ध, व्यर्थ एवं अवैध ठहराव व व्यर्थ ठहराव एवं व्यर्थनीय ठहराव के मध्य पाए जाने वाले अन्तर का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है:

1.6.1 ठहराव एवं अनुबन्ध (Agreement and Contract)

ठहराव (Agreement)	अनुबन्ध (Contract)
ठहराव वचनों का समूह या वचन हो सकता है	अनुबन्ध भी वचन अथवा वचनों का समूह है, जिसकी विधिक स्वीकार्यता है।
ठहराव, विधि द्वारा प्रर्वतनीय हो भी सकते हैं और नहीं भी।	अनुबन्ध भी ऐसा ठहराव है जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय होता है।
सभी ठहराव पक्षकारों को विधिक रूप से बाध्य नहीं करते हैं।	अनुबन्ध, पक्षकरों पर विधिक रूप से बाध्यकारी होते हैं।
सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं होते।	सभी अनुबन्ध ठहराव होते हैं।

1.6.2 व्यर्थ ठहराव एवं व्यर्थनीय ठहराव (Void Agreement and Voidable Agreement)

व्यर्थ ठहराव (Void Agreement)	व्यथनीर्य ठहराव (Voidable Agreement)
जो ठहराव राजनियमय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होते व्यर्थ ठहराव कहलाते हैं।	व्यर्थनीय ठहराव ऐसे होते हैं जिन्हें एक पक्षकार अपनी इच्छा पर व्यर्थ घोषित करवा सकता है।
व्यर्थ ठहराव प्रारम्भ से ही विधिक रूप से अप्रर्वतनीय होते हैं।	व्यर्थनीय ठहराव निर्माण के समय तो विधिक रूप से प्रवर्तनीय होते हैं पर किसी घटना विशेष के कारण पक्षकार उसे व्यर्थ करवा सकता है।
अनुबन्ध करने के अयोग्य व्यक्तियों से किया गया ठहराव अथवा बिना प्रतिफल का ठहराव अथवा असम्भव कार्य करने	यदि अनुबन्ध के उपरान्त ऐसे तथ्य जैसे उत्पीड़न या कपट द्वारा अथवा अनुचित प्रभाव द्वारा सहमति का प्राप्त होना

के ठहराव प्रारम्भ से ही व्यर्थ होते हैं।	आदि उसे व्यर्थनीय बना देते हैं।

1.6.3 व्यर्थ एवं अवैध ठहराव **(Void and Illegal Agreement)**

व्यर्थ ठहराव **(Void Agreement)**	अवैध ठहराव **(Illegal Agreement)**
सभी अवैध ठहराव व्यर्थ होते हैं। व्यर्थ एक व्यापक अर्थ वाला शब्द है।	सभी व्यर्थ ठहराव अवैध नहीं होते। अवैध ठहराव होने पर कानून की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, व्यर्थ कह के बचा नहीं जा सकता है।
व्यर्थ ठहराव के पक्षकार सदैव कानूनी रूप से दोषी नहीं होते अर्थात् सदैव दण्ड के भागी नहीं होते।	अवैध ठहरहाव के पक्षकार सदैव दण्ड के भागी होते हैं। अर्थात उनका दोष उपस्थित रहता है।
व्यर्थ सिद्ध हो जाने से ठहराव की वैधानिक प्रवर्तनीयता समाप्त हो जाती है।	अवैध ठहराव सदैव वैधानिक रूप से अप्रवर्तनीय होते हैं।

1.7 सारांश **(Summary)**

मानव समाज में सम्यता के प्राचीनतम काल से ही व्यापार किसी न किसी प्रकार से प्रचलन में रहा है। जब कानूनों का निर्माण नहीं हुआा था और मुद्रा का चलन भी नहीं हुआ था तब भी किसी न किसी रूप से समाज में व्यापार होता था चाहे उसका स्वरूप कैसा भी रहा हो। सम्यता के विकास के साथ–साथ मानव समाज को आचरणबद्ध एवं नियमित करने के लिए विभिन्न प्रकार के कानून आस्तित्व में आते गए। व्यापार तब भी विश्वास पर उतना ही आधारित होता था जितना कि आज है। व्यापारियों के क्रियाकलापों को नियंत्रित एवं नियमित करने के लिए विभिन्न व्यापारिक नियमों का विकास होता गया और समयान्तराल में विस्तृत भी होता गया। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम उसमें से अग्रणी हैं। यह वर्ष 1872 से लेकर अब तक हमारे देश में प्रचलन में है। यह अधिनियम अति व्यापक है और व्यापारिक पक्षकारों को उनके अधिकारों के प्रति सजग करता है तथा उनके दायित्वों का (अनिवार्य रूप से) बोध कराता है।

औपचारिक रूप से व्यापार करने वाले पक्ष अपने–अपने वचन के प्रति प्रतिबद्धता के लिए अनुबन्ध करने के पश्चात् ही व्यापारिक सम्बन्धों को आगे बढ़ाते हैं। अनुबन्ध ठहराव से उत्पन्न होता है या दूसरे शब्दों में कहा जाए कि बाध्यकारी ठहराव ही विधिक शब्दों में अनुबन्ध कहलाते हैं। अनुबन्धों को कानून की मदद से क्रियान्वित करवाया जा सकता है। जो पक्ष अपने दायित्व को पूरा नहीं करता है उसको कानून द्वारा उसके दायित्व के प्रति सजग कराया जा सकता है। ठहराव विधिसम्मत हो, इसके लिए पक्षकारों को प्रचलित नियमों के अनुसार अनुबन्ध करना चाहिए। पक्षकारों के मध्य सहमति होने के पश्चात् अनुबन्ध आस्तित्व में आता है।

व्यक्तियों में अथवा मित्रों अथवा रिश्तों में प्रायः ठहराव होते रहते हैं जैसे कि पहले की पक्तियों में आप अध्ययन कर चुके हैं। ऐसे सभी ठहरावों का उद्देश्य दूसरे पक्ष को विधिक रूप से बाध्य करना नहीं होता है इसलिए ऐसे अनुबन्धों का वैधानिक प्रभाव नहीं होता है। इसीलिए अनुबन्धों के वैधानिक रूप से क्रियान्वित किए जाने के पहलू पर ध्यान देना होता है।

अनुबन्ध ठहराव से उत्पन्न होते हैं। ठहराव दो या दो से अधिक व्यक्तियों के एकमत होने से होता है। अर्थात् सहमति से होता है। पक्षकारों में सहमति एक पक्ष के द्वारा दूसरे पक्ष से सम्मुख प्रस्ताव प्रस्तुत करने और दूसरे पक्ष द्वारा प्रस्ताव को स्वीकार कर लिए जाने से होती है। दूसरों शब्दों में कहा जाए तो वही ठहराव अनुबन्ध के रूप में परिणत होते हैं जिनका उद्देश्य प्रारम्भ से ही वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होता है। इस कथन के आधार पर ही यह कहा जाता है कि सभी अनुबन्ध ठहराव होते हैं पर सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं होते। अतः यह कहा जा सकता है कि अनुबन्ध में मूलभूत विशेषताएं होनी चाहिए जैसे कि दो पक्षों का होना, उसमें अनुबन्ध करने की योग्यता होना, प्रस्ताव एवं स्वीकृति होना और वैधानिक दायित्व का उत्पन्न होना आदि। इसी आधार पर अनुबन्धों को वैध, अवैध, व्यर्थ व्यर्थनीय प्रवर्तनीय, अवप्रवर्तनीय, स्पष्ट एवं गर्मित आधार पर वर्गीकृत करके अध्ययन किया जाता है। आप आगामी अध्यायों में इन्हीं बिन्दुओं का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

1.8 शब्दावली (Terminology)

अनुबन्ध (Contract): दो या अधिक पक्षों के मध्य वैधानिक ठहरहाव जो मुख्यतयः व्यापारिक मामलों से सम्बन्धित हो।

ठहराव (Agreement): दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य किसी विषय वस्तु पर एक मत (सहमत) होना जो मुख्यतयः करार से सम्बन्धित हो।

वैध अनुबन्ध (ValidContract): ठहरावों से उत्पन्न ऐसे अनुबन्ध जो पक्षकारों में वैधानिक दायितव (अथवा अधिकार) उत्पन्न करते हों।

अवैध अनुबन्ध (Illeggal Contract): ऐसे ठहराव जिन्हें वैधानिक रूप से क्रियान्वित नहीं कराया जा सकता है अथवा जिनका उद्देश्य अवैध है।

व्यर्थ अनुबन्ध (Void Contract): अनुबन्ध जिन्हें विधान (कानून) मान्यता नहीं देता है, निरर्थक या प्रभावहीन अनुबन्ध।

व्यर्थनीय अनुबन्ध (Voidable Contract): अनुबन्ध जो पक्षकारों की इच्छा पर निष्प्रभावी हो जाए।

स्पष्ट अनुबन्ध (Express Contract): पक्षकारों द्वारा अपने–अपने दायित्वों/अधिकारों का स्पष्ट बोध होना।

गर्मित अनुबन्ध (Implied Contract): ठहराव जो पक्षकारों के आचरण से उत्पन्न होते हों।

अर्ध अनुबन्ध (Quasi Contract): ठहराव जो परिस्थितिजन्य कारणों से पक्षकारों के मध्य वैधानिक सम्बन्ध के समकक्ष सम्बन्ध दायित्व/अधिकार उत्पन्न करते हों।

1.9 बोध प्रश्न

प्रश्न–1 अनुबन्ध एवं ठहराव को परिभाषित करिए।

प्रश्न–2 सभी अनुबन्ध ठहराव होते हैं पर सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं होते स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न–3 अनुबन्ध की विशेषताएं एवं प्रकारों को बताइए।

प्रश्न–4 प्रवर्तनीयता के आधार पर अनुबन्ध कितने प्रकार के होते हैं?

प्रश्न–5 अनुबन्ध तथा गर्भित अनुबन्धों को स्पष्ट करिए।

प्रश्न–6 गर्भित एवं अर्ध अनुबन्धों को स्पष्ट करिए।

प्रश्न–7 ठहराव एवं अनुबन्ध में अन्तर स्पष्ट करिए।

प्रश्न–8 व्यर्थ एवं व्यर्थनीय ठहराव में अन्तर स्पष्ट करिए।

1.10 बोध प्रश्नों के सम्भावित उत्तर

प्रश्न–1 इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 1.1, 1.2 तथा 1.3 को अपने शब्दों में लिखना है।

प्रश्न–2 इस प्रश्न के उत्तर में आपको ठहराव एवं अनुबन्ध को परिभाषित करने के साथ बिन्दु 1.3.3 एवं 1.3.4 का अध्ययन करना हैं एवं अपने शब्दों में निष्कर्ष भी देना है।

प्रश्न–3 इस प्रश्न के उत्तर में आपको बिन्दु 1.4 में वर्णित अनुबन्ध की विशेषताओं को विस्तार से एवं बिन्दु 1.5 में वर्णित प्रकारों को संक्षिप्त में लिखना है।

प्रश्न–4 इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 1.5.2 के सभी उप बिन्दुओं को विस्तार से अध्ययन करना है।

प्रश्न–5 इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 1.5.3.1 तथा 1.5.3.2 को लिखना है।

प्रश्न–6 इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 1.5.3.2 तथा 1.5.3.3 को लिखना है।

प्रश्न–7 इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 1.6.1 में वर्णित अंतर का अध्ययन करना है।

प्रश्न–8 इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 1.6.2 में वर्णित अंतर का अध्ययन करना है।

1.11 स्वपरख प्रश्न (Self Assessement Questions)

1. अनुबन्ध एक ठहराव है जो राज नियम द्वारा प्रवर्तनीय है। समझाइए
2. सभी अनुबन्ध ठहराव होते है तथा सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं होते। कथन की व्याख्या करिए एवं ठहराव एवं अनुबन्ध का परिभाषित करिए।
3. व्यापारिक सन्नियम के महत्त्व को स्पष्ट करिए।

1.12 सन्दर्भ पुस्तकें (Suggested Readings)

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws : Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (P) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law : Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law : K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 02 वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण (Essentials of Valid Contract)

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 वैद्य अनुबन्ध का अर्थ
2.3 वैद्य अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 बोध प्रश्न
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 स्वपरख प्रश्न
2.9 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वैध अनुबन्ध क्या होते है, की विवेचना कर सकें
- वैध अनुबन्ध का अर्थ क्या होता है, की व्याख्या कर सकें।
- एक अनुबन्ध को वैध होने के लिए किन लक्षणों को अपने में समाहित करना होता है, उल्लेख कर सकें

2.1 प्रस्तावना

पिछले इकाई में हमने अध्ययन किया है कि अनुबन्ध क्या होते है तथा उनका प्रभाव क्या होता है। हमने यह अध्ययन किया कि अनुबन्ध के मूल में ठहराव होता है। ठहराव में वैधानिक प्रक्रिया का पालन किया गया है तो वह अनुबन्ध का रूप ले लेता है। ठहराव ही अनुबन्ध को जन्म देते है। यह दूसरे शब्दों में कहा जाए तो ठहराव अनुबन्ध की रीढ़ है। साथ ही हमने यह भी अध्ययन किया कि भारतीय अनुबन्ध अधिनियम कि धारा 2(एच) के अनुसार अनुबन्ध को इस प्रकार परिभाषित किया है कि ''वह ठहराव जो राज्य नियम द्वारा प्रवर्तनीय हो अनुबन्ध कहलाता है।'' इससे यह स्पष्ट है कि अनुबन्ध को बैध रूप में परिभाषित किए जाने के मूल में कुछ लक्षण होते है जिनमें से ठहराव भी एक लक्षण है तथा इसके अतिरिक्त और भी लक्षण हैं जिनका हम अध्ययन करेगें।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 10 में वर्णित है कि सभी ठहराव अनुबन्ध है यदि वह पक्षकारों कि स्वातंत्र सहमति से किये जाते है जिनमें अनुबन्ध करने कि क्षमता होती है जो वैधानिक प्रतिफल कि लिए तथा वैधानिक उद्दश्ेय से किए जाते है।

इसके अतिरिक्त तथा अन्य अधिनियम यदि अनिवार्य करते हो तो ठहराव को उल्लिखित साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित और रजिस्टर्ड होना चाहिए।

2.2 वैध अनुबन्ध का अर्थ (Meaning of Valid Contract)

वैध अनुबन्ध से आशय है कि जिनकें क्रियान्वयन के लिए कानून कि सहायता ली जा सकती हो तथा अनुबन्ध के पक्षकार अपने–अपने अधिकारियों एवं दायित्वों के प्रति वैधानिक रूप से बाध्य हों। हम यह अध्ययन कर चुकें है कि

सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं होते है केवल वही ठहराव अनुबन्ध होते है जिनके पक्षकारों के उद्देश्य वैधानिक रूप से उसे पूरा करना होता है।

2.3 वैद्य अनुबन्ध के आवश्यक लक्षण (Essendials of Valid Contract)

भारतीय अनुबन्ध निम्न अधिनियम धारा 2(एच) तथा धारा 10 के अनुसार वैध अनुबन्ध में कुछ लक्षणों का होना आवध्यक है तथा जिनके अभाव में अनुबन्ध वैध नही माना जायेगा। इस आधार पर किसी अनुबन्ध में निम्न लक्षणों का होना अनिवार्य है। पर इस प्रकार के ठहराव मित्रता के अथवा अनौपचारिक ठहराव से सर्वदा भिन्न होते है जिनका उद्देश्य कभी भी उनका वैधानिक रूप से क्रियान्वयन कराना नहीं होता है। वैध अनुबन्ध को हम औपचारिक अनुबन्ध भी कह सकते है जो भिन्न व्यापारिक पक्षकारों के मध्य होता है। जिनका उद्देश्य व्यापार एवं लाभ कमाना होता है। यह लक्षण निम्न है–

1 ठहराव का होना (There should be agreement)

एक वैध अनुबन्ध के लिए ठहराव का होना आधारभूत है जिनके बिना अनुबन्ध हो ही नहीं सकता। ठहराव से तात्पर्य है कि जब किसी विषय पर दो या दो से अधिक पक्षकार सहमत हो गए हो। ठहराव को भारतीय अनुबन्ध अधिनियम कि धारा 2(इ) में परिभाषित किया गया कि ''प्रत्येक वचनों का समूह जो एक दूसरे का प्रतिफल हो ठहराव कहलाता है।'' इसका आशय है कि एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार के समक्ष कोई प्रस्ताव किया जाए तथा दूसरे पक्षकार के द्वारा उसे स्वीकार कर लिया जाए। उदाहरण के लिए राम किसी वस्तु के विक्रय करने का प्रस्ताव एक निश्चित मूल्य पर श्याम के समक्ष रखता है। और श्याम उसे स्वीकार कर लेता है। तो कहा जायेगा कि राम और श्याम के मध्य वस्तु के विक्रय एवं क्रय के सम्बन्ध में सहमति हो गई है। हम कह सकते है कि ठहराव प्रस्ताव एवं स्वीकृति से उत्पन्न होता है।

प्रस्ताव (Proposal)

प्रस्ताव से आशय है कि कोई पक्षकार अपनी इच्छा दूसरे पक्षकार के समक्ष प्रस्तुत करें तथा उसकी सहमति प्राप्त करे। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम कि धारा 2(ए) के अनुसार प्रस्ताव को इस प्रकार से परिभाषित किया गया है कि जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यकित के सम्मुख किसी कार्य को करने अथवा न करने के सम्बन्ध में अपनी इच्छा इस उद्देश्य से प्रकट करता है कि उस दूसरे व्यक्ति की सहमति से उस कार्य को करने अथवा न करने के सम्बन्ध में प्राप्त हो कहा जाता है कि एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के सम्मुख प्रस्ताव किया है। इसका अर्थ यह है कि प्रस्ताव रखने वाला पक्षकार अपने प्रस्ताव के बदले में दूसरे पक्षकार से उसकी सहमति की अपेक्षा रखता है।

स्वीकृति (Acceptance)

स्वीकृति से आशय है कि जिस व्यक्ति के सम्मुख प्रस्ताव रखे गये है वह व्यक्ति उस प्रस्ताव को स्वीकार कर ले। दूसरे शब्दों में उस प्रस्ताव कि सभी शर्तो से वह व्यक्ति सहमत हो जाए। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम कि धारा 2 (बी) में वर्णित है कि जब वह व्यक्ति जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा गया है प्रस्ताव पर अपनी सहमति प्रकट कर देता है, तो यह कहा जाता है, कि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया है। उदाहरण के लिए राम अपने उत्पाद को 500 रूपयें में बेचने का प्रस्ताव श्याम के सम्मुख रखता है और श्याम वह उत्पाद बताये गये मूल्य पर क्रय

करने के लिए सहमत हो जाता है। अब राम को अपना उत्पाद श्याम को बेचना ही पड़ेगा और श्याम को उसका मूल्य चुकता करना पड़ेगा। यदि दोनों में से कोई एक पक्ष अपने वचन को पूरा नहीं करेगा तो दूसरा पक्ष वैधानिक रूप से दूसरे पक्ष के उपर उसके वचन को पूरा कराने वाली वैधानिक कार्यवाही कर सकता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो ठहराव दोनों पक्षों पर वैधानिक रुप से एक समान लागू होता है। यदि ऐसा नहीं है तो ठहराव अनुबन्ध का रूप नही ले सकता है। इस आधार पर हम कह सकते है कि ठहराव राज नियम द्वारा परिर्वतनीय होते है इस बात को धारा 2(एच) में परिभाषित किया गया हैं।

2 पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होना (Parties Should be Competant to Contract)

पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होने का अर्थ है कि पक्षकार वैधानिक रूप से अनुबन्ध करने के योग्य हों। आशय यह है कि वही व्यक्ति अनुबन्ध कर सकते है, जिनकों कानून अनुबन्ध करने से प्रतिबन्धित नहीं करता है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार ''प्रत्येक व्यक्ति अनुबन्ध करने के योग्य है, जो कि राजनियम के अनुसार जिसके अधीन वह आता है, वयस्क है, स्वस्थ्य मस्तिष्क का है, और किसी राजनियम के अनुसार (जिसके अधीन वह आता है, अर्थात इस अधिनियम या किसी अन्य अधिनियमों) के द्वारा अयोग्य घोषित नहीं किया गया है। उपरोक्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निम्न व्यक्ति अनुबन्ध करने के लिए लिये योग्य है।

- जिन्होनें वयस्कता की आयु प्राप्त कर ली है। भारतीय विधान के अनुसार वह व्यक्ति जिसने 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है। वयस्क होता है। ऐसा व्यक्ति अनुबन्ध कर सकता है।
- जो स्वस्थ्य मस्तिष्क के हों। स्वस्थ मस्तिष्क से आशय है कि अनुबन्ध करने वाला व्यक्ति अनुबन्ध की शर्तें को समझ सके और अनुबन्ध के परिणामस्वरूप अपने ऊपर पड़ने वाले दायित्व एवं अधिकारों के प्रभाव को समझ सकें।
- जिन्हें किसी भी कानून के द्वारा अनुबन्ध करने से प्रतिबन्धित न किया गया हो। उदाहरण के लिए एक दिवालिया व्यक्ति अनुबन्ध नहीं कर सकता है।

अतः एक अवस्यक, अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति तथा कानून द्वारा प्रतिबन्धित व्यक्ति अनुबन्ध नहीं कर सकता है। इनके द्वारा किया गया अनुबन्ध कानून के द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होता है। एक उदाहरण देखिए, एक अवस्यक अ अपने लिए ब से 1000 रू0 उधार लेता है, और एक माह में यह लौटाने का वचन देता है। यह एक वैध अनुबन्ध नही हैं। ऐसी स्थित में यदि 'अ' अपने वचन से मुकर जाता है तो 'ब' के पास कोई उपाय नही है कि वह अपनी धनराशि प्राप्त कर ले।

3 पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति होना (Consent of the Parties Should be Free)

अनुबन्ध की वैधता के लिए पक्षकारों की अनुबन्ध में स्वतंत्र सहमति होना चाहिए। इसके दो पक्ष हैं, एक, कि अनुबन्ध हो और दूसरा, कि अनुबन्ध के

पक्षकारों ने अनुबन्ध में प्रवेश अपनी स्वतंत्र सहमति (इच्छा) से किया हो। स्वतंत्र सहमति तब कही जाती है जब अनुबन्ध के पक्षकार एक बात पर एक मत से सहमत हो गए है। इसका अर्थ है कि अनुबन्ध के सार को लेकर पक्षकारों का भाव एक है। इसके अतिरिक्त सहमति के सम्बन्ध में यह भी आवश्यक है कि पक्षकारों के उपर अनुबन्ध में प्रवेश करने को लेकर एक दूसरे पर किसी प्रकार का दबाव न हो। एक बात और विचारणीय है कि किसी तीसरे पक्ष का भी अनुबन्ध के पक्षकारों पर कोई दबाव नही होना चाहिए। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार यदि पक्षकारों की सहमति (क) उत्पीड़न (ख) अनुचित प्रभाव (ग) कपट (घ) मिथ्यावर्णन अथवा (ङ) गलती से प्रभावित हो तो उसे स्वतंत्र सहमति नहीं माना जाता है। इनमें से किसी एक का भी प्रभाव हो तो सहमति स्वतंत्र नहीं मानी जाती है।

एक उदाहरण देखिए—अ, ब को धमकी देता है कि यदि ब अपनी मोटर कार अ को बेचने के लिए सहमत नहीं होता है तो अ, ब के पुत्र का अपहरण करवा देगा। ऐसी स्थिति में यदि ब डरकर सहमति दे देता है तो यह सहमति स्वतन्त्र नहीं होगी। ब की इच्छा पर ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ एवं अवैध हो जाएगा।

4 न्यायोचित प्रतिफल का होना (There should be Lawful Consideration)

प्रत्येक अनुबन्ध का प्रतिफल होना चाहिए और प्रतिफल न्यायोचित होना चाहिए। प्रतिफल का आशय है ''बदले में कुछ प्राप्त होना।

किसी वस्तु की बिक्री के सम्बन्ध में विक्रेता के लिए मूल्य एवं क्रेता के लिए प्राप्त होने वाली वस्तु प्रतिफल होता है। बिना किसी मूल्य के किया जाने वाला विक्रय का अनुबन्ध व्यर्थ होगा। अनुबन्ध में प्रतिफल तो होना चाहिए और प्रतिफल को वैध भी होना चाहिए। यदि प्रतिफल जो राजनियम द्वारा वर्जित हैं (जैसे कि मुद्रा का न होना) अथवा किसी अन्य राजनियमों का उल्लंघन करते हों तो प्रतिफल न्यायोचित नहीं माना जाएगा। यदि प्रतिफल कपट द्वारा प्राप्त किया जा रहा है, तो भी न्यायोचित नहीं कहलाएगा उदाहरण के लिए यदि रमेश 100000 रू के बदले सुरेश को सरकारी नौकरी दिलाने का वादा करता है, और सुरेश इसके लिए तैयार भी हो जाता है, ऐसी स्थिति में उनका अनुबन्ध और प्रतिफल दोनो ही अवैध होगा।

5 वैध उद्देश्य का होना (There Should be Lawful Object)

वैद्य उद्देश्य से आशय है कि अनुबन्ध का उद्देश्य एवं प्रयोजन वैधानिक हों। यदि दो पक्षों के मध्य हुए अनुबन्ध का उद्देश्य ऐसा व्यापार करना हो जो प्रतिबन्धित है अथवा पहले से ही अवैध घोषित है तो वैध उद्देश्य नहीं कहलाएगा। किसी अनुबन्ध के परिणामस्वरूप किसी राजनियम के प्रावधानों का उल्लघंन होता हो अथवा किसी समपत्ति अथवा समाजिक व्यवस्था को क्षति पहुचाती है तो वैध उदे्श्य नहीं कहलायेगा। यदि कोई अनैतिक व्यापार या क्रियाएं की जा रही है तो भी वैध उद्देश्य नही होगा। लोक नीति के विरूद्ध भी कोई व्यापार हो रहा है, तो उसका उद्देश्य भी अवैध होगा। अवैध उद्देश्य वाले अनुबन्ध व्यर्थ होने के साथ—साथ अवैधानिक भी होते है। अतः अनुबन्ध का उदे्दश्य वैध होना चाहिए। उदाहरण के लिए श्याम अपने दुकान की आड़ में सट्टेवाजी का धन्धा चलाता है। तो यह एक अवैध उद्देश्य वाला व्यापार होगा जो कानून के द्वारा दण्डनीय होगा।

6 ठहराव स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित न किया गया हो (**Agreements not Expressly Declared Void**)

एक वैध अनुबन्ध उसे कहते है जो किसी भी प्रकार के वैधानिक प्रावधानों का उल्लघन न करता हो, यह हम अब तक के अध्ययन से जान चुके है। कुछ ऐसे भी अुनबन्ध है जिनमें अनुबन्ध के सभी तत्व जैसे स्वतंत्र सहमति, प्रतिफल इत्यादि होते है पर उन्हें भारतीय अनुबन्ध अधिनियम स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित करता है। ऐसे अनुबन्ध व्यर्थ होने के साथ–साथ, कभी–कभी अवैध भी हो जाते है निम्न पंक्तियों में ऐसे अनुबन्ध वर्णित किये जा रहे है जो भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के द्वारा स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित किये गए है।

- विवाह में रूकावट डालने वाले ठहराव धारा–26
- व्यापार में रूकावट डालने वाले ठहराव धारा–27
- वैधानिक कार्यवाही में रूकावट डालने वाले ठहराव धारा–28
- अनिश्चित अर्थ वाले ठहराव धारा–29
- बाजी लगाने के ठहराव धारा–56

(नोटः–इनका विस्तृत अध्ययन आगे की इकाइयों में आप करेगें।)

उदाहरण के लिए–

(i) यदि ब, अ से अनुबन्ध करे कि, जब तक अ उसकी नौकारी में रहेगा, विवाह नहीं करेगा।

(ii) अ ब से इस शर्त पर व्यापार करने का अनुबन्ध करता है कि ब अमुक क्षेत्र में अपना माल नहीं बेंच सकेगा।

(iii) अ ब को इस शर्त पर अपने उत्पाद का वितरक बनाने का अनुबन्ध करता है कि कमीशन न मिलने की दशा में ब कभी अ पर वाद नहीं करेगा।

(iv) क्रिकेट मैंच के परिणाम को लेकर अ और ब के बीच में टीम एक्स की जीत को लेकर बाजी लगाना।

यह कुछ उदाहरण व्यर्थ ठहरावों के है।

7 ठहराव की शर्तो का निश्चित होना (**Certainity of terms of Contract**)

ठहराव की शर्तो के निश्चित होने से आशय है कि ठहराव की संरचना ऐसी हो कि पक्षकारों को एवं अन्य पक्षों (यदि सम्बन्धित हो तो) को अपने उत्तरदायित्व का स्पष्ट ज्ञान हो। इसके लिए ठहराव को स्पष्ट, पूर्ण एवं निश्चित होना चाहिए। यदि अनुबन्ध की भाषा अस्पष्ट है दिशाहीन है अथवा भ्रमित कर देने वाली है तो ऐसे अनुबन्ध विधि द्वारा क्रियान्वित नहीं कराए जा सकते हैं। कानून इन्हें अनुबन्ध के रूप में निष्प्रभावी घोषित कर देगा। उदाहरण के लिए यदि अ, ब को अपनी बाइक 25000 से 32000 रु0 के बीच में विक्रय करने का वचन देता है तो ऐसा अनुबन्ध अस्पष्ट एवं भ्रमपूर्ण माना जाएगा। इस प्रकार के ठहराव किसी प्रकार के वैधानिक दायित्व को नहीं उत्पन्न करेंगे और अनुबन्ध नहीं माने जायेंगे।

8 निष्पादन की सम्भावना होना (**Possibility of Performance**)

ठहराव ऐसा होना चाहिए कि पक्षकारों के द्वारा उसका निष्पादन हो सके। कहने का अर्थ है कि असम्भव कार्य करने के ठहराव या अनुबन्ध की शर्ते ऐसी हों जो किसी कानून के प्रावधानों का उल्लंघन करती हो तो ऐसे ठहरावों को व्यर्थ माना जाएगा। उदाहरण के लिए किसी वस्तु का आयात करने का ठहराव जो कि

प्रतिबन्धित है या ऐसा ठहराव जो आकाश से तारे तोड़ के लाने जैसी शर्तों को बताता हो, को व्यर्थ माना जाएगा।

9 ठहराव का लिखित एवं रजिस्टर्ड होना (**Agreemet Should Written and Registered**)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम यह अनिवार्य नहीं करता है कि अनुबनध सदैव लिखित हो, पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित हों और उनके साक्ष्य भी हों। पक्षकारों का अपने वचन के प्रति अडिग रहना ही अनुबन्ध की वैधानिकता क लिए पर्याप्त है। परन्तु अनुबन्ध यदि लिखित हो, हस्ताक्षरित हों तथा साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित हों तो उसका लाभ यह होता है कि वह मूर्त होते हैं तथा उनकी शर्तें अपरिवर्तनीय होती है। उनमें किसी भी प्रकार के विचरण का स्थान नहीं होता है।

कभी–कभी ऐसा भी होता है कि कानून किसी अनुबन्ध को तभी मान्यता देता है जब वह लिखित एवं रजिस्टर्ड होते हों। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 10 के अनुसार जिन मामलों में अनिवार्य हों उनमें लिखित के अतिरिक्त अन्य प्रकार से रचित अनुबन्ध मान्य नहीं होंगे। निम्नलिखित अनुबन्धों की वैधता के लिए उनका लिखित होना आवश्यक है–

(i) अवधि वर्णित ऋण के भुगतान का ठहराव

(ii) बीमा के अनुबन्ध

(iii) विनिमय साध्य लेखपत्रों से सम्बन्धित ठहराव

(iv) पंचनिर्णय के ठहराव तथा

(v) तीन वर्ष से अधिक के पट्टे के ठहराव।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे अनुबन्ध भी है जिनका लिखित होने के साथ–साथ रजिस्टर्ड होना भी अनिवार्य है। ऐसे ठहराव निम्नलिखित है।

(i) बिना प्रतिफल के ठहराव जो धारा 25 के अन्तर्गत किये गये हो ।

(ii) सम्पत्ति हस्तान्तरण अधिनियम के अन्तर्गत किए गए ठहराव

(iii) समपत्ति की भेट सम्बन्धी ठहराव तथा

(iv) गोद लेने के ठहराव।

2.4 सारांश (Summary)

अनुबन्ध के वैध होने का अर्थ है कि कानून उसको मान्यता देता हो तथा इसके क्रियान्वन को सुनिश्चित करता हो। ऐसा होने पर ही पक्षकार अपने–अपने दायित्वों का निर्वहन करेंगें। अन्यथा अवसर आने पर मुकर जाएंगे। वैध अनुबन्धों को ही कानून प्रभावी मानता है। अनुबन्ध को वैध होने के लिए कुछ गुणों या आवश्यक लक्षणों को समाहित होना चाहिए। सर्वप्रथम दो पक्षों को तो होना ही चाहिए तभी उनमें अनुबन्ध होगा। द्वितीय दो पक्षों को अनुबन्ध के विषय वस्तु से सम्बन्धित किसी बिन्दु पर सहमत होना चाहिए। सहमति एक पक्ष के द्वारा दूसरे पक्ष को प्रस्ताव देने और दूसरे पक्षद्वारा उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने से होती है। इसके अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण तथ्य है कि दोनो पक्षों को अनुबन्ध करने के लिए योग्य होना चाहिए। योग्यता की प्रथम शर्त है, पक्षकारों का वयस्क होना साथ ही उनको स्वस्थ्य मस्तिष्क का होना चाहिए तथा उनमें कोई भी दोष नहीं होना चाहिए कि जिससे कानून उनको अनुबन्ध करने के अयोग्य ठहरा दे। सहमति के बारे में आवश्यक बात यह है कि पक्षकारों की सहमति स्वतंत्र होना चाहिए। उनकी सहमति में एक दूसरे का प्रभाव तथा अन्य पक्षों का प्रभाव भी नहीं

होना चाहिए। डरा धमका कर (उत्पीड़न) या धोखे से प्राप्त सहमति अनुबन्ध को व्यर्थ तथा अवैधानिक घोषित कर सकती है।

चूंकि अनुबन्ध व्यापार से सम्बन्धित होते है। तो उसमें प्रतिफल का होना अनिवार्य हैं। प्रतिफल से आशय है कि बदले में कुछ प्राप्त होना। यह प्राप्त होना मौद्रिक प्रतिफल के रूप में स्वीकार्य है। व्यापार, जिसके लिए अनुबन्ध किया जा रहा है, उसका उद्देश्य वैधानिक होना चाहिए। वैधानिक उद्देश्य से अर्थ है व्यापार का उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होना तथा यह सुनिश्चित करना कि अनुबन्ध के कारण किसी प्रचलित कानून का उल्लंघन नहीं हो रहा है। इसका अर्थ एक और भी है कि व्यापार की विषयवस्तु भी वैधानिक आवश्यकताओं को पूरा कर रही है। वैध उद्देश्य एवं न्यायोचित प्रतिफल अनुबन्ध की वैधता के महत्वपूर्ण घटक है।

कुछ ऐसे अनुबन्ध भी होते है जिन्हें भारतीय अधिनियम तथा अन्य अधिनियमों द्वारा व्यर्थ घोषित कर दिया गया है। इस तथ्य को भी ध्यानस्थ करना होगा कि अनुबन्ध इस श्रेणी में न आते हों। विवाह में रूकावट डालने वाले, वैधानिक कार्यवाही में रूकावट डालने वाले, तथा व्यापार में रूकावट डालने वाले एवं अन्य ऐसे अनुबन्ध है जो स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित कर दिय गए है।

ठहरावों की शर्त स्पष्ट एवं आसानी से पक्षकारों को समझ में आने वाली होनी चाहिए। अनिश्चित अर्थ एवं असम्भवता वाले अनुबन्ध व्यर्थ होते है। ठहरावों को वास्तविक तथा उसके निष्पादन का पक्ष सुलभ होना चाहिए। अर्थात ऐसा होना चाहिए जो सामान्य परिस्थत में क्रियान्वित किया जा सकता हो।

यदि आवश्यक हो तो भी और यदि पक्षकार पूर्ण सुरक्षा एवं आश्वासन चाहते है तो उन्हें अनुबन्ध को लिखित, रजिस्टर्ड (यदि वांछित हो तो) एवं साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित करवा लेना चाहिए। इस प्रकार से यह निस्कर्षित किया जा सकता है कि अनुबन्ध को वैध होने के लिए सभी वर्णित बिन्दुओं का समावेश एवं पालन करना चाहिए।

2.5 शब्दावली

वैध अनुबन्ध (Void Contract): ऐसे अनुबन्ध जिन्हें विधि द्वारा क्रियान्वित कराया जा सकता है।

ठहराव (Agreement): दो पक्षों के मध्य किसी बिन्दु पर सहमति।

प्रस्ताव (Proposal): एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार के सम्मुख किसी कार्य को करने की इच्छा प्रकट करना।

स्वीकृति (Acceptance): दूसरे पक्षकार द्वारा प्रस्ताव स्वीकार करना।

अनुबन्ध करने की क्षमता (Copacity to Contract): पक्षकारों का अनुबन्ध करने लिए विधिक रूप से सक्षम होना।

प्रतिफल (Consideration): किसी कार्य के बदले में कुछ प्राप्त होनां

वैध उद्देश्य (Legal Object): व्यवसाय का उद्देश्य वैधानिक होना।

व्यर्थ ठहराव (Void Agreement): कानून के द्वारा ठहराव को मान्यता न देना।

2.6 बोध प्रश्न

प्रश्न–1–वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों में ठहराव क्या है?

प्रश्न–2–अनुबन्ध करने की क्षमता से क्या आशय है।

प्रश्न–3–स्वतन्त्र सहमति वैध अनुबन्ध का आवश्यक लक्षण है स्पष्ट कीजिए।
प्रश्न–4–वैध अनुबन्ध के लिए प्रतिफल एवं उद्देश्य का क्या महत्त्व है?
प्रश्न–5–व्यर्थ ठहरावों को बताइए।

2.7 बोध प्रश्नों सम्भावित उत्तर

प्रश्न–1. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 2.2 का विस्तार से स्मरण करिये।
प्रश्न–2. यहाँ पर बिन्दु 2.2 को स्मरण करिये।
प्रश्न–3. यहाँ पर बिन्दु 2.2 को विस्तार से लिखिए।
प्रश्न–4. यहाँ पर बिन्दु 2.2 को सविस्तार लिखिये।
प्रश्न–5. यहाँ पर बिन्दु 2.2 में वर्णित ठहरावों को उदाहरण सहित लिखिए।

2.8 स्वपरख प्रश्न

1. अनुबन्ध को परिभाषित करिए एवं अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों को समझाइए।
2. वैध संविदा के लक्षण क्या होते हैं? (संविदा=अनुबन्ध)
3. ''ठहराव जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय है, अनुबन्ध होते हैं? कथन को स्पष्ट करिए।
4. वैध अनुबन्ध को परिभाषित करिए तथा उसके मूल लक्षणों को स्पष्ट करिए।

2.9 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws : Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (P) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law : Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law : K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 03 प्रस्ताव एवं स्वीकृति (**Proposal and Acceptance**)

इकाई की रुपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 ठहरावः प्रस्ताव एवं स्वीकृति
3.3 प्रस्ताव
3.3.1 प्रस्ताव की आवश्यक विशेषताएं
3.3.2 प्रस्ताव की वैधानिकता
3.3.3 प्रस्ताव एवं प्रस्ताव के लिए निमंत्रण
3.3.4 प्रस्ताव एवं प्रस्ताव करने की इच्छा
3.3.5 प्रतिप्रस्ताव एवं एक दूसरे को प्रस्ताव
3.3.6 प्रस्ताव एवं अर्न्तप्रस्ताव
3.3.7 स्थाई प्रस्ताव
3.4 स्वीकृति
3.4.1 स्वीकृति की वैधानिकता
3.5 प्रस्ताव एवं स्वीकृति का संवहन
3.5.1 प्रस्ताव का संवहन
3.5.2 स्वीकृति का संवहन
3.6 प्रस्ताव एवं स्वीकृति का खण्डन
3.6.1 प्रस्ताव का खण्डन
3.6.2 स्वीकृति का खण्डन
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 बोध प्रश्न
3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.11 स्वपरख प्रश्न
3.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य (**Objectives**)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- अनुबन्धु में प्रस्ताव की भूमिका क्या होती है, का वर्णन कर सकें।
- प्रसताव की विशेषताए क्या होती है, की व्याख्या कर सकें।
- प्रस्ताव कब वैधानिक प्रभाव रखता है, का वर्णन कर सकें।
- स्वीकृति की अनुबन्ध के पूर्ण होने में क्या भूमिका होती है, की व्याख्या कर सकें।
- स्वीकृति कब वैधानिक द्रष्टिकोण से मान्य होती है, का वर्णन कर सकें।
- प्रस्ताव एवं स्वीकृति के संवहन की प्रकिया क्या है, का वर्णन कर सकें।
- प्रस्ताव एवं स्वीकृति का यदि खण्डन करना है तो उसकी प्रक्रिया क्या होती है, की व्याख्या कर सकें।

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने अध्ययन किया है कि अनुबन्ध क्या होते है। उनकी वैधानिकता एवं प्रर्वनीयता के आधार क्या होते हैं। आपने यह भी ज्ञात किया कि अनुबन्ध, ठहराव का वैधानिक दृष्टि से प्रर्वतनीय पहलू है। अनुबन्धों के प्रकारों का भी आपने अवलोकन किया। आपको ध्यानस्थ होगा कि ठहराव होने के पश्चात पक्षकार औपचारिक रूप से अनुबन्ध में प्रवेश करते है। प्रस्तुत इकाई में आप अध्ययन करेगे कि सहमति दो पक्षों के मध्य विचारों की समानता से होती है। जहाँ पर एक पक्ष दूसरे पक्षकार के सम्मुख कोई प्रस्ताव प्रस्तुत करता है और दूसरा पक्ष उस प्रस्ताव को यदि स्वीकार कर लेता है तो दोनों के मध्य एक ठहराव अथवा सहमति बनती है और यदि दोनो पक्ष अपने–अपने प्रस्ताव और स्वीकृति का आदर करे तथा साथ ही साथ ऐसा करने के लिए उनमें वैधानिक बाध्यता हो तो ऐसा प्रस्ताव और स्वीकृति से उत्पन्न ठहराव अनुबन्ध होता है। यह स्पष्ट है कि प्रस्ताव एवं स्वीकृति ठहराव के एवं परिणामी अनुबन्ध के मूल में होते हैं । प्रस्तुत इकाई में प्रस्ताव एवं स्वीकृति का अध्ययन विस्तार से किया जा रहा है।

3.2 ठहराव : प्रस्ताव एवं स्वीकृति (Agreement : Proposal and Acceptance)

पूर्वगामी इकाइयों में आप अध्ययन कर चुके है कि वैद्य अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों में ठहराव का होना सर्वोपरि है। ठहराव को भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(5) में परिभाषित किया गया है कि ‘‘प्रत्येक वचन या वचनों समूह जो एक दूसरे का प्रतिफल हो ठहराव कहलाता है’’। ठहराव को हम यह भी कह सकते है कि दो व्यक्ति किसी एक बिन्दु पर एक विचार अथवा एक मत हो जाए तो कहा जाता है कि उनमें ठहराव हो गया है। ठहराव इस लिए कहा जाता है कि अब उनके विचारों में भिन्नता नहीं है। हम यहाँ पर व्यापारिक गतिविधियों से सम्बन्धि ठहरावों का विचार कर रहे है। हम यह भी अध्ययन कर चुके है कि यह ठहराव व्यक्तिगत अथवा रिश्तों के अथवा मित्रता के ठहरावों से सर्वथा भिन्न है क्योंकि इनमें वैधानिक दायित्व उत्पन्न करने का प्रभाव होता है।

ठहराव होने के लिए एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष के समक्ष प्रस्ताव को प्रस्तुत करना और दूसरे पक्ष द्वारा प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति देना होता है। जब ऐसा हो जाता है और पक्षकार उस ठहराव को वैधानिक रूप से क्रियान्वित करा सकते हो तो ठहराव अनुबन्ध कहलाता है (धारा 2(डी)। अग्रिम पंक्तियों में हम–प्रस्ताव एवं स्वीकृति के विभिन्न आयामों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

3.3 प्रस्ताव (Proposal)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के धारा 2 (ए) के अनुसार प्रस्ताव को इस प्रकार परिभाषित किया गया हैं कि ‘‘जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के सम्मुख किसी कार्य को करने अथवा उससे विरत रहने के सम्बन्ध में अपनी इच्छा इस उद्देश्य से प्रकट करता है कि उस दूसरे व्यक्ति की सहमति उस कार्य को करने अथवा उससे विरत रहने के सम्बन्ध में प्राप्त हो तो कहा जाता है। कि एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के सम्मुख प्रस्ताव किया है।’’

उक्त परिभाषा के अनुसार प्रस्ताव से आशय है कि–

(i) एक व्यक्ति अपनी इच्छा दूसरे व्यक्ति के सम्मुख

(ii) किसी कार्य को करने या कार्य से विरत रहने के लिए अपनी इच्छा

(iii) इस उद्देश्य से प्रकट करता है कि इस दूसरे व्यक्ति की सहमति कार्य को करने अथवा विरत रहने के सम्बन्ध में प्राप्त हो, तो कहा जाता है कि एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के सम्मुख प्रस्ताव किया है।

3.3.1 प्रस्ताव के आवश्यक विशेषताएं (Essential Features of Proposal)

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर प्रस्ताव के निम्न लक्षण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

1 **दो पक्षकारों का होना (Two Parties)**: प्रस्ताव के लिए सदैव दो पक्षों को होना चाहिए एक व्यक्ति स्वयं से प्रस्ताव नहीं कर सकता है।

2 **किसी कार्य को करने अथवा विरत रहने की इच्छा प्रकट करना (Willingnes do or to abstain from doing)**: प्रस्ताव में एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के सम्मुख किसी कार्य को करने अथवा उससे विरत रहने की इच्छा इस आशय से प्रकट की जाती है। कि उस कार्य में सम्बन्ध में उस दूसरे व्यक्ति की सहमति प्राप्त हो। यदि सहमति प्राप्त हो जायेगी तो ठहराव और अनुबन्ध हो जाएगा उदहरण स्वरूप यदि रमेश अपनी बाईक महेश को 15000 रू0 में बेचने का प्रस्ताव करता है तो यह किसी कार्य को करने का प्रस्ताव समझा जाएगा। दूसरे उदाहरण में यदि सुरेश, दिनेश से यह प्रस्ताव करें कि दिनेश यदि उसके (सुरेश के) साथ व्यापार करें तो वह (सुरेश) के ऊपर उधार दिनेश प्राप्ति के लिए तीन वर्ष तक वाद नहीं करेगा। ऐसा प्रस्ताव किसी कार्य को न करने का प्रस्ताव कहलाएगा।

3 **प्रस्ताव का उद्देश्य दूसरे व्यक्ति की सहमति प्राप्त करना (Aim of proposal is to obtain assent of other party)**: जैसा कि हमने पूर्वगामी बिन्दु के उदाहरण में देखा की दोनों ही मामलों में प्रस्ताव का उद्देश्य है कि दूसरे व्यक्ति की सहमति प्राप्त हो जाए। सहमति प्राप्त होने के बाद ही बात आगे बढ़ेगी। अर्थात अनुबन्ध होगा। यदि प्रस्ताव का उद्देश्य सहमति प्राप्त करना न हो तो वह प्रस्ताव न होकर सूचना मात्र ही रहेगी। जैसे रमेश का यह बताना कि उसकी बाइक 15000 रू0 में बिक सकती है तो यह सूचना मात्र है।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2सी के अनुसार जो व्यक्ति प्रस्ताव रखता है उसे **प्रस्तावक या वचन दाता (Proposer, Offerer or Promissor)** कहते है। जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा जाता है उसे **वचनग्रहीता या स्वीकर्ता (Promissee Proposee or Offeree)** कहते है।

3.3.2 प्रस्ताव की वैधानिकता (Legality of Proposal)

एक प्रस्ताव को वैधानिक रूप से प्रभावी होने के लिए उपरोक्त वर्णित लक्षणों के अतिरिक्त कुछ और वैधानिक आपैचारिकता को भी पूरा करना होता है जिनका विवरण निम्नांकित है।

1 **प्रस्ताव का संवहन वचनग्रहीता को होना (Communication of Proposal to Offeree)**

प्रस्ताव का संहवन वचनग्रहीता को अवश्य होना चाहिए जिसके लिए प्रस्ताव किया गया है। आशय यह है कि जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा गया है उसको इस बात की सूचना हो जिससे वह इसे स्वीकार कर सकें। सूचना न होने पर स्वीकृति का प्रश्न ही निरर्थक हो जाएगा। स्वीकृति न होने से ठहराव ही न ही होगा और अनुबन्ध भी नहीं होगा। यदि प्रस्तावक अपने प्रस्ताव को स्वीकार्ता तक

उचित रूप से संसूचित नही करता है तो दो व्यक्तियों के मध्य कोई सम्बन्ध हो ही नहीं पायेगा। इलाहाबाद उच्च न्यायालय का एक वाद जो लालमन शुक्ला बनाम गौरी दत्त (1913) का है इस विषय में व्यापक रुप से सदर्भित किया जाता है। इस वाद में यह वर्णित था कि गौरीदत्त एक नियोक्ता थे, जिनका भतीजा लापता हो गया था। गौरीदत्त ने भतीजे को खोजने के लिए अपने कई कर्मचारियों को विभिन्न स्थानों पर भेजा। लालमन शुक्ल जो मुनीम थे उनको हरिद्वार भेजा गया। इसके बाद गौदीदत्त ने एक विज्ञापन भी दिया जिससे बच्चें को खोज कर लोने वाले को 501 रू के इनाम की घोषणा की गई थी। संयोगवंश लालमन शुक्ल को गौरीदत्त का भतीजा ऋषिकेश में मिल गया और लालमन शुक्ल ने उसे लेकर गौरी दत्त को सौंप दिया। इसके बाद लालमन शुक्ल ने इनाम की मांग कीं गौरीदत्त ने उसे इनाम की राशि यह कह कर देने से इन्कार कर दिया की भतीजा मिल जाने तक लालमन शुक्ल को ऐसे किसी विज्ञापन (प्रस्ताव) की जानकारी नही थी। विज्ञापन और इनाम की जानकारी भतीजा मिलने के बाद हुई। तत्कालीन समय में ईनाम की राशि बहुत बड़ी थी। लालमन शुक्ल ने इसके लिए वाद प्रस्तुंत किया। वाद उच्च न्यायालय तक पहुचा और न्यायालय ने गौरीदत्त के तर्क को सही माना तथा लालमन शुक्ल को इनाम के योग्य नही पाया। न्यायालय का कहना था कि जब प्रस्ताव (विज्ञापन) का संवहन ही नहीं हुआ तो व्यवहार या अचारण (भतीजे को खोजकर लाना) द्वारा स्वीकृति का प्रश्न ही नही उठता है। मानवीय उदारता द्वारा तो इनाम दे देना चाहिए था परन्तु तकनीकी रूप से लालमन शुक्ल इसका अधिकारी नही था। जिसे उच्च न्यायालय ने भी पुष्ट किया था। अतः प्रस्ताव के संवहन का महत्व सर्वोपरि है।

2 प्रस्ताव की निश्चित शर्ते (Certainity of terms of Offer):

एक अनुबन्ध कभी पूर्ण नहीं हो सकता है यदि उसके प्रस्ताव की शर्ते अनिश्चित हो। प्रस्ताव की शर्ते यदि निश्चित नहीं होगी तो स्वीकर्ता के लिए स्वीकृति देना अनिश्चय का काम होगा। अस्पष्ट अथवा अनिश्चित प्रस्ताव यह नहीं बताता है कि उसका आशय वास्तव में है क्या। राजनियम की दृष्टि में अनिश्चित प्रस्ताव, प्रस्ताव नही होता है। उदाहरण के लिए अ, ब से प्रस्ताव करता है कि वह उसका माल अच्छे मूल्य पर क्रय लगा ऐसा प्रस्ताव अनिश्चित है तथा प्रस्ताव नही माना जा सकता है। दूसरा उदाहरण देखिये कि अ, ब को वचन देता है कि यदि तुम्हारा पियानों मुझे शुभता देगा तो मैं एक पियानों और खरीद लूंगा ऐसे प्रस्तावों को राजनियम द्वारा प्रर्वतित नहीं करवाया जा सकता है।

3 प्रस्ताव का विनय के रूप में होना (Proposal should be in form of Request)

प्रस्ताव के द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव सदैव विनय या आग्रह के रूप में होना चाहिए। प्रस्तावक को यह विशेषधिकार है कि वह वचनग्रहीत को स्वीकृति का ढंग निर्देशित करें। परन्तु स्वीकृति के लिए किसी प्रकार का दबाव या आदेश जैसे कृत्यों का नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए ऐसा प्रस्ताव जो कि यह कहता हो कि यदि अमुक दिन के अंदर उत्तर नहीं प्राप्त हुआ तो यह मान लिया जाएगा कि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया है। इस प्रकार के प्रस्ताव, आज्ञा या अप्रत्यक्ष दबाव के सूचक माने जाएगें।

4 प्रस्ताव का उद्देश्य दूसरे पक्ष की सहमति प्राप्त करना हो (**Aim of Proposal should be to obtain Assent of other Party**)

प्रस्ताव का उद्देश्य सिर्फ और सिर्फ दूसरे पक्ष की सहमति या स्वीकृति प्राप्त करना होना चाहिए और कुछ अतिरिक्त नहीं। स्वीकृति के उपरान्त ही दोनो पक्षों में वैधानिक सम्बन्ध स्थापित होते है। यह आवश्यक है कि प्रस्ताव एवं स्वीकृति से पहले पक्षकार एक दूसरे के विषय में जानकारी प्राप्त कर लें, पर प्रस्ताव सदैव स्पष्ट और स्वीकृति प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए यह पूछना कि क्या तुम्हारी मशीन विकाउ है। प्रस्ताव नहीं कहलाएगा दूसरी और यदि यह कहा जाय कि मैं तुम्हारी मशीन 10000 रू में खरीदन चाहता हू तो यह प्रस्ताव माना जाएगा।

5 प्रस्ताव का उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होना (**Aim of Proposal to estblish Legal Relationship**)

प्रस्ताव का उद्देश्य दो पक्षकारों में वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होना चाहिए, अन्यथा प्रस्ताव एवं उसकी स्वीकृति अनुबन्ध के रूप में परिणत नहीं होगी। जो प्रस्ताव एवं स्वीकृति पक्षकारों के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करते, वह कभी भी वैध अनुबन्ध का रूप नहीं ले सकते हैं। प्रस्ताव में प्रारम्भ से ही यह प्रकट होना चाहिए कि इसका उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना है। व्यापारिक एवं व्यवसायिक अनुबन्धों की आधारशिला ही वैधानिक सम्बन्धों को उत्पन्न करती है। इसके विपरीत समाजिक एवं पारिवारिक अथवा मैत्री के ठहरावों का मुख्य उद्देश्य वैधानिक स्थापित करना नहीं होता है।

6 विशिष्ट एवं सामान्य प्रस्ताव (**Specific or General Proposal**)

विशिष्ट प्रस्ताव व्यक्ति विशेष को सम्बोधित होते है, इनकी स्वीकृति वही व्यक्ति दे सकता है जिसको यह सम्बोधित हैं। साधारण प्रस्ताव जनसाधरण को सम्बोधित होते हैं। कोई विशेष व्यक्ति या लक्षित व्यक्तियों को यह सम्बोधित नही होते है। इनकी स्वीकृति कोई भी व्यक्ति दे सकता है, जिसकी जानकारी में ऐसा प्रस्ताव आ जाए। अ एक प्रस्ताव ब के समक्ष प्रस्तुत करता है। यह एक विशिष्ट प्रस्ताव है। समाचार पत्रों या टेलिवीजन पर होने वाले विज्ञापन या इश्तहार सामान्य प्रस्ताव के उदाहरण हैं। एक वाद का उदाहरण देखिए–श्रीमती कारलिल बनाम कोर्बोलिक स्मोक बाल कं0 के वाद में–स्मोक बाल कं0 ने एक दवा–''स्मोक बाल'' का विज्ञापन दिया और प्रचारित किया कि यदि उक्त दवा का सेवन प्रतिदिन, तीन बार, दो सप्ताह तक किया जाए तो व्यक्ति इन्फलुएन्जा का शिकार नहीं होगा और यदि ऐसा हुआ तो कं0 उसे 100 पौण्ड की क्षतिपूर्ति देगी। श्रीमती कारलिल ने प्रचार के निर्देशानुसार दवा का सेवन किया पर वह इन्फजुएन्जा की शिकार हो गई। श्रीमती कारलिल ने कार्बोलिक स्मोक बाल कं0 पर वाद प्रस्तुत करके क्षतिपूर्ण का दावा किया। कार्बोलिक स्मोक बाल कं0 ने यह कहकर कि यह विज्ञापन था जिसे गम्भीरता से कोई नहीं लेता। इसकी स्वीकृति की सूचना श्रीमती कारलिल के द्वारा स्मोक बाल कं0 को मिलनी चाहिए थी। उक्त वाद में न्यायालय ने निर्णय दिया कि इस प्रकार के विज्ञापन साधारण प्रस्ताव होते है जिसकी स्वीकृति के लिए अलग से कोई सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती। प्रस्ताव के शर्तों का पालन ही स्वीकृति के समकक्ष होता है। न्यायालय ने श्रीमती कारलिल

को क्षतिपूर्ति के 100 पौन्ड प्राप्त करने का अधिकारी घोषित किया। श्रीमती कारलिल को द्वारा सेवन गर्भित स्वीकृति थी।

7 स्पष्ट एवं गर्भित प्रस्ताव (Exposess and Implied Proposal)

स्पष्ट प्रस्ताव का अर्थ है कि साफ शब्दों में लिखित अथवा मौखिक रूप से प्रस्ताव, वचनहीनता को संसूचित कर दिया जाए। गर्भित रूप से प्रस्ताव, प्रस्तावक के आचारण अथवा व्यवहार के द्वारा प्रकट किया जा सकता हैं। शब्दों द्वारा अथवा टेलीफोन द्वारा किये गए प्रस्ताव स्पष्ट मौखिक प्रस्ताव की श्रेणी में रखे जाते हैं। लिखे गए शब्द, पत्रों के द्वारा, इमेल के द्वारा अथवा टेक्स्ट मैसेज द्वारा किए गए प्रस्ताव लिखित स्पष्ट प्रस्ताव की श्रेणी में रखे जाते है। व्यक्ति द्वारा कोई कार्य व्यवहार अथवा अथवा संकेत जिसके द्वारा दूसरा पक्ष यह समझ जाए कि पहला पक्ष क्या कहना चाहता है, तो यह गर्भित प्रस्ताव कहलायेगा। उदाहरण के लिए अ, ब से कहता है मैं अपनी मोटर कार 100000 में तुम्हें बेचना चाहता हूँ, यह स्पष्ट मौखिक प्रस्ताव है। इसी प्रस्ताव को यदि अ, ब को लिखकर दे तो यह एक स्पष्ट लिखित प्रस्ताव है। उत्तराखण्ड परिवहन की बसे चल रहीं हैं, कोई भी व्यक्ति टिकट खरीद कर उनमें यात्रा कर सकता है। यह एक गर्भित प्रस्ताव है।

3.3.3 प्रस्ताव एवं प्रस्ताव करने के लिए निमंत्रण (Proposal and Invitation to make Proposal)

कभी–कभी कुछ वक्तव्यों एवं सूचनाओं की प्रवृत्ति ऐसी होती है कि यह अन्तर करना कठिन हो जाता है कि वह प्रस्ताव है या प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण दिया गया है। प्रस्ताव के लक्षणों का आप अध्ययन कर चुकें हैं। अब यह विचार करिए कि यदि किसी सूचना या वक्तव्य का उद्देश्य दूसरे पक्षकार की स्वीकृति न होकर उन्हें अवगत कराया जा रहा हो कि एक पक्षकार किसी भी अन्य पक्षकार के साथ व्यवसायिक सम्बन्ध बनाने के लिए तत्पर है जो उनके साथ प्रस्ताव रखें। उदाहरण के लिए यदि किसी बहु मंजिला भवन के सामने एक बोर्ड लगा है। और उस पर लिखा है कि फ्लैट बिकाउ हैं तो इसका आशय है कि जो व्यक्ति फ्लैट खरीदना चाहता हैं, वह सम्पर्क कर सकता है। यह प्रस्ताव से भिन्न है, क्योंकि प्रस्ताव एक अन्तिम रूप से होता है। पर प्रस्ताव का निमन्त्रण दोनों पक्षों में विचारों का आदान–प्रदान होने के बाद प्रस्ताव एवं स्वीकृति के रूप में परिणत होगा। प्रस्ताव एवं प्रस्ताव करने के निमन्त्रण में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि प्रस्ताव करने का निमन्त्रण कभी ठहराव का रूप नहीं ले सकता जबकि प्रस्ताव, ठहराव का रूप ले सकता है, यदि उसकी स्वीकृति हो जाए तब। एक अन्तर और है, कि प्रस्ताव करने के लिए निमन्त्रण से कोई वैधानिक उत्तरदायित्व नहीं उत्पन्न होता है। जबकि प्रस्ताव यदि स्वीकृत हो जाता हैं तो पक्षकारों में वैधानिक उत्तरदायित्व उत्पन्न कर देता है। विभिन्न वैधानिक आधार पर निम्न गतिविधियों को प्रस्ताव करने के लिए निमन्त्रण की श्रेणी में रखा जाता है।

(i) **टेण्डर सूचना (Tender Notice):** वस्तुए क्रय विक्रय करने के लिए अथवा किसी कार्य या निर्माण को समपन्न कराने के लिए व्यक्तियों अथवा संस्थाओं को निमन्त्रण करना कि वह उल्लिखत कार्य के सम्पादन के लिए अपना प्रस्ताव प्रस्तुत करें।

(ii) **सस्ती वस्तुएं बेचने का विज्ञापन (Adverstiesment for "Sale")**: समाचार पत्रों में एवं टेलीवीजन चैनलों पर ''सेल'' जैसे विज्ञापन आते है। जो छूट प्रतिशत भी बताते है राजनियम की दृष्टि यह प्रस्ताव नहीं है। निमन्त्रण मात्र है।

(iii) **कम्पनी के प्रविवरण (Propectus of Companies)**: कम्पनियों द्वारा प्रविवरण जारी कर के जनता को अंश खरीदनें के लिए प्रेरित करना प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण की श्रेणी में आता है।

(iv) **रेलवे की समय सारिणी (Railway Time-Table)**: यह भी प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण है।

(v) **नीलाम द्वारा विक्रय (Sale by Auction)**: यह भी प्रस्ताव के लिए निमन्त्रण है।

3.3.4 प्रस्ताव एवं प्रस्ताव करने की इच्छा (Proposal and Intention to Proposal)

प्रस्ताव करने की इच्छा और प्रस्ताव में भी अन्तर को समझ लेना चाहिए कई अवसरों पर पक्षकार यह कहते मिलते है कि मैं अपनी वस्तु अमुक मूल्य पर बेचने को तैयार हूँ, यह प्रस्ताव नही है। यह केवल एक विचार है, कि वह पक्षकार ऐसा कोई प्रस्ताव ला सकता है। उदाहरण के लिए राम श्याम से कहे कि कि मै अपनी स्कूटी 15000 रू0 में बेचने को तैयार हूँ तो यह प्रस्ताव न होकर प्रस्ताव के लिए इच्छा मात्र है। यदि राम, श्याम से कहे कि मैं अपनी स्कूटी 15000 रु0 में बेचना चाहता हूँ क्या तुम खरीदोगे, तो यह प्रस्ताव कहलाएगा

3.3.5 प्रस्ताव एवं प्रति प्रस्ताव (Proposal and Counter Proposal)

प्रति प्रस्ताव से आशय है कि जब एक वचनग्रहीता प्रस्ताव पर स्वीकृति देने के स्थान पर मूल प्रस्ताव की किसी शर्त अथवा शर्तो में परिवर्तन कर के स्वीकृति देता है तो वह स्वीकृति न होकर प्रति प्रस्ताव कहलाएगा । उदाहरण के लिए सोहन के पास मोहन का प्रस्ताव आता है जिसमें सोहन, मोहन को सूचित करता है कि उसे प्रस्ताव स्वीकार है इस संशोधन के साथ कि व्यापारिक छूट का प्रतिशत से 6 प्रतिशत से बढ़ाकर 7 प्रतिशत रहेगा। वह स्वीकृति नहीं वरन प्रतिप्रस्ताव कहलाएगा।

3.3.6 प्रस्ताव एवं अर्न्तप्रस्ताव (Proposal and Cross Proposal)

कभी–कभी ऐसा होता है कि दो पक्ष एक दूसरे को समान प्रकार के प्रस्ताव एक दूसरे से अनिमिज्ञ होकर भेज देते है, जिनका भाव तो एक रहता है पर वह प्रस्ताव न होकर अर्न्तप्रस्ताव कहलाते हैं। उदाहरण के लिए आटो पार्टस का विक्रेता 'अ', 'ब' को जो आटो पार्टस का उत्पादक है 100 पीस कारबोरेटर को क्रय करने के प्रस्ताव 5000 रू0 प्रति पीस (प्रचलित मूल्य) के हिसाब से करता है। उस प्रस्ताव से अनिभिज्ञ रहते हुए ब स्वयं एक ऐसा ही प्रस्ताव अ को देता है। जिसमें 100 पीस कार्बोरेटर 5000 रू0 प्रति पीस के हिसाब से विक्रय का प्रस्ताव है। ऐसे प्रस्तावों को अर्न्तप्रस्ताव कहते हैं। ऐसे प्रस्ताव एक दूसरे के पूरक होकर स्वीकृति का स्थान नही ले सकते है। उचित रूप से स्वीकृति के लिए उनमें से पुनः किसी एक को प्रस्ताव रखना पड़ेगा और दूसरे को स्वीकृति देना पड़ेंगी।

3.3.7 प्रस्ताव एवं स्थाई प्रस्ताव (Proposal and Standing Proposal)

स्थाई प्रस्तावों से आशय ऐसे प्रस्तावों से है जहाँ पर प्रस्ताव एक समयान्तराल तक चलता रहता है। ऐसे प्रस्तावों में किसी वस्तु की निर्धारित मात्रा

में आपूर्ति एक निश्चित मूल्य पर किसी एक समयाविधि के लिए किए जाने का प्रावधान रहता है। ऐसे प्रस्तावों में जितने बार भी वस्तु की आपूर्ति की जायेगी। यह माना जाएगा कि यह स्थाई प्रस्ताव के अन्तर्गत की जा रही है परन्तु प्रत्येक बार एक नया अनुबन्ध माना जाएगा। ऐसे प्रस्ताव वास्तव में किसी पक्षकार को कोई सुविधा या छूट नहीं प्रदान करते है।

3.4 स्वीकृति (Acceptance)

उपरोक्त पंक्तियों में आप ज्ञान प्राप्त कर चुके है कि अनुबन्ध को परिणत होने के लिए वचनग्रहीता (जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा गया है) को प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति देनी होती है। ठहराव के लिए प्रस्ताव पर स्वीकृति अति आवश्यक है। प्रस्ताव पर वचनग्रहीता द्वारा स्वीकृति दिये जाने के बाद ही प्रस्ताव, स्वीकृत कहलाता है, और ठहराव एवं अनुबन्ध का रूप ले लेता है। ठहराव हो जाने के पश्चात ही पक्षकारों का दायित्व उत्पन्न होता है और स्वीकृत प्रस्ताव ही वचन कहलाता है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (बी) के अनुसार ''जब वह व्यक्ति जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा गया है। प्रस्ताव पर अपनी सहमति प्रकट कर देता है। तो कहा जाता है कि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया है। एक बार स्वीकृत प्रस्ताव वचन हो जाता है।'' परिभाषा से स्पष्ट है कि वचनग्रहीता (जिसके सामने प्रस्ताव रखा गया है) उस प्रस्ताव को स्वीकार कर ले तो प्रस्ताव स्वीकृत कहा जाता है। जब प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो ठहराव एवं अनुबन्ध उत्पन्न हो जाते है। अनुबन्ध का प्रभाव पक्षकारों पर बाध्यकारी होता है। अर्थात उन्हें अनुबन्ध की शर्तो का पालन करना है। अनुबन्ध की शर्तो का पालन तभी पूर्ण होगा जब पक्षकार अपने–अपने वचन का पालन करें। अतः यह कहा जा सकता है कि स्वीकृत प्रस्ताव वचन होता है जिसका पालन करना राजनयिम के अधीन अनिवार्य है।

3.4.1 स्वीकृति की वैधानिकता (Legality of Acceptance)

उपरोक्त वर्णित परिभाषा के अनुसार स्वीकृति को वैधानिक रूप से मान्य होने के लिए वैधानिक प्रक्रिया के अनुसार ही दिया जाना चाहिए। अन्यथा स्वीकृति मान्य नहीं होगी। जैसे कि प्रस्ताव के विषय में वैधानिक प्रक्रिया के बारे में पूर्व गामी पृष्ठों में उल्लिखित है वैसे ही स्वीकृति के विषय में भी वैधानिक प्रक्रियाओं का उल्लेख अग्रगामी पंक्तियों में किया जा रहा है।

1 **स्वीकृति उसी व्यक्ति द्वारा होनी चाहिए जिसके सम्मुख प्रस्ताव रखा गया है Acceptance should be made by the Person to whom it is made)**

जब एक प्रस्ताव किसी व्यक्ति को सम्बोधित होता है तो उसी व्यक्ति द्वारा स्वीकृति दी जानी चाहिए। स्वीकृति देने का अधिकार के केवल उसी व्यक्ति को है। अन्य किसी व्यक्ति द्वारा दी गईं स्वीकृति वैधानिक रूप से मान्य नही होती है। स्वीकृति के विषय में एक बात और विचारणीय है कि यदि प्रस्ताव समान्य है अर्थात जनसारण को सम्बोधित है तो कोई भी व्यक्ति जिसकी जानकारी में ऐसा प्रस्ताव आए स्वीकृति दे सकता है। यदि प्रस्ताव किसी समूह जैसे कि साझेदारी के सम्मुख रखा गया है तो उनमें से कोई भी उसे स्वीकार कर सकता है। उदाहरण के लिए यदि–

(1) क, ख के सम्मुख अपनी भूमि को बेचने का प्रस्ताव करता है तो ख ही के द्वारा दी गई स्वीकृति से अनुबन्ध उत्पन्न होगा। इस संदर्भ में बोल्टन

बनाम जोन्स के वाद में न्यायाधीश ने कहा था कि ''यदि कोई व्यक्ति अ के साथ अनुबन्ध करने का विचार रखता है, तो ब ऐसे किसी अनुबन्ध में कोई अधिकार नहीं रख सकता''।

(ii) किसी बच्चें के गुम हो जाने पर घोषणा की जाती है। कि जो बच्चे को ढूड़ कर लाएगा उसे 100,000 रू0 का पुरूस्कार दिया जाएगा। ऐसी स्थित में जिस किसी को भी बच्चा मिल जाएगा वह पुरस्कार का अधिकारी होगा। जनसाधरण में से कोई भी ऐसा प्रस्ताव स्वीकार कर सकता है।

2 **स्वीकृति पूर्ण तथा शर्तरहित होनी चाहिए (Accptance must be absolute and unconditional)**

स्वीकर्ता के पास जिस प्रारूप में प्रस्ताव आया है, उसी तरह से अर्थात उन शर्ते को जो प्रस्ताव में वर्णित है, उसी प्रकार से स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि स्वीकर्ता प्रस्ताव की शर्तो में अथवा भाषा में संशोधन कर के स्वीकृति देता है तो ऐसी स्वीकृति नहीं मानी जाएगी वरन् प्रति प्रस्ताव मानी जाएगी। ऐसी स्वीकृति जो प्रस्ताव के बदले प्रस्ताव बन गई है तभी ठहराव बन सकती है। जब मूल प्रस्तावक उस पर अपनी स्वीकृति दे दे। एक पुराने और प्रायः संदर्भित वाद जार्डन बनाम नार्टन (1838) के विवाद में न्यायालय द्वारा स्वीकृति व्यर्थ घोषित कर दी गई थी। मामला यह था कि नार्टन ने जार्डन की घोड़ी निर्धारित मूल्य पर इस शर्त पर क्रय करने का प्रस्ताव किया कि घोड़ी स्वस्थ्य है तथा जोते जाने पर शान्त रहती है। जार्डन ने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और नार्टन को अश्वासन दिया कि घोड़ी स्वस्थ्य है तथा दोहरी जोताई में शान्त रहती है। वाद होने पर ऐसी स्वीकृति को व्यर्थ माना गया क्योंकि जार्डन ने दोहरी जोताई में शान्त रहने की बात कह कर प्रस्ताव की शर्त में परिर्वतन कर दिया। न्यायालय द्वारा इसे स्वीकृति न मान कर प्रति प्रस्ताव माना गया।

3 **स्वीकृति निर्धारित ढंग से होनी चाहिए (Acceptane should be according to mode)**

अधिनियम की धारा 7 में स्पष्ट रूप से वर्णित है कि स्वीकृति प्रस्ताव द्वारा निर्धारित ढंग के अनुसार दी जानी चाहिए। यदि प्रस्तावक स्वीकृति किसी पूर्व निर्धारित विधि के अनुसार चाहता है कि स्वीकर्ता को उसी विधि के अनुसार स्वीकृति देनी चाहिए। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति अ ने ब को अपना उत्पादित माल बेचने का प्रस्ताव भेजा और प्रस्ताव में लिखा था कि यदि ब इच्छुक हो तो अ के उत्पाद के वितरक स को स्वीकृति की सूचना भेजे दे। 'ब' ने वितरक 'स' को स्वीकृति की सूचना न भेजकर सीधे उत्पादक अ को स्वीकृति पत्र भेज दिया ऐसी स्थिति में ब द्वारा भेजी गई स्वीकृति, स्वीकृति नहीं मानी जाएगी। एक स्थिति ऐसी भी हो सकती है कि स्वीकृति के लिए कोई ढंग निर्धारित न किया गया हो तो ऐसी स्थित में स्वीकर्ता स्वीकृति को उचित ढंग से देगा। यह उचित ढंग का अर्थ क्या है। उचित ढंग का अर्थ है, कि समान प्रकार के व्यवसायों में व्यापारी किस प्रकार से स्वीकृति अथवा प्रस्ताव एक दूसरे को दिया करते है। उदाहरण के लिए यदि प्रस्ताव डाक द्वारा मिलता है तो डाक द्वारा स्वीकृति भी दी जानी चाहिए। यदि मान लीजिए सरसों के तेल के फुटकर व्यापारी देहरादून शहर में तेल क्रय करने के प्रस्ताव की स्वीकृति सदैव व्यक्तिगत रूप से थोक व्यापारी को

देते है तो यह उचित माध्यम या ढंग कहलाएगा, भले ही प्रस्ताव डाक द्वारा या ईमेल द्वारा प्राप्त हुआ हो।

4 **स्वीकृति उचित या निर्धारित समय के भीतर होनी चाहिए (Accceptance shuld be made wirthin reasonable or given time)**

स्वीकृति उचित समय के भीतर दिए जाने से आशय है कि स्वीकृति प्रस्ताव का अन्त होने से पहले दी जानी चाहिए। उचित समय से आशय है कि यदि प्रस्ताव में कोई तिथि बताई गई है, तो उस तिथि तक स्वीकृति दे दी जानी चाहिए। उक्त तिथि के बाद प्रस्ताव समाप्त मान लिया जाएगा। स्वीकृति आस्तित्व में रहे हुए प्रस्ताव, अर्थात जो प्रस्ताव समाप्त न हुए हो उन्हीं पर दी जा सकती है। जो प्रस्ताव समाप्त हो गए हो या जिनका आस्तित्व समाप्त हो गया हो उन पर स्वीकृति नहीं दी जा सकती है। एक स्थिति यह भी होती है कि स्वीकृति प्रस्ताव के वापस ले लिए जाने के पहले ही देना चाहिए। एक उदाहरण देखिए 'अ' 'ब' को अपना मोबाइल फोन 3000 रू0 में बेचने का प्रस्ताव रखता है और स्वीकृति तीन दिन के भीतर मांगता है। ब इस पर ध्यान नहीं देता है। कुछ दिन बाद ब को चेतना होती है और ब, अ से कहता है कि वह मोबाइल को 3000 रू0 में क्रय करने को तैयार है। अब यह स्वीकृति अ मानने से इनकार कर देगा क्योंकि प्रस्ताव के स्वीकृति का समय बीत गया है।

5 **मौन को स्वीकृति नही माना जा सकता है (Silence connot be treaded as Accpetance)**

मात्र मानसिक या मौन रह जाना स्वीकृति नहीं होगी यदि वह आचारण द्वारा अथवा शब्दों द्वारा प्रकट न की गई हो। (''मौन भी एक स्वीकृति है'' यह कहावत है यहाँ पर लागू नहीं होती है।) भगवानदास बनाम गिरधारी लाल के बाद में न्यायालय ने कहा कि ठहराव केवल मन की स्थित से उत्पन्न नहीं होता है। मन ही मन प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने से ठहराव नहीं होगां ठहराव होने के लिए मन के साथ–साथ वाह्मय कृत्यों के द्वारा यह बताना पड़ेगा कि प्रस्ताव के लिए स्वीकृति दी जा रही है। उदाहरण के लिए किसी कम्पनी के प्रबन्धक के पास एक प्रस्ताव आता हैं और प्रबन्धक उस पर स्वीकृत लिखने के बाद अपने कार्यालय में आगे बढ़ाने के स्थान पर आलमारी में रख के भूल जाता है। यह स्वीकृति नहीं हो सकती। ठहराव तभी उत्पन्न होगा जब प्रस्ताव की स्वीकृति, प्रस्तावक को संसूचित कर दी जाए। ऐसे भी प्रस्ताव होते है जिनमें स्वीकृति मागें जाने का प्रावधान नही होता है तब भी उनकी स्वीकृति अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए जैसे एक प्रस्ताव यह कहता है कि यदि आप की ओर से 10 दिनों तक कोई जवाब नहीं मिला तो यह समझ लिया जाएगा कि आप ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है।'' ऐसे मामलों में यदि स्वीकर्ता 10 दिनों तक कोई जवाब नही देता है, तो भी उसकी स्वीकृति अनुमानित नही की जा सकती है।

कुछ मामले ऐसे भी कभी–कभी होते है, कि मौन रहना भी स्वीकृति समझी जा सकती है परन्तु यह मौन भी स्पष्ट रूप से निरपेक्ष नहीं होता है इनके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे है।

(i) जहॉ पर स्वीकर्ता ने पहले ही कह रखा है कि मेरे मौन रहने को स्वीकृति मान लिया जाए।

(ii) जहॉ पर लेन–देन लम्बे समय से दो पक्षों के बीच चल रहा है और क्रेता ने कभी–कभी बिना क्रय आदेश के भी माल स्वीकार कर लिया है।

(iii) जहॉ पर स्वीकर्ता ने वस्तु एवं सेवाओं का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया है।

इन मामलों में आप देखे कि मौन वास्तव में मौन नहीं है। वरन मौन के आगे व पीछे कुछ हरकत या कृत्य निर्देशित किए गए हैं।

6 स्वीकृति स्वीकर्ता के आचरण द्वारा भी हो सकती है (Acceptance may also be given by the act of Offeree)

स्वीकृति कभी–कभी वचनगृहीता के आचरण से भी हो सकती है, जहां पर वचनगृहीता स्वीकृति शब्दों या लिखित रूप से देने के स्थान पर अपने आचरण द्वारा स्वीकृति दे देता है। उदाहरण के लिए यदि राम अपने मित्र श्याम को लिखित रूप से कहता है कि ''मैं तुम्हारी बाईक 15000 रु0 में क्रय करने का प्रस्ताव दे रहा हुँ''। यहाँ पर श्याम अपने मित्र राम के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए कोई स्वीकृति लिखित या मौखिक रूप से न देकर अपनी बाइक ही राम से पास भेज देता है यह एक स्वीकृति मानी जाएगी जो आचरण के द्वारा दी गई हैं। इस प्रकार के मामलों में एक बात ध्यान देने की है कि ऐसी स्वीकृति अर्थात आचरण द्वारा स्वीकृति कभी भी औपचारिक स्वीकृति का विकल्प नहीं हो सकती है। जहॉ दो पक्षों के बीच में पूर्व से स्थापित सम्बन्ध हो अथवा जहॉ दो पक्षों के बीच क्रमवार व्यापार चल रहा हैं वहॉ पर ऐसा हो सकता हैं। परन्तु व्यापार की प्रकृति, और व्यापार की प्रथा के अनुसार स्वीकृति औपचारिक रूप से देनी चाहिए। आचरण के द्वारा स्वीकृति तभी देनी चाहिए जब प्रस्तावक ने इसकी अनुमति दे रखी हो अथवा प्रस्तावक औपचारिक स्वीकृति न होने पर इसका संज्ञान न ले। प्रस्ताक यदि चाहे तो ऐसी स्वीकृति को अस्वीकार कर सकता है।

7 स्वीकृति स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकती है (Acceptance myay be Express or Implied)

स्वीकृति स्पष्ट या गर्भित दोनो प्रकार से दी जा सकती है। जब स्वीकृति प्रस्तावक को निर्धारित ढंग से तथा मौखिक या लिखित स्पष्ट रूप से संसूचित कर दी जाती है तो यह स्पष्ट स्वीकृति कहलाएगी। गर्भित स्वीकृति से आशय है कि उपरोक्त के अतिरिक्त किसी और माध्यम से स्वीकृति दी जाती है तो वह गर्भित स्वीकृति कहलाएगी। उपरोक्त बिन्दुओं में आप इनके बारे में अध्ययन कर चुके है। बिन्दु 03.05.01.06 तथा 03.05.01.05 में इसका उल्लेख किया गया है।

8 स्वीकृतिं बिना प्रस्ताव के संज्ञान के वैध नहीं (Acceptance is in valid without cognizance of Proposal)

यदि कोई व्यक्ति प्रस्ताव के संज्ञान में नहीं है और परिस्थितिवश या संयोगवश उससे कोई कार्य ऐसा हो जाता है जो प्रस्तावक को स्वीकृति की भांति प्रतीत होता है तो भी ऐसे कार्य को स्वीकृति की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। ऐसे कार्य को यदि स्वीकृति, प्रस्तावक मान भी ले तो यह वैध नहीं होगी क्योंकि वचनगृहीता के लिए प्रस्ताव ही नहीं है तो स्वीकृति कैसी। ऐसे किसी संयोगवश किए गये कार्य को यदि प्रस्तावक स्वीकृति मान भी लेता है तो उसे वचन गृहीता को सूचित करना पड़ेगा, और यह सूचना देना कि किये गये कार्य को स्वीकृति

मान लिया गया है वास्तव में एक नई स्वीकृति कहलाएगी और वचनगृहीता का कार्य अब प्रस्ताव के रूप में समझा जाएगा।

9 **स्वीकृति का प्रस्ताव के अन्त होने के पहले हो जाना (Acceptance before lapse of Proposal)**

बिन्दु नं0 4 में यह बताया गया है कि स्वीकृति उचित समय के भीतर होनी चाहिए। समय प्रस्ताव में बहुधा निर्धारित किया जाता है। वह समय बीत जाने के बाद प्रस्ताव का समापन या अन्त हो जाता है। एक स्थिति और आ सकती है जब प्रस्तावक अपने प्रस्ताव का खण्डन (वापस लेना) कर देता है। खण्डन होने के पश्चात पूर्व की स्थित (जब कोई प्रस्ताव नहीं था) आ जाती है। खण्डन के पश्चात यदि स्वीकृति दी जाती है तो वह वैध नहीं मानी जाएगी। स्वीकर्ता को इस बात को ध्यान में रखना चाहिए।

10 **स्वीकृति एक बार अस्वीकृत किए जाने के बाद पुनः प्रस्ताव प्राप्त किए बिना नहीं दी जा सकती है। (Acceptance once rejected can not be accepted unless Put again)**

वचनगृहीता यदि किसी प्रस्ताव को एक बार अस्वीकृत कर देता है और बाद में यदि उस पर स्वीकृति देना चाहता है तो ऐसा तभी कर सकता है जब प्रस्तावक पुनः उसके सामने प्रस्ताव प्रस्तुत करें। क्योंकि जब एक बार प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया जाता है तो प्रस्ताव का अन्त या समापन हो जाता है। समाप्त प्रस्ताव पर दी गई स्वीकृति वैध नहीं होगी। वचनगृहीता को इसके लिए प्रस्तावक से पुनः प्रस्ताव का आग्रह करना पड़ेगा।

11 **स्वीकृति का संवहन होना आवश्यक है (Acceptance must be Communicated)**

स्वीकृति का सवंहन होना आवश्यक है। बिना प्रस्तावक की जानकारी में आए, स्वीकृति पूर्ण नहीं होगी। बिन्दु 5 में यह स्पष्ट कर दिया गया हैं यदि कोई मानसिक रूप से प्रस्ताव स्वीकार करने को तैयार है तो उसे अपनी सहमति या स्वीकृति को प्रस्ताव को संसूचित करना चाहिए। स्वीकृति पत्र यदि तैयार कर दिया गया है तो इस बात से आश्वस्त हो जाना चाहिए कि स्वीकृति पत्र प्रस्तावक के पास पहुंच जाए या पहुच गया है। यह आप पहले ही अध्ययन कर चुके है कि मन से मान लेने से अथवा स्वीकृति पत्र को मेज या आलमारी में रख कर भूल जाने से स्वीकृति वैध नहीं मानी जाएगी।

3.5 प्रस्ताव एवं स्वीकृति का सवंहन (Communication of Proposal and Aceeptance)

3.5.1 प्रस्ताव का संवहन (Communication of Proposal)

पिछली पंक्तियों के अध्ययन के द्वारा आप यह जान चुके है कि प्रस्ताव का सवंहन होना आवश्यक है अन्यथा प्रस्ताव का न होना समझा जाएगा। सवंहन का अर्थ है कि प्रस्ताव वचनगृहीता तक पहुंच जाए। जब मौखिक प्रस्ताव हो तो सवंहन त्वरित हो जाता है क्योंकि दोनों पक्ष आमने–सामने होते है। (टेलीफोन से किए गए प्रस्ताव भी मौखिक प्रस्ताव के समकक्ष माने गए है।) सवंहन की समस्या तब उत्पन्न होती है जब प्रस्तावक और वचनगृहिता दूर स्थान पर होते हैं। ऐसी स्थित में डाक, इमेल और टैक्स्ट मैसेज की सहायता लेनी पड़ती है। ऐसे मामलों में प्रस्तावक को अश्वस्त होना पड़ता है कि प्रस्ताव वचनग्रहीता तक पहुच जाए।

प्रस्ताव के सम्बन्ध में भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 4 में वर्णित है कि ''प्रस्ताव का सवंहन उस समय पूरा हुआ माना जाता है जब प्रस्ताव उस व्यक्ति की जानकारी में आ जाय जिसके लिए प्रस्ताव किया गया है।''

इस धारा के अनुसार प्रस्ताव का वचनग्रहीता तक पहुंच जाने का प्रावधान किया गया है। उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट किया जा रहा है यदि अ एक प्रस्ताव, दिनांक 10 जनवरी को ब को डाक द्वारा मेज देता है और ब को वह प्रस्ताव 15 जनवरी को प्राप्त होता है तो प्रस्ताव 15 जनवरी को पूरा हुआ माना जाएगा अर्थात जब वह वचनग्रहीता को प्राप्त हो गया। इसके पहले न तो प्रस्ताव का महत्व होगा और स्वीकृति का प्रश्न ही नहीं होगा। लालमन शुक्ल बनाम गौरी दत्त के वाद में यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रस्ताव की जानकारी के बिना लालमन शुक्ल को कार्य के स्वीकृति नहीं माना गया और गौरीदत्त का कोई दायित्व नहीं बना।

3.5.2 स्वीकृति का संवहन (Communication of Acceptance)

पिछली पंक्तियों मे आप यह भी अध्ययन कर चुके है कि स्वीकृति का सवंहन ठहराव को पूरा करने के लिए आवश्यक है यहाँ पर हम अवलोकन करेंगे कि स्वीकृति का सवंहन किस प्रकार से सम्पन्न होता है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 4 में इसे 2 चरणों में बताया गया है। जो इस प्रकार से है :–

(i) प्रस्तावक के विरूद्ध (विरूद्ध से आशय है कि प्रस्तावक के दायित्व को उत्पन्न करने के लिए): जब इसे (स्वीकृति पत्र) सवंहन की प्रक्रिया में स्वीकर्ता द्वारा डाल दिया जाता है जिससे कि वह इसे वापस न ले सके

(ii) स्वीकर्ता के विरूद्ध (विरूद्ध से आशय है कि स्वीकृर्ता के दायित्व को उत्पन्न करने के लिए): जब स्वीकृति की सूचना प्रस्तावक के पास पहुच जाए।

एक उदाहरण से इसे समझा जा सकता है–

(i) अ ने ब के पास एक प्रस्ताव 1 जुलाई को प्रेषित किया जो ब को 4 जुलाई को प्राप्त हो गया। यहाँ प्रस्ताव का सवंहन 4 जुलाई को पूर्ण हो गया।

(ii) ब ने उस प्रस्ताव को स्वीकृत कर के 7 जुलाई को स्वीकृति पत्र डाक द्वारा अ को प्रेषित कर दिया। अब ब उस पत्र को वापस नहीं कर सकता है, तो ब के पक्ष से अ के प्रति स्वीकृति का सवंहन 7 जुलाई को पूरा हो गया।

(iii) यह स्वीकृति पत्र अ को 10 जुलाई को प्राप्त हो गया, तो अ के पक्ष से स्वीकृति का सवंहन 10 जुलाई को पूरा हो गया।

कभी–कभी ऐसा होता है कि स्वीकृति पत्र रास्ते में खो जाए या विलम्ब हो जाए ते क्या स्थिति होगी? ऐसी स्थित में वैधानिक प्रावधान यह है जब तक प्रस्तावक को स्वीकृति पत्र न प्राप्त हो जाए, स्वीकर्ता के विरूद्ध स्वीकृति का सवंहन सपन्न नहीं माना जाएगा। ऐसी स्थित में स्वीकर्ता से उसके दायित्व को पूरा करने की अपेक्षा नहीं करनी चाहिये अर्थात स्वीकर्ता को बाध्य नहीं किया जा सकता है।

एक स्थिति और हो सकती है कि स्वीकृति पत्र रास्ते में गुम हो जाए अथवा गलत पते पर पहुच जाए तो ऐसी स्वीकृति को उचित माध्यम से प्रेषित किया हुआ नहीं समझा जायेगा। यदि स्वीकृति पत्र सही पते पर भेजा गया है और

निर्धारित ढंग से भेजा गया है तो अनुबन्ध माना जायेगा भले ही यह प्रस्तावक के पास कभी न पहुंचे। ऐसी सभी परिस्थितियों मे जहाँ स्वीकृति का पत्र प्रस्तावक के पास नहीं पंहुच रहा है, कारण भले ही कोई भी हो, पर यदि दोनो पक्षकार अनुबध करने के इच्छुक है तो वह संवहन न हो पाने के परिणामस्वरूप आपस में सम्पर्क करेंगे और गलतियों अथवा भूलों को सुधार कर अनुबध को पूरा कर लेगे। एक उदाहरण में 'अ' ने एक प्रस्ताव–ब' के पास भेजा। 'ब' ने अपना स्वीकृति पत्र सही पते पर उचित डाक शुल्क के साथ प्रेषित कर दिया। वह स्वीकृति पत्र 'अ' के पास कभी नहीं पहुंचा। वाद होने पर न्यायालय द्वारा ऐसी स्वीकृति को पूर्ण माना गया।

3.6 प्रस्ताव एवं स्वीकृति का खण्डन (Revocation of Proposal and Acceptance)

खण्डन से आशय है वापस ले लेना या समाप्त कर देना भारतीय अनुबन्ध अधिनियम इस बात का प्रावधान भी करता है कि प्रस्ताव एवं स्वीकृति करने वाले पक्षकार यदि चाहे तो इसका खण्डन अथवा इस वापस भी ले सकते हैं । अग्रिम पंक्तियों में हम अध्ययन करेंगे कि इस सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधान क्या है।

3.6.1 प्रस्ताव का खण्डन (Revocation of Proposal)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 5 में उल्लिखित है कि ''प्रस्ताव का खण्डन प्रस्तावक के विरूद्ध स्वीकृति का संवहन पूरा होने से पहले किसी भी समय किया जा सकता है, परन्तु उसके बाद नहीं।'' इसका आश्य है क स्वीकर्ता के द्वारा स्वीकृति पत्र संवहन की प्रक्रिया में डाल देने के पहले प्रस्ताव वापस लिया जा सकता है। उसके बाद नहीं। उदाहरण लिए 'अ' ने अपना उत्पाद बेचने का प्रस्ताव 'ब' के पास डाक द्वारा भेज दिया। अब 'अ' अपना प्रस्ताव वापस लेना चाहता है, तो वह ऐसा तभी तक कर पायगा जब तक 'ब' ने स्वीकृति पत्र संवहन की प्रक्रिया में नहीं डाल दिया है। यदि 'अ' का खण्डन का प्रस्ताव 'ब' के पास तब पहुचता है जब ब ने स्वीकृति का पत्र प्रेषित कर दिया है तब प्रस्ताव का खण्डन नहीं माना जायेगा। और 'अ' इसके लिए बाध्य होगा। धारा–6 के अनुसार प्रस्ताव का खण्डन निम्न विधियों से किया जा सकता है।

1 खण्डन की सूचना देकर (Giving Notice of Recocation)

अधिनियम की धारा 5 में वर्णित है कि प्रस्ताव का खण्डन स्वीकृति का संवहन पूरा होने के पूर्व ही किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 6 (1) में बताया गया है कि प्रस्ताव का खण्डन प्रस्तावक द्वारा दूसरे पक्ष को सूचित करके किया जा सकता है। शर्त यह है कि स्वीकर्ता ने अभी तक स्वीकृति प्रेषित नहीं की हो। एक बार स्वीकृति प्रेषित हो जाये तो प्रस्ताव का खण्डन सम्भव नहीं है। खण्डन औपचारिक रूप से डाक द्वारा, ई–मेल द्वारा अथवा टेक्स्ट मैसेज द्वारा किया जा सकता है। प्रस्ताव का खण्डन मौखिक रूप से भी किया जा सकता है। कभी–कभी प्रस्तावक के आचरण द्वारा भी प्रस्ताव का खण्डन मान लिया जा सकता है। खण्डन की सूचना प्रस्तावक द्वारा स्वयं या अपने एजेण्ट द्वारा दी जानी चाहिए।

2 समय बीत जाने पर (Lapse of Time)

यदि प्रस्ताव में स्वीकृति देने के लिए कोई अवधि निर्धारित की गई है तो उस निर्धारित अवधि के भीतर स्वीकृति अवश्य दे देनी चाहिए। जैसा कि आप

पूर्वगामी पंक्तियों अध्ययन कर चुके हैं कि अवधि बीत जाने बाद दी गयी स्वीकृति वैध नहीं मानी जाती है। हेड़ बनाम डिगलोन के वाद में विक्रेता को तीन दिन के भीतर स्वीकृति देने को कहा गया। क्रेता ने स्वीकृति विलम्ब से दी तब तक विक्रेता माल को तीसरे व्यक्ति के हाथ बेच चुका था। न्यायालय ने निर्णय दिया था प्रस्ताव का अन्त हो चुका था और विक्रेता किसी भी प्रकार से वादी क्रेता को माल बेचने के लिए बाध्य नहीं है।

कभी–कभी ऐसा भी होता है कि प्रस्ताव में स्वीकृति देने का कोई समय निर्धारित न किया गया हो तो स्वीकर्ता को स्वीकृति उचित समय के भीतर दे देनी चाहिए। यह उचित समय क्या होता है? उचित समय से आशय है कि समान प्रकार के व्यापार में प्रस्तावक, वचनग्रहीता (स्वीकृर्ता) को स्वीकृति के लिए कितना समय देते हैं अथवा स्वीकृर्ता कितने समय में स्वीकृति दे दिया करते हैं। भिन्न–भिन्न व्यावसायों में व्यापार की प्रथा के अनुसार उचित समय का निर्धारण किया जाता है। नष्ट होने वाली प्रवृत्ति की वस्तुएं जैसे कि फल, सब्जी या दूध इत्यादि के व्यापार में अधिक से अधिक एक या दो दिन का समय उचित होगा। इसी प्रकार से भारी उद्योग के वस्तुओं के व्यापार में या अधिक मूल्य वाली वस्तुओं के व्यापार में उचित समय 15 दिन से 1 महीना भी हो सकता है। ऐसा व्यापार जो मौसम पर निर्भर करते हैं जैसे ऊनी वस्त्र, तो इनकी स्वीकृति उसी मौसम के अन्दर हो जानी चाहिए। अन्यथा प्रस्ताव समाप्त माना जायेगा।

3 शर्त का पालन न करने पर (**Non Fulfilment of Conditons**)

यदि प्रस्ताव में प्रस्तावक द्वारा कोई शर्त प्रस्तावित की गई है और स्वीकर्ता को उसका पालन करना है तो स्वीकर्ता को ऐसा करना चाहिए। शर्त का पालन किए बिना दी गई स्वीकृति पूर्ण स्वीकृति नहीं माना जाएगी और प्रस्तावक को अधिकार रहेगा कि वह ऐसी स्वीकृति को न माने। ऐसी स्वीकृति वैध नहीं होगी और प्रस्ताव खण्डित हो जाएगा। उदाहरण के लिए यदि 'अ', 'ब' के समक्ष अपनी वस्तु को विक्रय करने का प्रस्ताव करता है और साथ ही साथ यह शर्त लगाता है कि 'ब' इस बात की घोषणा भी करे कि वह किसी बैंक का ऋणी नहीं है। 'ब' स्वीकृति तो दे देता है पर यह घोषणा नहीं करता है कि वह किसी बैंक का ऋणी नहीं है। ऐसी स्थिाति में स्वीकृति वैध नहीं होगी और प्रस्ताव का खण्डन मान लिया जाएगा।

4 उचित रीति का पालन न होने पर (**Non Compliance of Usual Mode**)

यदि स्वीकृति व्यापार की प्रचलित रीति से नहीं दी गई है तो भी स्वीकृति वैध नहीं होगी और प्रस्ताव का खण्डन हो जाएगा। उदाहरण के लिए कपास के व्यापारी सितम्बर के महीने में प्रस्ताव देते हैं और अक्टूबर के महीने में स्वीकृति दी जाती है। यदि ऐसा होता है और पक्षकार इस रीति का पालन करते हैं तो प्रस्ताव एवं स्वीकृति वैध मानी जाएगी अन्यथा प्रस्ताव खण्डित मान लिया जाएगा।

5 प्रतिप्रस्ताव की दशा में (**On the Event of Counter Proposal**)

जैसा कि आपको ज्ञात है कि यदि स्वीकृर्ता स्वीकृति देते समय प्रस्ताव की शर्तो में कोई संशोधन के साथ स्वीकृति देता है तो ऐसी स्वीकृति, स्वीकृति न होकर प्रतिप्रस्ताव कहलाती है। यदि स्वीकर्ता द्वारा ऐसा किया गया है तो भी स्वीकृति वैध नहीं मानी जाएगा।

6 विषय वस्तु का नष्ट होना (**Destruction of Subject Matter**)

यदि अनुबन्ध की विषय वस्तु प्रस्ताव की सूचना के बाद और वचनग्रहीता द्वारा स्वीकृति दिए जाने से पहले नष्ट हो जाती है तो प्रस्ताव का खण्डन मान लिया जाएगा। पर यदि अनुबन्ध की विषयवस्तु स्वीकृति का सवहंन पूरा होने के बाद नष्ट हुई है तो अनुबन्ध माना जाएगा और उत्तरदायित्व प्रस्तावक का रहेगा कि वह अनुबन्ध पूरा कर पाएगा अथवा नहीं।

7 प्रस्तावक की मृत्यु पर (**Death Of Porposer**)

यदि प्रस्तावक की मृत्यु या अयोग्यता हो गई है और स्वीकृति अभी नहीं दी गई है तो प्रस्ताव समाप्त मान लिया जायगा। परन्तु यदि स्वीकृति का संवहन पूरा होने के बाद ऐसा होता है तो अनुबन्ध माना जाएगा और फिर जो विधिक उपाय है उनका अनुसरण किया जायगा।

8 स्वीकर्ता की मृत्यु पर (**Death of Acceptor**)

स्वीकृर्ता की मृत्यु या अयोग्यता यदि स्वीकृति देने के पहले हो जाती है तो प्रस्ताव का खण्डन मान लिया जाएगा। परन्तु यदि स्वीकृति का सवंहन पूरा होने के बाद ऐसा होता है तो अनुबन्ध माना जाएगा और विधिक उपायों का अनुसरण किया जाएगा।

3.6.2 स्वीकृति का खण्डन (Revocation of Acceptance)

स्वीकृति का खण्डन भी उसी प्रकार से किया जा सकता है जैसा कि प्रस्ताव के मामले में आपने अध्ययन किया। जब स्वीकृति का संवहन प्रस्तावक को मिल जाए उसके पहले स्वीकृति का खण्डन किया जा सकता है अन्यथा स्वीकृति का संवहन पूरा हुआ माना जाएगा और अनुबन्ध का निर्माण हो जाएगा तथा पक्षकारों का दायित्व उत्पन्न हो जाएगा। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 5 के अनुसार ''स्वीकृति का खण्डन, स्वीकर्ता के विरूद्ध (प्रस्तावक के दृष्टिकोण से) स्वीकृति का संवहन पूरा होने से पहले कभी भी किया जा सकता है, पर उसके बाद नहीं''।

3.7 सांराश

प्रस्ताव एवं स्वीकृति अनुबन्ध के निर्माण के प्रथम एवं द्वितीय चरण माने जा सकते है। ठहराव जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय होते हैं उन्हे ही अनुबन्ध कहते है। ठहराव एवं अनुबन्ध एक दूसरे के पर्यायवाची तभी कहे जाते है जब ठहराव विधि द्वारा प्रवर्तनीय हो। ठहराव प्रस्ताव एवं स्वीकृति से निर्मित होते है। प्रस्ताव के द्वारा एक पक्ष दूसरे पक्ष के सामने किसी कार्य को करने अथवा न करने की अपनी इच्छा प्रकट करता है और यह चाहता है कि दूसरा पक्ष उस कार्य को करने या न करने के विषय में अपनी सहमति दे। ऐसी इच्छा को प्रस्ताव कहते है। जब दूसरा पक्ष यदि कार्य को करने या न करने के सम्बन्ध में अपनी सहमति दे देता है तो वह स्वीकृति कहलाती हैं। अपनी इच्छा को प्रकट करने वाला प्रस्तावक और सहमति देने वाला स्वीकर्ता कहलाता है। प्रस्ताव के लिए एवं स्वीकृति के लिये सदैव दो पक्षें का होना अनिवार्य हैं। कोई व्यक्ति स्वयं से न तो प्रस्ताव कर सकता है और न हो स्वीकृति दे सकता है। प्रस्ताव, ठहराव करने के उद्देश्य से ही किया जाता है। प्रस्ताव को वैध होना चाहिए तभी उसकी स्वीकृति भी वैध मानी जाएगी और ठहराव वैध होगा जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय हो सकेगा। विधि द्वारा प्रवर्तनीय ठहराव ही अनुबन्ध होते है और ऐसे अनुबन्ध के पक्षकार अपने–अपने वचन का निर्वहन करने के लिए बाध्य होते है। प्रस्ताव को वैध होने के लिए कुछ

बिन्दुओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है जैसे कि प्रस्ताव का सवंहन होना, प्रस्ताव का निश्चित एवं विनय के रूप में होना, प्रस्ताव का उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थपित करना और प्रस्ताव का उद्देश्य दूसरे पक्ष की सहमति प्राप्त करना होना चाहिए। प्रस्ताव स्पष्ट रूप से या गर्भित रूप से भी दिये जा सकते हैं। प्रस्ताव व्यक्ति विशेष को सम्बोधित हो सकते है अथवा जनसमान्य को भी सम्बोधित होते है।

प्रस्ताव पर वह व्यक्ति जिसको प्रस्ताव सम्बोधित है अपनी सहमति प्रकट कर देता है तो प्रस्ताव स्वीकृत माना जाता हैं। बिना स्वीकृति के कोई ठहराव हो ही नहीं सकता हैं। स्वीकृति भी वैध होनी चाहिए तभी बाध्यकारी ठहराव एवं अनुबन्ध उत्पन्न होगें। स्वीकृति को वैध होने के लिए भी कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं का समावेश होना आवश्यक है जैसे कि जिस व्यक्ति को प्रस्ताव सम्बोधित है उसी व्यक्ति द्वारा स्वीकृति देना, प्रस्ताव जैसा मिला है उसी प्रकार से उसे स्वीकार करना, स्वीकृति देते समय किसी नई शर्त को अपने से न जोड़ देना अथवा काट देना, तथा उचित अथवा निर्धारित समय के भीतर स्वीकृति देना आदि कुछ बिन्दु है। स्वीकृति, स्पष्ट या गर्भित रूप से एवं प्रस्ताव का अन्त होने के पहले ही दे दी जानी चाहिए।

प्रस्ताव एवं स्वीकृति का उद्देश्य ठहराव कर के वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होता हैं । यह सम्बन्ध व्यापार वाणिजय और उद्योग से सम्बन्धित होते है। ऐसे ठहराव तभी सम्पादित हो सकते है जब कि प्रस्ताव एवं उसकी स्वीकृति उचित विधि से एक दूसरे पक्ष को सवंहित हो जाए । जब प्रस्ताव, उस पक्षकार, को जिसके लिए यह सम्बोधित है, के पास पहुंचेगा ही नहीं तो उस पक्षकार के लिए यह न होने के बराबर होगा। और यदि प्रस्ताव की स्वीकृति प्रस्तावक के पास न पहुॅचे तो प्रस्तावक के लिए यह अस्वीकृत हो जाएगा। अतः प्रस्ताव एवं स्वीकृति का सवंहन एक महत्वपूर्ण आयाम है जो ठहराव/अनुबन्ध के निर्माण में महत्वपूर्ण है।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम इस बात का भी अवसर देता है कि पक्षकार यदि चाहे तो अपने–अपने प्रस्ताव एवं स्वीकृति का खण्डन कर सकें अथवा वापस ले सकें। प्रस्ताव का खण्डन सूचना देकर अथवा समय बीत जाने पर अथवा शर्तो का पालन (स्वीकर्ता द्वारा) न कर के किया जा सकता है। यहा पर एक बात महत्वपर्ण है कि प्रस्ताव तभी तक वापस लिया जा सकता है जब तक की स्वीकर्ता अथवा वचनग्रहीता ने उसे स्वीकार न कर लिया हो। यदि स्वीकृति हो जाती है तो वह वचन कहलाती है और उसका पालन पक्षकारों पर बाध्यकारी होता है। प्रस्तावक की मृत्यु या स्वीकर्ता की मृत्यु होने पर प्रस्ताव स्वतः समाप्त हो जातें है। यदि स्वीकर्ता प्रस्ताव की शर्ता को संशोधित कर के स्वीकृति देता है तो भी प्रस्ताव खण्डित माना जाता है।

इसी प्रकार से स्वीकृति देने वाला पक्षकार भी अपने द्वारा दी गई स्वीकृति का खण्डन अथवा उसे वापस ले सकता है। स्वीकृति देने वाला पक्षकार तभी तक अपनी दी हुई स्वीकृति वापस ले सकता है जब तक कि वह प्रस्तावक के पास न पहुंची हो। क्योंकि जब प्रस्तावक के पास स्वीकृति पहुच जाती है तो बाध्यकारी ठहराव एवं अनबन्ध हो जाता हैं। अनुबन्ध का खण्डन करना वचन भंग होता है और ऐसा करने से वैधानिक अनुबन्ध भंग माना जाता है जिसके पृथक वैधानिक प्रावधान है।

उपरोक्त इकाई में आपने अध्ययन किया कि प्रस्ताव एवं स्वीकृति अनुबन्ध के लिए प्रथम एवं द्वितीय सोपान होते है जिनका अनुसरण किए बिना अनुबन्ध का निर्माण एवं वैधानिक सम्बन्धों की कल्पना नहीं की जा सकती है।

3.8 शब्दावली

ठहराव (Ageement)—दो पक्षों के मध्य किसी एक विषय पर एक समय पर एक मत होना।

प्रस्ताव (Proposal)—ठहराव के लिए किसी एक पक्ष द्वारा दसरे पक्ष के समक्ष अपनी इच्छा प्रकट करना।

स्वीकृति (Acceptance)—दूसरे पक्ष द्वारा प्रस्ताव पर अपनी सहमति देना जिससे कि ठहराव हो जाए ।

अनुबन्ध (Contract)—ऐसा ठहराव जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय हो।

सवंहन (Communication)—प्रस्ताव एवं स्वीकृति का एक दूसरे पक्ष को ससूचित होना।

निश्चित शर्ते (Certain terms)—प्रस्ताव की शर्ते स्पष्ट एवं वास्तविक होना।

वैधानिक सम्बन्ध (Legal Relations)—प्रस्तावक एवं स्वीकर्ता के मध्य अनुबन्ध के सम्बन्ध जो राजनियम द्वारा बाध्यकारी हों।

विशिष्ट प्रस्ताव (Specific Proposal)—किसी व्यक्ति विशेष को सम्बोधित प्रस्ताव

सामान्य प्रस्ताव (General Proposal)—जनसामान्य को सम्बोधित प्रस्ताव

स्पष्ट प्रस्ताव (Express Proposal)—प्रस्ताव, प्रस्तावक द्वारा स्पष्ट रूप से लिखित या मौखिक रूप से वचनग्रहीता को संसूचित करना

गर्भित प्रस्ताव (Implied Proposal)—प्रस्तावक के आचरण अथवा कार्य द्वारा प्रस्ताव प्रस्तुत करना

स्वीकृति (Acceptance)—वचनग्रहीता द्वारा प्रस्ताव की स्वीकार कर लेना।

शर्तरहित स्वीकृति (Absolute Acceptance)—प्रस्ताव को स्वीकर्ता द्वारा यथा रूप में स्वीकार करना।

उचित समय (Reasonable Time)—व्यापार की प्रथानुसार स्वीकृति देने की समयावधि।

निर्धारित समय (Stipulated Time)—प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए प्रस्तावक द्वारा तय की गई समयावधि।

स्पष्ट स्वीकृति (Express Acceptance)—स्वीकर्ता द्वारा स्वीकृति लिखित या मौखिक रूप से प्रस्तावक को संसूचित करना।

गर्भित स्वीकृति (Implied Acceptance)—स्वीकर्ता द्वारा अपने कृत्य या आचरण द्वारा प्रस्ताव की शर्तो का पालन।

खण्डन (Revocation)—प्रस्ताव एवं स्वीकृति को पक्षकारों द्वारा वापस ले लेना अथवा परिस्थित या पक्षकारों के आचरण द्वारा समाप्त हो जाना।

3.9 बोध प्रश्न

प्रश्न–1– ठहराव से क्या आशय है?

प्रश्न–2– एक ठहराव में प्रस्ताव की क्या भूमिका होती है?

प्रश्न–3– प्रस्ताव से आप क्या समझते है? एवं वैध प्रस्ताव के लक्षणों को बताइए।

प्रश्न–4– प्रस्ताव एवं प्रस्ताव के लिए निमंत्रण का क्या अर्थ है उदाहरण सहित बताइये।

प्रश्न–5– प्रति प्रस्ताव एवं अर्न्तप्रस्ताव क्या होते है?

प्रश्न–6– स्वीकृति से आप क्या समझते है? एक ठहराव में स्वीकृति का क्या स्थान है?

प्रश्न–7– एक स्वीकृति को पूर्ण होने के लिए किन शर्तों अथवा बिन्दुओं को समावेशित करना चाहिए।

प्रश्न–8– प्रस्ताव एवं स्वीकृति के संवहन से क्या आशय है?

प्रश्न–9– प्रस्ताव का खण्डन किस प्रकार से किया जा सकता है।

प्रश्न–10– प्रस्ताव एवं स्वीकृति के खण्डन से आप क्या समझते है।

3.10 बोध प्रश्नों के सम्भावित उत्तर

प्रश्न–1– इसके उत्तर में आपको बिन्दु 3.2 को विस्तार से एवं बिन्दु 3.3 प्रस्ताव तथा बिन्दु 3.4 स्वीकृति को संक्षेप में लिखना है।

प्रश्न–2– इस प्रश्न के उत्तर में आपको 3.3, प्रस्ताव तथा 3.3.1 प्रस्ताव के लक्षण को लिखना है।

प्रश्न–3– इस प्रश्न के उत्तर में आप बिन्दु 3.3 तथा बिन्दु 3.3.1 एवं बिन्दु 3.3.2 को सविस्तार लिखिए।

प्रश्न–4– इस प्रश्न में बिन्दु 3.3.3 को स्मरण रखिए।

प्रश्न–5– इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 3.3.5 तथा बिन्दु 3.3.6 को लिखिए।

प्रश्न–6– इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 3.4 को विस्तार से लिखिए।

प्रश्न–7– इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 3.4 स्वीकृति तथा बिन्दु 3.4.1 को विस्तार से लिखना है।

प्रश्न–8– बिन्दु 3.5.1 तथा 3.5.2 को स्मरण करना है।

प्रश्न–9– प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 3.6, बिन्दु 3.6.1 (संक्षेप में) तथा बिन्दु 3.6.2 (संक्षेप में) को सिखना है।

प्रश्न–10– प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 3.6.1 को उपबिन्दुओं सहित विस्तार से लिखना है।

3.11 स्वपरख प्रश्न

1. स्वीकृति से क्या आशय है? इसकी विशेषताओं का उल्लेख करिए।
2. प्रस्ताव की व्याख्या करिए तथा इससे सम्बन्धित वैधानिक प्रावधानों को बताइए।
3. प्रस्ताव एवं स्वीकृति के संवहन सम्बन्धी बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए।
4. खण्डन से क्या आशय है? प्रस्ताव के खण्डन की क्या प्रक्रिया है।
5. खण्डन से क्या आशय है? स्वीकृति के खण्डन की विधि की विवेचना करिए।
6. प्रस्ताव को परिभाषित करिए तथा इसके लक्षणों का उल्लेख करिए।
7. प्रति प्रस्ताव क्या है? एक प्रस्ताव को कब वैध माना जाता है?
8. स्पष्ट एवं गर्भित प्रस्तावों को परिभाषित करिए।
9. स्वीकृति को वैध कब माना जाता है? इससे सम्बन्धित वैधानिक प्रावधानों को स्पष्ट करिए।

3.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws : Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (P) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law : Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law : K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई–04 प्रतिफल एवं स्वतन्त्र सहमति (Consideration and Free Consent)

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 प्रतिफल की परिभाषा एवं अर्थ
4.2.1 वैध प्रतिफल के वैधानिक नियम
4.2.2 प्रतिफल एवं असम्बद्ध पक्षकार
4.2.3 प्रतिफल रहित ठहराव का व्यर्थ होना एवं अपवाद
4.2.4 अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य
4.3 स्वतंत्र सहमति
4.3.1 उत्पीड़न
4.3.1.1 उत्पीड़न वाले अनुबन्ध का प्रभाव
4.3.2 अनुचित प्रभाव
4.3.2.1 अनुचित प्रभाव वाले अनुबन्ध का प्रभाव
4.3.3 कपट
4.3.3.1 कपट के लक्षण
4.3.3.2 कपट किए जाने के प्रकार
4.3.3.3 कपट का परिणाम
4.3.4 मिथ्यावर्णन
4.3.4.1 मिथ्यावर्णन के लक्षण
4.3.4.2 मिथ्यावर्णन करने के प्रकार
4.3.4.3 मिथ्यावर्णन का परिणाम
4.3.5 गलती
4.3.5.1 कानून सम्बन्धी गलती
4.3.5.2 तथ्य सम्बन्धी गलती
4.3.5.3 गलती से होने वाले अनुबन्ध का परिणाम
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 बोध प्रश्न
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 स्वपरख प्रश्न
4.9 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- प्रतिफल क्या होता है, का अध्ययन कर सकें।
- अनुबन्ध में प्रतिफल का महत्व क्या होता है, का वर्णन कर सकें
- प्रतिफल के आवश्यक लक्षण का क्या होते हैं, की व्याख्या कर सकें।
- अनुबन्ध में प्रतिफल की वैधानिकता क्या है, की व्याख्या कर सकें।
- सहमति क्या होती है, की व्याख्या कर सकें।

- स्वतंत्र सहमति किसे कहते है, की व्याख्या कर सकें।
- अनुचित प्रभाव क्या होता है, का वर्णन कर सकें
- मिथ्यावर्णन एवं गलती से प्रभावित अनुबन्ध क्या होते है।
- स्वतंत्र सहमति न होने से अनुबन्ध पर क्या प्रभाव पड़ता है।

4.1 प्रस्तावना

वैध अनुबन्ध के आवयक लक्षणों में प्रतिफल का एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। जिसके न रहने से अनुबन्ध ही व्यर्थ हो जाता है। प्रतिफल एक शब्द है जो ''किसी वस्तु के बदले में,'' के संदर्भ में जाना जाता है। यदि अनुबन्ध का एक पक्षकार, किसी वचन को पूरा करने का उत्तरदायित्व लेता है तो उसे इस कार्य के बदले में कुछ प्रतिपूर्ति प्राप्त होनी चाहिए। यह 'प्रतिपूर्ति प्राप्त होना' ही प्रतिफल के रूप में जाना जाता है। एक उदाहरण देखिए–राम अपनी बाइक को 50000/–रूपये में बेचने का प्रस्ताव श्याम को करता है। श्याम उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है एवं बाइक को तदनुसार क्रय कर लेता है। यहॉ पर 50000/–रूपये राम के लिए प्रतिफल है। इसी प्रकार से सहमति का भी अनुबन्ध की वैधानिकता पर अति महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। आप पूर्वगामी इकाइयों में अध्ययन कर चुके हैं कि स्वीकृति वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों में एक घटक है। पक्षकारों की स्वीकृति सदैव स्वतंत्र होनी चाहिए अर्थात पक्षकारों द्वारा अनुबन्ध में प्रवेश स्वेच्छा से होना चाहिए। कोई पक्षकार यदि दूसरे पक्ष को डरा धमका कर उसको अनुबन्ध में प्रवेश कराता है तो सत्य सामने आने पर ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ घोषित करने के साथ अवैध भी घोषित किया जा सकता है। अग्रिम पंक्तियों में हम प्रतिफल एवं स्वतंत्र सहमति का विस्तृत अध्ययन करेंगें।

4.2 प्रतिफल की परिभाषा एवं अर्थ (Definition and Meaning of Consideration)

उपरोक्त वर्णित प्रस्तावना का अध्ययन करने के बाद आप यह समझ गए होंगे कि किसी कार्य के बदले में कुछ प्राप्त होना ही प्रतिफल कहलाता है। बाइक के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि राम एवं श्याम दोनों को कुछ प्राप्त हो रहा है। अब अध्ययन करिए कि भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 तथा अन्य विद्वानों की दृष्टि में प्रतिफल का क्या अर्थ है।

- ''ब्लैक स्टोन'' ने प्रतिफल को एक क्षतिपूर्ति के रूप में परिभाषित किया है जो ''वचनदाता को वचनगृहीता द्वारा दी जाती है''।
- न्यायमूर्ति पैटरसन के अनुसार ''प्रतिफल का कानून की दृष्टि में कुछ मूल्य होता है, इसके द्वारा एक पक्ष को कुछ सुविधा प्राप्त हो सकती है एवं दूसरे पक्ष को कुछ असुविधा''।

उपरोक्त परिभाषाओं से आप प्रतिफल के बारे में स्पष्ट रुप से उसके वास्तविक अर्थ को नहीं समझ पाएगें। प्रतिफल न तो किसी पक्ष को हानि का द्योतक है और न किसी पक्ष को लाभ प्रदान करता है। प्रतिफल क्षतिपूर्ति का कोई कार्य भी नहीं हैं। व्यवसाय से दोनों पक्षों को लाभ एवं सुविधा की अपेक्षा होती है तभी उनमें अनुबन्ध के सम्बन्ध स्थापित होते हैं। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 के द्वारा जो परिभाषा दी गई है वह

व्यापक एवं संतुलित है। अधिनियम की धारा के 2(d) अनुसार ''जब वचनदाता की इच्छा पर वचनगृहीता अथवा किसी व्यक्ति ने कोई कार्य किया है, अथवा उसको करने से विरत रहा हो, अथवा कोई कार्य करता है, या उसको करने से विरत रहता है, अथवा कोई कार्य करने अथवा विरत रहने का वचन देता है, तो ऐसा कार्य, विरति या वचन, उस वचन के लिए प्रतिफल कहलाता है''।

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि–

- वचनदाता की इच्छा पर (at the desire of the promisor)
- वचनगृहीता अथवा अन्य कोई व्यक्ति ने (promisee or any other person)
- कोई कार्य को किया है अथवा नहीं किया है (has done something or abstained from doing)
- कार्य को करता है अथवा नहीं करता है (does or abstains from doing)
- कार्य को करने का वचन या न करने का वचन देता है (promises to do or abstain from doing)
- तो ऐसे कार्य का करना या न करना प्रतिफल कहलाता है।

उपरोक्त विश्लेषण से एक बात तो स्पष्ट है कि वचनगृहीता ऐसा कार्य तभी करेगा जब वचनदाता का प्रस्ताव उसे स्वयं के लिए उचित लगेगा। अतः प्रतिफल दोनों पक्षों, वचनदाता (Promiser) एवं वचनगृहीता (Promisee) को महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान होता है। उपरोक्त परिभाषा व्यापक है जिसमें भूतकाल के किये हुए कार्य अथवा कार्य से विरति, वर्तमान काल के किये हुए कार्य अथवा कार्य से विरति, तथा भविष्य के किये जाने वाले कार्य अथवा किये जाने वाले कार्य से विरति सम्मिलित है। अर्थात प्रतिफल पूर्व में किए गए कार्यों तथा भविष्य में किये जा रहे कार्यों एवं वर्तमान में चल रहे कार्यों के सम्बन्ध में निर्धारित किया जा सकता है।

जैसा आप ऊपर की पंक्तियों में पढ़ चुके हैं, कानून केवल उन्हीं अनुबन्धों को मान्यता देता है जिनमें प्रतिफल होता है। इसका कारण यह है कि स्वेच्छा से अथवा प्रेम एवं स्नेह के रुप में किए जाने वाले कार्यों को विधि द्वारा क्रियान्वित नहीं कराया जा सकता है। जैसे कि आप को जन्म दिन पर कोई 500/–रूपये देने का वचन दे, पर समय आने पर न दे तो क्या आप उसके ऊपर कानूनी कार्यवाही द्वारा उसे प्राप्त करने का प्रयास करेगें? उत्तर है आप ऐसा नहीं करेगें। ऐसे वचन जिनसे किसी पक्ष को कोई वास्तविक लाभ–हानि न हो तो कानून की दृष्टि में ऐसे वचनों का महत्व नहीं है।

4.2.1 प्रतिफल के लक्षण (Features of Consideration)

1 प्रतिफल कोई कार्य, विरति, अथवा वचन हो सकता है।

अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रतिफल कोई कार्य विरति या वचन होता है। प्रत्यक्षतः यदि देखें तो 'अ' द्वारा एक वस्तु को 500/–रूपये में विक्रय करने का प्रस्ताव 'ब' द्वारा स्वीकार किया जाना एवं 500/–रूपये का भुगतान कर के वस्तु क्रय कर लेना एक स्पष्ट कार्य का वचन है। इसका दूसरा पहलू देखें–कि किसी कार्य को न करना भी प्रतिफल हो सकता है। जैसे–

- कोई व्यक्ति, जो किसी दावे के लिए दूसरे व्यक्ति पर वाद प्रस्तुत कर सकता है, वह व्यक्ति यदि दावे के लिए वाद न करने का वचन देता है तो ऐसा वाद न करना भी प्रतिफल की श्रेणी में आएगा।
- किसी चले आ रहे विवाद में ले–दे कर समझौता करके विवाद को समाप्त कर देना भी प्रतिफल का रुप हो सकता है।
- लेनदार एवं द्वारा देनदार के मध्य ऋणों का निपटारा कर देना भी इसी श्रेणी रखा जा सकता है।

2 प्रतिफल को वचनदाता की इच्छा से आना चाहिए–

प्रतिफल को वचनदाता की इच्छा से उत्पन्न होना चाहिए। वचनदाता की इच्छा अथवा निवेदन पर प्रतिफल निर्धारित हो सकता है। अन्य पक्ष के द्वारा लाया गया प्रतिफल जिसमें वचनदाता की सहमति न हो प्रतिफल की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। दुर्गा प्रसाद बनाम बलदेव (1880 इलाहाबाद) के वाद में वादी ने शहर के कलेक्टर के कहने पर एक बाजार का निर्माण कराया। प्रतिवादी जिसे उस बाजार में दुकान मिली, उसने वादी को उसके कार्य के उपलक्ष्य में अपनी एजेन्सी से हुई बिक्री पर कमीशन देने का वचन दिया। इस मामले में विवाद होने पर न्यायालय ने निर्णय दिया कि प्रतिवादी द्वारा कमीशन देने का वचन प्रतिफल के अभाव में लागू नहीं कराया जा सकता क्योंकि वादी ने प्रतिवादी की इच्छा पर बाजार का निर्माण नही कराया था। इस मामले में वचनदाता कलेक्टर था न कि प्रतिवादी।

3 प्रतिफल वचनग्रहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति की ओर से भी आगे बढ़ाया जा सकता है–

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2 (d) की एक प्रावधान यह भी है कि यदि वचनदाता को कोई आपत्ति न हो तो प्रतिफल वचनगृहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति की ओर से भी लाया जा सकता है। यहाँ पर चिन्नैया बनाम रमय्या (1882, मद्रास) के वाद का उदाहरण दिया जा सकता है, जिसमें एक दानपत्र के माध्यम से एक वृद्ध महिला ने अपनी पुत्री (प्रतिवादी) को सम्पत्ति देने का वचन इस शर्त पर दिया कि एक निश्चित धनराशि पुत्री द्वारा वचनदाता की बहन (वादी) को प्रतिवर्ष दी जाएगी। उसी दिन प्रतिवादी ने वादी के पक्ष में इकरारनामा लिख दिया। परन्तु बाद में प्रतिवादी ने धनराशि देने से यह कह कर इनकार कर दिया कि इसके लिए कोई प्रतिफल नहीं था। न्यायालय ने निर्णय दिया कि प्रतिफल वादी की ओर से उसकी बहन द्वारा दिया जा चुका है।

4 प्रतिफल भूत, वर्तमान अथवा भावी भी हो सकता है–

अधिनियम की धारा 2(d) के अनुसार कहा गया है कि प्रतिफल में ''कार्य किया है अथवा नही किया है'', यह भूत काल से सम्बन्धित है। ''कार्य करता है अथवा नहीं करता है,'' ''यह वर्तमान काल से सम्बन्धित है। ''कार्य करने या न करने का वचन देता है,'' यह भविष्य से सम्बन्धित है। इनके आधार पर प्रतिफल पर निम्न प्रकार से विचार किया जा सकता है–

- **भूत प्रतिफलः**–जब वर्तमान के किसी कार्य के सम्पादन के लिए भूतकाल में प्रतिफल दिया जा चुका है। जैसे राम की आवश्यकता के समय पहले श्याम ने कोई कार्य किया था। राम ने कुछ दिन बाद श्याम से कहा कि

उसके द्वारा भूतकाल में किए गए कार्य के बदले में वह श्याम को प्रतिपूर्ति का भुगतान देगा। ऐसी स्थिति में श्याम के लिए भुगतान प्राप्त करना भूत प्रतिफल होगा।

- **वर्तमान प्रतिफलः**—जब प्रतिफल वचन के साथ दिया जा रहा हो। जैसे दुकानदार वस्तु का विक्रय करता है और क्रेता मूल्य चुकाकर वस्तु क्रय कर लेता है।
- **भावी प्रतिफलः**—जब वर्तमान में किये अनुबन्ध के क्रियान्वन में भविष्य में कोई कार्य करने अथवा विरत रहने करने का वचन दिया जाता है। उदाहरण के लिए विक्रेता किसी वस्तु को क्रेता को वर्तमान में हस्तान्तरित कर दे तथा क्रेता उसका भविष्य में चुकाने का वचन दे।

5 **प्रतिफल का पर्याप्त होना आवश्यक नहीं हैः**—

जैसा कि आप पहले ही अध्ययन कर चुके हैं कि प्रतिफल का आशय है ''बदले में कुछ प्राप्त होना।'' प्रतिफल का अर्थ कभी भी यह नहीं समझना चाहिए कि वह ''प्रतिफल का मूल्य सदैव ''वस्तु या कार्य'' के मूल्य से बराबर होगा। कानून इस सम्बन्ध में कहता है कि अनुबन्ध में सदैव प्रतिफल होना चाहिए। जब तक प्रतिफल किसी अनुबन्ध का घटक है तब तक अनुबन्ध विधिसम्मत रहेगा, उसके मूल्य का महत्व नहीं है। यह पक्षकारों पर निर्भर करता है कि प्रतिफल का स्वरूप क्या हो। उदाहरण के लिए 'अ' अपना मोबाइल फोन जिसका बाजार मूल्य 10,000/—रूपये है 'ब' को मात्र 1,000/—रूपये में बेचने का अनुबन्ध करता है। यह एक उत्तम प्रतिफल है, कोई यह प्रश्न नहीं कर सकता है कि इसका मूल्य बाजार मूल्य से कम है।

4.2.2 प्रतिफल एवं असम्बद्ध पक्षकार (Consideration and Unassociated Parties)

कानून का एक सर्वमान्य पहलू है कि किसी भी मामलें में केवल सम्बन्धित पक्षकार ही एक दूसरे पर वाद प्रस्तुत कर सकते हैं। इसे ''भिज्ञता का सिद्धान्त'' (doctrine of privity) के रुप में जाना जाता हैं। भिज्ञता (Privity) से आशय यह है कि उन दो पक्षों के सम्बन्धों की पूर्णता होना जो अनुबन्ध के पक्षकार रहे हों। इसके द्वारा दोनों पक्षकारों को उनके उत्तरदायित्व एवं अधिकारों का बोध होता है। तीसरे पक्षकार का इसमें स्थान नहीं होता है। इसकी निम्न प्रकार से व्याख्या की जा सकती है—

- एक व्यक्ति जो किसी अनुबन्ध में पक्षकार न हो अनुबन्ध के किसी भी पक्ष पर अनुबन्ध से सम्बन्धित वाद नहीं कर सकता है चाहे उसे अनुबन्ध से लाभ ही क्यों न होता हो।
- पक्षकारों के अतिरिक्त कोई और व्यक्ति को कानून यह अधिकार नहीं देता है कि वह अनुबन्ध के क्रियान्वयन के लिए विधिक कार्यवाही करें।

नियम के अपवाद (Exceptions of the Rule):—

- किसी अचल सम्पत्ति में किसी व्यक्ति के पक्ष में किसी ट्रस्ट अथवा न्यास के ठहराव द्वारा कोई हित यदि उत्पन्न होता हो तो वह व्यक्ति इसे अपने पक्ष में क्रियान्वित करा सकता है। उदाहरण के लिए मधु ट्रेडिंग कं0 बनाम भारत सरकार दिल्ली (1979) के वाद में, ''अ'' एक ट्रस्ट (न्यास) जो ''स''

के द्वारा पोषित किया जा रहा है उसमें अपनी कुछ सम्पत्ति ''ब'' के लाभ के लिए हस्तान्तरित कर देता है। ब इसे अपने पक्ष में क्रियान्वित करा सकता है भले ही वह इसका पक्षकार न हो।

- विवाह, बंटवारा अथवा पारिवारिक निपटारों के अनुबन्धों में लाभान्वित होने वाला व्यक्ति अनुबन्ध के क्रियान्वयन के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है उदाहरण के लिए पारिवारिक बंटवारे के उपरान्त दो भाइयों ने बराबर की धनराशि अपनी मॉ के हित के लिए निवेश करने का अनुबन्ध किया। मॉ को अधिकार है कि वह ऐसा करने के लिए पुत्रों को बाध्य कर सके। (एस0 अम्मल बनाम सुब्रमण्यम, मद्रास, 1910)
- यदि कोई व्यक्ति प्रदर्शन, स्वीकारोक्ति अथवा वचन द्वारा अपने को किसी तीसरे पक्ष के प्रतिनिधि के रुप में प्रस्तुत करता है तो ऐसी स्थिति में वह तीसरे पक्षकार के प्रति उत्तरदायी हो जाएगा।
- अनुबन्धों के अभ्यर्थन के मामले में अधिकार प्राप्त किया हुआ पक्षकार इसे अपने पक्ष में क्रियान्वित करा सकता है। उदाहरण के लिये किसी चेक का यथाविधिधारक चेक की धनराशि वैधानिक रूप से प्राप्त कर सकता है। जबकि बहुधा ऐसे मामलों में उसके एवं भुगतान करने वाले के बीच में कोई सम्बन्ध नहीं पाया जाता है।
- यदि किसी व्यापारिक प्रतिनिधि ने, प्रधन द्वारा प्रदत्त अधिकारों की सीमा के भीतर कोई अनुबन्ध किया हो तो ऐसे अनुबन्ध को उसका प्रधान क्रियान्वित करना सकता है।

4.2.3 प्रतिफल रहित ठहराव का व्यर्थ होना एवं अपवाद (Agreements Without Consideration are Void and Exceptions)

प्रतिफल रहित ठहराव व्यर्थ होते हैं। उपरोक्त पंक्तियों ने आप अध्ययन कर चुके हैं कि प्रतिफल के बिना अनुबन्ध वैध नहीं होता है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 में स्पष्ट रूप से वर्णित है कि प्रतिफल रहित अनुबन्ध व्यर्थ होते हैं, अर्थात कानून इनको वैध नहीं मानना है। परन्तु धारा 25 में तथा धारा 105 में कुछ ऐसे प्रावधान हैं जिनके अनुसार कुछ ठहरावों को बिना प्रतिफल के भी वैध माना गया है। धारा 25 में प्रतिफल की अनिवार्यता के निम्नलिखित अपवाद दिए गए हैं–

- **ऐसे अनुबन्ध जो प्रेम एवं स्नेह पर आधारित होतें हों (Agreements Based On Love and Affection):–**

ऐसे अनुबन्ध जिनके पक्षकारों में निकट का सम्बन्ध हों तथा उनके बीच स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह द्रष्टिगोचर हो तो कानून ऐसे अनुबन्धों को वैधता प्रदान करता है भले ही अनुबन्ध में प्रतिफल न हो। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति प्रेमवश अपने पुत्री को 5,00,000/–रूपये देने का लिखित वचन देता है, तथा उसे रजिस्टर्ड करा देता है। ऐसा अनुबन्ध विधिमान्य है। परन्तु धारा 25(1) यह भी वर्णित करती है कि निकट के सम्बन्धों को सदैव स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह हो ऐसा हमेशा नहीं माना जा सकता है।

- **पूर्व में स्वेच्छा से किए गए कार्य के बदले प्रतिपूर्ति का वचन देना (Promise to Compensate for Past Voluntary Acts):–**

किसी व्यक्ति द्वारा भूतकाल में यदि दूसरे व्यक्ति के लिए कोई कार्य स्वेच्छा से कर दिया गया हो और वर्तमान में वह व्यक्ति उस कार्य की प्रतिपूर्ति करना चाहता है तो ऐसा अनुबन्ध भी वैध होगा भले ही उसमें प्रतिफल न हो। दूसरे शब्दों में पूर्व में स्वेच्छा से किये गये कार्य के बदले वर्तमान में भुगतान करने का वचन यदि दिया जाए तो वह भी प्रतिफल के वर्तमान न रहने पर भी वैध माना जायेगा। उदाहरण के लिए अ, ब की मदद दो वर्ष पहले कर चुका है। ब, अ को इसका भुगतान अब करना चाहता है तो यह अनुबन्ध वैध होगा। (धारा 25 (2))

- **समय के साथ समाप्त होने वाले अथवा अवधि वर्जित ऋण के भुगतान करने का वचन (Promise to Pay in Case of Time Barred Debt):–**

समय के साथ समाप्त होने वाला ऋण वह होता है जो एक निश्चित समय बीत जाने के बाद, अथवा किसी विधिक प्रक्रिया के क्रियाशील हो जाने पर देय नहीं रह जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी ऋण का दो वर्ष तक भुगतान न किया जाए अथवा ऋणदाता द्वारा भुगतान का दावा न किया जाए तो वह ऋण अवधि वर्जित हो जाता है। यदि ऐसे ऋण का जो अवधि वर्जित हो चुका हो, उसका देनदार यदि उस ऋण का भुगतान करने का वचन देता है तो ऐसा अनुबन्ध प्रतिफल के न होने पर भी मान्य होगा। परन्तु ऋण की प्रकृति ऐसी होनी चाहिए कि सामान्य परिस्थिति में लेनदार उसके भुगतान के लिए विधिक कार्यवाही कर सकता था। ऐसा वचन ऋण के किसी भाग अथवा सम्पूर्ण भाग के लिए भी हो सकता है। उदाहरण के लिए मोहन ने सोहन से 50000/–रूपये ऋण लिए जिसके भुगतान की अवधि तीन वर्ष निर्धारित की गई थी, जिसके बीत जाने पर सोहन (लेनदार) को ऋण वापसी के लिए दावा करने का अधिकार नहीं होगा। तीन वर्ष बाद मोहन केवल 3000/रूपये ही दे पाया। परन्तु साथ ही मोहन ने सोहन को लिखित वचन दिया कि वह 2000/–रूपये और दे देगा। ऐसा अनुबन्ध मान्य है। (धारा 25 (3))

- **दान एवं भेंट (Gifts & Charity):–**

प्रतिफल दान एवं भेटों के अनुबन्ध में अनिवार्य हो, ऐसा नहीं होता है। सामान्यतः दान और भेंट को प्राप्त करने के लिए वैधानिक कार्यवाही नहीं की जा सकती है। (ऐसी दान एवं भेट जो दी जा चुकी हो उनकी वैधता को स्वीकार किया जाता है।) दान अथवा भेंट के वचन पर विश्वास करके यदि दूसरा पक्ष कोई दायित्व उत्पन्न कर लेता है तो दानदाता को वचन दिया हुआ दान देने को बाध्य किया जा सकता है। इस संदर्भ में एक उदाहरण लें–

(i) अ, ब, जो एक मंदिर का पुजारी है, को 2000/–रूपये मंदिर की मरम्मत के लिए देने का वचन देता है, परन्तु समय आने पर दान नहीं देता है। ऐसा अनुबन्ध विधिमान्य नहीं है। अर्थात् उस दान को प्राप्त कने के लिए वैधानिक दबाव नहीं डाला जा सकता है।

(ii) दूसरी परिस्थिति में मंदिर का पुजारी यदि ऐसे वचन पर विश्वास करके मरम्मत का कार्य प्रारम्भ कर देता है तो अ पर अपने वचन को पूरा करने के लिए विधिक रूप से दबाव डाला जा सकता है।

- **एजेन्सी के अनुबन्ध (Contracts of Agency):–**

एजेन्सी के निर्माण के लिए किए गए अनुबन्ध में प्रतिफल की अनिवार्यता नहीं होती है। (धारा 185)

- **निःशुल्क निक्षेप (Gratituous Bailment)**:—

निक्षेप भी एक व्यापारिक अनुबन्ध होता है, जिसका अध्ययन आप आगे करेंगे। निःशुल्क निक्षेप की दशा में भी प्रतिफल की आवश्यकता नहीं होती है।

4.2.4 अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य (Illegal Consideration and Object)

प्रतिफल वैध एवं अनुबन्ध का उद्देश्य वैधानिक होना चाहिए। ऐसे अनुबन्ध जिनका प्रतिफल एवं उद्देश्य वैधानिक नहीं है, व्यर्थ होते हैं। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार निम्न दशाओं में उद्देश्य तथा प्रतिफल अवैध माना जाता है तथा ऐसा ठहराव व्यर्थ एवं अवैधानिक होता है।

- ऐसे अनुबन्ध जिनका ठहराव, प्रतिफल अथवा उद्देश्य राजनियम द्वारा निषिद्ध है तो वह अवैधानिक होते है।
- किसी अनुबन्ध का उद्देश्य ऐसा है कि, यदि वह पूरा कर दिया जाय तो किसी प्रचलित राजनियम की व्यवस्थाएं निष्फल हो जाएंगी।
- यदि अनुबन्ध कपटमय हो अर्थात् पक्षकार/पक्षकारों का उद्देश्य धोखा देना हो।
- यदि किसी अनुबन्ध के क्रियान्वित होने से दूसरे पक्ष को शारीरिक एवं आर्थिक क्षति पहुंचे तो ऐसे अनुबन्ध अवैध होने के साथ व्यर्थ होगें।
- यदि कोई अनुबन्ध अथवा उसका उद्देश्य न्यायालय की दृष्टि में लोक नीति के विरूद्ध हो तो वह अवैध एवं व्यर्थ होगा।

4.3 स्वतंत्र सहमति (Free Consent)

पूर्वगामी इकाइयों में आपने अध्ययन किया है कि पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति किसी वैध अनुबन्ध का एक आवश्यक लक्षण है। सहमति स्वतंत्र होने से आशय है कि पक्षकार जो अनुबन्ध में सम्मिलित हो रहे है उन्होंने स्वेच्छा से बिना किसी दबाव के अनुबन्ध में प्रवेश किया है। अग्रगामी पक्तियों में हम अध्ययन करेंगें कि स्वतंत्र सहमति वास्तव में किस प्रकार से समझी जाती है और कब—कब सहमति स्वतंत्र नहीं समझी जाएगी। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा—13 के अनुसार सहमति से आशय है कि ''जब दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी एक बात पर एक ही भाव से सहमत हो गए हों''। यह आप पहले ही अध्ययन कर चुकें हैं कि किसी अनुबन्ध में कम से कम दो पक्षकारों का होना आवश्यक है, दोनों का एक मत, एक भाव के साथ होना आवश्यक है एवं दोनों पक्षकार किसी एक ही विषय में सहमत हो गए हैं। यही बात सहमति के विषय में भी सत्य है कि अनुबन्ध के पक्षकारों को अनुबन्ध के विषयवस्तु पर एक ही भाव से स्वेच्छता से सहमत होना चाहिए। उनकी सहमति में किसी प्रकार से एक दूसरे का दबाव अथवा तीसरे पक्ष का दबाव उन दोनों की इच्छा पर नहीं होना चाहिए। ऐसा कहा जाता है अनुबन्ध के पक्षकारों के मध्य सर्वसम्मति का होना आवश्यक है। सहमति के लिए भाव का एक होना भी आवश्यक है। भाव में भिन्नता होने से सहमति नहीं मानी जाती है, भले ही पक्षकारों में औपचारिक सहमति हो गई हो। ऐसे मामलों में जहां भाव भिन्न होते हुए भी सहमति हो गई हो, वहां बाद में सच्चाई सामने आने

पर अनुबन्ध को भंग करना ही पड़ेगा। किसी व्यापारिक लेनदेन में भावों की भिन्नता हो सकती है जिसके प्रमुख आधार इस प्रकार से है—

- ''कभी—कभी पक्षकार अनुबन्ध के किसी मूल तत्व को लेकर भ्रम में अथवा गलत फ़हमी में हो जाते हैं जैसे कोई हलवाई के लिए खाद्य तेल का महत्व है तो आटो मैकेनिक के लिए मोबिल तेल (आयल) का महत्व है।
- कभी—कभी पक्षकार अनुबन्ध में अपनी स्थित को लेकर भ्रम में रहते हैं कि वह वचनग्रहीता अथवा साक्ष्य के रुप में है।
- कभी—कभी पक्षकार एक दूसरे की पहचान को लेकर भ्रमित हो जाते हैं। बहुधा ऐसा देखा गया है कि किसी प्रतिष्ठित व्यापारिक नाम से मिलता हुआ नाम रख के व्यापारी प्रतिष्ठित व्यापारी के व्यापारिक सम्बन्धियों को भ्रमित कर देते हैं।

उपरोक्त वर्णित मामलों में यदि सहमति हो भी जाती है तो वह राजनियम के अनुसार व्यर्थ होगी तथा ऐसी स्वीकृति को स्वतंत्र नहीं घोषित किया जा सकता है। अब हम अग्रगामी पक्तियों में अध्ययन करते है कि भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार स्वतंत्र स्वीकृति से क्या आशय है। अधिनियम की धारा 14 के अनुसार स्वतंत्र सहमति को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है—''सहमति स्वतंत्र तब कहीं जाएगी जब वह निम्न के द्वारा प्रभावित न हो—

(क) उत्पीड़न (Coercion)
(ख) अनुचित प्रभाव (Undue Influence)
(ग) कपट (Fraud)
(घ) मिथ्यावर्णन (Misrepresentation)
(ङ) गलती (Mistake)

अग्रगामी पंक्तियों में हम इन बिन्दुओं का विस्तार से अध्ययन करेंगें।

4.3.1 उत्पीड़न (Coercion)

जब किसी पक्षकार को जबरजस्ती अथवा बलपूर्वक अथवा धमकी दे कर अनुबन्ध में प्रवेश के लिए प्रेरित किया जाता है तो कहा जाता है कि उत्पीड़न के द्वारा उस व्यक्ति की सहमति प्राप्त की गई है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा—15 के अनुसार उत्पीड़न से आशय है कि ''किसी व्यक्ति को अनुबन्ध में प्रवेश कराने के लिए कोई ऐसा कार्य करना या करने की धमकी देना जो भारतीय दण्ड संहिता के अनुसार वर्जित है अथवा किसी व्यक्ति को हानि पहुंचाने के उद्देश्य से किसी समपत्ति को निरूद्ध करना (रोक लेना अथवा आधीन कर लेना) अथवा निरूद्ध करने की धमकी देना है''। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को ऐसी धमकी देना जो अपराध की श्रेणी में आता हो अथवा कोई सम्पत्ति को अपने आधीन कर लेना या आधीन कर लेने (कब्जा कर लेने या रोक लेने) की धमकी देना जो अपराध की श्रेणी में आती है, और यह सब करने का उद्देश्य दूसरे पक्ष को अनुबन्ध के लिए तैयार करवा लेना हो तो कहा जाएगा कि अनुबन्ध उत्पीड़न द्वारा कराया गया है। इसमें यह भी उल्लिखित है कि स्थान का महत्व नहीं हैं कि वहां पर भारतीय दण्ड संहिता लागू है कि नहीं। यदि अनुबन्ध का क्रियान्वन भारत में होना है तो उत्पीड़न से यदि अनुबन्ध किया गया है तो उत्पीड़न माना जाएगा। एक और ध्यान देने वाला विषय है कि यदि कोई

तीसरा व्यक्ति भी उत्पीड़न का प्रयोग करता है और किसी को अनुबन्ध के लिए बाध्य करता है तो भी अनुबन्ध उत्पीड़न द्वारा प्रभावित माना जाएगा। उपरोक्त के आधार पर कहा जा सकता है कि कोई अनुबन्ध उत्पीड़न द्वारा प्रभावित माना जाएगा जिसमें–

- कोई कार्य करने की धमकी देना या करना
- किसी सम्पत्ति को रोकना या अपने आधीन कर लेना या करने की धमकी देना
- जो भा0द0स0 (I.P.C.) के अन्तर्गत अपराध हो
- इन सबका उद्देश्य दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध में प्रवेश करा लेना होता है।

उत्पीड़न से सम्बन्धित कुछ उदाहरणों पर दृष्टि डालिए–

- **रगनायकम्मा बनाम अलवर सेट्टी (1889) मद्रास** के विवाद में एक निःसन्तान व्यक्ति की मृत्यु के उपरान्त उसकी विधवा को धमकी दी गई कि जब तक वह एक बालक को गोद लेने के प्रपत्र पर सहमति नहीं दे देती तब तक उसके पति के शरीर को अन्तिम संस्कार के लिए नहीं ले जाने दिया जाएगा। विधवा को मजबूरी में बालक को गोद लेने के प्रपत्र पर स्वीकृति देनी पड़ी। वाद में विधवा ने ऐसे गोद लेने को रद्द करारने की मांग की। न्यायालय में वाद गया और न्यायालय ने निर्णय दिया कि अन्तिम संस्कार से रोकना भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराध है और गोद लेना वैध नहीं है।
- **एक और वाद चिखम अमीराजू बनाम चिखम सेशम्मा (1912) मद्रास** के विवाद में एक व्यक्ति ने आत्मा हत्या की धमकी देकर अपनी पत्नी और पुत्र से अपने भाई के पक्ष में ऐसी सम्पत्तियों से अभित्याग (मुक्ति) लिखवा लिया जिस पर वह (पत्नी और पुत्र) अपना दावा कर रहे थे। न्यायालय ने विवाद आने पर धमकी देकर अभित्याग पत्र को लिखवाने को उत्पीड़न के आधार पर व्यर्थ घोषित किया क्योंकि आत्महत्या भारतीय दण्ड विधान के द्वारा अपराध है।
- **वन्सराज दास बनाम सेक्रेटरी आफ स्टेट (1939) इलाहाबाद** के वाद में एक व्यक्ति को सरकारी नोटिस दी गई कि यदि वह जुर्माने की राशि जो उसके पुत्र को भरनी थी, जमा नहीं करेगा तो उसकी सम्पत्ति को कुर्क कर लिया जाएगा। व्यक्ति को जुरमाना भरना पड़ा। न्यायालय ने इस प्रकार जुर्माना भरने को उत्पीड़न के द्वारा माना।
- इसी प्रकार से **मुथैया चेट्टी बनाम कुरूप्पन चेट्टी (1927) मद्रास** के वाद में यह निर्णित हुआ कि किसी सम्पत्ति को अपना कार्य करवाने तक के लिये रोकना भी बल प्रयोग कहलाएगा।
- एक अन्य उदाहरण में किसी व्यक्ति को यह डरवाना कि यदि वह ऋण की अदायगी नहीं करेगा तो कानूनी कार्यवाही करवा कर उसे दण्डित करवाया जाएगा तो वह उत्पीड़न नहीं कहलाएगा। **संदर्म क्लार्क बनाम टर्नबुल (ब्रिटेन)।**

- इसी प्रकार कानूनी कार्यवाही करने की धमकी देना भी उत्पीड़न नहीं कहलायगी।

4.3.1.1 उत्पीड़न वाले अनुबन्ध का प्रभाव (Effects of Contract with Coercion)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा–19 के अनुसार बल प्रयोग या उत्पीड़न द्वारा किये गये अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय है। इसका अर्थ यह है कि यदि पीड़ित पक्षकार चाहे तो अनुबन्ध को व्यर्थ घोषित करवा सकता है। एक स्थिति यह भी हो सकती है कि पीड़ित पक्षकार कोई शिकायत ही न करे। तो ऐसी स्थिति में कौन जान पाएगा कि अनुबन्ध उत्पीड़न से प्रभावित है। ऐसी स्थिति में पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को क्रियान्वित करवा सकता है। आशय यह है कि जिस पक्ष का उत्पीड़न हुआ है उसे यह बात प्रकाश में लानी चाहिए और उचित वैधानिक स्तर पर शिकायत करनी चाहिए। इसी क्रम में एक और महत्वपूर्ण बिन्दु है कि उत्पीड़न वास्तव में हुआ है यह सिद्ध करने का दायित्व पीड़ित पक्षकार का होता है। उसे यह सिद्ध करना पड़ता है कि वास्तव में उसे साथ बल प्रयोग हुआ या ऐसा करने की धमकी दी गई अथवा उसकी सम्पत्ति को बन्धक बनाया गया अथवा ऐसा करने की धमकी दी गई जो भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराध है। इसके उपरान्त यदि उत्पीड़न सिद्ध हो जाता है तो किसी पक्ष ने यदि अनुबन्ध के अन्तर्गत धन या सम्पत्ति प्राप्त कर ली है तो उसे वापस करना पड़ेगा।

4.3.2 अनुचित प्रभाव (Undue Influence)

कभी कभी ऐसा होता है कि एक पक्ष के लगातार दबाव जो अवांछनीय की श्रेणी में आता है, के कारण दूसरे पक्ष को अनुबन्ध में प्रवेश करना पड़ जाता है, तो ऐसे अनुबन्ध को अनुचित प्रभाव के द्वारा किया गया अनुबन्ध कहते हैं। ऐसे अनुबन्धों में प्रायः दोनों पक्षों के मध्य पहले से ही जान–पहचान देखी जाती है, जिसका अनुचित लाभ दूसरा पक्ष उठाकर अनुबन्ध करवा लेता है। इनमें से एक पक्ष की स्थिति दूसरे पक्ष से अधिक मजबूत होती है ओर वह इसका अवांछनीय लाभ उठा लेता है। उदाहरण के लिए एक मालिक अपने नौकर के ऊपर या ऋणदाता अपने ऋणी के ऊपर इस प्रकार का प्रभाव रखता है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में ऐसे अनुबन्ध को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, धारा 16 के अनुसार ''एक अनुबन्ध अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित किया हुआ कहा जाता है जहाँ पर पक्षकारों के मध्य सम्बन्ध इस प्रकार से चले आ रहे होते हैं कि एक पक्ष दूसरे पक्ष की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में होता है और वह अपनी इस स्थिति का अनुचित लाभ उठा लेता है।'' ऐसे अनुबन्धों को अनुचित प्रभाव से उत्पन्न अनुबन्ध कहते हैं। परिभाषा के अनुसार अनुचित प्रभाव को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है–

- एक सम्बन्ध ऐसे होते हैं कि एक पक्ष दूसरे पक्ष की इच्छा को प्रभावित कर सकता है।
- और उस पक्ष ने अपनी ऐसी स्थिति का लाभ उठा लिया हो।
- इस प्रकार का लाभ अनुचित हो।

अनुचित प्रभाव को प्रयोग करने के लिए पक्षकारों के मध्य एक पक्ष ऐसा होना चाहिए जिसका प्रभुत्व अथवा नियत्रंण दूसरे पक्ष पर हो। इसके अतिरिक्त

इनमें परस्पर विश्वास भी होना चाहिए तभी दूसरा पक्ष प्रेरित हो पायेगा। कभी–कभी मनोवैज्ञानिक रूप से कमजोर पक्ष भी किसी व्यक्ति के कहने में आकर अनुबन्ध के लिए सहमत हो जाता है। इस बिन्दु को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरणों पर विचार करिए–

- अ, अपने एक निःसन्तान वृद्ध रिश्तेदार 'ब' की देखभाल करता था। वृद्ध रिश्तेदार 'ब' पूर्ण रूप से अक्षम था और 'अ' पर पूरी तरह से निर्भर था। कुछ दिन बाद यह प्रकाश में आया कि वृद्ध रिश्तेदार 'ब' ने अपनी पूरी सम्पत्ति 'अ' के नाम कर दी है। अन्य रिश्तेदारों द्वारा विवाद किये जाने पर न्यायालय ने पया कि 'अ' वृद्ध रिश्तेदार 'ब' की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में था।
- एक गुरू ने अपने शिष्य से उसकी सारी सम्पत्ति अपने नाम करवा ली यह आश्वासन देकर कि उसे (शिष्य को) मोक्ष की प्राप्ति हो जाएगी। **(संदर्भ– मन्नू सिंह बनाम उमादत्त पाण्डे 1890 इलाहाबाद)।**
- एक महिला ने संकट के समय 100 प्रतिशत ब्याज की दर से ऋण लियाा **(संदर्भ–रानी अन्नपूर्णी बनाम स्वामी नाथन 1910 मद्रास)**
- एक व्यक्ति ने अपना दावा प्राप्त करने के लिए 3700 रु0 ऋण लिया और बदले में ऋणदाता को 25000 रु0 देने का बान्ड लिख दिया **(चुन्नी कौर बनाम रूप सिंह 1888 इलाहाबाद)**

अनुबन्ध में पर्दानशीन महिला का पक्षकार होना (Veiled Women as party in Contract)

भारत में महिलाओं का पर्दानशीन होना एक प्राचीन परम्परा है। पर्दानशीन महिला से आशय है ऐसी महिला से जो बाहरी जगत के ज्ञान से अनिभिज्ञ है। यद्यपि परदानशीन कौन है इसको कहीं परिभाषित नहीं किया गया है। केवल पर्दा में रहना ही पर्दानशीन नहीं बना देता है। बाहरी दुनिया की गतिविधि से दूर रहना या ज्ञान न होना एक तत्व है जो पर्दानशीन होने को बताता है। ऐसा भी देखा जाता है कि पर्दानशीन होकर भी महिलाऐं कार्य करती हैं, बाहर जाती हैं, नौकरी करती हैं, तथा विद्यालय भी जाती हैं। इन्हें पर्दानशीन नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि इनको दुनिया की एवं आसपास की गतिनिधि का ज्ञान रहता है। महिलाऐं जो वास्तव में पर्दानशीन हैं वह बहुधा आधुनिक शिक्षा से दूर, दूसरे पर निर्भर एवं अपनी सुरक्षा स्वयं करने में समक्ष नहीं होती है।

यदि किसी पर्दानशीन महिला के साथ अनुबन्ध कर लिया जाता है तो वाद होने पर कानून इसे अनुचित प्रभाव द्वारा किया गया मानेगा और इस बात को सिद्ध करने का दायित्व उस दूसरे पक्ष का होगा कि वह सिद्ध करे कि अनुबन्ध अनुचित प्रभाव द्वारा नहीं किया गया है, तथा महिला ने अपनी सहमति स्वतंत्रता पूर्वक दी थी। साथ ही साथ वाद की स्थिति में पर्दानशीन महिला को भी सिद्ध करना पड़ता है कि वह वास्तव में पर्दानशीन है।

4.3.2.1 अनुचित प्रभाव वाले अनुबन्ध का परिणाम (Effect of Contract with undue Influence)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 19 में यह प्रावधान है कि जिस व्यक्ति की सहमति इस प्रकार ली गई है उसकी इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थनीय होगा। यह सिद्ध करने का भार उस व्यक्ति का है कि उसका सहमति वास्तव में

अनुचित प्रभाव डाल कर ली गई थी। पीड़ित पक्षकार यदि चाहे तो अनुबन्ध को चालू रख सकता है और दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध के निष्पादन के लिए बाध्य कर सकता है।

4.3.3 कपट (Fraud)

कपट का अर्थ स्पष्ट है कि जानबूझकर किसी को बहकाना और भ्रमित करना। जब अनुबन्ध का एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को जानबूझ कर पूर्व नियोजित तरीके से भ्रमित अथवा बहका कर अनुबन्ध के लिए सहमत करवा लेता है तो कहा जाता है कि अनुबन्ध कपट के द्वारा किया गया है। ऐसी स्थिति में स्वीकृति देने वाले पक्ष की स्वीकृति स्वतंत्र नहीं कहलाती है। इस स्थिति को कपट द्वारा प्राप्त की गई सहमति कहा जाता है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत धारा 17 में वर्णित है कि कपट का आशय है कि ''किसी पक्षकार या उसके प्रतिनिधि को धोखा देने के उद्‌देश्य से पहला पक्षकार स्वयं या अपने प्रतिनिधि की मिलि–भगत से निम्न में से कोई कार्य करता है–तो कहा जाता है कि अनुबन्ध कपट द्वारा किया गया है–

- किसी ऐसे तथ्य को सत्य बताने का सुझाव देना जो कि वास्तव में सत्य नहीं है और ऐसा करने वाला स्वयं यह जानता है कि यह सत्य नहीं है।
- किसी तथ्य को सक्रिय रूप से छिपाना जिसके बारे में उसे जानकारी एवं विश्वास है कि ऐसा छिपाव किया जा रहा है।
- कोई वचन, कभी भी पूरा न करने के उद्‌देश्य से देना।
- कोई भी कार्य जिसका उद्‌देश्य धोखा देना पूर्व नियोजित हो।
- कोई भी ऐसा कार्य या भूल जिसको राजनियम द्वारा विशेष रूप से कपट घोषित किया गया है।
- कभी–कभी संवेदनशील मुद्‌दों पर मौन रहना भी कपट मान लिया जाता है।''

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर कपट की दो प्रमुख शर्तें होनी चाहिए–

(1) कपट का कार्य एक पक्षकार स्वयं या अपने प्रतिनिधि के माध्यम से करे। किसी तीसरे पक्षकार (अनुबन्ध से अजनबी) की इसमें कोई भूमिका नहीं होती है।

(2) कपट की क्रिया अनुबन्ध के एक पक्षकार के द्वारा दूसरे पक्षकार अथवा उसके प्रतिनिधि के प्रति की जानी चाहिए। यदि कपट की क्रिया किसी तीसरे पक्षकार (अनुबन्ध से अजनबी) के विरुद्ध की गई है हो उस अनुबन्ध के संदर्भ में वह कपट नहीं मानी जायेगी।

4.3.3.1. कपट के लक्षण (Feeatures of Fraud)

आपने उपरोक्त पंक्तियों में जो कपट की परिभाषा (धारा–17 के अन्तर्गत) का अवलोकन किया है उसके अनुसार कपट के द्वारा किये गए अनुबन्ध में निम्न लक्षणों को पाया जाता है–

1 कपट की क्रिया अनुबन्ध के एक पक्षकार स्वयं या अपने प्रतिनिधि के माध्यम से अथवा जानबूझकर अपनी अनिभिज्ञता से कर सकता है। तीसरे पक्षकार की इसमें कोई भूमिका नहीं हो सकती है। तीसरे पक्षकार का

हस्तक्षेप उत्पीड़न या अनुचित प्रभाव में देखा जा सकता है परन्तु कपट में नहीं।

2 कपट का उद्देश्य दूसरे पक्षकार को धोखा देना होता है। यदि दूसरा पक्षकार संयोग से धोखे का शिकार नहीं होता है तो कपट नहीं माना जायेगा। अभिप्राय यह है कि वास्तव में दूसरे पक्षकार को धोखा खाना चाहिए अन्यथा कपट नहीं माना जाएगा और वह पक्षकार अनुबन्ध के प्रति वैसा ही बाध्य होगा जैसा पहला पक्षकार।

4.3.3.2 कपट किये जाने के प्रकार (Ways to commit fraud)

1 किसी तथ्य को सत्य होने का संकेत देना जबकि वास्तव में वह सत्य नहीं है (Indicating of any fact as true, while it is actually untrue)

किसी बात को सत्य बताकर प्रस्तुत करना जबकि ऐसा करने वाला भलि भांति जानता है कि वह जो कह रहा है वह सत्य नहीं है। ऐसी क्रिया को यह माना जाता है कि दूसरे को धोखा देने के लिए की जा रही है। कोई वक्तव्य बिना सोचे समझे या लापरवाही से और बिना सच्चाई की पुष्टि किये दूसरे को दिया जा रहा है तो वह भी कपट माना जाएगा यदि दूसरे व्यक्ति ने उस पर विश्वास कर लिया और उसे हानि उठानी पड़ी। इस बिन्दु को समझने के लिए निम्न उदाहरणों पर विचार करिये–

- **पीक बनाम गुर्नी** (1873) के वाद में एक कम्पनी ने प्रविवरण जारी करते समय कम्पनी के दायित्वों का उल्लेख नहीं किया जिसके कारण कम्पनी की आर्थिक क्षमता बहुत सुदृढ़ प्रतीत हुई। जबकि वास्तव में ऐसा नहीं था। निवेशकों द्वारा वाद करने पर न्यायालय ने ऐसे छिपाव को कपट माना।
- नीलाम कर्ता द्वारा नीलाम की जाने वाली वस्तु की गुणवत्ता के विषय में बढ़ा–चढ़ाकर असत्य बोलना (झूठी बड़ाई करना) भी सुझाव द्वारा कपट माना गया। **(संदर्भ–काला मीह बनाम पारपेरिक)**
- एक अन्य उदाहरण में यदि अपने बारे में असत्य सूचना देकर यदि कोई सरकारी योजना का लाभ उठा लिया गया है तो वह भी कपट समझा जाएगा।

2 सत्य का सक्रिय छुपाव (Active Concealment of Fact)

किसी अनुबन्ध में यदि कोई तथ्य को बताना आवश्यक है और एक पक्षकार उसका प्रकटीकरण नहीं करता है तो इसे सक्रिय छुपाव द्वारा कपट माना जाएगा। किसी तथ्य को छिपाना झूठ के समान माना जाता है। उदाहरण के लिए विक्रेता द्वारा यह बताना कि मोटर कार का इंजन कभी ''बोर'' नहीं कराया गया है, जबकि ऐसा हो चुका था, इसे सक्रिय छुपाव द्वारा कपट माना जाएगा।

एक और उदाहरण देखिए–कपड़े का विक्रेता अपने कपड़े को बेचने का अनुबन्ध करता है। क्रेता उसे लिनेन का कपड़ा समझ रहा है जबकि वह कपड़ा स्वदेशी खादी है। विक्रेता भी यह जानता है कि क्रेता कपड़े को लेकर गलतफहमी या भ्रम में है। ऐसी स्थिति को सक्रिय छुपाव द्वारा कपट नहीं माना जाएगा क्योंकि यह अन्तर साधारण निरीक्षण से पता चल सकता है। (आप आगे पढ़ेगें कि क्रेता सावधान के सिद्धान्त के द्वारा विक्रेता अपने को ऐसी स्थित से बचा सकता है)

कुछ ऐसे अनुबन्ध भी होते हैं जहाँ पर राजनियम द्वारा ही स्पष्ट कर दिया गया है कि पक्षकार एक दूसरे से सभी तथ्य अनिवार्य रूप से प्रकट करेंगे। यह निम्न हैं–

- सम्पत्ति विक्रय के अनुबन्ध में पक्षकारों का वैधानिक दायित्व होता है कि वह अनुबन्ध से सम्बन्धित सभी शर्तों एवं सत्य को एक दूसरे को प्रकट करे।
- पमर सद्विश्वास के अनुबन्ध, जहाँ पर पक्षकारों के मध्य विश्वासाश्रित सम्बन्ध होते हैं वहाँ पक्षकारों का वैधानिक दायित्व होता है कि वह एक दूसरे को अनुबन्ध की शर्तों, अपने–अपने दायित्वों, तथा सत्य को प्रकट करे।

ऐसे अनुबन्धों के उदहरण हैं–

(i) बीमें के अनुबन्ध–सामान्य बीमा जीवन बीमा, सामुद्रिक बीमा एवं अग्निबीमा आदि।
(ii) कम्पनी के अंशों को क्रय करने का अनुबन्ध।
(iii) साझेदारी के अनुबन्ध–यह भी परम सद्विश्वास का अनुबन्ध है।
(iv) क्षतिपूर्ति के अनुबन्ध
(v) निक्षेप के अनुबन्ध
(vi) प्रतिभूति के अनुबन्ध, आदि।

3 मौन द्वारा कपट (Fraud by Silence)

वैसे तो भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 17 के अनुसार मौन कपट की श्रेणी में नहीं आता परन्तु कछ बिन्दुओं पर यह स्पष्ट किया गया है कि मौन रहना कपट माना जाएगा। यह निम्न है।–

- सद्भावना वाले अनुबन्धों में किसी पक्ष का अनुबन्ध के महत्वपूर्ण तथ्य के विषय में मौन रहना कपट के समकक्ष होता है। उदाहरण के लिए बीमा के अनुबन्ध में यह न बताना कि व्यक्ति गम्भीर बीमारी से ग्रसित है, कपट माना जाएगा।
- कभी–कभी मौन रहना भी सक्रिय रूप से सुझाव देने के बराबर माना जाता है। उदाहरण के लिए 'अ' का 'ब' से यह कहना कि आपका घोड़ा स्वस्थ्य लग रहा है मैं इसे क्रय कर लूँगा। ब इस विषय में मौन रहता है और घोड़ा अ को विक्रय कर देता है। दो दिन में ही घोड़ा मर जाता है। क्योंकि वह बीमार था और ब इसे जानता था। यह कपट माना जाएगा।

4 झूठा वचन देना (Reckless promise)

अनुबन्ध के किसी पक्षकार द्वारा दूसरे पक्ष को अनुबन्ध के सम्बन्ध में वचन देना और उसे पूरा करने की नीयत न रखना कपट माना जाता है। उदाहरण के लिए **शिरीन माल बनाम जान जेम्स टेलर (1952) पंजाब** के बाद में एक महिला और पुरुष विवाह करते हैं, परन्तु पुरुष की इच्छा विवाह की पूर्णता में नहीं थी। इस वाद में न्यायालय ने निर्णय दिया कि महिला की सहमति कपट द्वारा प्राप्त की गई थी।

5 राजनियम द्वारा घोषित कार्य जो कपट हो (Any act declared by law as fraud)

इन सबके अतिरिक्त यदि राजनियम किन्हीं कार्यों को कपट घोषित करता है तो वह कपट की ही श्रेणी में माने जायेंगे, यदि अनुबन्ध में उनका समावेश हो तो। कम्पनी अधिनियम और दिवालिया अधिनियम के अन्तर्गत समपंत्तियों के हस्तान्तरण को विभिन्न परिस्थितियों में कपट घोषित किया गया है।

4.3.3.3 कपट का परिणाम (Effects of fraud)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 19 के अन्तर्गत कपट द्वारा किये गये अनुबन्धों के विषय में कुछ प्रावधान दिये गए हैं जिनका विश्लेषण निम्न पंक्तियों में किया जा रहा है–

- पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर कपट द्वारा किए गए अनुबन्ध व्यर्थनीय होते हैं। पीड़ित पक्षकार यदि चाहे तो ऐसे अनुबन्धों को व्यर्थ घोषित करा सकता है और यदि चाहे तो ऐसे अनुबन्धों को अस्तित्व में मानकर क्रियान्वित कर सकता है और कपट द्वारा सहमति प्राप्त करने वाले पक्ष को इसके निष्पादन के लिए बाध्य कर सकता है। स्वीकृति स्वतंत्र न होने के अन्य प्रकारों की भांति यहाँ भी यह सिद्ध करने का भार पीड़ित पक्षकार का होता है कि वह न्यायालय के समक्ष सिद्ध करे कि सहमति वास्तव में स्वतंत्र नहीं थी और कपट द्वारा प्राप्त की गई थी।
- पीड़ित पक्षकार यदि चाहे तो अनुबन्ध का प्रतिज्ञान लेकर अथवा अभिपुष्टि करके दोषी पक्षकार को अनुबन्ध की शर्तों को पूरा करने के लिए वैधानिक रूप से बाध्य कर सकता है।
- पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को निरस्त घोषित करके प्रत्यवस्थापना अथवा पुनः स्थापना (अनुबन्ध के पहली वाली स्थिति बहाल करना) की मांग वैधानिक रूप से कर सकता है। प्रत्यवस्थापना का अर्थ होता है यदि कोई धन या सम्पत्ति उसने दोषी पक्षकार को दे दी है तो वह (पीड़ित पक्षकार) उसे वापस पा सकता है। इसका अधिकार उसे वैधानिक रूप से प्राप्त है। उदाहरण के लिए यदि 'अ' ने 'ब' के झूठे आश्वासन पर कि उसके ('ब' का) मकान के प्रपत्र कहीं पर बन्धक नहीं है, मकान खरीदने के लिए स्वीकृति देते समय 500000 रु0 अग्रिम भी दे दिए। जबकि 'ब' का मकान बैंक को बन्धक था। ऐसी स्थिति में 'अ' को वैधानिक रूप से अधिकार है कि वह इसे अनुबन्ध को निरस्त कर दे और अपने दिए हुए 500000 रु0 अग्रिम वापस ले ले। कभी–कभी वाद की स्थिति में न्यायालय कपटपूर्ण तरीके से सहमति प्राप्त करने वाले पक्ष को दण्डित भी कर सकता है। **संदर्भ–अशोक बन्धन भगत बनाम बंगाल इसेन्सियल सप्लाई कारपोरेशन लिमिटेड (1992) कलकत्ता।**

इसी संदर्भ में भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 19 में एक प्रावधान और है जो पीड़ित पक्षकार को अनुबन्ध निरस्त करने का अधिकार नहीं देता है। इस प्रावधान के अनुसार यदि सहमति कपटपूर्ण मौन द्वारा प्राप्त की गई है (अर्थात् कोई तथ्य की सच्चाई के विषय में गलत जानकारी द्वारा) और पीड़ित पक्षकार सत्य को सामान्य प्रयास से जान सकता था तो ऐसी स्थिति में पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को निरस्त नहीं कर सकता है।

- उपरोक्त वर्णित सभी प्रावधानों में पीड़ित पक्षकार को अधिकार दिये गए हैं कि वह अनुबन्ध को व्यर्थ अथवा निरस्त कर सकता है। परन्तु ऐसा करने के लिए उसे सिद्ध करना होता है कि सहमति वास्तव में कपटपूर्ण व्यवहार के द्वारा ली गई थी तथा स्वतंत्र नहीं थी। दूसरे शब्दों में साक्ष्य का दायित्व पीड़ित पक्षकार पर रहता है।

4.3.4 मिथ्यावर्णन (Misrepresentation)

मिथ्यावर्णन का शाब्दिक अर्थ है कि सत्य को गलत तरीके से प्रस्तुत करना या आम शब्द में कहा जाए तो झूठ बोलना। किसी अनुबन्ध में जानबूझकर झूठ बोला जाता है तो वह कपट की श्रेणी में आयेगा जिसका अध्ययन आप इसके पूर्व वाले बिन्दु पर कर चुके हैं। यहाँ पर हम ऐसे मिथ्यावर्णन का अध्ययन करेंगे जो निर्दोष अथवा अज्ञानतावश किया जाता है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 18 में मिथ्यावर्णन को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है–

(i) किसी पक्षकार द्वारा निश्चयात्मक कथन के रूप में वक्तव्य देना जो वास्तव में सत्य नहीं है पर वक्तव्य देने वाला उसकी सत्यता में विश्वास करता है।

(ii) एक पक्षकार द्वारा कर्तव्यभंग, जो कपट करने या धोखा देने के अभिप्राय से न किया गया हो परन्तु जिसके कारण इस पक्षकार को अथवा पक्षकार के आधीन किसी व्यक्ति को लाभ पहुंचा हो दूसरे पक्षकार अथवा दूसरे पक्षकार के आधीन किसी व्यक्ति को हानि पहुंची हो।

(iii) किसी पक्षकार की निर्दोष अज्ञानता के कारण दूसरा पक्षकार अनुबन्ध के सार तत्व जो कि अनुबन्ध की विषयवस्तु है, के संदर्भ में गलती कर बैठता है।

4.3.4.1 मिथ्यावर्णन के लक्षण (Features of Misrepresentation)

उपरोक्त परिभाषा के अनुसार मिथ्यावर्णन के निम्न लक्षण दृष्टि गत होते हैं–

- मिथ्यावर्णन अनुबन्ध से, उसकी शर्तों से, तथा उसकी विषय वस्तु से सम्बन्धित होना चाहिए।
- मिथ्यावर्णन का उद्देश्य कभी भी दूसरे पक्षकार को धोखा देना नहीं होना चाहिए।
- मिथ्यावर्णन करने वाला व्यक्ति अपने कथन के सत्य होने पर विश्वास करता हो।
- मिथ्यावर्णन के आधार पर अनुबन्ध हो गया हो।

4.3.4.2 मिथ्यावर्णन के प्रकार (Ways to commit Misrepresentation)

1 दृढ़ता के साथ निश्चयपूर्ण कथन

यदि कोई पक्षकार ऐसा कथन जो कि विश्वसनीय सूत्रों पर आधारित न हो, निश्चयपूर्वक करता है और उसे सत्य मानकर कहता है जिसका उद्देश्य दूसरे पक्ष को धोखा देना न होकर साधारण रूप से अनुबन्ध करना ही हो तो उसे मिथ्यावर्णन माना जाएगा। उदाहरण के लिए **मोहन लाल बनाम श्री गंगाजी काटन मिल्स (1990) कलकत्ता** के वाद में एक व्यक्ति केवल सुनी–सुनाई बातों के आधार पर दृढ़ता के साथ कहता है कि अमुक व्यक्ति मिल के संचालक के रूप में

नियुक्त होने वाले हैं। इस पर विश्वास करके दूसरा व्यक्ति उस मिल के अंशों को क्रय लेता है। न्यायालय ने इसे केवल मिथ्यावर्णन का मामला माना।

2 कर्तव्य भंग

किसी पक्षकार द्वारा अपने कर्तव्य को पूरा न करना जिसका उद्देश्य धोखा देना न हो तो वह केवल मिथ्यावर्णन ही कहलाएगा। ऐसा मिथ्यावर्णन करने वाला पक्षकार यदि कोई लाभ दूसरे पक्षकार की असुविधा से उठा लेता है तो उसे (मिथ्यावर्णन करने वाले को) सिद्ध करना होगा कि ऐसा कृत्य कपट के लिए नहीं किया गया था।

3 मिथ्यावर्णन के कारण दूसरे पक्ष से गलती होना

यदि एक पक्ष की अज्ञानता से होने वाले मिथ्यावर्णन के कारण दूसरा पक्ष यदि अनुबन्ध के सारतत्व के विषय में कोई गलती कर बैठे तो ऐसा कृत्य भी मिथ्यावर्णन होगा। उदाहरण के लिए एक ट्रस्ट एक बड़ा भूभाग जो कि दूसरे शहर में स्थित है, शिक्षा के प्रसार के लिए एक अन्य संस्था को 90 वर्ष के पट्टे पर देता है और सम्पूर्ण कब्जे का आश्वासन देता है। अन्य संस्था द्वारा भूभाग पर कब्जा करने का प्रयास किया गया तो मालूम पड़ा कि वहाँ पर वर्षों से एक होटल अवैध रूप से संचालित हो रहा था। जिसकी जानकारी ट्रस्ट को नहीं थी। इसे मिथ्यावर्णन ही माना जाएगा।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि मिथ्यावर्णन अज्ञानतावश निर्दोष रूप से और दूसरे को धोखा न देने के उद्देश्य से किया जाता है। मिथ्यावर्णन तथ्य का होना चाहिए जो अनुबन्ध का आधार हो तथा भावना निर्दोष होनी चाहिए।

4.3.4.3 मिथ्यावर्णन का परिणाम (Effects of Misrepresentation)

अधिनियम की धारा–19 के अनुसार मिथ्यावर्णन के निम्न प्रभाव होते हैं–

- मिथ्यावर्णन से प्रभावित अनुबन्ध में पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को व्यर्थनीय घोषित करा सकता है।
- पीड़ित पक्षकार यदि उचित समझे तो अनुबन्ध के निष्पादन के लिए अन्य पक्षकार को बाध्य कर सकता है।
- पीड़ित पक्षकार पुनःस्थापना की मांग कर सकता है।

4.3.5 गलती (Mistake)

आम बोलचाल की भाषा में गलती का अर्थ होता है कि परम्परागत रूप से स्थापित या प्रतिपादित विधि से इतर या हट के कोई कार्य भ्रान्तिपूर्ण तरीके से करना या हो जाना। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो किसी तथ्य के विषय में भ्रान्तिपूर्ण विश्वास होना। दो व्यक्तियों की सहमति उस समय कही जाती है जब वह एक ही विषय पर एक ही भाव से सहमत हो जाते हों। परन्तु कभी–कभी ऐसा भी देखा जाता है कि अनुबन्ध के किसी मूल बिन्दु या सार को लेकर पक्षकार भ्रान्तिपूर्ण व्यवहार कर बैठते हैं अथवा गलती कर देते हैं। इस स्थिति में कहा जाता है कि सहमति या उससे उत्पन्न अनुबन्ध गलती से प्रभावित है। इस प्रकार की गलती, भ्रान्ति या भ्रमपूर्ण विधि से उत्पन्न अनुबन्ध व्यर्थ अथवा व्यर्थनीय हो जाते हैं। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा–20 के अनुसार ''जब अनुबन्ध के

दोनों पक्षकार अनुबन्ध के किसी आवश्यक तथ्य के विषय में गलती पर हों तो ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ होता है।''

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत गलती का निम्न प्रकार से अध्ययन किया गया है जिस पर आप ध्यान आकृष्ट करें–

4.3.5.1 कानून सम्बन्धी गलती (Mistake of Law)

कानून सम्बन्धी गलती एक गम्भीर विषय है कोई व्यक्ति यह कह के अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकता कि उसे कानून का ज्ञान न था। ''कानून से अनिभिज्ञता माफी का आधार नहीं हो सकती है''। प्रत्येक व्यक्ति से अनिवार्य रूप से अपेक्षित है कि उसे अपने देश के प्रचलित कानून का ज्ञान है। परन्तु विदेशी कानून के विषय में ऐसी अपेक्षा नहीं रखी जाती है। कानून सम्बन्धी गलती का दो प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है–

1 **भारत के कानून सम्बन्धी गलती (Mistake of Indian Laws)**–

यहाँ पर वही बात पुनः प्रतिस्थापित है कि प्रत्येक भारतीय से अपेक्षित है कि वह भारत के प्रचलित कानूनों का ज्ञान रखे। कानून से अनभिज्ञ होने के आधार पर कोई अनुबन्ध व्यर्थ घोषित नहीं किया जा सकता है। यदि अनुबन्ध में ऐसी कोई गलती हो गई है तो कानूना अपना कार्य करेगा।

2 **विदेशी कानून सम्बन्धी गलती (Mistake of Foreign Laws)**

किसी व्यक्ति से यह अपेक्षित नहीं है कि वह विदेशी कानूनों की जानकारी भी रखे। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 21 के अनुसार ''यदि गलती भारतीय राजनियमों से सम्बन्धित है तो वह क्षम्य नहीं है। पर विदेशी राजनियमों से सम्बन्धित गलती को तथ्यसम्बन्धी गलती के समान माना जायेगा''।

उद्देश्य यह है कि जब भी व्यक्ति अपने देश के भीतर अनुबन्ध करे तो विषय से सम्बन्धित कानूनी विषेषज्ञों से परामर्श अवश्य लें, क्योंकि आपसे देश के सभी कानूनों का ज्ञान एक व्यक्ति को हो ऐसा सम्भव नहीं है। यही स्थिति विदशी कानून के सम्बन्ध में भी लागू होती है। आज के वैश्विक व्यापार के परिदृश्य में इस प्रकार के विशेषज्ञों का परामर्श उपलब्ध है।

4.3.5.2 तथ्य सम्बन्धी गलती (Mistake of Fact)

तथ्य सम्बन्धी गलती से आशय है कि अनुबन्ध की विषय वस्तु के आवश्यक तथ्य को लेकर पक्षकार गलती पर हो तो इसे तथ्य सम्बन्धी गलती कहा जाता है। तथ्यसम्बन्धी गलती दो प्रकार से देखी जाती है–

- **एकपक्षीय (Unilateral)**–जब अनुबन्ध का एक पक्षकार गलती पर होता हैं।
- **द्विपक्षीय (Bilateral)**–जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकार गलती पर होते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि तथ्य सम्बन्धी गलती का निम्न दृष्टिकोण से अध्ययन करना चाहिए–

1 **तथ्य सम्बन्धी गलती आवश्यक विषयवस्तु की हो सकती है (Mistake of Fact may relate to essential subject matter)**

प्रत्येक अनुबन्ध की एक आवश्यक विषयवस्तु होती है। यदि अनुबन्ध की विषयवस्तु ही के सम्बन्ध में गलती हो गई है तो अनुबन्ध व्यर्थ होगा। यदि मान लीजिए कि दो पक्ष जिस वस्तु के विषय में अनुबन्ध करने जा रहे हों या कर चुके हों और उस समय तक अनुबन्ध की वह विषयवस्तु आस्तित्व में नहीं थी तो ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ होगा। उदाहरण के लिए यदि एक विक्रेता इंग्लैंड से आने वाले माल

को बेचने के लिए क्रेता से अनुबन्ध करता है, पर अनुबन्ध को करने के पहले ही वह जहाज डूब गया था जिसकी जानकारी किसी पक्ष को नहीं थी। ऐसा ठहराव प्रारम्भ से ही व्यर्थ है। दूसरा उदाहरण देखिए—यदि एक भूस्वामी यह मानकर कि भूभाग खाली है, खनन के लिए पट्टे पर देने का अनुबन्ध करता है। वास्तविकता यह थी कि वहाँ की भूमि का सरकारी अधिग्रहण हो चुका था जिसकी जानकारी वास्तव में भूस्वामी को नहीं थी। ऐसी स्थिति को आवश्यक विषय वस्तु की गलती मानकर व्यर्थ घोषित कर दिया जायेगा।

यह आवश्यक विषय वस्तु की गलती विभिन्न प्रकार से हो सकती है जिसको उदाहरण द्वारा निम्न पंक्तियों में उद्धत किया जा रहा है।

(i) 'अ', 'ब' का घोड़ा खरीदने का प्रस्ताव करता है। 'ब' इसे स्वीकार कर लेता है परन्तु जिस समय ऐसा अनुबन्ध हो रहा था वह घोड़ा मर चुका था। यह एक विषवस्तु के अस्तित्व की गलती है।

(ii) **रैफिल्स बनाम विचेल हाउस (1864) मुम्बई** के वाद में पीयरलेस नाम के दो जहाज इंग्लैड से मुम्बई आ रहे थे, क्रेता यह समझ के अनुबन्ध कर रहा था कि बाद में आ रहे ''पियरलेस'' का माल क्रय करना है, जबकि विक्रेता यह समझ कर अनुबन्ध कर रहा था कि पहले आ रहे ''पियरलेस'' का माल विक्रय करना है। यह आवश्यक विषयवस्तु के पहचान की गलती है।

(iii) **हैंकल बनाम पोप (1870) इंग्लैड** के वाद में एक रोचक मामला देखने में आता है पोप ने हैंकल से राइफल का मूल्य पूछते समय लिखा कि ''मैं अधिकतम 50 राइफल क्रय कर सकता हूँ। हैंकल ने मूल्य सूची भेज दी। पोप ने टेलीग्राम (तार) से संदेश भेजा ''तीन राइफलें भेज दो''। टेलीग्राम के टाइपिस्ट की गलती से संदेश गया—''राइफलें भेज दो''। हैंकल ने 50 राइफलें भेज दी, पर पोप ने केवल 3 राइफलें रख कर 47 राइफलें वापस कर दी। हैंकल ने पोप के ऊपर बाकी 47 राइफलें स्वीकार करने के लिए वाद प्रस्तुत किया। न्यायालय ने ऐसे अनुबन्ध को आवश्यक विषयवस्तु की संख्या की गलती (जो तारघर के टाईपिस्ट की थी) मानकर अनुबन्ध को व्यर्थ घोषित किया एवं पोप को 3 राइफलें जो उसने ले ली थी, का मूल्य चुकाने का आदेश दिया।

(iv) एक पक्षकार ने भूमि क्रय किया और उस पर मकान का निर्माण करवा लिया बाद में ज्ञात हुआ कि भूमि विक्रेता के नाम थी ही नहीं वरन उसका वास्तविक स्वामी कोई और था। यह बात विक्रेता एवं क्रेता किसी को नहीं मालूम थी। अनुबन्ध में धोखा देने जैसी कोई भावना नहीं थी। अनुबन्ध परस्पर सद्भावना से किया गया था। ऐसे वाद में आवश्यक विषयवस्तु की स्वामित्व सम्बन्धी गलती मानी गई। **(संदर्भ रानी कुंवर बनाम महबूब बख्श)**

इसी प्रकार से आवश्यक तथ्य सम्बन्धी गलती मूल्य के सम्बन्ध में, गुणवत्ता के सम्बन्ध में एवं समय के सम्बन्ध में हो सकती है। यदि पक्षकारों की भावना सद्भाव की है तो अनुबन्ध व्यर्थ घोषित हो सकता है। यदि भवना गलत है तो तत्सम्बन्धी वैधानिक प्रावधान लागू हो जायेंगे।

2 पहचान सम्बन्धी गलती (Mistake relating to identity)

अनुबन्ध की मूल भावना ही यही कहती है कि पक्षकारों का दायित्व अनुबन्ध की शर्तों के प्रति बाध्यकारी होता है। केवल वास्तविक पक्षकारों के मध्य अनुबन्ध एवं उन्हीं पक्षकारों के मध्य लेनदेन को ही वैध माना जाएगा। यदि किसी पक्षकार की पहचान से सम्बन्धित गलती हो तो अनुबन्ध को व्यर्थ मान लिया जाएगा। यह पहचान सम्बन्धी गलती कभी–कभी व्यापार के स्वामित्व परिवर्तन के कारण हो सकती है। जहाँ पर एक पक्ष अभी भी पुंराने स्वामी को ही वास्तविक मान रहा हो तो उनके बीच हुआ अनुबन्ध व्यर्थ होगा। कभी–कभी मिलते–जुलते नाम से व्यापार चलाने वालों के साथ भी भ्रमवश अनुबन्ध हो जाता है तो उसे भी पहचान सम्बन्धी गलती के आधार पर व्यर्थ घोषित किया जा सकता है। परन्तु यदि पहचान सम्बन्धी गलती में किसी एक पक्ष की भावना अवांछनीय लाभ लेने की हो तो वह कपट की श्रेणी में माना जाएगा।

4.3.5.3 गलती से उत्पन्न अनुबन्ध का परिणाम (Effect of contracts made by mistake)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 20 एवं 21 के अन्तर्गत गलती से उत्पन्न ठहरावों के विषय में प्रावधान किए गए हैं–

अनुबन्ध की धारा 20 के अनुसार जब ''अनुबन्ध के दोनों पक्ष अनुबन्ध के किसी आवश्यक तथ्य के विषय में गलती पर हों तो अनुबन्ध व्यर्थ होता है।

अनुबन्ध की धारा 21 में वर्णित है कि यदि अनुबन्ध का एक पक्ष गलती पर है तो अनुबन्ध वैध होता है।

अधिनियम में वर्णित है कि अनुबन्ध में गलती यदि अपने देश के राजनियम से सम्बन्धित है तो इस आधार पर अनुबन्ध व्यर्थ नहीं हो सकता है। अनुबन्ध में यदि दूसरे देश अथवा देशों के राजनियम से सम्बन्धित गलती हो तो इसे तथ्य सम्बन्धी गलती माना जाएगा। एक महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि गलती यदि अनुबन्ध के किसी पक्षकार द्वारा जानबूझ कर की गई है तो ऐसा अनुबन्ध कपट की श्रेणी में रखा जायेगा और तत्सम्बन्धी प्रावधान उस पर क्रियान्वित होंगे।

गलती से उत्पन्न अनुबन्ध के कारण यदि कोई पक्षकार हानि या असुविधा के कारण पीड़ित होता है तो उसे अधिकार है कि वह अनुबन्ध को रद्द कर दे अथवा पुनःस्थापना की मांग करे। दूसरे पक्ष की गलती के कारण यदि पक्षकार को किसी वाद का सामना करना पड़ जाए तो अपने को ऐसे वाद से सुरक्षित कर सकता है।

4.4 सारांश (Summary)

वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों में प्रतिफल का इतना अधिक महत्व है कि प्रतिफल के न रहने पर ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ घोषित हो जाएगा। प्रतिफल का अर्थ है ''किसी वस्तु के बदले में''। इसका कुछ मूल्य होता है जिसे दूसरे व्यक्ति के वचन के बदले में दिया जाता है। प्रतिफल से वचनदाता को अथवा वचनगृहीता दोनों को ही कुछ न कुछ प्राप्त होता है। सरल शब्दों में कहा जाए तो अनुबन्ध में प्रतिफल के द्वारा एक पक्ष कुछ वस्तु या सम्पत्ति प्राप्त करता है और उसे, उसके बदले में उसे कुछ मूल्य देना पड़ता है। इस प्रकार से प्रतिफल के द्वारा दोनों ही पक्षों को प्राप्ति तथा त्याग करना पड़ता है (एक पक्ष को वस्तु या सम्पत्ति देना एवं मूल्य पाना, तथा दूसरे पक्ष को मूल्य देना एवं वस्तु या सम्पत्ति पाना)।

प्रतिफल के कुछ नियम भी होते हैं। एक यह कि प्रत्येक अनुबन्ध में प्रतिफल अवश्य होना चाहिए। दूसरा यह वचनदाता की ओर से प्रस्तुत किया जा सकता है। तीसरा यह कि प्रतिफल वचनगृहीता अथवा किसी अन्य पक्ष की ओर से भी प्रस्तुत किया जा सकता है। सभी परिस्थितियों में इसे दोनों पक्षों को स्वीकार्य होना चाहिए। प्रतिफल के अन्य नियम हैं कि–यह भूत, भविष्य अथवा वर्तमान हो सकता है, इसके पर्याप्त होने की अनिवार्यता भी नहीं है। कुछ न कुछ प्रतिफल अनुबन्ध में अवश्य ही होना चाहिए। एक अन्य आवश्यक नियम है कि–प्रतिफल वास्तविक होना चाहिए। प्रतिफल एवं उद्देश्य अवैधानिक नहीं होना चाहिए। अवैधानिक उद्देश्य एवं प्रतिफल वाले ठहराव व्यर्थ एवं अवैधानिक हो सकते हैं।

अनुबन्धों का एक सामान्य नियम यह भी है कि केवल सम्बन्धित पक्षकार ही अनुबन्ध के विषय में वाद प्रस्तुत कर सकते हैं अन्य पक्षकारों को इसका अधिकार नहीं है। ट्रस्ट के अनुबन्ध के मामलों में, पारिवारिक निपटारों के अनुबन्धों में, विनिमयसाध्य विपत्र के भुगतान के अनुबन्धों में तथा एजेन्सी के अनुबन्धों में बाहरी पक्षकार जो इससे लाभान्वित होते हों वह इसके क्रियान्वन के लिए वाद प्रस्तुत कर सकते हैं।

''प्रतिफल रहित ठहराव व्यर्थ होते हैं'' यह सर्वमान्य नियम है। परन्तु कुछ ऐसे अनुबन्ध भी होते हैं जो प्रतिफल न होते हुए भी विधिमान्य होते हैं। उदाहरण के लिए–प्रेम एवं स्नेह तथा नजदीकी सम्बन्धों के ठहराव, स्वेच्छा से किये गये भूतकाल के कार्य की क्षतिपूर्ति का वचन, अवधि वर्जित ऋण के भुगतान का वचन, दान एवं भेंटे, एजेन्सी तथा निःशुल्क निक्षेप के अनुबन्ध। ऐसे अनुबन्ध प्रतिफल रहित होते हुए भी वैध माने जाते हैं।

अनुबन्ध को वैध होने के लिए उसमें पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति भी आवश्यक है। स्वतंत्र सहमति का आशय है कि पक्षकारों ने स्वेच्छा से अनुबन्ध के लिए स्वीकृति दी है। स्वीकृति में प्रस्तावक का अथवा अन्य पक्षकारों का कोई प्रभाव या दबाव नहीं है। स्वीकृति कभी–कभी विचारों की भिन्नता से भी प्रभावित होती है। ऐसी स्वीकृति व्यर्थ होती है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत धारा 14 में वर्णित है कि यदि स्वीकृति उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट, मिथ्यावर्णन तथा गलती के द्वारा प्राप्त की गई है तो ऐसी सहमति स्वतंत्र नहीं मानी जाएगी। जिस पक्षकार की सहमति इस प्रकार से प्राप्त की गई है, उसकी इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थ घोषित हो सकते हैं और दोषी पक्षकारों पर दण्डात्मक कार्यवाही भी हो सकती है। इन अनुबन्धों के पीड़ित पक्षकार क्षतिपूर्ति एवं पुनः स्थापना भी प्राप्त कर सकते हैं।

उत्पीड़न के द्वारा ऐसा कार्य करके जो भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराध की श्रेणी में आता है, दूसरे पक्ष की सहमति प्राप्त की जाती है। अनुचित प्रभाव में पक्षकार अपनी प्रभावी स्थित का अवांछनीय प्रयोग करके दूसरे पक्ष की सहमति प्राप्त करते हैं। कपट एक ऐसा कृत्य है जिसका उद्देश्य ही दूसरे पक्ष के धोखा देना होता है। कपट की दशा में अनुबन्ध को पूरा करने का उद्देश्य नहीं होता है, वरन् दूसरे पक्ष को हानि पहुंचाकर स्वयं को लाभान्वित करना होता है। कपट एक अवैधानिक कृत्य है जो दण्डनीय अपराध है। मिथ्यावर्णन के अन्तर्गत एक पक्षकार वस्तुस्थित को सही प्रस्तुत न करके अनुबन्ध का प्रयास करता है। यदि वस्तुस्थिति का सही प्रस्तुतिकरण निर्दोष भावना से हो गया है अथवा भूल से

हो गया है तो अनुबन्ध व्यर्थनीय होगा। यदि मिथ्यावर्णन जानबूझकर किया जाता है तो वह कपट की श्रेणी में रखा जाएगा। गलती एक ऐसी स्थिति है जिसके कारण अनुबन्ध व्यर्थनीय तभी हो सकते हैं जब वह दूसरे देश के कानूनों से सम्बन्धित हों। यदि अपने देश के कानून से सम्बन्धित गलती हो तो ऐसे अनुबन्ध व्यर्थ नहीं होते हैं वरन कानून के प्रावधानों द्वारा सम्पादित होते हैं। जानबूझकर की गई गलती कपट मानी जाती है। एक बात ध्यान रखने की है कि अनुबन्ध के पक्षकार गलती को सुधार सकते हैं और अनुबन्ध को क्रियान्वित कर सकते हैं।

4.5 शब्दावली

ठहराव (Agreement): प्रत्येक वचन या वचनों का समूह जो एक दूसरे का प्रतिफल हो (धारा 2e)

अनुबन्ध (Contract): एक ठहराव जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय हों। (धारा 2 (h))

न्यायोचित (Lawful):–जो विधिसम्मत हो।

प्रतिफल (Consideration):–''कुछ के बदले कुछ'' का पारस्परिक वचन जो दोनों पक्षों को स्वीकार्य हो।

उद्देश्य (Objectives):–अनुबन्ध का गंतव्य, लक्ष्य, जिसके लिए अनुबन्ध किया गया है।

वैध प्रतिफल (Valid Consideration):–प्रतिफल जो विधि द्वारा स्वीकार्य हो।

वैध उद्देश्य (Valid Objective):–अनुबन्ध का उद्देश्य जो विधि द्वारा मान्य हो।

स्वतंत्र सहमति (Free Consent): अनुबन्ध में पक्षकारों का स्वेच्छा द्वारा बिना किसी दबाव के सहमति देन।

उत्पीड़न (Coercion): अनुबन्ध के एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार की सहमति डरा धमकाकर या अपराधिक कृत्य द्वारा प्राप्त करना।

कपट (Fraud): असत्य कथन द्वारा या अनैतिक अथवा अवैधानिक कृत्य द्वारा दूसरे पक्षकार को हानि पहुंचाना।

मिथ्यावर्णन (Misreprecentation): अनुबन्ध के किसी सत्य को भिन्न प्रकार से प्रस्तुत करना।

गलती (Mistake): अनुबन्ध से सम्बन्धित तथ्य को गलत प्रकार से प्रस्तुत करना। उद्देश्य सहमति प्राप्त करना होना।

पुनःस्थापना (Reastitution): अनुबन्ध से पहले वाली स्थित बहाल करवाना।

पीड़ित पक्षकार (Aggrieved Party): वह पक्ष जिसकी सहमति स्वतंत्र नहीं रह गई।

क्षतिपूर्ति (Damages): पीड़ित पक्षकार हानि की पूर्ति की मांग।

4.6 बोध प्रश्न

प्रश्न 1:– वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों में प्रतिफल को परिभाषित करिए।

प्रश्न–2– प्रतिफल के लक्षणों एवं नियमों की व्याख्या करिए।

प्रश्न 3– उन परिस्थितियों का उल्लेख करें जिनमें प्रतिफल से असम्बद्ध पक्षकार को अनुबन्ध में हस्तक्षेप का अधिकार प्राप्त होता है।

प्रश्न–4– प्रतिफल रहित ठहराव कब व्यर्थ नहीं होते हैं?

प्रश्न–5– अवैधानिक प्रतिफल से क्या समझते हैं।

प्रश्न–6 स्वतंत्र सहमति क्या होती है?

प्रश्न–7 उत्पीड़न से क्या आशय है?

प्रश्न–8 उत्पीड़न के द्वारा किये गये अनुबन्धों का परिणाम क्या होता है?

प्रश्न–9 अनुचित प्रभाव को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करिए।

प्रश्न–10 कपट से क्या आशय है।

प्रश्न–11 कपट के लक्षणों को बताइए।

प्रश्न–12 कपट करने के विभिन्न प्रकारों को बताइए।

प्रश्न–13 कपट द्वारा सम्पादित अनुबन्ध में पीड़ित पक्षकार को क्या उपाय प्राप्त हैं।

प्रश्न–14 मिथ्यावर्णन से आप क्या समझते हैं? मिथ्यावर्णन अनुबन्ध में किस प्रकार से हुआ माना जाता है?

प्रश्न–15 गलती से हुए अनुबन्धों से क्या आशय है। गलती कितने प्रकार से हो सकती है?

प्रश्न–16 गलती से हुए अनुबन्धों का प्रभाव क्या होता है?

4.7 बोध प्रश्नों के सम्भावित उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर में आप प्रतिफल का अर्थ एवं परिभाषा उदाहरण सहित दीजिए।
2. इस प्रश्न के उत्तर में आपको प्रतिफल की परिभाषा जो भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में दी है वह संक्षिप्त देना है तत्पश्चात् नियमों को लिखना है।
3. इस प्रश्न में आपको 4.2.2 का सम्पूर्ण भाग को अपने शब्दों में संक्षेप में लिखना है।
4. इस प्रश्न के उत्तर में आपको पहले तो यह वैधानिक नियम बताना है कि प्रतिफल रहित ठहराव व्यर्थ होते हैं तत्पश्चात् इस नियम के अपवाद के रूप में उन सभी प्रावधानों को लिखना है जो 4.2.3 में वर्णित है।
5. इस प्रश्न के उत्तर में 4.2.4 में वर्णित समस्त बिन्दुओं का स्मरण करना है।
6. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 4.3 को पूर्ण रूप से स्मरण करना है।
7. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 4.3.1 के सविस्तार लिखना है।
8. यहाँ पर बिन्दु 4.3.1.1 को स्मरण करिए।
9. बिन्दु 4.3.2 को पूर्ण रूप से लिखना है।
10. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 4.3.3 का अध्ययन करिए।
11. इसके उत्तर में बिन्दु 4.3.3.1 को पूरा पढ़िए।
12. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 4.3.3.2 को उपबिन्दुों सहित विस्तार से लिखिए।
13. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 4.3.3.3. को सविस्तार लिखिए।
14. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 4.3.4 एवं बिन्दु 4.3.4.1 एवं बिन्दु 4.3.4.2 तथा बिन्दु 4.3.4.3 को लिखिए।
15. बिन्दु 4.4.5 को उपबिन्दुओं सहित विस्तार से लिखिए।
16. इस प्रश्न के उत्तर में बिन्दु 4.3.5.3 को लिखिए।

4.8 स्वपरख प्रश्न

1. वैध अनुबन्ध के आवश्यक घटक के रूप में अनुबन्ध की व्याख्या करिए।

2. प्रतिफल की परिभाषा दीजिए। ''प्रतिफल रहित ठहराव व्यर्थ होते हैं''। इस नियम को तथा इसके अपवादों को बताइए।
3. प्रतिफल की परिभाषा दीजिए। ''प्रतिफल रहित ठहराव व्यर्थ होते है''।
4. ''प्रतिफल को पर्याप्त होना आवश्यक नहीं है परन्तु प्रतिफल रहित ठहराव व्यर्थ होते हैं''। व्याख्या करिए।
5. स्वतंत्र सहमति से आप क्या समझते हैं?
6. सहमति कब स्वतंत्र नहीं होती? अनुबन्ध में इसके प्रभाव का विवेचन करिए।
7. उत्पीड़न से क्या आशय है? उत्पीड़न द्वारा किये गए अनुबन्धों का परिणाम क्या होता है?
8. कपट को परिभाषित करिए। इसके विभिन्न प्रकार क्या है?
9. कपट से आप क्या समझते हैं? कपट किये गये अनुबन्धों की परिणति क्या होती है?
10. अनुचित प्रभाव से उत्पन्न अनुबन्ध एवं इसके प्रभाव को उदाहरण सहित समझाइए।
11. मिथ्यावर्णन क्या है? यह कब कपट की श्रेणी में रखा जाता है?
12. गलती से उत्पन्न ठहरावों का प्रभाव क्या होता है? गलती की परिभाषा सहित समझाइए।

4.9 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws : Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (P) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law : Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law : K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई–05 व्यर्थ ठहराव एवं संयोगिक अनुबन्ध (Void Agreements and Contingent Contracts)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 व्यर्थ ठहरावः अर्थ एवं परिभाषा
  5.2.1 व्यर्थ ठहरावों के प्रकार
5.3 संयोगिक अनुबन्धः अर्थ एवं परिभाषा
  5.3.1 संयोगिक अनुबन्धों के लक्षण
  5.3.2 संयोगिक अनुबन्धों के नियम
  5.3.3 बाजी लगाने के ठहराव एवं संयोगिक अनुबन्धों में अन्तर
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 बोध प्रश्न
5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.8 स्वपरख प्रश्न
5.9 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- व्यर्थ ठहराव किसे कहते हैं, का वर्णन कर सकें।
- ठहरावों की वैधता के लिए उन्हें देश के अन्य प्रचलित कानूनों के प्रावधानों के अन्तर्गत होना चाहिए, को स्पष्ट कर सकें।
- भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के द्वारा किन ठहरावों को स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित किया गया है, का वर्णन कर सकें ।

5.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाइयों में आपने ठहरावों के बारे में सविस्तार अध्ययन किया है। ठहरावों में दो पक्षों के मध्य प्रस्ताव एवं स्वीकृति के साथ–साथ अन्य विशेषताओं जैसे प्रतिफल, स्वतंत्र सहमति, तथा वैध उद्देश्य इत्यादि का होना अनिवार्य है। सभी वैध लक्षणों के होते हुए ठहराव तो हो जाएगें परन्तु वह विधि द्वारा प्रर्वतनीय तभी होंगे जब ठहराव से उत्पन्न अनुबन्ध व्यर्थ न घोषित कर दिए गए हों। आपको यह भी ज्ञात हैं कि विधि द्वारा प्रवर्तनीय ठहराव ही अनुबन्ध कहलाते हैं। ठहराव में वैध अनुबन्ध के सभी आवश्यक लक्षणों के होते हुए भी कभी–कभी उन्हें व्यर्थ व्यर्थ घोषित कर दिया जाता है, यदि ऐसे अनुबन्ध देश में प्रचलित अन्य विधानों या राजनियम का उल्लंघन करते हो।

5.2 व्यर्थ ठहरावः अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Void Agreements)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(g) में वर्णित है कि ''व्यर्थ अनुबन्ध वह होते हैं जो विधि द्वारा अप्रवर्तनीय हों''। इसका अर्थ यह है कि विधि द्वारा प्रवर्तनीय होने की योग्यता ठहराव को वैध अनुबन्ध का रूप प्रदान करती है। ठहराव में सभी आवश्यक तत्वों को होना चाहिए और उसे देश के प्रचलित कानूनों

का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। तभी ठहराव वैध माने जाते हैं। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम कुछ अनुबन्धों को स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित करता है। जिनका अध्ययन आप अग्रलिखित पंक्तियों में करेंगे।

5.2.1 व्यर्थ ठहरावों के प्रकार (Types of Viod Agreements)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की विभिन्न धाराओं में निम्न ठहरावों को व्यर्थ घोषित किया गया है, इस प्रकार से हैं–

i. अयोग्य पक्षकारों द्वारा ठहराव (धारा–11)

ii. गलती द्वारा किया गया ठहराव (धारा–20)

iii. अवैध, प्रतिफल एवं उद्देश्य वाले ठहराव (धारा–23–24) एवं

iv. बिना प्रतिफल वाले ठहराव (धारा–25)

अब आपको ऐसे अनुबन्धोंका अध्ययन करना है जो भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के द्वारा स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित किये गये हैं। जो निम्न पंक्तियों में वर्णित है।

1 विवाह में व्यवधान डालने वाले ठहराव (Agreements in Restraint of Marriage)

विवाह करना अथवा न करना व्यक्ति का स्वयं का मौलिक तथा स्वतंत्र निर्णय होता है। किसी अनुबन्ध के द्वारा पक्षकारों की वर्तमान वैवाहिक स्थित अथवा भविष्य की स्थिति को यदि प्रभावित किया जाता है तो ऐसा अनुबन्ध स्पष्ट रूप से व्यर्थ होगा। यदि एक पक्ष दूसरे पक्ष के सम्मुख प्रस्ताव रखता है कि ''मैं तुमसे व्यापारिक सम्बन्ध तभी तक जारी रखूँगा जब तक तुम अविवाहित रहोगे'', ऐसा ठहराव व्यर्थ है। राओरानी बनाम गुलाबरानी (इलाहाबाद 1962) के विवाद में एक मृत व्यक्ति की दो विधवाओं ने आपस में अनुबन्ध किया कि यदि उनमें से कोई पुनः विवाह करेगी तो पति की सम्पत्ति में से उसे अपना हिस्सा छोड़ देना पड़ेगा। न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह अनुबन्ध विवाह में रूकावट डालने वाला नहीं है अतः व्यर्थ नहीं है। (धारा–26)

2 व्यापार में व्यवधान डालने वाले ठहराव (Agreements in Restraint of Trade)

प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह स्वतंत्रता पूर्वक वैध व्यापार अपने देश में कहीं भी करें। व्यक्ति को ऐसे अधिकार से किसी भी प्रकार के ठहराव द्वारा वंचित नहीं किया जा सकता है। धारा 27 में वर्णित है कि ''प्रत्येक ठहराव जिसके द्वारा कोई व्यक्ति किसी वैधानिक कारोबार, व्यापार अथवा व्यवसाय करने से वंचित किया जाता है तो वह उस सीमा तक व्यर्थ होगा।'' ''उस सीमा'' से आशय है कि अनुबन्ध का वह भाग व्यर्थ होगा जिसके द्वारा ऐसा प्रतिबन्ध लगाया जाता है। उदाहरण के लिए मोधुब चन्द्र बनाम राजकुमार दास (कलकत्ता 1902) के वाद में वादी एवं प्रतिवादी, कलकत्ता के एक इलाके में प्रतिद्वन्दी व्यापारी थे। प्रतिवादी को एक निश्चित धनराशि वादी को देनी थी जिसके उपरान्त वादी को अपना व्यापार उस इलाके से बन्द कर देना था। वादी ने अपना व्यापार तो बन्द दिया परन्तु प्रतिवादी ने तय धनराशि नहीं दी। बाद में वाद होने पर न्यायालय ने इस अनुबन्ध को व्यर्थ माना।

आप कुछ ऐसे अपवादों के बारे में ज्ञान प्राप्त करिए जिनके अन्तर्गत व्यापारिक कार्यवाही को कभी–कभी प्रतिबन्धित किया जा सकता है, एवं वह व्यर्थ

नहीं होती है। धारा 27 के अन्तर्गत व्यापार में व्यवधान डालने वाले ठहराव निम्न परिस्थितियों में व्यर्थ नहीं माना जाता है।

(i) ख्याती के विक्रय की दशा में (Sale of Goodwill)

ख्याती के विक्रेता एवं ख्याति के क्रेता के मध्य ठहराव हो सकता है कि जब तक ख्याति का क्रेता उस क्षेत्र में व्यापार करेगा तब तक ख्याति का विक्रेता उस क्षेत्र में समान प्रकार का व्यापार नहीं कर सकता। यह प्रतिबन्ध तभी मान्य होगा जब न्यायालय को उचित प्रतीत होता हो। व्यापार की प्रकृति और सीमाएं ऐसे अनुबन्धों को वैध अथवा व्यर्थ घोषित करने में महत्वपूर्ण होती हैं।

(ii) साझेदारी की दशा में (In Case of Partnership)

भारतीय साझेदारी अधिनियम के कुछ प्रावधान ऐसे हैं जो विभिन्न प्रतिबन्धों को मान्यता देते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 11 के अनुसार साझेदार आपस में ऐसा ठहराव कर सकते हैं कि जब तक वह फर्म में साझेदार हैं तब तक उनमें से कोई फर्म के व्यवसाय के अतिरिक्त दूसरा व्यवसाय नहीं करेगा।

इसी प्रकार से एक अवकाश ग्रहण कर चुके साझेदार पर यह प्रतिबन्ध कि वह फर्म के व्यवसाय से सटी अपनी जमीन पर उसी प्रकार का व्यापार नहीं करेगा, न्यायालय को उचित प्रतीत हुआ और उस पर भी लागू हुआ जिसने उस जमीन को अवकाश ग्रहण कर चुके साझेदार से क्रय किया था (हुकुमी चन्द्र बनाम जयपुर आइस एण्ड आयल मिल्स 1944)।

(iii) साझेदारी से अलग होने वाले साझेदार पर प्रतिबन्ध (Restriction on Separating Partner)

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 26(2) के अनुसार साझेदार ऐसा अनुबन्ध कर सकते हैं कि ''जब वह फर्म में साझेदार नहीं रहेंगे तो एक निश्चित समय तक अथवा निश्चित सीमा तक फर्म के व्यापार से मिलता जुलता व्यापार नहीं करेंगे।''

(iv) साझेदारी की ख्याति के विक्रय की दशा में प्रतिबन्ध (Restriction in case of Sale of Goodwill of Partnership)

साझेदारी अधिनियम की धारा 53 के अनुसार साझेदार, ख्याति का विक्रय करते समय ख्याति के क्रेता के साथ अनुबन्ध कर सकते है कि ''क्रेता निश्चित सीमाओं अथवा समय के भीतर फर्म के व्यवसाय से मिलता जुलता कोई व्यापार नहीं करेगा।''

(v) फर्म की समाप्ति की दशा में प्रतिबन्ध (Restriction in case of Dissolution of Firm)

सभी साझेदार साझेदारी में प्रवेश करते समय ऐसा अनुबन्ध कर सकते हैं कि फर्म की समाप्ति की दशा में उनमें से सभी साझेदार एक निश्चित अवधि अथवा निश्चित सीमाओं के भीतर फर्म के व्यवसाय से मिलता–जुलता कोई व्यवसाय नहीं करेंगे।

(vi) नौकरी से सम्बन्धित ठहरावों में प्रतिबन्ध (Restriction in Agreements of Employment)

नौकरी के ठहरावों में ऐसा प्रतिबन्ध बहुधा लगाया हुआ देखा जाता है कि कर्मचारी जब तक एक नियोक्ता के पास कार्यरत है तब तक वह किसी दूसरे

नियोक्ता के लिए कार्य नहीं करेगा अथवा कोई ऐसा व्यापार नहीं करेगा जो नियोक्ता के व्यापार के लिए प्रतिद्वन्दिता पैदा करे। ऐसा प्रतिबन्ध भूतपूर्व कर्मचारियों पर नहीं लागू होगा। इनके अतिरिक्त ऐसे ठहराव भी होते हैं जो प्रतियोगिता को सीमित करते हों अथवा एकधिकार की प्रवृत्ति को बढ़ावा देते हों तो वह भी व्यर्थ माने जाते हैं।

3 **वैधानिक कार्यवाही प्रारम्भ करने में रूकावट डालने वाले ठहराव (Agreements in Restraint of Initiating Legal Proceedings)**

न्यायपालिका के द्वारा सभी को न्याय प्राप्त करने का तथा न्यायालय की शरण लेकर अपने अधिकार प्राप्त करने का मौलिक अधिकार होता है। यदि ऐसा कोई ठहराव किया जाए जिसमें पक्षकारों पर न्यायिक प्रक्रिया की शरण में जाने पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है तो ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ होगा। इसके अतिरिक्त न्यायिक प्रक्रिया को बीच में ही रोक देने वाले ठहाव भी व्यर्थ होंगे।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 28 में इससे सम्बन्धित निम्न प्रावधान दिये गये है।

1. ऐसा प्रत्येक ठहराव व्यर्थ है जो पक्षकारों को अनुबन्ध के अधीन, सामान्य न्यायिक प्रक्रिया के द्वारा वैधानिक अधिकार प्राप्त करने से रोके अथवा उस समय को सीमित करें जिसके अन्तर्गत वह अपने अधिकारों को प्रवर्तित करा सकता है। ऐसे अनुबन्ध उस सीमा तक व्यर्थ होते हैं जहाँ तक ऐसा प्रतिबन्ध लगाया जाता हैं।
2. **ऐसे अनुबन्ध जो लिमिटेशन अधिनियम में वर्णित सीमा को सीमित इस उद्देश्य से करते हो कि अन्य राजनियमों के प्रावधानों को निष्फल कराया जा सकें।**

इसी प्रकार से वैधानिक प्रक्रिया को स्वीकार न करने के अनुबन्ध भी व्यर्थ होते हैं। परन्तु ऐसे अनुबन्ध जिनके पक्षकार विवाद को न्यायालय में न ले जाकर पंच निर्णय को सुपुद करने को सहमत होते हैं, व्यर्थ नहीं होते हैं। पंचनिर्णय के मामले में एक बात महत्वपूर्ण है कि असंतुष्ट पक्षकार इसके निर्णय को न्यायालय में चुनौती दे सकते हैं। (धारा–28)

4 **अतिनिश्चित अर्थ वाले अनुबन्ध (Agreements Having Uncertain Meaning)**

ऐसे अनुबन्ध, जिनका अर्थ अनिश्चित हो अथवा जिनका अर्थ निश्चित न किया जा सके, व्यर्थ होते हैं। यह अनिश्चितता मूल्य को लेकर, मात्रा को लेकर, विषयवस्तु को लेकर या फिर स्वामित्व को लेकर हो सकती हैं। उदाहरण के लिए राम, श्याम से 500 टन 'तेल' के विक्रय का अनुबन्ध करता है। यहाँ पर राम खाद्य तेल का विक्रेता है और श्याम आटोमोबाइल कार्यशाला चलाता है। समस्या है कि एक को चाहिए मोटर में डालने वाला तेल तो दूसरा पक्ष विक्रय करता है खाद्य तेल। अनुबन्ध में सिर्फ 'तेल' शब्द का प्रयोग हुआ है अतः यह अनुबन्ध राम और श्याम दोनों के लिए व्यर्थ है। एक और उदाहरण लें हरि जो कि एक जाने माने खाद्य तेल का उत्पादक है मोहन को 100 टन तेल बेचने का अनुबन्ध करता है। यहाँ पर अनुबन्ध को व्यर्थ नहीं किया जा सकता है। क्योंकि हरि के व्यापार की ख्याति ही इस बात की द्योतक है कि विषयवस्तु क्या होगी। एक अन्य उदाहरण

में मोहन, अपनी कार को 190000 या 200000 रु0 के बीच में सोहन को विक्रय करने का प्रस्ताव करता है? यह एक अनिश्चित अर्थ वाला ठहराव है। (धारा–29)

5 **बाजी लगाने के ठराव (Wagering Agreements)**

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की 30 के अननुसार ''बाजी लगाने के रूप में किए गए ठहराव व्यर्थ होते हैं''। बाजी लगाने का ठहराव वह होता है जिसमें दो पक्षकार भविष्य की अनिश्चित घटना के घटित होने पर एक दूसरे को धन या धन के बदले कुछ वस्तु या सम्पत्ति देने का वचन देते है कि यदि घटना घटी तो पहला पक्षकार दूसरे पक्षकार को और यदि घटना नहीं घटती है तो दूसरा पक्षकार पहले पक्ष को धन या धन के बदले वस्तु या सम्पत्ति देगा। उदाहरण के लिये यदि राम, और मोहन एक ठहराव करते हैं कि आई0पी0एल0 क्रिकेट मैच में यदि टीम क जीतती है तो मोहन, राम को 5000 रु0 देगा और यदि टीम क नहीं जीतती है तो राम, मोहन को 5000/–रु0 देगा। यह एक बाजी लगाने का ठहराव है।

बाजी लगाने के ठहराव की विशेषता यह होती है कि घटना अनिश्चित होती है क्योंकि इसे भविष्य में घटित होना है और यदि घटना घट चुकी है तो पक्षकार उसके परिणाम को नहीं जानते हैं, और घटना के परिणाम के बारे में परस्पर विरोधाभासी विचार रखते हैं, जैसे कि मैच का परिणाम क्या हुआ होगा।

बाजी लगाने के ठहराव को न्यायाधीश एल0जे0 काटन ने इस प्रकार परिभाषित किया है.....''बाजी लगाने के ठहराव का एक आवश्यक तथ्य यह है कि इसमें किसी भावी घटना के घटित होने पर जो ठहराव के समय अनिश्चित थी, एक पक्षकार जीतता है तो दूसरा पक्षकार हारता है''।

कारलिल बनाम कारवोलिक स्मोक बाल कं0 के विवाद में न्यायाधीश हाकिन्स ने बाजी लगाने के ठहराव को इस प्रकार परिभाषित किया है कि ''बाजी लगाने का ठहराव एक ऐसा ठहराव है जिसमें दो व्यक्ति किसी भावी अनिश्चित घटना के विषय में विपरीत विचार रखते हुए आपस में यह ठहराव करते हैं कि इस घटना के निश्चित हो जाने पर एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति पर जीत होगी और दूसरा उसको कुछ धन या कोई दूसरी वस्तु देगा, अनुबन्ध के पक्षकारों में से किसी का उस अनुबन्ध में उस धनराशि या वस्तु के अतिरिक्त अन्य कोई हित नहीं होता जिसे कि वह जीतेगा या हारेगा और इस तरह उनमें से किसी का भी अनुबन्ध के लिए कोई वास्तविक प्रतिफल नहीं होता।''

(i) बाजी लगाने के ठहराव के लक्षण (Features of Wagering Agreements)

बाजी लगाने के ठहराव में निम्न विशेषताएं पाई जाती है–

(i) इसमें घटना के घटित होने को लेकर निश्चित धन या धन के बदले में कुछ देने का वचन दिया जाता है।

(ii) ऐसे ठहराव घटना के घटित होने अथवा न घटित होने पर निर्भर करतें है। बाजी लगाने के ठहराव अधिकतर भविष्य की घटना पर आधारित होते हैं। यह भूतकाल की घटना से भी सम्बन्धित हो सकते हैं बशर्ते पक्षकारों को घटित हुए परिणाम की जानकारी न हो।

(iii) बाजी के ठहरावों में घटना के घटित होने तक प्रत्येक पक्षकार को जीतने अथवा हारने की समान सम्भावना होती है। ऐसे अनुबन्ध जिसमें किसी

पक्षकार को सिर्फ जीतने की ही सम्भावना हो बाजी लगाने का ठहराव नहीं होता है।

(iv) बाजी लगाने के ठहराव में घटना के घटित होने पर किसी भी पक्षकार का नियंत्रण नहीं होना चाहिए, अन्यथा यह बाजी का ठहराव नहीं होगा।

(v) बाजी लगाने के ठहरावों में घटना के घटित होने अथवा न घटने पर लेन–देन की धनराशि के अतिरिक्त पक्षकारों के लिए काई अन्य प्रतिफल नहीं होता है।

(ii) बाजी लगाने के ठहरराव व्यर्थ होते हैं। (Agreements by Way of Wager Are Void)

भारत में बाजी लगाने के ठहराव स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित किए गए हैं (धारा–30)। महाराष्ट्र और गुजरात ने इन्हें अवैध भी घोषित किया गया है। बाजी के ठहराव में पक्षकार जीती हुई धनराशि या वस्तु प्राप्त करने के लिए वाद भी नहीं कर सकते है। बाजी के परिणाम को पूरा करने के लिए पक्षकार किसी तीसरे पक्षकार जिसे दांव का धारक भी कहते हैं, को सौंपा हुआ धन या वस्तु को कानूनी रुप से वापस भी नहीं ले सकते हैं। यदि बाजी में जीती गई धनराशि के बदले में कोई दूसरा समझौता भी यदि कर लिया जाए, वह भी वैध नहीं होगा।

(iii) बाजी के व्यवहार तथा अन्य मिलते जुलते व्यापारिक व्यवहार (Waging Agreement & Other Similar Trade Agreements)

निम्न पंक्तियों में आपको कुछ ऐसे व्यापारिक लेनदेनों के बारे में बताया जा रहा है जिनमें कुछ अनुमान अथवा अनिश्चितता होती है, पर वह बाजी के ठहराव नहीं कहलाते हैं। यह सामान्य व्यापार के ठहराव होते हैं। उनमें से कुछ निम्नवत् हैंः–

(i) भविष्य की तिथि पर माल के मूल्य से सम्बन्धित किसी शर्त के आधीन यदि किसी पक्षकार को बढ़े मूल्य पर माल की सुपुर्दगी लेने के लिए बाध्य किया जा सकता है तो इसे बाजी का ठहराव नहीं कहा जाएगा। बाजी के ठहराव में माल की वास्तविक सुपुर्दगी का नहीं केवल मूल्यों के अन्तर के लेनदेन का उद्देश्य होता है। इसी प्रकार से क्रय विक्रय के किसी अनुबन्ध को सिर्फ अनुमान की प्रकृति का होने के कारण बाजी लगाने का ठहराव नहीं माना जा सकता है। जब तक यह सिद्ध न हो जाए कि अनुबनध का उद्देश्य सिर्फ कीमतों के अन्तर का लेन देन है न कि माल के वास्तविक हस्तान्तरण का।

(ii) स्टाक एक्सचेन्ज के सौदों को भी बाजी का ठहराव नहीं कहा जाता है, जबकि उन सौदों में भारी अनिश्चितता एवं सट्टे का प्रभाव रहता है। स्टाक एक्सचेंज के अधिकतर मामलों में केवल मूल्य के अन्तर का लेन देन ही किया जाता है। परन्तु इन सौदों को बाजी के सौदे नहीं कहा जाता है क्योंकि एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को वास्तविक सुपुर्दगी लेने के लिए बाध्य कर सकता हैं। इसी प्रकार से उपज विपणि (कमोडिटि एक्सचेन्ज) के व्यापारों में तेजी–मंदी के अनुबन्ध किए जाते हैं। ऐसे अनुबन्धों में सट्टे एवं अनिश्चितता का प्रभाव रहता है। उपज विपणि के अधिकतर मामलों में पक्षकार कीमतों के अन्तर का लेन देन कर लेते हैं। परन्तु इन अनुबन्धों में माल की वास्तविक सुपुदगी लेने और देने की

बाध्यता होती है, जिसके कारण इन्हें भी बाजी लगाने के ठहराव नहीं कहा जाता है।

(iii) लाटरी के ठहराव व्यर्थ होने के साथ–साथ अवैध भी होते हैं। परन्तु सरकार द्वारा प्रायोजित लाटरी अथवा सरकार द्वारा अनुमोदित लाटरी मान्य होती है।

(iv) बीमा के अनुबन्ध में भी अनिश्चितता होती है। पर वह व्यर्थ नहीं होते हैं। यदि बिना बीमायोग्य हित के कोई व्यक्ति अपना या किसी तीसरे पक्ष की वस्तु, सम्पत्ति या जीवन का बीमा कराता है तो ऐसा बीमा का अनुबन्ध व्यर्थ होगा।

5.3 संयोगिक अनुबन्धः अर्थ एवं परिभाषा (Contingent Contracts: Meaning and Definition)

एक अनुबन्ध पूर्ण तब कहलाता है जब वचनगृहीता को हर हाल में उसकी शर्तों को पूरा करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इस विषय में आप पिछली इकाइयों में अध्ययन कर चुके हैं।

कभी–कभी अनुबन्ध ऐसी परिस्थिति पर निर्भर करता है कि अनुबन्ध के अन्तर्गत किया जाने वाला कार्य किसी घटना के घटित होने या न होने पर निर्भर हो। ऐसे अनुबन्धों को संयोगिक अनुबन्ध कहा जाता है। भारतीय अनुबनध अधिनियम की धारा 31 के अनुसार ''संयोगिक अनुबन्ध किसी कार्य को करने अथवा न करने का ऐसा अनुबन्ध है जो कि उस अनुबन्ध के समपार्शिवक (collateral) किसी घटना के घटित होने या न होने पर निर्भर करता है।'' उदाहरण के लिए स्वीकृति के लिए भेजे गए माल का अनुबन्ध संयोगिक होगा क्योंकि यह निर्भर करता है क्रेता द्वारा माल को स्वीकार किये जाने या अस्वीकार किये जाने पर।

एक उदाहरण लें, श्याम, राम की सम्पत्ति जिसके स्वामित्व का विवाद न्यायालय में विचाराधीन है, राम के पक्ष में निर्णय आने की शर्त पर क्रय करने का अनुबन्ध करता है। यह एक संयोगिक अनुबन्ध कहलाएगा।

5.3.1 संयोगिक अनुबन्धों के लक्षण (Features of Contingent Contracts)

संयोगिक अनुबन्धों में निम्न लक्षणों को पाया जाता है–

(i) इसका निष्पादन भविष्य की किसी घटना के घटित होने अथवा न घटित होने की प्रयिकता पर निर्भर करता है। घटना के घटित होने पर आधारित होना ही इसका विशेष लक्षण है।

(ii) घटना सदैव अनिश्चित होनी चाहिए। यदि घटना का घटित होना तय हो और अनुबन्ध का निष्पादन तदनुसार निश्चित हो तो ऐसा अनुबन्ध संयोगिक अनुबन्ध नहीं कहलाएगा।

(iii) अनुबन्ध को किसी घटना के समपार्शिवक होना चाहिए, अर्थात् उस पर निर्भर होना चाहिए।

(iv) घटना पर किसी पक्षकार का नियंत्रण नहीं होना चाहिए।

संयोगिक अनुबन्धों सर्व श्रेष्ठ उदाहरण बीमा तथा हानि रक्षा सम्बन्धी अनुबन्ध है। जीवन बीमा में यदि बीमा धारक की मृत्यु, बीमा अवधि की परिपक्वता के पूर्व हो जाती है तो निश्चित धनराशि (Sum-assured) उसके नामित को दे दी

जाती है। यदि बीमा धारक जीवित रहता है तो परिपक्वता के बाद कुल धनराशि बीमा धारक को दे दी जाती है।

5.3.2 संयोगिक अनुबन्धों के नियम (Rules Regarding Contingent Contracts)

1 अधिनियम की धारा 32 के अनुसार, संयोगिक अनुबन्ध जो भविष्य की अनिश्चित घटना पर निर्भर करते हैं उनको तब तक प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता है जब तक कि घटना घट न जाए। उदाहरण के लिए क, ख से अनुबन्ध करता है कि वह अपनी मोटरकार 100000/–रु0 में ख को विक्रय कर देगा यदि ग जिससे क ने पहले से विक्रय का प्रस्ताव कर रखा है उस मोटरकार को लेने से मना कर दे। यह एक संयोगिक अनुबन्ध होगा। ऐसा अनुबन्ध तभी प्रवर्तनीय होगा जब ग उसे लेने से इन्कार कर दें।

दूसरा उदाहरण देखें–राम, श्याम से अनुबन्ध करता है कि यदि वह शीला से विवाह कर ले तो राम, श्याम को 5000/–रु0 देगा। शीला की मृत्यु विवाह से पहले हो जाती है। यह अनुबन्ध व्यर्थ होगा। दोनों ही अनुबन्धों में शर्त है जिसके पूरा होने पर ही वचनदाता का दायित्व उत्पन्न होगा।

2 अधिनियम की धारा 33 के अनुसार यदि विशिष्ट घटना के न घटित होने पर अनुबन्ध को प्रवर्तनीय होना है, और यदि उस घटना का घटित होना पूर्ण रुप से असम्भव हो जाता है तो अनुबन्ध को प्रवर्तनीय कराया जा सकता है। उदाहरण के लिए क, ख को एक निश्चित धनराशि देने का वचन इस शर्त पर देता है कि ''अमुक जहाज यदि न आए तो''। वह जहाज पानी में डूब जाता है। ऐसी स्थित में अनुबन्ध को प्रवर्तित कराया जा सकता है।

3 अधिनियम की धारा 34 के अनुसार यदि अनुबन्ध संयोगिक है ऐसी परिस्थिति पर कि कोई व्यक्ति अर्निदिष्ट समय में क्या कार्य करेगा तो घटना का होना असम्भव तब माना जाएगा जब व्यक्ति के आचरण से यह पता ही न चले कि वह निर्दिष्ट समय में क्या कर पाएगा। एक उदाहरण से इसे स्पष्ट किया जा रहा है–राम, हरि को 1000/–रु0 प्रतिमाह की नौकरी देने का प्रस्ताव करता है कि यदि हरि, गौरी से विवाह कर ले। गौरी, महेश के साथ विवाह कर लेती है। अब हरि का विवाह गौरी के साथ होना असम्भव हो जाएगा। एक स्थित यह भी हो सकती है कि गौरी और महेश भविष्य में तलाक ले, लें। पर यह निश्यित नहीं है कि हरि, गौरी से विवाह करेगा या नहीं करेगा। ऐसे अनुबध व्यर्थ होंगे।

4 अधिनियम की धारा 35 के अनुसार किसी कार्य को करने अथवा न करने का संयोगिक अनुबन्ध यदि इस बात पर निर्भर करता है कोई घटना निश्चित समय के भीतर घट जाए। और यदि ऐसी घटना निश्चित समय के भीतर नहीं घटती है या उसका घटना असम्भव हो जाता है तो अनुबन्ध व्यर्थ होगा। उदाहरण के लिए अ, ब से प्रस्ताव करता है कि वह उसे कुछ धन देगा यदि अमुक घटना एक वर्ष के भीतर घट जाए। अनुबन्ध प्रवर्तनीय होगा यदि घटना एक वर्ष के भीतर घट जाती है और व्यर्थ होगा यदि घटना एक वर्ष के भीतर नहीं घटती है।

5 अधिनियम की धारा 35 के अनुसार किसी कार्य को करने अथवा न करने का संयोगिक अनुबन्ध यदि किसी असम्भव घटना पर निर्भर करता हैं तो ऐसी अनुबन्ध भी व्यर्थ होगा। भले ही पक्षकारों को अनुबन्ध करते समय इसकी जानकारी रही हो अथवा नहीं रही हो। उदाहरण के लिए यदि एक पक्ष दूसरे पक्ष से प्रस्ताव करें कि जब दो सीधी रेखाएं आपस में मिल जाएगीं तो पहला पक्ष, दूसरे पक्ष को कुछ धन देगा। यह विषयवस्तु प्रारम्भ से ही असम्भव है, चाहे दोनों पक्ष जानते हों या न जानते हों।

5.3.3 बाजी लगाने के ठहराव एवं संयोगिक अनुबन्धों में अन्तर (Difference Between Wagering Agreements & Contingent Contracts)

अन्तर का आधार	बाजी लगाने के ठहराव	संयोगिक अनुबन्ध
वैधता	यह केवल ठहराव ही है, व्यर्थ होते हैं।	यह वैध होते हैं।
निष्पादन	बाजी लगाने के ठहरावों में पक्षकारों का उद्देश्य सिर्फ धन के अन्तर के लेनदेन का रहता है, ठहराव के निष्पादन का नहीं	संयोगिक अनुबन्धों में पक्षकार अपने वचनों का निष्पादन करते हैं। अनुबन्ध भले ही अनिश्चित घटना पर आधारित हो।
हार जीत	बाजी के ठहरावों में एकपक्ष की हार एवं दूसरे पक्ष की जीत होती है।	संयोजिक अनुबन्धों में हार जीत का कोई स्थान नहीं है। अनुबन्ध पूर्ण एवं वैध होता है।
वचन देना	बाजी के ठहरावों में दोनों पक्षकार एक दूसरों को वचन देते है।	संयोगिक अनुबन्धों में केवल एक पक्षकार वचन देता है।
हित	बाजी के ठहरावों में केवल जीतने–हारने का हित होता है	संयोगिक अनुबन्धों में पक्षकारों का हित घटना के घटित होने पर निर्भर करता है।
भविष्य की घटना	बाजी के ठहरावों में भविष्य की अनिश्चित घटना ठहराव का आधार होती है।	संयोगिक अनुबन्धों में भविष्य की घटना अनुबन्ध के समपार्श्विक होती है।

5.4 सारांश

इस इकाई में आपने दो प्रकार के विषयों का अध्ययन किया है, एक व्यर्थ ठहरावों का और दूसरा संयोगिक अनुबन्धों । जिन ठहरावों को विधि द्वारा प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है उन्हें व्यर्थ कहा जाता है। यदि एक ठहराव में सभी आवश्यक तत्व हों पर विधि द्वारा क्रियाशील न हो तो ऐसे ठहरावों का कोई अर्थ नहीं होगा। ठहरावों को विधि द्वारा प्रवर्तनीय होने के लिए आवश्यक है कि वह भारतीय अनुबन्ध अधिनियम तथा देश के प्रचलित अन्य कानूनों के प्रावधानों

का उल्लंघन न करते हों। अयोग्य पक्षकारों द्वारा ठहराव, गलती द्वारा ठहराव, अवैध प्रतिफल एवं बिना प्रतिफल वाले ठहराव व्यर्थ होते हैं।

कुछ ऐसे ठहराव है जिनको भारतीय अनुबन्ध अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित किया गया है, जैसे–विवाह में रूकावट डालने वाले ठहराव, व्यापार में रूकावट डालने वाले ठहराव, वैधानिक कार्यवाही में रूकावट डालने वाले ठहराव, अनिश्चित अर्थ वाले ठहराव एवं बाजी लगाने के ठहराव। संयोगिक अनुबध वह होते हैं जो किसी घटना के घटित होने पर क्रियान्वित किये जा सकते हैं अर्थात् किसी भविष्य की घटना के समानान्तर होते हैं। इनकी प्रवर्तनीयता घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर करती है। ऐसी घटना अनिश्चित होनी चाहिए तथा वह अनिश्चित घटना अनुबन्ध के समानान्तर होनी चाहिए।

संयोगिक अनुबन्धों के नियम यह बताते हैं कि भविष्य की अनिश्चित घटना पर अनुबन्ध निर्भर करते हैं। अनिश्चित घटना के घटित होने अथवा न घटित होने अथवा घटना के घटित होने की सम्भावना समाप्त होने की दशाओं, (जैसा कि अनुबन्ध में वर्णित है), पर अनुबन्ध की प्रवर्तनीयता निर्भर करती है।

5.5 शब्दावली

व्यर्थ ठहराव (Void Agreements): ऐसे ठहराव जो विधिक रूप से निष्प्रभावी होते हैं।

विवाह में रूकावट (Restrant in Marriage): विवाह करने के किसी के स्वतंत्र निर्णय में बाधा डालना।

व्यापार में रूकावट (Restraint in Trade): वैध व्यापार करने के किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा पहुंचानां

बाजी (Wager): भविष्य की किसी अनिश्चित घटना के घटने की सम्भावना पर परस्पर विरोधाभासी विचार रख कर धन या वस्तु का लेनदेन।

संयोगिक (Contingent Contracts): अनुबन्ध भविष्य की किसी अनिश्चित घटना के घटित होने अथवा न होने के समपार्श्विक अनुबन्धों की क्रियाशीलता।

असम्भव घटना (Impossible Event): घटना जिसके घटने की सम्भावना अब न रह गई हो।

5.6 बोध प्रश्न

प्रश्न 1–व्यर्थ ठहरावों से आप क्या समझते हैं।

प्रश्न–2 व्यर्थ ठहराव क्या होते है? उनके प्रकारों के विषय में संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

प्रश्न–3 बाजी के ठहरावों से आप क्या समझते हैं? विस्तार से उनके लक्षणों और वैधानिकता के बारे में लिखिए।

प्रश्न–4. संयोगिक अनुबन्धों से आप क्या समझते हैं उनके लक्षणों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न–5 संयोगिक अनुबन्ध किन परिस्थितियों में क्रियाशील होते हैं?

5.7 बोधात्मक प्रश्न : सम्भाावित उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर में आपको व्यर्थ ठहरावों को परिभाषित करना है उदाहरण के साथ।

2. इस प्रश्न के उत्तर में आपको उन ठहरावों, को परिभाषित करना है जिनको स्पष्ट रूप से अधिनियम द्वारा व्यर्थ घोषित किया गया है। संक्षेप में बाजी के ठहरावों को लिखना है।
3. इस प्रश्न के उत्तर में केवल संयोगिक अनुबन्धों को परिभाषित करें एवं उनके लक्षणों का उल्लेख करें।
4. यहाँ पर केवल संयोगिक अनुबन्धों को परिभाषित करें एवं उनके लक्षणों का उल्लेख करें।
5. इस प्रश्न के उत्तर में आप संयोगिक अनुबन्धों को परिभाषित करें, तत्पश्चात् उदाहरणा सहित संयोगिक अनुबन्धों के नियम की व्याख्या करें।

5.8 स्वपरख प्रश्न

1. अर्थ ठहराव से क्या आशय है? अधिनियम द्वारा स्पष्ट रुप से व्यर्थ घोषित ठहरावों की विस्तृत व्याख्या करिये।
2. भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के व्यर्थ ठहरावों की समीक्षा करिए।
3. बाजी के ठहराव व्यर्थ होते हैं। कथन की व्याख्या करिए।
4. बाजी लगाने के ठहराव एवं अन्य समपार्श्वविक ठहरावों की व्याख्या करिए।
5. उदाहरण सहित व्यर्थ ठहरावों की परिभाषित करिए।
6. संयोगिक अनुबन्ध क्या होते हैं? उदाहरण सहित समझाइए।
7. संयोगिक अनुबन्ध बाजी लगाने के ठहरावों का तुलनात्मक विश्लेषण करिए।
8. संयोगिक अनुबन्धों की प्रवर्तनीयता के नियमों का उल्लेख करिए।
9. संयोंगिक अनुबन्ध से क्या आशय है? यह बाजी लगाने के ठहराव से किस प्रकार भिन्न हैं।

5.9 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई–6 अनुबन्धों की समाप्ति (Discharge of Contract)

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 अनुबन्ध समाप्ति के तरीके
 6.2.1 निष्पादन द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति
 6.2.2 पारस्परिक ठहराव द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति
 6.2.3 निष्पादन की असम्भवता द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति
 6.2.4 अवधि बीत जाने पर अनुबन्ध की समाप्ति
 6.2.5 राजनियम के लागू होने से अनुबन्धों की समाप्ति
 6.2.6 व्यर्थनीय अनुबन्ध की समाप्ति
 6.2.7 अनुबन्ध का खण्डन द्वारा समाप्ति
6.3 अनुबन्ध खण्डन के परिणाम
6.4 क्षतिपूर्ति के लिये प्रतिकर (हर्जाना) की राशि निश्चित करने के नियम
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 बोध प्रश्न
6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.9 स्वपरख प्रश्न
6.10 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- अनुबन्ध की समाप्ति का अर्थ समझ सकें।
- अनुबन्ध की समाप्ति के विभिन्न तरीकों का वर्णन कर सकें।
- अनुबन्ध के निष्पादन का अर्थ तथा कौन निष्पादन के लिए उत्तरदायी होता है, का वर्णन कर सकें।
- ऐसी स्थिति का वर्णन कर सकें जब अनुबन्ध के निष्पादन की आवश्यकता नहीं होती।
- निष्पादन की असम्भवता से कब अनुबन्ध समाप्त होता है कब नहीं, को समझ सकें।
- अनुबन्ध का खण्डन क्या होता है, को समझ सकें।
- अनुबन्ध के खण्डन पर पीड़ित पक्षकार को क्या उपचार प्राप्त होते है, को समझ सकें।

6.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाईयों में आप पढ़ चुकें है कि इस एक अनुबन्ध की उत्पत्ति कैसे होती है, वैध अनुबन्ध होने के लिए क्या क्या विशेषताऐं होनी चाहिए अनुबन्ध की उत्पत्ति के पश्चात उसके पक्षकारों के बीच कुछ अधिकार व दायित्व उत्पन्न हो जाते है। यदि अनुबन्ध के पक्षकार अपने अपने दायित्वों को पूरा कर दे तथा दूसरे पक्षकार अपने अधिकार को प्राप्त कर लेता है तो ऐसी स्थिति में अनुबन्ध पूर्ण हो जाता है और समाप्त माना जाता है। इस इकाई में आप अनुबन्ध

समाप्ति के अन्य तरीकें तथा अनुबन्ध के खण्डन हो जाने पर पीड़ित पक्षकार को प्राप्त उपचारों का भी अध्ययन करेंगे।

6.2 अनुबन्ध समाप्ति के तरीके (Modes of Discharge or Termination of Contrect)

किसी अनुबन्ध से उत्पन्न होने वाले अधिकारों एवं दायित्वों के समाप्त हो जाने को अनुबन्ध की समाप्ति कहा जाता है। प्रायः अनुबन्ध पूरा करने के लिये ही किया जाता है, अतः अनुबन्ध के पूर्ण हो जाने पर अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। परन्तु इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी स्थितियां है, जिनमें पक्षकारों को अनुबन्ध पूरा करने की आवश्यकता नहीं होती और अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। इस प्रकार अनुबन्ध की समाप्ति के विभिन्न ढंग निम्न प्रकार है :–

6.2.1 निष्पादन द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति (Discharge of contract by Performance)–

जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकार अपने–अपने वचनों (दायित्वो) का पालन कर देते हैं, और अनुबन्ध के अर्न्तगत कुछ भी करने के लिये शेष नहीं रहता हो तो अनुबन्ध निष्पादन द्वारा समाप्त माना जाता है। दूसरे शब्दों में अनुबन्ध की सम्पूर्ण शर्तो को पूरा करना निष्पादन कहलाता है। अनुबन्धों की समाप्ति का सबसे साधारण, स्वभाविक तथा व्यवहारिक ढ़ग यही है कि उसके सभी पक्षकार अपने अपने दायित्वों का पूरा कर दें।

उदाहरण– 'अ' 'ब' को अपना स्कूटर 20 हजार रूपये में बेचने को सहमत होता है, इस अनुबन्ध के अन्तर्गत जब 'अ' अपना स्कूटर 'ब' को दे देगा और 'ब' 20 हजार रूपये 'अ' को दे देगा उसी समय निष्पादन द्वारा यह अनुबन्ध समाप्त हो जायेगा। अर्थात 'अ' तथा 'ब' द्वारा अपने–अपने दायित्व पूर्ण कर लेने पर अनुबन्ध निष्पादन द्वारा समाप्त माना जाता है।

अनुबन्ध का निष्पादन निम्न दो प्रकार से हो सकता है :–

(अ) वास्तविक निष्पादन (Actual Performance)

जब अनुबन्ध का प्रत्येक पक्षकार निर्धारित समय के भीतर और बताये गये ढंग से अपना दायित्व पूरा कर लेता है, तो इसे अनुबन्ध का 'वास्तविक निष्पादन' कहते हैं और अनुबन्ध की समाप्ति हो जाती है।

(ब) निष्पादन का प्रस्ताव या निष्पादन का टैण्डर (Attempted Performance or tender Performance)

जब अनुबन्ध का पक्षकार अपने वचन को पूरा करने के लिये प्रस्ताव करता है, तो इसे निष्पादन का प्रस्ताव या टैण्डर कहा जाता है। निष्पादन का प्रस्ताव या टैण्डर में निम्न तत्व होने अनिवार्य हैं :–

(1) निष्पादन का प्रस्ताव शर्तरहित होना चाहिये। यदि निष्पादन के प्रस्ताव में शर्त लगा दी जाये तो दूसरा पक्षकार उसे अस्वीकृत कर सकता है। उदाहरण के लिये 'अ' ने बैंक से ऋण लिया है, वह बैंक के सम्मुख प्रस्ताव रखता है कि यदि बैंक उसे सममूल्य पर अंशों का आबंटन करे तो वह ऋण भुगतान कर देगा। 'अ' का यह प्रस्ताव (भुगतान करने का) शर्त के साथ है अतः वैध नहीं माना जायेगा।

(2) निष्पादन का प्रस्ताव उचित समय और स्थान पर किया जाना चाहिये। निश्चित तिथि से पहले या बाद में अथवा निश्चित किये गये स्थान से भिन्न स्थान पर किया गया निष्पादन का प्रस्ताव वैध नहीं होता है।

(3) निष्पादन का प्रस्ताव सम्पूर्ण दायित्व को पूरा करने के लिये किया जाना चाहिये। आंशिक दायित्व के निष्पादन का प्रस्ताव वैध नहीं माना जाता है।

(4) यदि निष्पादन में माल की सुपुर्दगी करनी है तो निष्पादन का प्रस्ताव वैध तभी होगा, जब दूसरे पक्षकार को माल का निरीक्षण करने का उचित अवसर दिया गया हो।

(5) निष्पादन का प्रस्ताव वचनगृहिता या उसके अधिकृत अभिकर्त्ता के समक्ष किया जाना चाहिये। किसी अन्य अजनबी को किया गया प्रस्ताव वैध नहीं होगा।

(6) निष्पादन का प्रस्ताव ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिये, जो सक्षम तथा इच्छुक हो।

(7) अनेक संयुक्त वचनगृहिताओं की दशा में किसी एक को किया गया निष्पादन प्रस्ताव वैध होता है।

(8) निष्पादन का प्रस्ताव उचित प्रारूप में होना चाहिये। धन सम्बन्धी प्रस्ताव की दशा में ठीक–ठीक (exact) रकम वैध मुद्रा के रूप में पेश की जानी चाहिये। अपेक्षित धनराशि से कम या अधिक रकम देने का प्रस्ताव वैध प्रस्ताव नहीं होता। चैक द्वारा भुगतान तभी वैध होगा जब कि लेनदार चैक स्वीकार कर ले।

अनुबन्ध का निष्पादन किसके द्वारा किया जाना चाहिए? (By Whom contract must be performed ?)

निष्पादन के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि अनुबन्ध के पक्षकारों को अपने अपने वचनों का निष्पादन स्वयं ही करना चाहिये अथवा उनकी ओर से कोई अन्य भी निष्पादन कर सकता है, इस सम्बन्ध में निम्न नियम है –

1. **स्वयं वचनदाता द्वारा (By the promisor himself) –**

यदि अनुबन्ध के स्वभाव से यह प्रकट होता है कि पक्षकारों का अभिप्राय यह था कि वचन का निष्पादन स्वयं वचनदाता द्वारा होना चाहिए तो ऐसी दशा में वचनदाता को ही निष्पादन करना होगा। ऐसे अनुबन्ध जो वचनदाता के व्यक्तिगत कौशल या योग्यता पर आधारित होते है उनका पालन स्वयं वचनदाता को ही करना चाहिए। जैसे चित्र बनाना, गाना सुनाना अथवा मानचित्र बनाना आदि कार्य वचनदाता की व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित है । अतः ऐसे अनुबन्धों का निष्पादन वचन दाता को ही करना होगा। जैसे 'अ', 'ब' को चित्र बनाकर देने का वचन देता है जिसके लिए उसे एक हजार रू मिलने है यहां पर चित्र बनाना व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित है अतः 'अ' को ही चित्र बनाकर देना चाहिए अर्थात उसे ही वचन का निष्पादन करना चाहिए।

2. **वचनदाता अथवा उसके एजेन्ट द्वारा (By the promisor or his Agent) –**

जिन अनुबन्धों के निष्पादन में वचनदाता की व्यक्तिगत योग्यता या चातुर्य आवश्यक नहीं होता है उन अनुबन्ध का निष्पादन वचनदाता स्वयं भी कर सकता है या अपने एजेन्ट द्वारा भी अनुबन्ध का निष्पादन करा सकता है। उदाहरण के लिए – 'अ' ने 'ब' से कुछ रकम उधार ली है। 'अ' इस रकम को स्वयं भी 'ब' को भुगतान कर सकता है अथवा अन्य किसी व्यक्ति के हाथ रकम का भुगतान कर सकता है।

3. **वैधानिक प्रतिनिधि द्वारा (By legal representative) –**

यदि अनुबन्ध का निष्पादन करने से पूर्व ही वचनदाता की मृत्यु हो जाती है तो ऐसे अनुबन्ध का निष्पादन उसके वैधानिक प्रतिनिधि द्वारा किया जाता है, बशर्ते अनुबन्ध में इसके विपरीत शर्त न हो। परन्तु मृत वचनदाता के उत्तराधिकारी या वैधानिक प्रतिनिधि ऐसे अनुबन्धों का निष्पादन करने के लिए बाध्य नहीं होते है जो वचन दाता की व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित होते है, जैसे – 'अ' ने चित्र बनाकर 'ब' को देना है। 'अ' की मृत्यु हो जाने पर 'अ' का वैधानिक प्रतिनिधि चित्र बनाकर देने के लिए बाध्य नहीं होता है। ऐसे अनुबन्ध वचनदाता की मृत्यु हो जाने पर समाप्त हो जाते है।

व्यक्तिगय योग्यता के अतिरिक्त अन्य अनुबन्धों में वचनदाता की मृत्यु होने पर उसका वैधानिक प्रतिनिधि अनुबन्ध का निष्पादन करने के लिए उत्तरदायी होता है। वैधानिक प्रतिनिधि का दायित्व वचनदाता द्वारा छोड़ी गयी सम्पत्ति के मूल्य तक सीमित रहता है।

उदाहरण के लिए – 'अ' ने 'ब' से पांच हजार रू का माल खरीदा है भुगतान करने से पूर्व ही 'अ' की मृत्यु हो जाती है तो इस स्थिति में 'अ' का वैधानिक प्रतिनिधि 'ब' को पांच हजार रू चुकाने के लिए उत्तरदायी होगा। यदि 'अ' ने कुछ भी सम्पत्ति नहीं छोड़ी है तो 'अ' का वैधानिक प्रतिनिधि धन चुकाने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

4. **किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा निष्पादन (Performance by third person)** –

धारा 41 के अनुसार, यदि वचनगृहिता किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा वचन का निष्पादन किया जाना स्वीकार कर लेता है तो वह बाद में वचनदाता को निष्पादन के लिए बाध्य नहीं कर सकता।

उदाहरण के लिए – 'अ' ने 'ब' से पचास हजार रू उधार लिये है। 'ब' इन रूपयों को 'स' से लेने के लिए अपनी स्वीकृति दे देता है तो बाद में 'ब' रूपयों के लिए 'अ' को बाध्य नहीं कर सकता।

संयुक्त वचनदाताओं का दायित्व (Liabilities of Joint Promisers)

संयुक्त वचनदाताओं के दायित्वों के निष्पादन के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम हैं –

(1) **संयुक्त रूप से उत्तरदायी**– जब दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी कार्य को पूरा करने का वचन देते हैं तो विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, अपने जीवन काल में सभी वचन पूरा करने के लिये उत्तरदायी होते हैं। अर्थात सबको मिलकर वचन पूरा करना होगा। उनमें से किसी की मृत्यु होने पर उसका उत्तराधिकारी अन्य वचनदाताओं के साथ वचन पूरा करेगा और यदि सभी वचनदाताओं की मृत्यु हो जाती है तो उन सभी के उत्तराधिकारीयों को वचन का निष्पादन करना होगा।

(2) **संयुक्त वचनदाताओं में से किसी को भी निष्पादन के लिये उत्त्तरदायी ठहराया जाना**– जब दो या अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से निष्पादन के लिये उत्तरदायी होते है तो विपरीत अनुबन्ध के अभाव में वचनगृहिता को यह अधिकार है कि वह संयुक्त वचनदाताओं में से किसी भी एक को या अधिक को सम्पूर्ण वचन का निष्पादन करने के लिये बाध्य कर सकता है।

(3) **प्रत्येक वचनदाता अपना अंशदान पूरा करने को दायी है**– संयुक्त वचनदाताओं में से प्रत्येक वचनदाता को यह अधिकार है कि वह अन्य संयुक्त

वचनदाताओं को उनके हिस्से का दायित्व पूरा करने को बाध्य कर सकता है। यदि कोई वचनदाता अपना भाग चुकाने में असमर्थ रहता है तो इससे होने वाली हानि को भी शेष सब वचनदाता आपस में बराबर–बराबर बांटने के लिये बाध्य हैं।

(4) **किसी एक संयुक्त वचनदाता के मुक्त होने का प्रभाव–** यदि वचनगृहिता संयुक्त वचनदाताओं में से किसी एक को मुक्त कर देता है तो अन्य वचनदाता दायित्व से मुक्त नहीं हो जाते तथा मुक्त वचनदाता भी अन्य वचनदाताओं के प्रति दायित्व से मुक्त नहीं होता।

निष्पादन का समय एवं स्थान (Time and Place of Performance) धारा 46–50

अनुबन्ध के निष्पादन के लिये समय व स्थान के सम्बन्ध में निम्न नियम हैं–

(1) जब वचनदाता को अपने वचन का निष्पादन वचनगृहिता के आवेदन किये बिना करना हों, तो वचन का निष्पादन उचित समय के अन्दर किया जाना चाहिये। उचित समय क्या होगा यह अलग–अलग मामलों में व्यापार की रीति रिवाज तथा अनुबन्ध के स्वभाव जिसका ज्ञान पक्षकारों को अनुबन्ध करते समय था पर निर्भर होता है।

(2) जब वचन के निष्पादन का दिन निश्चित हो और वचनदाता को अपना वचन वचनगृहिता के आवेदन बिना करना हो तो वचनदाता को चाहिये कि वह निश्चित दिन या तिथि पर सामान्य व्यापारिक समय में किसी भी समय और उस स्थान पर जहां वचन का निष्पादन होना चाहिये, वचन का निष्पादन करे।

(3) जब वचन के निष्पादन का दिन या तिथि निश्चित है, और वचनदाता को अपने वचन का निष्पादन वचनगृहिता के आवेदन पर निष्पादन करना हो तो वचनगृहिता का कर्तव्य है कि वह यथोचित स्थान तथा समय पर निष्पादन के लिये आवेदन करे तत्पश्चात वचनदाता निष्पादन कर दें।

(4) जब वचनगृहिता के आवेदन बिना निष्पादन करना हो परन्तु स्थान निश्चित न हो, तो वचनदाता का यह कर्तव्य है कि वह वचनगृहिता से स्थान नियत करने का आवेदन करे और उसके द्वारा निश्चित स्थान पर वचन का निष्पादन करे।

(5) उपर्युक्त परिस्थितियों के अतिरिक्त वचन का निष्पादन किसी भी ऐसी रीति से अथवा किसी भी ऐसे समय पर किया जा सकता है जिसके लिये वचनगृहिता स्वीकृति अथवा अनुमोदन करता है।

पारस्परिक वचनों का निष्पादन (Performance of Reciprocal Promises) धारा 51–58

ऐसे वचन जो एक दूसरे के लिये प्रतिफल होते हैं 'पारस्परिक वचन' कहलाते हैं। द्विपक्षीय अनुबन्ध अर्थात ऐसे अनुबन्ध जिनमें दोनो ही पक्षकारों को अपने–अपने वचन का निष्पादन करना शेष हो। उदाहरण के लिये– 'अ' अपना स्कूटर 'ब' को बेचने का वचन देता है, और 'ब' स्कूटर के बदले धन देने का वचन देता है। यह द्विपक्षीय अनुबन्ध है क्योंकि इसमें 'अ' तथा 'ब' दोनों ने ही निष्पादन का वचन दिया है, अर्थात निष्पादन शेष है। ऐसे अनुबन्धों में यह प्रश्न उठता है कि पक्षकार अपने पारस्परिक वचनों का निष्पादन किस क्रम से करें। इस दृष्टि से पारस्परिक वचनों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है –

(1) **अनुबन्ध जिनमें पारस्परिक वचन स्वतंत्र हैं (Mutual and Independent Promises)**

ऐसा वचन जिनमें प्रत्येक पक्षकार को अपने–अपने वचनों का निष्पादन दूसरे पक्षकार के निष्पादन की प्रतिक्षा किये बिना स्वतंत्र रूप से करना होता है, तो उनके वचन पारस्परिक व स्वतंत्र कहलाते हैं। ऐसे अनुबन्धों में एक पक्षकार निष्पादन नहीं करता तो वह हानिपूर्ति के लिये दायी होगा।

उदाहरणार्थ'–'अ' तथा 'ब' के बीच विक्रय का अनुबन्ध होता है, जिसके अर्न्तगत 'अ' ने 20 अप्रैल को माल की सुपुर्दगी देनी है। तथा 'ब' ने 5 अप्रैल को पैसा देना है तथा ऐसा न करने पर 5 अर्पैल से 15 प्रतिशत वार्षिक ब्याज अदा करना हैं। इस अनुबन्ध में 'अ' का माल सुर्पुद करने का वचन 'ब' के द्वारा भुगतान करने के वचन से स्वतंत्र है। अर्थात 'ब' द्वारा 5 अप्रैल को भुगतान न करने पर भी 'अ' को 20 अप्रैल को माल सुपुर्द करना होगा। यहाँ पर 'ब' द्वारा भुगतान न करने पर 'अ' हर्जाना वसूली के लिये मुकदमा दायर कर सकता है।

(2) **अनुबन्ध जिनमें पारस्परिक और आश्रित वचन होते हैं (Mutual and Dependent Promises)**

किसी अनुबन्ध के अर्न्तगत यदि एक पक्षकार के वचन का निष्पादन इस बात पर निर्भर करता है कि उससे पहले दूसरा पक्षकार अपने वचन का निष्पादन करे तो उनके वचन 'पारस्परिक और आश्रित' कहलाते हैं। इस प्रकार के अनुबन्धों में यदि वह पक्षकार जिससे अपने वचन का निष्पादन पहले करना है, और वह अपने वचन का पालन नहीं करता तो वह दूसरे से वचन के निष्पादन की मांग नहीं कर सकता। और साथ ही वह दूसरे पक्षकार की उस हानि की पूर्ति के लिये भी दायी होगा, जो अनुबन्ध पूरा न होने के कारण उसे हुई है।

(3) **अनुबन्ध जिनमें पारस्परिक और समवर्ती वचन होते हैं (Mutual and Concurrent Promises)**

जब अनुबन्ध के दोनो पक्षकारों को अपने–अपने वचनों का पालन साथ–साथ करना होता है तब उनके वचन 'पारस्परिक और समवर्ती कहलाते हैं। ऐसे अनुबन्धों में वचनदाता को अपने वचन का पालन तब तक करने की आवश्यकता नहीं जब तक वचनगृहिता अपने पारस्परिक वचन का निष्पादन करने के लिये तैयार और इच्छुक न हो।

भुगतानों का नियोजन (Appropriation of Payment) धारा 59–61

जब एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति से एक ही ऋण लिया है और वह कुछ धनराशि का भुगतान करता है, तो भुगतान के नियोजन की समस्या उत्पन्न नहीं होती है। क्योंकि किया गया भुगतान उसी एक ऋण का माना जायेगा। परन्तु जब एक व्यक्ति ने दूसरे से अनेकों रकमों के ऋण लिये हैं, और ऋणी ऐसी रकम भुगतान करता है जो सभी ऋणों के भुगतान के लिये अपर्याप्त हो तो यह प्रश्न उठता है कि वह भुगतान किस ऋण के लिये माना जाये इसे ही 'भुगतान का नियोजन' करना कहते है। इस सम्बन्ध में निम्न नियम हैं –

(1) **ऋणी के स्पष्ट निर्देशानुसार** –जब ऋणी ने अनेकों ऋणों का भुगतान करना है और वह भुगतान करते समय स्पष्ट निर्देश दे कि यह भुगतान किस ऋण

के लिये किया जा रहा है तो यह भुगतान राशि निर्देशानुसार ही समायोजित करनी होती है अथवा वह अस्वीकार भी कर सकता है।

(2) **ऋणी के गर्भित निर्देशानुसार** –यदि ऋणी भुगतान के समय स्पष्ट नहीं बताता कि वह भुगतान किस ऋण का है परन्तु परिस्थितियों से यह स्पष्ट होता हो कि भुगतान किस ऋण के लिये है तो ऋणदाता को वह भुगतान उसी ऋण में समायोजित करना होगा। जैसे– 'अ' ने 'ब' के अनेक ऋणों का भुगतान करना है उनमें से एक ऋण 5000 रू0 का है जिसे 10 जनवरी को देना है यदि 'अ' 10 जनवरी को 5000 रू0 का भुगतान करता है और स्पष्टतः नहीं बताता कि यह भुगतान किस ऋण का है तो यह माना जायेगा कि यह भुगतान 10 जनवरी को देय ऋण के लिये ही है।

(3) **ऋणदाता की इच्छानुसार** –जब ऋणी स्पष्ट निर्देश न दे और न ही परिस्थिति से ऐसा प्रतीत हो कि भुगतान किस ऋण का है तो ऋणदाता अपनी इच्छानुसार किसी भी वैध ऋण के भुगतान में इसका नियोजन कर सकता है।चाहे ऐसा ऋण अवधि वर्जित ही क्यों न हो गया हो।

(4) **क्रमानुसार नियोजन** –यदि ऋणी स्पष्ट निर्देश न दे और गर्भित निर्देश भी न हो तथा ऋणदाता भी नियोजन न करे ऐसी दशा में भुगतान का नियोजन ऋणों के भुगतान के क्रम में किया जायेगा चाहे वह अवधि वर्जित हो अथवा नहीं। यदि ऋण समकालीन है अर्थात एक ही तिथि पर अनेक ऋण भुगतान होने हों तो भुगतान का नियोजन ऋण के आनुपातिक आधार पर किया जायेगा।

(5) **मूलधन एवं ब्याज दोनों बकाया हो** – जब ऋणी यह स्पष्ट न करे कि भुगतान मूलधन का है या ब्याज का, तो पहले ब्याज का भुगतान माना जायेगा और शेष मूलधन का।

नोट :–निम्नलिखित दशाओं में अनुबन्ध का निष्पादन हुये बिना ही अनुबन्ध समाप्त हो जाते है, अर्थात निम्न दशाओं में अनुबन्ध के निष्पादन की आवश्यकता नहीं होती।

6.2.2 पारस्परिक ठहराव द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति (Discharge of Contract by Mutual Agreement) (धारा 62,63)

जिस प्रकार अनुबन्ध की उत्पत्ति पक्षकारों के आपसी ठहराव द्वारा होती है, उसी प्रकार दोनों पक्षकार पारस्परिक सहमति से मूल अनुबन्ध के दायित्व से मुक्त भी हो सकते हैं अर्थात पारस्परिक सहमति के आधार पर अनुबन्ध समाप्त हो सकता है। निम्न दशाओं में ऐसा हो सकता है :–

(1) **नवकरण द्वारा (By Novation)**– नवकरण के अन्तर्गत अनुबन्ध के एक पक्षकार का दायित्व समाप्त हो जाता है और उसके दायित्व को कोई अन्य तृतीय पक्ष ले लेता है तो मूल पक्षकारों के बीच का अनुबन्ध समाप्त हो जाता है और एक नये पक्षकार के साथ अनुबन्ध हो जाता है। इसे ही नवकरण कहते हैं। उदाहरण के लिये –'अ' ने 'ब' से 1000 रू0 ऋण लिया है, 'अ' 'ब' तथा 'स' में यह ठहराव होता है कि 'स' 1000 रू0 'ब' को देगा। यहाँ पर 'अ' तथा 'ब' के बीच अनुबन्ध समाप्त हो गया, तथा 'ब' तथा 'स' के बीच नया अनुबन्ध हो गया।

(2) **परिवर्तन द्वारा (By Alteration)**– उपरोक्त नवकरण में पुराने पक्षकार के स्थान पर नया पक्षकार आ जाता है। परिवर्तन में पुराने शर्तो के वाले अनुबन्ध में

कुछ परिवर्तित की हुई शर्तो के साथ नये अनुबन्ध की प्रतिस्थापना हो जाती है। जिसमें पुराने शर्तो वाला अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। उदाहरण के लिये– 'अ' 'ब' को 10 क्वींटल चावल बेचने का अनुबन्ध करता है। चावल की सुपुर्दगी के समय से पूर्व ही 'अ' तथा 'ब' चावल के स्थान पर गेहूँ क्रय–विक्रय के लिये सहमत हो जाते हैं, तो चावल वाला अनुबन्ध समाप्त हो जायेगा और उसके बदले गेहूँ वाला अनुबन्ध हो जायेगा।

(3) **छुटकारा अथवा त्याग द्वारा (By Rescission or Waiver)**– अनुबन्ध के पक्षकार पारस्परिक सहमति द्वारा मूल अनुबन्ध को निरस्त कर सकते है और ऐसा करने पर दोनो पक्षकारों को वचन के निष्पादन से छुटकारा मिल जाता है। यदि अनुबन्ध के एक पक्षकार को ही वचन का निष्पादन करना शेष हो तो दूसरे पक्षकार को यह अधिकार है कि वह अपने अधिकार को त्याग सकता है, इससे अनुबन्ध समाप्त हो जायेगा। उदाहरण के लिये –'अ' 'ब' को 1000 रू0 दे कर उससे अपने लिये नक्शा बनाने का अनुबन्ध करता है। कुछ समय बाद 'अ' नक्शा बनाने से मना कर दे, तो 'अ' तथा 'ब' क बीच अनुबन्ध त्याग द्वारा समाप्त माना जायेगा।

(4) **आश्वासन एवं संतुष्टि (Accord and Satisfaction)**– यदि अनुबन्ध का एक पक्षकार पूर्ण प्रतिफल के स्थान पर कम प्रतिफल स्वीकार कर लेता है तो इससे दूसरा पक्षकार दायित्व से मुक्त हो जाता है। उदाहरण के लिये – 'अ' ने 'ब' से 10000 रू0, 10 प्रतिशत ब्याज पर उधार लिये हैं, जिसका भुगतान एक वर्ष बाद करना है। 'ब' 'अ' से 6 माह बाद ही 950 रू0 पूर्ण प्रतिफल के बदले स्वीकार करता है, यहाँ पर 'अ' तथा 'ब' के 10000 रू0का मूल अनुबन्ध समाप्त माना जायेगा।

6.2.3 निष्पादन की असम्भवता द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति (Discharge of Contract by Impossibility of Performance)

ऐसे कार्य को करने का ठहराव जिसका किया जाना आरम्भ से ही असम्भव हो, व्यर्थ होता है। ऐसे ठहराव जिनको पूरा करना ठहराव करते समय सम्भव था परन्तु बाद में अकस्मात उनको पूरा करना असम्भव हो जाये तो पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। अर्थात अनुबन्ध असम्भवता के कारण समाप्त हो जाते हैं।

अनुबन्ध के निष्पादन की असम्भवता निम्न तीन प्रकार की हो सकती हैं :–

(1) **जिस असम्भवता का अनुबन्ध करते समय पक्षकारों को ज्ञान रहा हो** – इसे पूर्ण असम्भवता कहते हैं। ऐसी परिस्थिति में अनुबन्ध आरम्भ से ही गलती के आधार पर व्यर्थ होता है। जैसे– 'अ','ब' को 1000 रू0 देने का वचन देता है। 'ब' उसके लिये आसमान से तारे तोड़कर लाने का वचन देता है। यह ठहराव व्यर्थ होने के कारण प्रभाव शून्य होगा।

(2) **ऐसी असम्भवता जिसका पक्षकारों को अनुबन्ध करने के समय कोई ज्ञान नहीं रहा हो** – ऐसी परिस्थिति में असम्भवता का पता चलने पर ठहराव पारस्परिक गलती के कारण व्यर्थ हो जाता है। जैसे– 'अ' ने जिस समय 'ब' को अपना धोड़ा बेचने की सहमति की, उस समय किसी को भी यह पता नहीं था कि धोड़ा पहले ही मर चुका था। 'अ' 'ब' के बीच का समझौता व्यर्थ होगा।

(3) **वह असम्भवता जो कि अनुबन्ध की रचना के बाद उत्पन्न हुई हो**– ऐसी असम्भवताओं को न तो अनुबन्ध करने के समय किसी पक्षकार को आशा थी और न ही कोई पक्षकार अनुबन्ध का निष्पादन असम्भव करने वाली परिस्थितियों को उत्पन्न करने के लिये दोषी है। ऐसी दशा में परिस्थितियों के कारण अनुबन्ध का निष्पादन असम्भव होते ही अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है। असम्भवता वैधानिक या भौतिक होनी चाहिये, व्यापारिक नहीं। तो इसे आकस्मिक असम्भवता या नैराश्यता कहते हैं। आकस्मिक असम्भवता निम्न कारणों से उत्पन्न हो सकती हैः–

(i) अनुबन्ध की विषय वस्तु के विनाश के कारण (By destruction of the subject matter of the Contract)

अनुबन्ध की रचना के पश्चात दोनों पक्षकारों में से किसी के भी दोष के बिना यदि अनुबन्ध की विषय वस्तु नष्ट हो जाये तो अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा। उदाहरण – टेलर बनाम काल्ड वैल के विवाद में संगीत कार्यक्रम के लिये एक हॉल किराये पर देने का अनुबन्ध हुआ। किन्तु कार्यक्रम होने से पूर्व ही संगीतशाला (हॉल) जल कर नष्ट हो जाता है। न्यायाधीश ब्लैकबर्न ने निर्णय देते हुआ कहा– "जिन अनुबन्धों का निष्पादन किसी विशिष्ट व्यक्ति या वस्तुओं के निरन्तर अस्तित्व पर निर्भर करता है उनमें यह शर्त (गर्मित) होती है कि उस व्यक्ति या वस्तु के नष्ट हो जाने से उत्पन्न होने वाली असम्भवता के कारण दोनो पक्षकारों को अनुबन्ध के निष्पादन से मुक्ति मिल जायेगी"।

(ii) निष्पादन के लिये आवश्यक परिस्थितियों के बने न रहने के कारण (By the non-existence of a state of things necessary for the Performance)-

यदि कोई अनुबन्ध विशिष्ट परिस्थितियों के निरन्तर विद्यमान रहने के आधार पर किया गया हो तो उन परिस्थितियों के बदलने या न रहने पर अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। या जब अनुबन्ध का निष्पादन किसी विशेष घटना के घटित होने पर आधारित हो और ऐसी घटना न घटे तो अनुबन्ध का निष्पादन असम्भव हो जायेगा। अर्थात ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा। उदाहरण– क्रेल बनाम हेनरी के मामले में हेनरी ने सम्राट एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के जूलूस को देखने के लिये क्रेल से एक कमरा दो दिन के लिये किराये पर लिया। क्रेल अनुबन्ध के उद्देश्य को जानता था। बादशाह की बीमारी के कारण जूलूस का निकाला जाना रद्द कर दिया गया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि हैनरी को कमरे के किराये का भुगतान नहीं करना चाहिये। क्योंकि जूलूस का निकाला जाना अनुबन्ध का आधार था और आधार के न रहने पर अनुबन्ध समाप्त माना जायेगा।

(iii) वचनदाता कि व्यक्तिगत असमर्थता अथवा मृत्यु (Death or personal incapacity of the promiser)- जिन अनुबन्धों का निष्पादन वचनदाता के व्यक्तिगत कौशल पर आधारित है वे वचनदाता के असमर्थ होने पर या उसकी मृत्यु हो जाने पर समाप्त हो जाते हैं। उदाहरण– रॉबिन्सन बनाम डेविडसन के विवाद में डेविडसन ने रॉबिन्सन के साथ एक थियेटर में 6 महीने काम करने का अनुबन्ध किया। कुछ अवसरों पर डेविडसन बीमारी के कारण काम नहीं कर पाया। रॉबिन्सन ने काम पर न आये दिनो की क्षति के लिये वाद प्रस्तुत किया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि उन दिनों व्यक्तिगत असमर्थता के कारण निष्पादन (थियेटर में काम करना) असम्भव होने के कारण अनुबन्ध व्यर्थ हो गया।

(iv) विधि या राजनियम में परिवर्तन (Change of Law)– यदि अनुबन्ध करने के बाद किसी प्रचलित नियम में कोई परिवर्तन हो जाने के कारण अनुबन्ध का निष्पादन असम्भव हो जाये या परिवर्तन के कारण अनुबन्ध का उद्‌देश्य या प्रतिफल अवैध हो गये तो अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा और वचनदाता को अपने वचन को पूरा करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता अर्थात वह निष्पादन न होने के कारण वचनगृहीता को हुई हानि के लिये उत्तरदायी नहीं होगा। उदाहरण– 'अ' ने 'ब' को अपने गोदाम में पड़ी हुई गेहूं की बोरियां बेचने का अनुबन्ध किया। माल की सुपुर्दगी देने से पूर्व ही सरकार ने 'अ' के गोदाम को सील बंद कर दिया और वैधानिक अधिकारों के द्वारा गोदाम के सारे अनाज को अपने अधिकार में ले लिया। न्यायालय द्वारा 'अ' तथा 'ब' का अनुबन्ध समाप्त माना गया।

(अ) युद्ध प्रारम्भ होने पर (Out -break of War)– युद्ध काल में शत्रु के साथ किया गया अनुबन्ध (केन्द्रीय सरकार की आज्ञा बिना) अवैध होता है। ऐसे अनुबन्ध आरम्भ से ही व्यर्थ होते हैं। युद्ध आरम्भ होने से पूर्व किये गये अनुबन्धों को सरकार स्थगित अथवा व्यर्थ घोषित कर देती है। स्थगित किये गये अनुबन्धों को केवल युद्ध की समाप्ति के बाद ही निष्पादित किया जा सकता है। उदाहरण– 'अ' तथा 'ब' कुछ माल एक विदेशी बन्दरगाह से लादकर लाने का अनुबन्ध करता है। कुछ समय पश्चात 'अ' के देश की सरकार उस देश के विरूद्व युद्ध की घोषणा कर देती है जिसके बन्दरगाह से माल लाद कर लाने का अनुबन्ध किया गया था। युद्ध की घोषणा होते ही सम्पूर्ण अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा।

आकस्मिक असम्भवता की परिधि में न आने वाले मामले (Cases not covered by supervening impossibility)

(1) **निष्पादन की कठिनाई (Difficulty in Performance)**– कभी–कभी कुछ कारणो से निष्पादन पर अधिक व्यय करना पड़े या निष्पादन करने में कठिनाई हो तो उसे असम्भवता नहीं माना जा सकता और अनुबन्ध की समाप्ति का बहाना नहीं बनाया जा सकता है।

एक विवाद में 'अ' ने 'ब' को निश्चित मात्रा में फिनलैण्ड टिम्बर बेची जिसकी सुपुर्दगी जुलाई एवं सितम्बर 1914 के बीच की जानी थी, अगस्त से पहले कोई सुपुर्दगी नहीं हुई। और इसके बाद युद्ध छिड़ गया। युद्ध के कारण परिवहन व्यवस्था अस्त व्यस्त हो जाने के कारण 'अ' फिनलैण्ड से कोई टिम्बर नहीं मंगा सका। न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया कि फिनलैण्ड से टिम्बर प्राप्त करने की असर्मथता के कारण 'अ' को अनुबन्ध के निष्पादन के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि अनुबन्ध में 'ब' का इस विषय से कोई सरोकार नहीं था कि 'अ' टिम्बर कैसे लायेगा।

(2) **व्यापारिक असम्भवता (Commercial Impossibility)**– अनुबन्ध के किसी भी पक्षकार को केवल इस आधार पर अनुबन्ध के निष्पादन के दायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता है कि अनुबन्ध का निष्पादन उसके लिये अलाभकारी होगा। या कच्चे माल का अधिक मूल्य पर मिलना, मजदूरी वृद्वि, मौसम खराब या अन्य कारणों से वस्तु की लागत का अधिक हो जाना। उदाहरण– 'अ' 'ब' को निश्चित मूल्य पर उक्त माल बेचने का अनुबन्ध करता है। परिस्थिति में परिवर्तन हो जाने के कारण माल का मूल्य अचानक बहुत अधिक बढ जाता है। 'अ' को माल देने के वचन के निष्पादन के उत्तरदायित्व से मुक्ति नहीं मिल सकती है।

(3) **हड़ताल, तालाबन्दी, एवं नागरिक अशान्ति (Strike, Lockout & Civil Disturbance)** – अनुबन्ध में विशिष्ट उपबन्ध (clause) के न होने पर हड़ताल, तालाबन्दियों एवं नागरिक शान्ति भंग होने के कारण किसी भी पक्षकार को अनुबन्ध के निष्पादन के दायित्व से मुक्ति नहीं मिल सकती है। उदाहरण– 'अ' ने 'ब' के साथ कुछ वस्तुएं बेचने का समझौता किया। वस्तुएं अल्जीरिया से लानी थी। उपद्रव एवं नागरिक अशान्ति के कारण अल्जीरिया से वस्तुएं नही लायी जा सकी। न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया कि अनुबन्ध के निष्पादित न करने के लिये कोई उचित कारण नहीं था और इसलिये 'अ' को 'ब' की क्षतिपूर्ति करनी चाहियैं

(4) **किसी तीसरे व्यक्ति के आचरण के कारण उत्पन्न होने वाली असम्भवता (Impossibility due to the behavior of a third person)** – वह अनुबन्ध जिसका निष्पादन किसी तीसरे व्यक्ति के आचरण पर निर्भर करता हो केवल इसलिये असम्भव नहीं हो जायेगा कि तीसरे व्यक्ति ने समझौते के अनुसार आचरण नहीं किया था। इस नियम के पीछे कानून का एक महत्वपूर्ण सिद्वान्त है कि यदि कोई व्यक्ति किसी तीसरे व्यक्ति के ऐच्छिक कार्य का दायित्व स्वीकार करता हो तो उसे वह कार्य करा सकने के योग्य होने का आश्वासन देने की क्षमता भी रखनी चाहिये। उदाहरण– 'अ' 'ब' से कुछ ऐसी वस्तुएं बेचने का अनुबन्ध करता है जिसका उत्पादन 'स' को करना है। 'स' वस्तुएं बना कर नहीं देता है। 'अ' को 'ब' की होने वाली क्षति पूर्ति करनी होगी।

(5) **आंशिक असम्भवता (Partial Impossibility)**:–अनुबन्ध करने के कई उद्देश्य होने पर किसी एक उद्देश्य की पूर्ति न होने से अनुबन्ध की समाप्ति नहीं हो जायेगी। उदाहरण के लियें. 'अ' ने 'ब' से एक नाव समारोह देखने के लिये एवं जहाजी बेड़े के चारों ओर चक्कर लगाने के लिये किराये पर लेने का समझौता किया। समारोह नहीं हुआ परन्तु जहाजी बेड़ा एकत्र किया गया था। न्यायालय ने निर्णय दिया कि प्रथम उद्देश्य के पूरा न होने के कारण ही अनुबन्ध समाप्त नहीं हो जायेगा, क्योंकि बेड़े का चक्कर लगाने का दूसरा उद्देश्य अभी विद्यमान हैं।

आकस्मिक असम्भवता के परिणाम (Effect of supervening immposibility) :–

(अ) अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है। अनुबन्ध के समस्त पक्षकार अपने वचनों को निष्पादन के दायित्वों से मुक्त हो जाते हैं।

(ब) अनुबन्ध के अर्न्तगत किसी पक्षकार द्वारा लाभ प्राप्त करने पर वह लाभ लौटा देना चाहिये या उसकी क्षतिपूर्ति कर देनी चाहिये।

6.2.4 **अवधि व्यतीत हो जाने पर अनुबन्ध की समाप्ति** (Discharge of Contract by Laps of Time)

अनुबन्ध के निष्पादन की तिथि पर यदि कोई पक्षकार निष्पादन नहीं करता है तो लिमिटेशन अधिनियम द्वारा निश्चित अवधि के अन्दर दूसरा पक्षकार न्यायालय द्वारा अनुबन्ध को प्रवर्तनीय करा सकता है। परन्तु ऐसी निश्चित अवधि के अन्दर कानूनी कार्यवाही नहीं की जाये तो अनुबन्ध समय व्यतीत होने के आधार पर समाप्त हो जाता है अर्थात दूसरा पक्षकार न्यायालय द्वारा भी उसे पूरा नहीं करा सकता है। उदाहरण के लिये– 'अ' ने 'ब' से 10 हजार रू0 उधार लिये, जिसका भुगतान 31 दिसम्बर 2008 तक करना था। यदि 'अ' 31 दिसम्बर 2008 तक धन

वापस नहीं करता है तो 'ब' 3 वर्ष (लिमिटेशन अधिनियम द्वारा साधारण अनुबन्ध के लिये निश्चित अवधि) के अन्दर धन वसूली के लिये वाद प्रस्तुत कर सकता है। यदि यदि 31 दिसम्बर 2011 तक 'ब' दावा प्रस्तुत नहीं करता है तो 'अ' तथा 'ब' के बीच का अनुबन्ध समाप्त हो जायेगा।

6.2.5 राजनियम या अधिनियम के लागू होने पर अनुबन्ध की समाप्ति (Discharge of Contract by operation of Law):–

कुछ परिस्थितियों मे कोई अधिनियम लागू हो जाने पर अनुबन्ध के पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं, तो अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। जैसे – अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार ऐसे अनुबन्ध जिनका निष्पादन पक्षकार की व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित होता है उनमें पक्षकार की मृत्यु हो जाने पर समाप्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिये– 'अ' अपने थियेटर में 'ब' से एक माह तक गाने के लिये अनुबन्ध करता है। गाना 'ब' की व्यक्तिगत कुशलता है यदि 'ब' की मृत्यु हो जाये तो अनुबन्ध समाप्त हो जायेगा। अर्थात 'अ' अनुबन्ध को 'ब' के उत्तराधिकारी से भी पूरा नहीं करा सकता है। इसी प्रकार– दिवालिया अधिनियम के अनुसार दिवालिया घोषित व्यक्ति अपने सभी दायित्वों से मुक्त हो जाता है अर्थात उसके सभी अनुबन्ध समाप्त हो जाते हैं।

6.2.6 व्यर्थनीय अनुबन्धों की समाप्ति (Termination of Voidable Contract)

जब किसी व्यक्ति की इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थनीय होता है और वह उसे त्याग देता है तो इससे दूसरे पक्षकार को भी अनुबन्ध के अर्न्तगत अपना दायित्व पूरा करने की आवश्यकता नहीं होती और अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। उदाहरण के लिये– 'अ' 'ब' को मारने की धमकी दे कर उससे स्कूटर खरीदने का अनुबन्ध कर लेता है, यह अनुबन्ध 'अ' की इच्छा पर व्यर्थनीय है। यदि 'अ' इसे त्याग दे तो यह अनुबन्ध समाप्त हो जायेगा।

6.2.7 खण्डन द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति (Discharge of Contract by Breach)

जब अनुबन्ध का एक पक्षकार अपने वचन का निष्पादन नहीं करता है या निष्पादन करने से इन्कार करता है तो इसे अनुबन्ध का खण्डन कहते हैं। दूसरा पक्षकार अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है अर्थात उसे अनुबन्ध के निष्पादन की आवश्यकता नहीं होती है। अनुबन्ध का खण्डन दो प्रकार का होता हैं।

(अ) **वास्तविक खण्डन (Actual Breach)**:–जब अनुबन्ध का पक्षकार अनुबन्ध के निष्पादन के लिये निश्चित समय पर निष्पादन नहीं करता है तो इसे अनुबन्ध का वास्तविक खण्डन कहते हैं। उदाहरण के लिये– 'अ' ने अपना स्कूटर 'ब' को 5000 रू0 में बेचने का अनुबन्ध किया। अनुबन्ध के अनुसार 10 जनवरी 2010 को 'अ' ने स्कूटर देना था तथा 20 जनवरी का 'ब' को पैसे देने थे। यदि 10 जनवरी को 'अ' स्कूटर नहीं देता तो इसे अनुबन्ध का वास्तविक खण्डन कहेंगे और 'ब' धन देने के लिये उत्तरदायी नहीं होगा।

(ब) **रचनात्मक खण्डन (Anticipatory or Constractive Breach)**:–यदि अनुबन्ध का कोई पक्षकार निष्पादन की तिथि से पूर्व ही अपने शब्दों अथवा आचरण द्वारा अनुबन्ध को निष्पादित न करने का अभिप्राय प्रकट कर देता है तो इसे प्रत्यासित या रचनात्मक खण्डन कहते हैं। रचनात्मक खण्डन दो प्रकार से हो सकता है –

(1) **स्पष्ट रचनात्मक खण्डन (Express Constractive Breach)**:—जब अनुबन्ध का एक पक्षकार निष्पादन की तिथि से पूर्व ही स्पष्ट रूप से (लिखित या मौखिक) निष्पादन न करने की सूचना दूसरे पक्षकार को दे देता है तो इसे स्पष्ट रचनात्मक खण्डन कहते है। जैसे— 'अ' अपना स्कूटर 'ब' को 5000 रू0 में बेचने का अनुबन्ध करता है, 'ब' ने 10 जनवरी को पैसे देने हैं और 'अ' को 20 जनवरी को स्कूटर देना है। यदि 'ब' 1 जनवरी को ही 'अ' को बता दे कि वह 10 जनवरी को पैसा नहीं दे सकेगा तो इसे स्पष्ट रचनात्मक खण्डन कहेंगे।

(2) **गर्मित रचनात्मक खण्डन (Implied Constractive Breach)**:—जब अनुबन्ध का एक पक्षकार निष्पादन की निश्चित तिथि से पूर्व अपने आचरण से यह प्रदर्शित कर देता है कि वह अनुबन्ध का निष्पादन नहीं कर पायेगा तो इसे गर्मित रचनात्मक खण्डन कहते हैं। जैसे—'अ' 'ब' के साथ फरवरी में शादी करने का ठहराव करता है यदि 'अ' जनवरी में किसी अन्य से शादी कर लेता है तो यह गर्मित रचनात्मक खण्डन माना जायेगा।

6.3 अनुबन्ध खण्डन के परिणाम (Consequences of Breach of Contract) (धारा 73–75)

जब अनुबन्ध का एक पक्षकार अपने दायित्वों को पूरा नहीं करता है तो इसे अनुबन्ध का खण्डन कहते हैं। ऐसे खण्डन से दूसरे पक्षकार को हानि उठानी पड़ सकती है ऐसे दूसरे पक्षकार को पीड़ित पक्षकार कहते हैं। पीड़ित पक्षकार को खण्डन करने वाले पक्षकार के विरूद्व निम्नलिखित उपचार प्राप्त होते हैं।

अनुबन्ध खण्डन के लिये उपचार (Remedies for Breach of Contract)

(1) **निष्पादन से मुक्ति (Exoneration)**:—अनुबन्ध खण्डन होने पर पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को समाप्त समझ सकता है और वह अनुबन्ध के निष्पादन के लिये उत्तरदायी नहीं रहता।

(2) **क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार (Claim of Damage)**:— अनुबन्ध के अर्न्तगत पीड़ित पक्षकार को जो हानि हुई है उसे प्राप्त करने के लिये वह दावा प्रस्तुत कर सकता है। क्षतिपूर्ति का आशय मुद्रा के रूप में हुई हानि को प्राप्त करना। अनुबन्ध खण्डन पर हर्जाना क्षतिपूर्ति के लिये है, दण्ड के रूप में नहीं। उदाहरण के लिये— 'अ' 'ब' से कुछ माल एक निश्चित दर पर क्रय करने का अनुबन्ध करता है। 'ब' निश्चित तिथि को माल नहीं देता, इस पर 'अ' को दूसरी जगह से माल क्रय करना पड़ता है, यहाँ पर मूल्य का अन्तर ही 'अ' की हानि है अतः 'अ' हर्जाने के रूप में मूल्य के अन्तर को पाने का अधिकारी है।

(3) **निर्दिष्ट निष्पादन का अधिकार (Claim of Specific Performance)**:—निर्दिष्ट निष्पादन के अधिकार का अभिप्राय ऐसे अधिकार से है जिसमे पीड़ित पक्षकार मूल अनुबन्ध को ही पूरा करा सके। यह अधिकार तभी प्राप्त होता है जब हानि की गणना मुद्रा में न की जा सके या मुद्रा में हर्जाना अपर्याप्त हो। परन्तु जिन अनुबन्धों में हानि मुद्रा मे मापी जा सके तथा ऐसे अनुबन्ध जिनमें निष्पादन पक्षकार की व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित होते हैं उनमें निर्दिष्ट निष्पादन का अधिकार नहीं मिलता है। उदाहरण के लिये— 'अ' किसी विशेष स्थान पर एक मकान पसन्द करता है तथा उसे खरीदने का अनुबन्ध कर लेता है। बाद में विक्रेता मकान देने से इन्कार करता है ऐसी स्थिति में 'अ' के

लिये हर्जाना पर्याप्त नहीं होगा क्योंकि उसी जगह वैसा ही मकान मिलना सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में 'अ' न्यायालय के द्वारा विक्रेता को मकान बेचने के लिये बाध्य कर सकता है।

(4) **निषेध आज्ञा निर्गमित कराना (Issuing of Injunction)** :–निषेध आज्ञा का अर्थ यह है कि न्यायालय दोषी पक्ष को ऐसा कार्य करने से, जिसके लिये निर्दोष पक्ष ने शिकायत की है, रोकने के लिये आदेश देना है। उदाहरण के लिये– 'अ' एक गाने वाला 'ब' के साथ यह अनुबन्ध करता है कि वह एक माह तक उसी के थियेटर में गाना गायेगा अन्य कहीं गाना नहीं गायेगा। 'अ' एक सप्ताह के बाद 'ब' के थियेटर में गाना नहीं गाता बल्कि कहीं और गाना गाता है यहाँ पर 'ब' ने अनुबन्ध का खण्डन किया। 'अ' 'ब' को अपने थियेटर में गाने के लिये बाध्य नहीं कर सकता क्योंकि यह अनुबन्ध व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित है। परन्तु 'अ' न्यायालय द्वारा 'ब' अन्य जगह गाना गाने से रोकने के लिये निषेधाज्ञा निर्गमित करा सकता है।

(5) **उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकार (Claim of Quantum Merit) :-** उचित पारिश्रमिक का अर्थ है "किसी व्यक्ति को उतना धन देना जितना कि उसने अर्जित किया है"। अर्थात वास्तविक कार्य करने का पारिश्रमिक पाने का अधिकार। यह सिद्वान्त अनेक दशाओं में लागू होता है –

(1) जहाँ एक व्यक्ति ने सम्पूर्ण कार्य का केवल कुछ भाग ही कार्य किया और दूसरा पक्षकार अनुबन्ध का खण्डन कर दे। उदाहरण – 'अ' 'ब' के साथ सम्पूर्ण मकान की मरम्मत करने का कार्य का अनुबन्ध करता है। 'ब' मकान का कार्य प्रारम्भ कर देता है परन्तु कार्य पूर्ण होने से पहले ही 'अ' कार्य रूकवा देता है यहाँ पर 'ब' हानि के अलावा जितना कार्य पूर्ण कर लिया है उसका पारिश्रमिक पाने का अधिकारी है।

(2) जहाँ एक व्यक्ति ऐसे अनुबन्ध के अर्न्तगत कार्य करता है जो कि व्यर्थ है। उदाहरण – 'अ' एक कम्पनी में प्रबन्धक नियुक्त हुआ है परन्तु यह नियुक्ति गलत ढंग से की गई थी। नियुक्त करने वाले को अधिकार ही नहीं था अर्थात नियुक्ति का अनुबन्ध व्यर्थ था। यहाँ 'अ' ने जितने समय कार्य किया है वह उतने समय का पारिश्रमिक पाने का अधिकारी है।

(3) जहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के स्पष्ट आदेश के बिना उसका कार्य करता है परन्तु कार्य करने का उद्देश्य पारिश्रमिक पाना था अथवा दूसरे व्यक्ति के आदेश पर कार्य करता है परन्तु पारिश्रमिक के सम्बन्ध में कोई बात नहीं होती है तो इन दशाओं में कार्य करने वाला उचित पारिरमिक पाने का अधिकारी है।

6.4 क्षतिपूर्ति के लिये प्रतिकर (हर्जाना) की राशि निश्चित करने के नियम (Rules regarding the determination of damage)

हर्जाने का अर्थ मुद्रा में क्षतिपूर्ति से है जिसे कि पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध के खण्डन की अवस्था में पाने का अधिकारी है। हर्जाने की राशि निश्चित करने में निम्न केस महत्वपूर्ण हैं :

हैडले बनाम वैक्सैन्डेल के मामले में हैडले की मिल में मशीन के एक भाग के टूट जाने के कारण काम रूक गया था। उसने वैक्सैन्डेल नाम के लोक वाहक को मशीन के उस टूटे हुये भाग को ग्रीनविच मे मशीन के निर्माता के पास मरम्मत

के लिये ले जाने का काम सौंपा। वैक्सेन्डेल को यह पता नहीं था कि मशीन के कारखाने मे पहुचने में देर होने के कारण हैडले को मुनाफे में हानि उठानी पड़ेगी। उसकी असावधानी के कारण मशीन के पहुचने में आवश्यकता से अधिक देर हो गयी। हैडले ने वैक्सेन्डेल के विरूद्व देरी के कारण कारखाना चालू न होने से सम्बन्धित सभी प्रकार के व्ययों, हानियों एवं लाभ प्राप्त न कर सकने के कारण होने वाली हानि सभी के लिये प्रतिकर पाने के लिये मुकदमा चलाया। न्यायालय द्वारा काम रूक जाने के कारण हैडले द्वारा व्यय किये गये धन के लिये प्रतिकर पाने की हैडले की मांग स्वीकार कर ली, क्योंकि इस प्रकार की हानियां अनुबन्ध के खण्डन का स्वाभाविक परिणाम थी परन्तु न्यायालय ने हैडले के लाभ अर्जन न किये जाने के कारण होने वाली हानि के लिये प्रतिकर प्राप्त करने की मांग को अस्वीकार कर दिया। क्योंकि वह एक विशेष एवं परोक्ष प्रकार की हानि थी उसके लिये केवल तभी प्रतिकर प्राप्त किया जा सकता था जब कि दूसरे पक्षकार को उसकी पूर्व सूचना रही होती।

इस प्रकार उपरोक्त केस में कुछ सिद्वान्तों का प्रतिपादन किया गया। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की 73 व 74 धारायें इन्ही सिद्वान्तों पर आधारित हैं। जो कि निम्नलिखित हैं –

(1) प्रतिकर निश्चित करने का सर्वप्रथम सिद्वान्त यह है कि जब किसी पक्षकार को अनुबन्ध के खण्डन के कारण कोई हानि हुई हो, तो उसे कम से कम आर्थिक दृष्टिकोण से उसी स्थिति मे कर दिया जाये जिसमे वह अनुबन्ध के निष्पादन हो जाने पर रहा होता। पीड़ित पक्षकार को वास्तविक हानि की पूर्ति के लिये ही केवल प्रतिकर दिलाया जाता है। प्रतिकर के लिये डिग्री प्राप्त करने मे हुए व्यय को भी प्राप्त किया जा सकता है।

(2) क्षतिपूर्ति के लिये प्रतिकर मांगने का अधिकार उस पक्षकार को है जिसे अनुबन्ध भंग होने से हानि उठानी पड़ी हो। प्रतिकर देने का दायित्व उस पक्षकार का है जिसने अनुबन्ध भंग किया हो।

(3) प्रतिकर निम्नलिखित हानियों के प्रति दिया जाता है :–

(अ) यदि क्षतिपूर्ति अनुबन्ध खण्डन के स्वाभाविक परिणाम स्वरूप हुई हैं। उदाहरण के लिये 'अ' 'ब' को 100 किलो चावल देने का अनुबन्ध करता है। बाद में 'अ' वचन को तोड़ देता है, ऐसी दशा में 'ब' 100 किलो चावल अन्य स्थान से खरीदने का अधिकारी है। यदि चावलो का भाव 25 पैसे प्रति किलो की दर से बढ जाता है तो वह 'अ' से 25 रू0 के हर्जाने की मांग कर सकता है।

(ब) यदि अनुबन्ध करते समय दोनो पक्षकारों को यह ज्ञान था कि खण्डन की दशा में इस प्रकार की क्षति होगी अथवा पक्षकारों को खण्डन के परिणामों का ज्ञान था। उदाहरण के लिये– 'अ' 'ब' को नियत तिथि को 1000 टन कोयला 120 रू0 प्रति टन के हिसाब से बेचने का अनुबन्ध करता है। इस अनुबन्ध के निष्पादन के लिये अ 'स' से उसी नियत तिथि को 1000 टन कोयला दर 95 रू0 प्रति टन से खरीदने का अनुबन्ध करता है। अनुबन्ध करते समय वह 'स' को स्पष्ट रूप से बताता है कि यह कोयला उसे अपने वचन के निष्पादन के लिये चाहिये। नियत तिथि को 'स' कोयले की सुपुर्दगी नहीं देता। और इस प्रकार अनुबन्ध का खण्डन हो जाता है। उधर कोयला न मिलने से 'ब' अनुबन्ध को निरस्त कर देता है। ऐसी स्थिति में 'अ' 'स' से 25000 रू0 जो कि उसे अनुबन्ध

के निष्पादन के परिणाम स्वरूप लाभ के रूप में प्राप्त होते, प्राप्त करने का अधिकारी है।

(4) यदि अनुबन्ध के खण्डन से होने वाली हानि दूर की तथा अप्रत्यक्ष हो तो हर्जाना नहीं मिलेगा। उदाहरण के लिये– 'अ' 'ब' को नियत दिन 500 रूई की गांठे देने का वचन देता है। 'ब' 'अ' को यह नहीं बतलाता कि रूई उसे किस कार्य के लिये चाहिये। 'अ' अपने वचन का खण्डन कर देता है जिसके परिणाम स्वरूप रूई न मिलने से 'ब' की कपड़े की मिल बन्द हो जाती है। यहाँ 'अ' 'ब' के प्रति मिल बन्द होने से हुई हानि की पूर्ति करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता है।

(5) अनुबन्ध के खण्डन से होने वाली हानि का अनुमान लगाते समय अनुबन्ध का निष्पादन न होने के कारण होने वाली असुविधाओं को दूर करने के लिये उपलब्ध साधनों का भी ध्यान रखना चाहिये। उन साधनों का उपयोग करने मे जो व्यय करना पड़े उसे दोषी पक्षकार से लिया जा सकता है। इस प्रकार अनुबन्ध खण्डन से पीड़ित पक्षकार से यह आशा की जाती है कि वह हानि की मात्रा को न्यूनतम करने के लिये यथोचित कार्यवाही करे। पीड़ित पक्षकार अपनी ही असावधानी के कारण होने वाली हानियों के लिये किसी प्रकार के प्रतिकर की मांग नहीं कर सकता है। उदाहरण के लिये– 'अ' 'ब' से अपने मकान की दीवार की मरम्मत करने का अनुबन्ध करता हैं 'अ' अनुबन्ध का खण्डन कर देता है। 'ब' उसकी मरम्मत के लिये कोई कदम नहीं उठाता और इस प्रकार दीवार गिर जाती है। 'अ' उसे दीवार के गिरने से हुई हानि के प्रति क्षतिपूर्ति के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता है।

(6) जब अनुबन्ध करते समय पक्षकार इस बात पर सहमत हो गये हो कि अनुबन्ध खण्डन की दशा में दोषी पक्षकार एक निश्चित धनराशि देगा तो ऐसी दशा में पीड़ित पक्षकार उचित हर्जाने पाने का अधिकारी होगा। यह हर्जाना निर्धारित धन से अधिक नहीं होना चाहिये। उदाहरण के लिये– 'अ' 'ब' को 6 प्रतिशत ब्याज पर 1000 रू0 ऋण देता है। भुगतान एक वर्ष के अन्त में करना है तथा इस बात पर भी सहमत होते हैं कि त्रुटि करने पर 80 प्रतिशत ब्याज देना होगा। 80 प्रतिशत ब्याज की शर्त दण्डस्वरूप है, इसलिये खण्डन होने पर 'अ' क्षतिपूर्ति के लिये केवल वही राशि देने के लिये उत्तरदायी है जिसे न्यायालय उचित समझे। तथा जो 80 प्रतिशत ब्याज से अधिक न हो।

6.5 सारांश

जब अनुबन्ध पूर्ण हो जाता है अथवा जब किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत उत्पन्न अधिकार एवं दायित्व समाप्त हो जाते है तो उसे अनुबन्ध की समाप्ति कहा जाता है। अनुबन्ध की समाप्ति समान्यतः निष्पादन द्वारा होती है अर्थात अनुबन्धों को पूरा कर के। निष्पादन के अलावा पारस्परिक ठहराव द्वारा भी अनुबन्ध समाप्त किया जाता है अर्थात अनुबन्ध के पक्षकार ठहराव कर सकते है जिसके अनुसार अनुबन्ध पूरा किये बिना भी वह समाप्त हो जाता है ऐसा नवकरण, परिवर्तन, छुटकारा तथा आश्वासन द्वारा किया जा सकता है। जब किसी अनुबन्ध को पूर्ण करना असम्भव हो जाए तो भी अनुबन्ध समाप्त हो जाता है परन्तु ऐसी असम्भवता व्यापारिक या व्यक्ति की परेशानी या हड़ताल व तालाबन्दी आदि के कारण न हो। अधिनियम द्वारा विभिन्न प्रकार के अनुबन्धों को पूर्ण करने की समय सीमा निर्धारित

की गयी है । ऐसी समय सीमा समाप्त होने पर भी अनुबन्ध समाप्त हो जाते है। कुछ अनुबन्धों में कानून के प्रावधान लागू हो जाने के कारण भी उन्हें पूरा नहीं कराया जा सकता है जैसे दिवालीया अधिनियम के अनुसार, यदि कोई पक्षकार दिवालीया धोषित हो जाए तो उससे अनुबन्ध पूरा नहीं कराया जा सकता अर्थात उसके साथ का अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। अनुबन्ध का खण्डन करके भी उसे समाप्त किया जा सकता है अर्थात अनुबन्ध का एक पक्षकार निष्पादन करने से मना कर दे तो उसे खण्डन कहते है और अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। अनुबन्ध का खण्डन वास्तविक तथा रचनात्मक हो सकता है।

अनुबन्ध का खण्डन करने पर दूसरा पक्षकार पीड़ित पक्षकार कहलाता है। उसे अनुबन्ध का खण्डन होने पर कुछ उपचार या अधिकार प्राप्त हो जाते है जैसे – उसे अनुबन्ध के अन्र्तगत अपने दायित्व को पूरा करने की आवश्यकता नहीं होती, उसे अनुबन्ध के अन्र्तगत मुद्रा में जो हानि होती है उसे वह प्राप्त करने का अधिकारी होता है यदि हानि की गणना मुद्रा में न हो सकती हो तो उसे निद्रिष्ट निष्पादन का अधिकार प्राप्त होता है, वह खण्डन करने वाले पक्ष के विरूद्व निषेध आज्ञा निर्गमित करा सकता है यदि पीड़ित पक्षकार ने अनुबन्ध के अन्र्तगत कुछ कार्य कर दिया है परन्तु कार्य पूरा नहीं करवाया गया या कार्य रूकवा दिया गया तो पीड़ित पक्षकार को उचित पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है।

6.6 शब्दावली

अनुबन्ध की समाप्ति : किसी अनुबन्ध से उत्पन्न होने वाले अधिकारों एवं दायित्वों के समाप्त हो जाने को अनुबन्ध की समाप्ति कहा जाता है।

वास्तविक निष्पादनः जब अनुबन्ध का प्रत्येक पक्षकार निर्धारित समय के भीतर और बताये गये ढंग से अपना दायित्व पूरा कर लेता है, तो इसे अनुबन्ध का 'वास्तविक निष्पादन' कहते है।

6.7 बोध प्रश्न

क– निम्न में सही उत्तरों का चयन कीजिये –

1. जब मूल अनुबन्धों के पक्षकारों में से एक पक्षकार के दायित्व तृतीय पक्ष ले लेता है तो इसे .... कहते है –

अ – नवकरण
ब – परिवर्तन
स – छुटकारा
द – सन्तुष्टि

2. परिवर्तन में पारस्परिक ठहराव द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति होती है जिसमें–

अ – मूल अनुबन्ध के पक्षकार बदले जाते है।
ब – मूल अनुबन्ध की शर्त बदल जाती है।
स – मूल अनुबन्ध से कम प्रतिफल स्वीकार किया जाता है।
द – उपरोक्त में से कोई नहीं।

3. आक्समिक असम्भवता के कारण अनुबन्ध .... हो जाता है –

अ – वैध
ब – व्यर्थ
स – व्यर्थनीय
द – अवैधानिक

4. अनुबन्ध के अर्न्तगत एक पक्षकार को आकृति बनाकर देनी है परन्तु वह नही बना पाता इस दशा में दूसरे पक्षकार को .... उपचार प्राप्त है –

अ – हर्जाना प्राप्त करने का।

ब – निद्रिष्ट निष्पादन करवाने का।

स – निषेधाज्ञा जारी करवाने का।

द – उचित पारिश्रमिक प्राप्त करने का।

5. यदि अनुबन्ध का एक पक्षकार अनुबन्ध पूर्ण करने की तिथि से पहले ही अनुबन्ध को पूर्ण करने में अपनी असमर्थता व्यक्त कर देता है तो इसे .... कहते है –

अ – वास्तविक खण्डन।

ब – स्पष्ट रचनात्मक खण्डन।

स – गर्भित रचनात्मक खण्डन।

द – उपरोक्त में से कोई नहीं।

6. लिमिटेशन अधिनियम द्वारा निर्धारित समय .... समाप्त हो जाए तो धन की वसूली के लिए वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है –

अ – दो वर्ष।

ब – तीन वर्ष।

स – पांच वर्ष।

द – दस वर्ष।

7. यदि अनुबन्ध पूर्ण करने की तिथि पर एक पक्षकार अनुबन्ध पूर्ण नहीं करता है तो इसे .... कहते है –

अ – वास्तविक खण्डन।

ब – स्पष्ट रचनात्मक खण्डन।

स – गर्भित रचनात्मक खण्डन।

द – उपरोक्त में से कोई नहीं।

8. अनुबन्ध खण्डन की दिशा में पीड़ित पक्षकार को निम्न में से कौन सा उपचार उपलब्ध नहीं होता –

अ – छुटकारे के लिए दावा।

ब – हानि के लिए दावा।

स – निद्रिष्ट निष्पादन के लिए दावा।

द – भारतीय दण्ड विधान के अर्न्तगत दावा।

9. न्यायालय द्वारा निद्रिष्ट निष्पादन का आदेश निम्न दशा में नही दिया जायेगा –

अ – जब मुद्रा में क्षतिपूर्ति न दी जा सकें।

ब – जब अनुबन्ध व्यक्तिगत प्रकृति का हो।

स – उक्त दोनों दशाओं में।

द – इनमें से कोई नहीं।

10. 'अ' अपनी साइकिल 1000 रू में 'ब' को 30 मार्च 2016 को बेचने को सहमत होता है। परन्तु 'अ' 10 मार्च 2016 को 'ब' को सूचित करता है कि वह अपनी साइकिल नहीं बेचेगा। यह................

अ – वास्तविक अनुबन्ध का खण्डन है।

ब – स्पष्ट रचनात्मक अनुबन्ध का खण्डन है।
स – गर्भित रचनात्मक अनुबन्ध का खण्डन है।
द – उपरोक्त में से कोई नहीं।

ख – रिक्त स्थानों को भरियें –

1. पुराने अनुबन्ध के बदले नये अनुबन्ध होने को .... कहते है।
2. हड़ताल व तालाबन्दी के कारण अनुबन्ध .... होता है।
3. अनुबन्ध की देय तिथि से पूर्व ही अनुबन्ध का खण्डन करना .... कहलाता है।
4. अनुबन्ध में अधिकार से कम प्राप्त करने की सहमति को .... कहते है।
5. आकस्मिक असम्भवता होने पर अनुबन्ध .... हो जाता है।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क –

1. अ	2. ब	3. ब	4. अ	5. ब
6. ब	7. अ	8. द	9. स	10. ब

ख –

1. नवकरण,	2. समाप्त नहीं,	3. रचनात्मक खण्डन,
4. सन्तुष्टि,	5. व्यर्थ / समाप्त,	

6.9 स्वपरख प्रश्न

(1) एक अनुबन्ध की समाप्ति के विभिन्न ढंगो का वर्णन कीजिये ?
State the various modes in which contract may be discharged.

(2) किन परिस्थितियों में अनुबन्ध के निष्पादन की आवश्यकता नहीं होती ?
Under what circumstances contract need not be performed.

(3) भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार भुगतान के नियोजन से सम्बन्धित नियमों का वर्णन कीजिये?
State the law governing the appropriation of payments according to Indian Contract Act?

(4) एक अनुबन्ध के निष्पादन के समय और स्थान के सम्बन्ध में क्या वैधानिक नियम हैं ? अनुबन्धों के निष्पादन में समय कब अनुबन्ध का सार माना जाता है और इसके क्या परिणाम होते हैं ?
What are the statutory rules relating to the time and place of the performance of a contract? When is the time deemed to the essence of the contract in the performance of contracts and with what consequences?

(5) अनुबन्ध भंग के प्रति पीड़ित पक्षकार को प्राप्य विभिन्न प्रकार के उपचारों की संक्षेप मे व्याख्या कीजिये ?
Briefly explain the different kinds of remedies available to an aggrieved party for breach of contract.

6.10 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई – 7 संयोगिक एवं अर्द्ध अनुबन्ध (Contingent and Quasi Contract)

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 सयोगिक अनुबन्ध का अर्थ
7.3 सयोगिक अनुबन्ध के विशेष लक्षण
7.4 बाजी के ठहराव और सयोगिक अनुबन्ध में अन्तर
7.5 सयोगिक अनुबन्ध के प्रवर्तनीय होने के नियम
7.6 अर्द्व अनुबन्ध का अर्थ
7.7 अर्द्व अनुबन्धों के सम्बन्ध में नियम
7.8 पड़ा हुआ माल पाने वाले के कर्तव्य तथा अधिकार
7.9 सारांश
7.10 शब्दावली
7.11 बोध प्रश्न
7.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.13 स्वपरख प्रश्न
7.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- सयोगिक अनुबन्ध को समझ सकें।
- सयोगिक अनुबन्ध का अन्य अनुबन्ध से अन्तर समझ सकें।
- अर्द्ध अनुबन्ध का अर्थ समझ सकें।
- अर्द्ध अनुबन्धों के सम्बन्ध में अधिनियम की व्यवस्थाए जान सकें।
- पड़ा हुआ माल पाने वाले के क्या कर्तव्य अधिकार होते है, को समझ सकें।

7.1 प्रस्तावना

पिछले इकाईयों में आप पढ़ चुके है कि वैध अनुबन्ध किसे कहते है वैध अनुबन्ध होने के लिए क्या विशेषताएं होनी चाहिए तथा अनुबन्ध की समाप्ति कैसे होती है, अनुबन्ध का खण्डन होने पर पीड़ित पक्षकार को क्या उपचार प्राप्त होते है। इस इकाई में आप ऐसे अनुबन्धों का अध्ययन करेंगे जिनमें अनुबन्ध की सभी विशेषताए न होने पर भी वे वैधानिक होते है तथा प्रवर्तनीय होते है।

7.2 संयोगिक अनुबन्ध का अर्थ (Meaning of Contingent Contract)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 31 के अनुसार, "संयोगिक अनुबन्ध किसी कार्य को करने या न करने का एक ऐसा अनुबन्ध है जिसका निष्पादन किसी ऐसी घटना के घटित होने या न होने पर निर्भर करता है जो अनुबन्ध के समपार्श्विक (Collateral) है"। अतः संयोगिक अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध होता है जिसका निष्पादन किसी अनिश्चित घटना के घटित होने या न होने पर निर्भर करता है और सम्बन्धित घटना अनुबन्ध के समपार्श्विक होती है। बीमे के अनुबन्ध तथा हानि रक्षा अनुबन्ध इसी प्रकार के अनुबन्ध होते हैं। उदाहरण – राम, मोहन की जमीन इस शर्त पर क्रय करने की सहमति देता है यदि उस

जमीन के सम्बन्ध में चल रहे विवाद में वह जीत जाये, यह अनुबन्ध संयोगिक अनुबन्ध है। 'अ' 'ब' के साथ यह अनुबन्ध करता है कि 'ब' के कारखाने के आग से नष्ट हो जाने पर वह उसकी 2 लाख रूपये तक की छतिपूर्ति करेगा और इसके प्रतिफल स्वरूप 'ब' उसे 500 रूपये मासिक प्रीमियम देगा। 'अ' तथा 'ब' का यह अनुबन्ध संयोगिक अनुबन्ध है।

7.3 संयोगिक अनुबन्ध के विशेष लक्षण (Special Features of a Contingent Contract)

संयोगिक अनुबन्ध में सामान्य वैध अनुबन्ध के समस्त विशेषताओं के अतिरिक्त निम्न विशेषतायें होती है–

1– निष्पादन का दायित्व किसी अनिश्चित घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर करता है :–

(अ) **घटना के घटने पर संयोगिक अनुबन्ध** :– ऐसे संयोगिक अनुबन्ध जो किसी अनिश्चित घटना के घटने पर आधारित हो तो उन्हें राजनियम द्वारा उसी समय प्रवर्तनीय कराया जा सकता है जब वह घटना घट जाये। यदि उस घटना का घटित होना असम्भव हो जाये तो ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा। जैसे– राम, मोहन को उसके भवन में आग लग जाने की शर्त पर 20000 रू0 देने का अनुबन्ध करता है। यहां पर किसी घटना के घटित होने पर किसी कार्य को करने का संयोगिक अनुबन्ध है अर्थात राम द्वारा बचन का निष्पादन आग लगने की शर्त पर निर्भर है। यह अनुबन्ध राजनियम द्वारा तभी प्रवर्तित होगा जब मोहन के मकान में आग लगेगी।

(ब) **घटना के घटित न होने पर संयोगिक अनुबन्ध** :– किसी भावी अनिश्चित घटना के घटित न होने पर कोई संयोगिक अनुबन्ध आधारित हो तो उसे उसी समय राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराया जा सकता है जब कि उस घटना का घटित होना असम्भव हो जाये इससे पहले नहीं। उदाहरण– 'एम' ने 'आर' से ऋण लिया है। 'एस' 'आर' को बचन देता है कि यदि 'एम' ऋण की राशि वापस नहीं करेगा तो वह उसे धनराशि वापस करेगा। यहां पर संयोगिक अनुबन्ध किसी घटना के घटित न होने (अर्थात 'एम' द्वारा धन वापस न करना) पर आधारित है।

उदाहरण – 'अ','ब' के साथ अनुबन्ध करता है कि यदि कोई निश्चित जहाज लौटकर नही आया तो वह प्रीमियम लेकर उसे निश्चित रकम (बीमे के दावे के रूप में) देगा। उक्त जहाज डूब जाता है, जहाज डूबने पर ब द्वारा अनुबन्ध को प्रवर्तनीय कराया जा सकता है।,

2– घटना अनुबन्ध के समपार्श्विक होनी चाहिये :– संयोगिक अनुबन्ध के लिये यह भी आवश्यक है कि अनिश्चित घटना जिस पर संयोगिक अनुबन्ध आधारित है वह अनुबन्ध का भाग नहीं होना चाहिये वह अनुबन्ध के समपार्श्विक होना चाहिये। उदाहरण– राम, मोहन से कहता है कि वह उसे 5000 रू0 तब देगा जब वह उसे अपना घोड़ा देगा। यहां घटना (अर्थात घोड़ा देने पर रूपया देने) अनुबन्ध का ही हिस्सा है इसलिये यह साधारण अनुबन्ध हुआ संयोगिक अनुबन्ध नहीं।

समपार्श्विक घटना एक ऐसी घटना होती है जो अनुबन्ध में प्रतिफल के रूप में नही होती और उससे अलग होती है। जैसे अ, ब नामक ठेकेदार के साथ यह अनुबन्ध करता है कि वह उसे निर्दिष्ट भवन के निर्माण के बदले एक लाख रूपये देगा बशर्ते कि उसके निर्माण–कार्य का वास्तुविद् (Architect) अनुमोदन कर दे।

यह एक संयोगिक अनुबन्ध है क्योकि इसमे एक लाख रूपयें देने का प्रतिफल भवन निर्माण है और अनुबन्ध से सम्बद्ध घटना अर्थात् वास्तुविद् द्वारा अनुमोदन, एक समपार्श्विक घटना है जिसका प्रतिफल से कोई सम्बन्ध नही है तथा जिसके घटित होने पर ही अनुबन्ध के आधीन अधिकारों को प्रवर्तित कराया जा सकता है।

3– **घटना बचनदाता की इच्छा पर निर्भर नहीं होनी चाहिये :–** संयोगिक अनुबन्ध के लिये यह भी आवश्यक है कि जिस घटना पर अनुबन्ध आधारित है वह घटना बचनदाता की इच्छा पर निर्भर नहीं होनी चाहिये। जैसे– राम, मोहन से कहता है कि "यदि मैने चाहा तो मैं तुम्हे 5000रू0 दूंगा"। यहां पर 'मैने चाहा' जो घटना है यह राम की इच्छा पर निर्भर है इसलिये इसे संयोगिक अनुबन्ध नहीं कहेंगे।

बीमा तथा हानि–रक्षा सम्बन्धी अनुबन्ध (Contrect of Insurance and Indemnity) संयोगिक अनुबन्ध की श्रेणी में आते है। जीवन बीमा अनुबन्ध में किसी व्यक्ति के एक निश्चित समय तक जीवित रहने पर अथवा उसकी मृत्यु पर पालिसी में निश्चित किया हुआ धन देय होता है, इसी प्रकार अग्नि बीमा एवं सामुद्रिक बीमा में किसी सम्पत्ति या वस्तु के नष्ट हो जाने पर या हानि पहुचने पर हानि पूर्ति का वचन होता है। एक ऐसा ठहराव जिसमें कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को वह धन देने का वचन देता है जो किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा निश्चित किया जाना है एक संयोगिक अनुबन्ध है। किसी ठेकेदार के साथ ऐसा ठहराव जिसमें कि पारिश्रमिक इंजीन्यिर द्वार प्रमाण प्रत्र देने पर निर्भर है संयोगिक अनुबन्ध है। किसी समारोह को देखने के लिए किसी निद्रिष्ट स्थान को प्रयोग करने का अनुबन्ध संयोगिक अनुबन्ध हो सकता है क्योंकि वह समारोह के होने या ना होने पर निर्भर है।

4 – किसी असम्भव घटना के घटित होने पर किसी कार्य को करने या न करने का अनुबन्ध व्यर्थ होता है चाहे ऐसा अनुबन्ध करते समय उसके पक्षकारो को घटना की असम्भवता की जानकारी रही हो या न रही हो।

उदाहरण– अ, ब से कहता है कि यदि वह उसकी पुत्री से विवाह कर ले तो वह उसे 5 लाख रूपये ऋण दे देगा। इस अनुबन्ध के किये जाने के समय अ की पुत्री मर चुकी थी जिसकी जानकारी दोनो को नही थी यहाँ पर अ तथा ब का अनुबन्ध व्यर्थ हुआ।

5 – यदि किसी अनिश्चित घटना के निश्चित समय में घटने पर किसी कार्य को करने या न करने के लिये संयोगिक अनुबन्ध हुआ हो तो ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ होगा यदि ऐसा निश्चित समय व्यतीत हो गया हो और घटना न घटी हो अथवा निश्चित समय से पूर्व ही घटना का घटित होना असम्भव हो जाये। (धारा 34)

उदाहरण – 'अ' 'ब' को कुछ धन देने का वचन देता है यदि एक निद्रिष्ट जहाज एक वर्ष के भीतर लौट आता है। उस जहाज के एक वर्ष के लौट आने पर अनुबन्ध प्रवर्तित कराया जा सकता है, किन्तु यदि जहाज एक वर्ष के भीतर ही जल कर नष्ट हो जाता है तो अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा।

6 – यदि किसी अनिश्चित घटना के निश्चित समय में न घटने पर किसी कार्य के करने या न करने के लिये संयोगिक अनुबन्ध हुआ हो तो ऐसा अनुबन्ध प्रवर्तनीय होगा यदि निश्चित समय बीत जाये और घटना न घटित हो अथवा निश्चित समय से पहले ही घटना का न घटना निश्चित हो जाये। (धारा 35)

उदाहरण – 'अ' 'ब' के कुछ धन देने का वचन देता है यदि एक निद्रिष्ट जहाज एक वर्ष के भीतर नहीं लौटता। यदि जहाज एक वर्ष के भीतर नहीं लौटता अथवा एक वर्ष के अन्दर ही जल कर नष्ट हो जाता है तो अनुबन्ध प्रवर्तित कराया जा सकता है।

7.4 बाजी के ठहराव और संयोगिक अनुबन्ध में अन्तर (Diffrence between Wagering agreement and contingent contract)

बाजी के ठहराव तथा संयोगिक अनुबन्ध दोनो ही किसी अनिश्चित घटना पर आधारित है परन्तु इन दोनो में निम्नलिखित अन्तर भी है–

1– संयोगिक अनुबन्ध वैद्य होते है तथा प्रवर्तनीय होते है जब कि बाजी लगाने के ठहराव स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित ठहराव है।

2– संयोगिक अनुबन्ध में पक्षकारों का घटना के घटित होने या न होने में वास्तविक हित होता है जब कि बाजी के ठहराव के पक्षकारों का घटना के घटित होने या न होने में, दाँव में लगी रकम की जीत या हार के अतिरिक्त कोई हित नही होता।

3– बाजी के ठहराव में दोनों पक्षकारों में से किसी की भी जीत अथवा हार होती है और एक का लाभ दूसरे की हानि होती है जब संयोगिक अनुबन्ध में ऐसा नही होता।

7.5 संयोगिक अनुबन्धों के प्रवर्तनीय होने के लिये नियम (Rules for Inforcement of Contingent Contrect)

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 32 से 36 के अनुसारर, संयोगिक अनुबन्धों के विभिन्न दशाओं में, प्रवर्तनीय होने के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम हैं–

1. संयोगिक अनुबन्ध जो किसी भावी अनिश्चित घटना के घटित होने पर निर्भर होते है उन्हें राजनियम द्वारा उस समय तक प्रवर्तित नही कराया जा सकता है जब तक वह घटना घटित नहीं हो जाती। यदि उक्त घटना का घटित होना असम्भव हो जाता है तो ऐसे अनुबन्ध व्यर्थ हो जाते है। (धारा 32)

उदाहरण – 1. 'अ' 'ब' के साथ अनुबन्ध करता है कि यदि वह 'स' की मृत्यु हो जाने के बाद जीवित रहा तो वह 'ब' का मकान खरीद लेगा। यह अनुबन्ध राजनियम द्वारा उस समय तक प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता जब तक कि 'अ' के जीवित रहते हुए 'स' की मृत्यु न हो जाये।

2. 'अ' 'ब' को निश्चित मूल्य पर एक घोड़ा बेचने का अनुबन्ध करता है यदि 'स' जिसने पहले घोड़ा खरीदनें की बात की है, खरीदने से मना कर दें। यह अनुबन्ध राजनियम द्वारा उस समय तक प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता है जब तक कि 'स' घोड़ा खरीदने से मना नहीं कर देता। (यदि 'स' ही घोड़ा खरीद ले तो 'अ' तथा 'ब' के बीच अनुबन्ध व्यर्थ हो जायेगा।)

2. संयोगिक अनुबन्ध जो कि किसी अनिश्चित भावी घटना के न होने पर निर्भर होते है वे राजनियम द्वारा उस समय प्रवर्तित कराये जा सकते है जब कि उस घटना का होना असम्भव हो जाता है, उससे पहले नहीं। (धारा 33)

उदाहरण – 'अ' 'ब' को एक निद्रिष्ट जहाज के वापस न आने की दशा में कुछ धन देने का ठहराव करता है, जहाज डूब जाता है। अनुबन्ध जहाज के डूब जाने पर प्रवर्तित कराया जा सकता है अर्थात् 'अ' का धनराशि का भुगतान करना होगा।

7.6 अर्द्ध अनुबन्ध का अर्थ (Meaning of Quasi Contract)

साधारणतया वैध अनुबन्ध होने के लिये उसमें वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों का होना आवश्यक होता है तभी वह वैधानिक रूप से प्रवर्तनीय होता है। परन्तु कुछ ऐसे व्यवहार जिनमें वैध अनुबन्ध के लक्षण विद्यमान नहीं होते हैं परन्तु वे उसी प्रकार दायित्व उत्पन्न करते हैं जैसे कि वैध अनुबन्ध द्वारा उत्पन्न होते हैं। कानून की दृष्टि में ऐसे व्यवहार अनुबन्ध माने जाते हैं ऐसे अनुबन्धों को ही 'अर्द्व अनुबन्ध' कहते हैं। जैसे प्रत्येक अनुबन्ध के लिये प्रस्ताव तथा उसकी स्वीकृति होना आवश्यक है परन्तु कुछ व्यवहारों में प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रस्ताव तथा उसकी स्वीकृति नहीं होती। परन्तु पक्षकारों के व्यवहारों, परिस्थितियों, पक्षकारों के सम्बन्ध तथा आचरण के आधार पर कानून पक्षकारों के बीच प्रस्ताव तथा स्वीकृति का होना मानता है इसीलिये ऐसे अनुबन्धों को "गर्भित अनुबन्ध" भी कहते हैं। भारतीय कानून में इन्हें **'अनुबन्धों से उत्पन्न सम्बन्धों से मिलते जुलते कुछ सम्बन्ध'** (Certain Relations Resembliing those Created by Contract) की संज्ञा प्रदान की गई है। अर्द्व अनुबन्ध शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि क्योकि अनुबन्ध प्रभाव और परिणाम की दृष्टि से तो सामान्य अनुबन्ध जैसे होते है परन्तु निर्माण की दृष्टि से इसमें और सामान्य अनुबन्ध में कोई समानता नही होती।

अर्द्व अनुबन्ध 'अनुचित सम्पन्नता के साम्यिक सिद्वान्त' (Equitable Doctrine of Unjest Enrichment) पर आधारित होता है जिसके अनुसार, किसी व्यक्ति को इस बात की छूट नहीं दी जा सकती है कि वह दूसरे व्यक्ति को हानि पहुचाकर अन्यायपूर्ण तरिके से लाभ उठाता रहे। ऐसे अनुबन्धों का आधार कर्तव्य होता है न कि वचन या ठहराव। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य बात है कि अर्द्व अनुबन्ध के खण्डन किये जाने के मामले में छतिपूर्ति का दावा उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार से सामान्य अनुबन्ध के मामले में किया जाता है।

7.7 अर्द्व अनुबन्धों के सम्बन्ध में नियम (Rules Regarding Quasi Contract)

अनुबन्ध अधिनियम की धाराएं 68 से 72 तक ऐसे ही अनुबन्धों के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है।

(1) अनुबन्ध करने के अयोग्य व्यक्तियों की आवश्यकता पूर्ति की वस्तुओं के मूल्य के लिये दावा (claim for necessaries supplied to person incapable of contracting):–

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 68 के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति ऐसे व्यक्ति की जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है जो अनुबन्ध करने के अयोग्य है तथा किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है जिसका पालन पोषण करने के लिए वह अयोग्य व्यक्ति वैधानिक रूप से बाध्य है, तो इस प्रकार पूर्ति करने वाला व्यक्ति ऐसे अयोग्य व्यक्ति की सम्पत्ति से अपना धन वसूल कर सकता है। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बातें निम्न हैं–

(अ) इस धारा के अनुसार आवश्यक वस्तुओं या धन की पूर्ति करने वाला व्यक्ति अनुबन्ध करने के अयोग्य व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता है केवल उसकी सम्पत्ति को उत्तरदायी ठहरा सकता है यदि उसके पास सम्पत्ति हो। यदि अयोग्य व्यक्ति के पास कोई सम्पत्ति नहीं है तो वह हानि पूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं होगा अर्थात् उससे कुछ भी वसूला नहीं जा सकता है।

(ब) आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति अनुबन्ध करने के अयोग्य व्यक्ति तथा उस पर आश्रित व्यक्तियों के लिये होनी चाहिये। जैसे– अयोग्य व्यक्ति की पत्नी और उसकी सन्तान।

(स) पूर्ति की गई वस्तुएं आवश्यकता की वस्तुओं की कोटी के अर्न्तगत आनी चाहिये। आवश्यकता की वस्तुएं क्या होगी यह प्रत्येक मामले की परिस्थिति पर निर्भर होगा। आवश्यक वस्तुओं की परिधि में जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तुएं जैसे भोजन वस्त्र ही नहीं बल्कि ऐसी सभी सभी वस्तुएं आती है जो अयोग्य व्यक्ति के लिए उसके सामाजिक स्तर की दृष्टि से आवश्यक होती है।

उदाहरण 1. 'अ' एक अवयस्क व्यक्ति 'ब' को उसके जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति करता है, ऐसी दशा में 'अ' के अधिकार है कि वह 'ब' की सम्पत्ति से वस्तुओं के मूल्य की रकम वसूल कर सकता है यदि 'ब' के पास कोई सम्पत्ति नहीं है तो 'अ' कुछ भी वसूल नहीं कर सकता है।

2. 'अ' एक पागल व्यक्ति 'ब' की पत्नी तथा उसके बच्चों की जीवन की आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति करता है तो 'अ' को अधिकार है वह 'ब' की सम्पत्ति से वस्तुओं का मूल्य वसूल कर सकता है।

(2) अपने हित के लिये अन्य व्यक्ति की ओर से भुगतान करने की दशा में (Payment by an interested person on behalf of another person):–

धारा 69, यदि कोई व्यक्ति जो किसी ऐसे धन के भुगतान में हित रखता है, जिसका भुगतान करने के लिये कोई दूसरा व्यक्ति उत्तरदायी था परन्तु वह अपने हित की रक्षा के लिये ऐसे धन का भुगतान स्वयं कर देता है तो वह ऐसी धनराशि को उस दूसरे व्यक्ति से प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। उदाहरण के लिये– 'अ' को अपने मकान के करो का भुगतान करना शेष है। 'ब' उस मकान में किरायेदार हैं। 'अ' यदि करों का भुगतान नहीं करता तो सरकार मकान को अपने कब्जे में ले लेती। इसलिये 'ब' उस मकान के करो का भुगतान कर देता है (ताकि वह किरायेदार के रूप में आगे रह सके) तो ऐसी दशा में 'ब' करों की राशि को 'अ' से वसूल कर सकता है यहां पर 'अ' ने 'ब' से कर चुकाने के लिये नहीं कहा था।

उदाहरण – 'अ' ने एक जमीदार 'ब' से कुछ भूमि पटटे पर ले रखी है 'ब' से सरकार को देय मालगुजारी का भुगतान नहीं किया है जिस कारण सरकार ने उसकी भूमि के विक्रय के लिए विज्ञापन दे दिया है यदि सरकार इस भूमि को बेच देती है तो 'अ' का उस भूमि पर पटटा समाप्त हो जायेगा और वह उस भूमि का उपयोग नहीं कर सकेंगा। अतः 'अ' उक्त भूमि को विक्रय से रोकने और अपने पटटे को रद्द किये जाने से बचाने के लिए सरकार को देय मालगुजारी का भुगतान कर देता है। (जबकि 'अ' मालगुजारी देने के लिए उत्तरदायी नहीं है।) इस स्थिति में 'अ' भुगतान की गई मालगुजारी की रकम को 'ब' से प्राप्त करने का अधिकारी है।

धारा 69 को लागू करने के लिये निम्न शर्तों का पूरा करना आवश्यक हैं–

1. भुगतान करने वाले व्यक्ति को अपने हित की रक्षा के लिये भुगतान करना चाहिए न की स्वेच्छा से । बल्कि भुगतान सद्विश्वास के साथ किया गया होना चाहिए। भुगतान भूमि या सम्पत्ति के लिए साक्ष्य जुटाने के उद्देश्य से न किया गया हो।

उदाहरण के लिये– 'अ' एक उप–किरायेदार (Sub-tenant) किरायदारी को समाप्त किये जाने से बचाने के लिए किरायेदार पर बकाया किराये कि रकम का भुगतान मकान मालिक को कर देता है। इस दशा में उप–किरायेदार भुगतान कि गई राशि को किरायेदार से वसूल कर सकता है। हालांकि उप–किरायेदार तथा किरायेदार के बीच इस प्रकार किराये का भुगतान करने का अनुबन्घ नही हुआ था। इस भुगतान में उप–किरायेदार का हित जुड़ा हुआ था।

2. भुगतान ऐसा होना चाहिए जिसे करने के लिए दूसरा पक्षकार कानूनन बाध्य हों।

उदाहरण के लिये – 'ब' के पास एक जमीन हो जो उसे 'अ' ने पटटे पर दी है। सरकार द्वारा देय माल गुजारी का भुगतान न करने के कारण यह जमीन बिक्री के लिये विज्ञापित की जाती है। यदि 'ब' मालगुजारी का भुगतान कर देता है तो 'ब' इस रकम को 'अ' से वसूल कर सकता है। क्योंकि 'अ' मालगुजारी देने के लिये उत्तरदायी था। यहां 'अ' तथा 'ब' के बीच ऐसे भुगतान के लिए कोई अनुबन्ध नही हुआ था।

3. भुगतान ऐसा नही होना चाहिए जिसे करने के लिये वह स्वयं बाध्य था। उसका भुगतान करने में केवल हित होना चाहिए, अर्थात इस धारा के अर्न्तगत केवल प्रतिपूर्ति के लिये मुकदमा चलाया जा सकता है। अशदान पाने के लिये नही।

उदाहरण – 'अ' तथा 'ब' पर मिलावटी सामान बेचने के सम्बन्ध में सयुक्त रूप से 100 रू जुर्माना किया गया। अकेला 'अ' जुर्माने की सम्पूर्ण राशि का भुगतान कर देता है 'अ' के बाद में धारा 69 के अधीन 'ब' से अंशदान करने की मांग नहीं कर सकता है। यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि हालाकि 'ब' भी जुर्माने की की राशि अदा करने के लिए बाध्य था और 'अ' ने उसके हिस्से की जुर्माने की राशि सदभावनापूर्ण भुगतान कर दी थी तो भी वह 'ब' से उसकी वसूली नही कर सकता है क्योंकि वह स्वयं जुर्माना अदा करने के लिए सयुक्त रूप से बाध्य था और जुर्माना भुगतान करने में उसका भी अपना हित नहीं था।

(3) उस व्यक्ति का दायित्व जो सशुल्क कार्य का लाभ उठा रहा है (Obligation of person enjoying benefit of non gratuitous act):–

धारा 70, यदि कोई व्यक्ति मूल्य या पारिश्रमिक पाने के अभिप्राय से परन्तु स्वेच्छापूर्वक नियमानुसार किसी अन्य व्यक्ति के लिये कोई कार्य करता है या उसे कोई वस्तु सुपुर्द करता है और ऐसा अन्य व्यक्ति उसका लाभ उठा लेता है तो वह (लाभ उठाने वाला व्यक्ति) उस कार्य का पारिश्रमिक या वस्तु का मूल्य देने के लिये उत्तरदायी होगा। इस धारा के अन्तर्गत अधिकार प्राप्त करने के लिए –

1. कार्य नियमानुसार होना चाहिए।
2. कार्य का लाभ दूसरे व्यक्ति ने उठाया हो।
3. कार्य स्वेच्छा से परन्तु कार्य मुफ्त न किया हो अर्थात धन प्राप्त करने के लिए कार्य किया हो।

उदाहरण– रेलवे स्टेशन का कुली किसी यात्री का सामान (बिना यात्री से कहे) उठा लेता है और उसे स्टेशन के बाहर यात्री के साथ छोड़ देता है तो ऐसी दशा में कुली यात्री से पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है यात्री यह नहीं कह सकता है कि मैने सामान उठाने के लिये नहीं कहा था।

(4) पड़ा हुआ या खोया हुआ माल पाने वाले व्यक्ति का उत्तरदायित्व (Responsibility of finder of goods):–

धारा 71, जब किसी व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति का खोया हुआ या पड़ा हुआ माल मिलता है और वह यदि उसे अपने अधिकार में ले लेता है (अपने अधिकार में लेने के लिये वह बाध्य नहीं है) तो उसका कर्तव्य निक्षेप अनुबन्ध के अर्न्तगत निक्षेपगृहिता की भांति हो जाता है। अर्थात कानून की दृष्टि में माल के स्वामी और पड़ा हुआ माल पाने वाले के मध्य एक गर्भित अनुबन्ध की स्थापना हो जाती है और पड़ा हुआ माल पाने वाले को उस माल की उचित देखभाल करनी चाहिये। उसके मालिक का पता लगाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये और माल के मालिक को माल लौटा देना चाहिये। इन कर्तव्यों के अतिरिक्त उसे माल की देखभाल करने तथा मालिक का पता लगाने आदि में किये गये व्ययों की क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। पड़ा हुआ माल पाने वाले तथा माल के स्वामी के बीच कोई औपचारिक अनुबन्ध नहीं हुआ है परन्तु पड़े हुए माल का कब्जे में लेते ही उसके तथा माल के स्वामी के बीच अनुबन्ध उत्पन्न हो जाता है जिसके अन्तर्गत अधिकार व कर्तव्य उत्पन्न हो जाते है।

(5) गलती से अथवा उत्पीड़न के आधीन धन या माल देने की दशा में (Payment of money or delivery of goods by Mistake or under coercion):–

धारा 72, यदि किसी व्यक्ति को कुछ धन अथवा कोई वस्तु गलती द्वारा अथवा उत्पीड़न द्वारा दे दी गई हो तो उसे वह धन या वस्तु लौटा देनी चाहिये। अतः यदि एक पक्षकार किसी दूसरे पक्षकार को गलती से कोई ऐसी धनराशि का भुगतान कर देता है जो किसी अनुबन्ध के अधीन या अन्यथा उसके उपर देय न हो तो दूसरे पक्षकार को उक्त धनराशि लौटानी पड़ेगी। उदाहरण के लिये– राम तथा मोहन संयुक्त रूप से सोहन को 10000 रू0 देने के लिये उत्तरदायी हैं उन्होने संयुक्त रूप से ऋण लिया था। किन्तु राम अकेला ही सोहन को 10000 रू0 चुका देता है। मोहन को इसकी जानकारी नहीं होती वह भी सोहन को 10000 रू0 लौटा देता है यहां पर सोहन मोहन को 10000 रू0 वापस करने के लिये बाध्य है।

– एक फल विक्रेता फलों का एक पार्सल गलती से राम को सुपुर्द कर देता है जबकि वह पार्सल राम प्रसाद का था। राम उन फलो का उपयोग कर लेता है। फल विक्रेता तथा राम के बीच कोई अनुबन्ध नहीं हुआ है फिर भी राम फल विक्रेता को फलों का मूल्य देने को बाध्य है क्योंकि कानून की नजर में उनके मध्य उनके आचरण से एक अर्द्व अनुबन्ध हो गया है।

7.8 पड़ा हुआ माल पाने वाले के कर्तव्य तथा अधिकार (Right and Duties of Finder of goods)

ऐसे व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह माल के वास्तविक स्वामी का पता लगाने की यथासम्भव कोशीष करनी चाहिए। पाये हुए माल को अपने प्रयोग में न लाये, ऐसे माल को अपने माल से न मिलाये, ऐसे माल की उचित देखभाल करे। वास्तविक स्वामी का पता चलने पर उसको माल लौटा दे। जब तक माल उसके अधिकार तब तक उसकी देखभाल उसी प्रकार करनी होगी जैसे कि एक सामान्य बुद्दि का मनुष्य स्वय के माल की करता है।

पड़ा हुआ माल पाने व्यक्ति के अधिकार –

जब तक माल का वास्तविक स्वामी नहीं मिल जाता तब तक माल को अपने अधिकार में रख सकता हैं वह वास्तविक स्वामी से ऐसे सभी व्यय पाने का अधिकारी है जो उसने वास्तविक स्वामी की खोज करने में तथा पाये हुए माल को सुरक्षित रखने में किया हो। उसे व्यय की गई राशि के लिये पाये हुए माल पर ग्रहणाधिकार (lien) प्राप्त होता है अर्थात जब तक वास्तविक स्वामी उसे व्यय की गई राशि नहीं दे देता तब तक वह उस पाये हुए माल को अपने अधिकार में रोके रख सकता है अर्थात माल लौटाने से मना कर सकता है परन्तु उसे ऐसे धन को प्राप्त करने के लिए मुकदमा चलाने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। परन्तु यदि माल के स्वामी द्वारा पुरूस्कार की घोषणा की हो तो पड़ा हुआ माल पाने वाला व्यक्ति घोषित पुरूस्कार की राशि प्राप्त करने का अधिकारी होगा तथा इसे प्राप्त करने के लिये वह मुकदमा भी दायर कर सकता है, बशर्ते कि उसे पुरूस्कार की जानकारी माल के मिलने से पूर्व हो गई हो।

पड़ा हुआ माल पाने वाला व्यक्ति वास्तविक स्वामी का पता लगाने के कोशीष के वावजूद यदि माल के स्वामी का पता नही लगा पाता है अथवा स्वामी का पता लग जाये परन्तु वह उसके द्वारा किये गये व्ययों का भुगतान नही करता है या मना करता है तो पड़ा हुआ माल पाने वाला व्यक्ति निम्नलिखित दो परिस्थितियों में माल को बेचने का अधिकार भी रखता है –

1. जब पड़ा हुआ माल के नष्ट होने या उसके मूल्य काफी घट जाने की सम्भावना हो।
2. जब माल पाने वाले ने माल के सम्बन्ध में किये गये व्यय उसके मूल्य के दो–तिहाई मूल्य के बराबर या अधिक हो जायें।

7.9 सारांश

संयोगिक अनुबन्ध किसी कार्य को करने या न करने का एक ऐसा अनुबन्ध है जिसका निष्पादन किसी ऐसी घटना के घटित होने या न होने पर निर्भर करता है जो अनुबन्ध के समपार्श्विक हो। संयोगिक अनुबन्धों में निष्पादन का दायित्व किसी अनिश्चित घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर करता हो, घटना अनुबन्ध को समपार्शिवक होनी चाहिए, घटना वचनदाता की इच्छा पर निर्भर नहीं होनी चाहिए संयोगिक अनुबन्ध जो भावी अनिश्चित घटना के घटित होने पर निर्भर होते है उन्हें राजनियम द्वारा उस समय तक प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता है जब तक वह घटना घटित नहीं हो जाती। इसी प्रकार संयोगिक अनुबन्ध जो अनिश्चित भावी घटना के घटित न होने पर निर्भर होते है उन्हे राजनियम द्वारा उस समय प्रवर्तनीय कराया जा सकता है जब कि उस घटना का घटित होना असम्भव हो जाये। किसी असम्भव घटना के घटित होने पर कसी कार्य को करने या न करने का अनुबन्ध व्यर्थ होता है।

समान्यतया वैध अनुबन्ध होने के लिये उसमें अनुबन्ध के लक्षण होने चाहिये। परन्तु कुछ व्यवहार जिनमें वैध अनुबन्ध के लक्षण तो नहीं होते है परन्तु वे वैध अनुबन्ध की भॉति ही दायित्व उतपन्न करते है कानून की दृष्टि में ऐसे व्यवहार अनुबन्ध माने जाते है ऐसे ही अनुबन्धों को 'अर्द्व अनुबन्ध' कहते है, ऐसे अनुबन्धों में वैध अनुबन्ध का लक्षण होना मान लिया जाता है इसीलिये इन्हे 'गर्मित अनुबन्ध' भी कहते है। यदि कोई व्यक्ति अनुबन्ध करने के अयोग्य व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वस्तु या धन देता है तो सामान्यतः यह वैध

अनुबन्ध नहीं हुआ। परन्तु ऐसा व्यक्ति अयोग्य व्यक्ति की सम्पत्ति से अपना पैसा वसूल कर सकता है। अपने हित के लिये यदि अन्य व्यक्ति की ओर से भुगतान किया जाता है तो वह ऐसे भुगतान की राशि वसूल कर सकता है जबकि भुगतान करने वाले तथा जिनकी ओर से भुगतान किया गया उनके बीच स्पष्ट अनुबन्ध नहीं हुआ। यदि किसी व्यक्ति को पड़ा हुआ माल मिल जाता है और वह उसे अपने अधिकार में ले लेता है तो इस प्रकार माल पाने वाले तथा माल के स्वामी के बीच अनुबन्ध उत्पन्न हो जाता है और पाने वाले ऐसे व्यक्ति के अधिकार व दायित्व उत्पन्न हो जाते है अर्थात् ऐसे माल पाने वाले को माल के स्वामी का पता लगाना, स्वामी के मिल जाने पर माल वापस करना, माल की उचित देखभाल करना आदि कर्तव्य हो जाते है और वह माल के सम्बन्ध में तथा स्वामी को ढूढ़ने के सम्बन्ध में किये गये व्ययों को पाने का अधिकारी हो जाता है।

7.10 शब्दावली

संयोगिक अनुबन्धः किसी कार्य को करने या न करने का एक ऐसा अनुबन्ध है जिसका निष्पादन किसी ऐसी घटना के घटित होने या न होने पर निर्भर करता है जो अनुबन्ध के समपार्श्विक (Collateral) है"।

अर्द्ध अनुबन्धः कुछ ऐसे व्यवहार जिनमें वैध अनुबन्ध के लक्षण विद्यमान नहीं होते हैं परन्तु वे उसी प्रकार दायित्व उत्पन्न करते हैं जैसे कि वैध अनुबन्ध द्वारा उत्पन्न होते हैं। लेकिन कानून की दृष्टि में ऐसे व्यवहार अनुबन्ध माने जाते हैं ऐसे अनुबन्धों ही 'अर्द्ध अनुबन्ध' कहलाते हैं।

7.11 बोध प्रश्न

क – निम्न में सही उत्तर का चयन कीजिये :

1. संयोगिक अनुबन्ध जो किसी अनिश्चित घटना के घटित होने पर निर्भर होते है यदि घटना घटित हो जाये तो अनुबन्ध होगा –

   1. वैध 2. व्यर्थ
   3. अवैध 4. व्यर्थनीय

2. संयोगिक अनुबन्ध जो किसी अनिश्चित भावी घटना के न होने पर निर्भर हो, यदि घटना का घटित होना असम्भव हो जाये तो ऐसा अनुबन्ध होगा –

   1. वैध 2. व्यर्थ
   3. अवैध 4. व्यर्थनीय

3. एक संयोगिक अनुबन्ध जो कि किसी असम्भव घटना के घटित होने पर निर्भर हो वह होगा –

   1. वैध 2. व्यर्थ
   3. अवैध 4. व्यर्थनीय

4. एक अवयस्क की जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये दिये गये धन को वसूला जा सकता है –

   1. अवयस्क से 2. अवयस्क के संरक्षक से
   3. अवयस्क की सम्पत्ति बेच कर 4. उपरोक्त सभी से

5. यदि एक किरायेदार मकान मालिक पर देय मकान कर की राशि बिना मकान मालिक के कहे हुए जमा कर देता है तो किरायेदार ऐसे भुगतान को वसूल कर सकता है –

1. मकान मालिक से 2. मकान बेचकर
3. अधिकरी जहां कर जमा किया उससे 4. उपरोक्त सभी

ख – निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य –

1. संयोगिक अनुबन्ध वैध होते है।
2. किसी असम्भव घटना के घटित होने पर कोई संयोगिक अनुबन्ध निर्भर हो तो ऐसा अनुबन्ध वैध होता है।
3. पड़ा हुआ माल पाने वाले तथा माल के वास्तवित स्वामी के बीच गर्भित अनुबन्ध होना माना जाता है।
4. पड़ा हुआ माल पाने वाला व्यक्ति पाये हुए माल को वैधानिक तौर पर बेच भी सकता है।
5. खोया हुआ माल पाने वाला व्यक्ति धोषित पुरूस्कार को पाने के लिए माल के मालिक के विरूद्ध दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता है।

7.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

क –

1. (1) 2. (1) 3. (2) 4. (3) 5. (1)

ख –

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

7.13 स्वपरख प्रश्न

1. सांयोगिक अनुबन्ध की परिभाषा दीजिये तथा उसके लक्षण बताइयें।
Define Contingent Contract and explain its essential .
2. अर्द्ध अनुबन्ध किसे कहते हैं? भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में वर्णित अर्द्ध अनुबन्धों का वर्णन कीजिये।
What are Quasi contract & Describe the Quasi Contract dealt with under the Indian contract Act.
3. संयोगिक अनुबन्धों के प्रवर्तनीय होने के नियमों को समझाइयें।
Explain the rules for inforcement of Contingent Contract.

7.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई–8 हानि रक्षा तथा प्रतिभूति अनुबन्ध (Contract Of Indemnity and Guarantee)

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 हानि रक्षा अनुबन्ध का अर्थ व परिभाषा
8.3 हानि रक्षा धारी के अधिकार
8.4 प्रतिभूति अनुबन्ध का अर्थ व परिभाषा
8.5 हानि रक्षा तथा प्रतिभूति अनुबन्ध में अन्तर
8.6 प्रतिभू का दायित्व
8.7 प्रतिभूति के प्रकार
8.8 चालू प्रतिभूति की समाप्ति
8.9 प्रतिभू के दायित्व की समाप्ति
8.10 प्रतिभू के अधिकार
8.11 सारांश
8.12 शब्दावली
8.13 बोध प्रश्न
8.14 बोध प्रश्नो के उत्तर
8.15 स्वपरख प्रश्न
8.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जायेगें कि –

- आप हानि रक्षा अनुबन्ध को समझ सकें।
- आप प्रतिभूति अनुबन्ध को समझ सकें।
- हानि रक्षा अनुबन्ध तथा प्रतिभूति अनुबन्ध में भेद कर सकें।
- चालू प्रतिभूति क्या होती है समझ सकें।
- प्रतिभू अपने दायित्व से कम मुक्त होता है, को समझ सकें।
- प्रतिभू के अधिकार को समझ सकें।

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में आप सामान्य अनुबन्ध का अर्थ तथा उनके लक्षण आदि का अध्ययन कर चुकें है तथा विशिष्ट प्रकार के अनुबन्धों में संयोगिक तथा अर्द्दअनुबन्धों का भी अध्ययन कर चुकें है। इस इकाई में विशिष्ट अनुबन्ध हानि रक्षा तथा प्रतिभूति अनुबन्धों का अध्ययन करेगें। ये अनुबन्ध भी काफी महत्वपूर्ण है। बीमा से सम्बन्धित अनुबन्ध इस श्रेणी में आते है तथा ऋण लेने के अनुबन्ध अथवा नौकरी आदि के अनुबन्ध के समय जो गारन्टी मांगी जाती है वह भी इसी श्रेणी में आते है। अर्थात् बीमा से सम्बन्धित अनुबन्ध हानि रक्षा अनुबन्ध और गारन्टी देने से सम्बन्धी अनुबन्ध प्रतिभूति अनुबन्ध कहलाते है। जिनका इस इकाई में अध्ययन किया जायेगा।

8.2 हानि–रक्षा (क्षति पूर्ति) अनुबन्ध का अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definition of Contract of Indemnity)

<u>परिभाषा</u> – भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 124 के अनुसार, 'हानि रक्षा अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके द्वारा एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को किसी ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है जो उसको स्वयं वचनदाता के व्यवहार द्वारा अथवा किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार द्वारा पहुॅचे।' हानि रक्षा अनुबन्ध वास्तव में संयोगिक अनुबन्धों की कोटी में आने वाले अनुबन्धों का ही एक प्रकार हैं। ऐसे अनुबन्ध वचनग्रहिता को प्रत्याशित हानि से बचाने के उद्देश्य से की जाती है। 'हानि का घटित होना' ही वह सामान्य घटना होती है जिस पर हानि रक्षा अनुबन्ध निर्भर करता है। इस अनुबन्ध में निम्न दो पक्षकार होते हैं। 1– हानि रक्षक (Indemnifier) वह व्यक्ति जो हानि से बचाने का वचन देता है उसे हानि रक्षक कहते हैं तथा 2–हानि रक्षाधारी (Indemnity Holder) वह व्यक्ति जिसको हानि पूर्ति का वचन दिया जाता है अर्थात जिसकी हानि से रक्षा होती है उसे हानि रक्षा धारी कहते हैं।

उदाहरण के लिये – राम अपनी साईकिल मोहन को बेचने का अनुबन्ध करता है परन्तु उसने अभी साईकिल नहीं दी है और ना ही पैसे लिये हैं इसी बीच सोहन उस साईकिल को राम से खरीदना चाहता है और उससे कहता है कि यदि मोहन आपके ऊपर वाद प्रस्तुत करता है और आपको हर्जाना देना पड़ता है तो मैं उस हर्जाने की पूर्ति करूँगा यहाँ पर राम तथा मोहन के बीच हानि रक्षा का अनुबन्ध हुआ। मोहन हानि रक्षक तथा राम हानि रक्षा धारी हुआ।

धारा 124 में दी गई उपर्युक्त परिभाषा को ध्यान से देखे तो ऐसा मालूम होता है कि यह परिभाषा पूर्ण नहीं है क्योंकि इस परिभाषा के अनुसार, अनुबन्ध में होने वाली हानि या तो वचन दाता के स्वयं के आचरण के द्वारा होनी चाहिए या किसी अन्य व्यक्ति के आचरण के द्वारा, और यदि हानि किसी दुर्धटना द्वारा या वचनग्रहिता के स्वयं के आचरण द्वारा होती है तो उस समय वह एक हानि रक्षा अनुबन्ध नहीं कहलायेगा। अब यदि इस परिभाषा को मान ले तो बीमा सम्बन्धी अनुबन्ध इस श्रेणी में नहीं आयेगें। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। बम्बई के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ने एक अभियोग में निर्णय देते समय इस परिभाषा को संकुचित माना है (Gajanan Vs morishar, (1942) Bom. 402)। उन्होनें हानि रक्षा अनुबन्ध को इंगलिश राजनियम के आधार पर विस्तृत रूप में प्रयोग किया है, और इसीलिए किसी घटना द्वारा हानि के बचाने के लिए भी वचन दाता बाध्य होता है। 'इसीलिए बीमा के अनुबन्ध' भी हानि रक्षा अनुबन्ध की श्रेणी में आते है उदाहरण के लिये, एक बीमा कम्पनी ने राम की कार का बीमा किया है राम की कार यदि चोरी होती है या दुर्घटना ग्रस्त होती है तो कार की जो हानि होगी राम उस हानि को बीमा कम्पनी से वसूल कर सकता है। इंगलिश राजनियम के अनुसार 'हानि रक्षा अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके अनुसार किसी दूसरे व्यक्ति को ऐसी होनी वाली हानि से रक्षा करने का वचन दिया जाता है हो कि वचन दाता के कहने पर किये गये व्यवहार के परिणाम स्वरूप उसे हुई हो।'

हानि रक्षा अनुबन्ध स्पष्ट हो सकता है अथवा ग्रभित हो सकता है। ग्रभित अनुबन्ध मामले की परिस्थितियों से मालूम हो सकता है। जैसे अपने एंजेन्ट द्वारा किये गये सभी अधिकृत कार्यों के लिये नियोक्ता द्वारा हानि रक्षा का ग्रभित अनुबन्ध होता है।

हानि रक्षा अनुबन्ध में भी वैद्य अनुबन्ध के सभी आवश्यक लक्षण विद्यमान होने चाहिये अर्थात पक्षकारों में अनुबंध करने की क्षमता, पक्षकारो की स्वतंत्र सहमति तथा वैधानिक उद्वेश्य व प्रतिफल होना चाहिये। यदि इसमें इनका अभाव होगा तो वह हानि रक्षा अनुबन्ध परिवर्तनीय नहीं होगा। उदाहरण के लिये– 'अ', 'ब' से कहता है कि वह 'स' की पिटाई कर दे और 'स' द्वारा वाद प्रस्तुत करने के परिणाम स्वरूप यदि उसे हर्जाना देने पड़े तो वह उसकी पूर्ति करेगा। 'ब', 'स' को पीटता है और उसे 10 हजार रूपये का जुर्माना हो जाता है 'ब' इस राशि को 'अ' से वसूल नहीं कर सकता है क्योंकि 'अ' तथा 'ब' के बीच जो हानि रक्षा का अनुबन्ध हुआ है वह वैद्य नहीं है क्योंकि यह अनुबंध 'स' को पीटने के लिये है जो कि वैधानिक कार्य नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बल प्रयोग अथवा अवैध प्रयोजन के लिये किये गये हानि रक्षा अनुबन्ध परिवर्तनीय नहीं होते हैं।

8.3 हानि–रक्षा धारी के अधिकार (Right of Indemnity holder)

हानि–रक्षा के अन्तर्गत हानि रक्षा धारी को, उस पर मुकदमा चलाये जाने पर, हानि रक्षक से निम्नलिखित हर्जाना प्राप्त करने का अधिकार होता है।

1– वह हानि रक्षक से उन सभी व्ययों को वसूल करने का अधिकारी है जो उसे मुकदमे के सम्बन्ध मे भुगतान करने पड़े।

2– वह ऐसी समस्त हानियों को भी प्राप्त करने का अधिकारी है जो उसे हानि रक्षक द्वारा दिये गये वचन के अर्न्तगत उठानी पडी हो।

3– वह ऐसी समस्त हानियों को भी प्राप्त करने का अधिकारी है जो उसने मुकदमे के बाद किसी समझौते के अर्न्तगत चुकायी हो। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हानि रक्षाधारी, हानि रक्षक से ऐसे मुकदमें से सम्बन्धित हर प्रकार का हर्जाना, व्यय और समझौते की रकम वसूल कर सकता है बशर्ते की उसने बुद्विमानी से तथा हानि रक्षक के आदेशानुसार कार्य किया हो।

यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य बात भी है कि हानि रक्षा धारी को उपरोक्त अधिकार तभी प्राप्त होंगे जब कि उसने हानि रक्षक की आज्ञाओं का उलंघन नहीं किया हो तथा उसने इस प्रकार कार्य किया हो जैसे कि एक सामान्य बुद्धि का मनुष्य स्वयं के कार्य के लिये करता है अर्थात इस प्रकार कार्य किया है जैसा कि हानि रक्षा अनुबन्ध न होने पर करता ।(धारा 125)

8.4 प्रतिभूति अनुबन्ध या गारण्टी अनुबन्ध का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning And Definition of Contract of Guarantee)

धारा 126 के अनुसार –''प्रतिभूति अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसमें एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को, किसी तीसरे व्यक्ति की त्रुटि कि दशा में उसके (तीसरे व्यक्ति के) वचन का निष्पादन करने तथा उसके दायित्व को पूरा करने का वचन देता है।'' प्रतिभूति अनुबन्ध में तीन पक्षकार होते हैं–

1– प्रतिभू–(Surety) वह व्यक्ति जो प्रतिभूति देता है।

2– मूल ऋणी (देनदार) (Principal Debtor) वह व्यक्ति जिसकी त्रुटि के लिये प्रतिभूति दी जाती है।

3– ऋण दाता (लेनदार) (Creditor) वह व्यक्ति जिसे प्रतिभूति दी जाती है वह ऋण दाता कहलाता है। प्रतिभूति किसी ऋण के सम्बन्ध में अथवा उधार माल के क्रय के सम्बन्ध मे अथवा किसी पक्षकार के अच्छे आचरण के सम्बन्ध में हो

सकती है। प्रतिभूति अनुबन्ध लिखित या मौखिक हो सकता है इस अनुबन्ध में भी वैध अनुबन्ध के लक्षण होने चाहिये।
उदाहरण– राम, मोहन से कहता है कि वह सोहन को 10 हजार रूपये देदे और यदि सोहन रकम वापस नहीं करेगा तो मैं रकम दे दूंगा। यह प्रतिभूति अनुबन्ध हुआ यहॉ पर राम हुआ प्रतिभू, मोहन हुआ ऋणदाता तथा सोहन हुआ मूल ऋणी।
उदाहरण– राम, मोहन से कहता है कि वह सोहन को अपने यहॉ काम पर रख ले। काम के दौरान यदि वह कुछ हानि पहुॅचायेगा तो उसकी पूर्ति मै करूंगा। यह भी प्रतिभूति अनुबन्ध हुआ।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि प्रतिभूति अनुबन्ध में तीन पृथक पृथक अनुबन्ध विद्यमान होते है इसमें एक अनुबन्ध प्रतिभू एवं ऋणदाता के बीच, दूसरा प्रतिभू तथा मूलऋणी के बीच तथा तीसरा ऋणी तथा ऋणदाता के बीच। प्रतिभूति अनुबन्ध स्पष्ट हो सकता है ग्रभित नहीं। स्पष्ट अनुबन्ध मौखिक तथा लिखित हो सकता है।

प्रतिभूति अनुबन्ध की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि उसमें कानून द्वारा प्रवर्तनीय वर्तमान या भावि दायित्व विद्यमान होना चाहिए। अतः किसी अप्रवर्तनीय दायित्व जैसे अवधि वर्जित ऋण के लिए दी गई प्रतिभूति वैध प्रतिभूत नहीं होती। परन्तु किसी अवयस्क व्यक्ति के ऋण के सम्बन्ध में दी गई प्रतिभूति इस नियम का अपवाद है अर्थात् ऐसी प्रतिभूति वैध होती है।

प्रतिभूति अनुबन्ध में भी अन्य अनुबन्धों के समान वैध अनुबन्ध के सभी आवश्यक लक्षण जैसे पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति, वैधानिक उद्देश्य प्रक्षकारों में अनुबन्ध करने की छमता आदि विद्यमान होनी चाहिए। वैध अनुबन्ध के लिए दोनों पक्षकारों को प्रतिफल भी मिलना चाहिए, परन्तु प्रतिभूति अनुबन्ध में प्रतिभू और लेनदार के मध्य प्रतिफल का प्रत्यक्ष आदान प्रदान होना आवश्यक नहीं है। प्रतिभूति अनुबन्ध में मूल देनदार जो प्रतिफल प्राप्त करता है वह प्रतिभू के लिए भी प्रतिफल माना जाता है। और यह आवश्यक नहीं होता कि स्वयं प्रतिभू को कुछ लाभ हो। धारा 127 में यह उल्लेख किया गया है कि मूल ऋणी के लाभ के लिए ऋणदाता द्वारा किया गया कोई कार्य अथवा दिया गया वचन, प्रतिभू के लिए पर्याप्त प्रतिफल होता है।
उदाहरण के लिए – 'स' 'ब' से कुछ माल उधार खरीदना चाहता है, 'ब' इस शर्त पर उधार माल देने का वचन देता है कि 'अ' मूल्य चुकाने के लिए प्रतिभूति दे दे। 'अ' प्रतिभूति दे देता है। 'ब' द्वारा उधार माल देने के बदले में 'अ' मूल्य चुकाने की प्रतिभूति देता है। 'अ' प्रतिभू के लिए, प्रतिभूति देने के बदले 'ब' द्वारा उधार वस्तुएं देना पर्याप्त प्रतिफल माना जाता है।

प्रतिभूति अनुबन्ध के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि प्रतिभू तथा ऋणदाता दोनों में ही अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए और इसी प्रकार मूलऋणी में भी अनुबन्ध द्वारा बाध्य होने की क्षमता होना आवश्यक है नहीं तो वह उत्तरदायी नहीं होगा।
उदाहरण के लिए – 'ब' 'स' को 'जो अवयस्क है' 5000 रू ऋण देता है 'अ' 'स' की त्रुटि की दशा में उक्त धन 'ब' को चुकाने की प्रतिभूति देता है। ऐसी स्थिति में 'अ' तथा 'ब' के बीच का अनुबन्ध प्रवर्तनीय है यद्यपि 'ब' तथा 'स' के बीच का अनुबन्ध प्रवर्तनीय नहीं है ऐसी दशा में प्रतिभू तथा ऋणदाता के बीच का अनुबन्ध

स्वतन्त्र तथा प्रधान माना जाता है और प्रतिभू ही मूलऋणी के रूप में माना जाता है।

8.5 हानि रक्षा तथा प्रतिभूति अनुबन्ध में अन्तर (Difference between Contract of Indemnity and Guarantee)

हानि रक्षा तथा प्रतिभूति अनुबन्ध में निम्नलिखित अन्तर पाए जाते हैः

हानि रक्षा अनुबन्ध	प्रतिभूति अनुबन्ध
1– इस अनुबन्ध में केवल दो पक्षकार होते हैं। 1–हानि रक्षक 2– हानि रक्षा धारी	1– इस अनुबन्ध में तीन पक्षकार होते हैं। 1– प्रतिभू 2– मूल ऋणी 3– ऋण दाता
2– हानि रक्षा अनुबन्ध में केवल एक ही अनुबन्ध होता है– हानि रक्षक एवं हानि–रक्षाधारी के बीच	2– इसमें तीन अनुबन्ध होते हैं– 1–मूल ऋणी एवं ऋण दाता के बीच। 2–प्रतिभू एवं ऋण दाता के बीच। 3–प्रतिभू एवं मूल ऋणी के बीच।
3– हानि रक्षा अनुबन्ध में हानि रक्षक उस सब हानियों से बचाने का वचन देता है जो उसके या किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से पहॅुचते हैं।	3– प्रतिभू केवल तभी उत्तरदायी होता है जबकि मूल ऋणी त्रुटि करे।
4– हानि रक्षा अनुबन्ध में हानि रक्षक का दायित्व प्राथमिक होता है।	4– प्रति भूति अनुबन्ध में प्रतिभू का दायित्व द्वितीयक होता है।
5– हानि रक्षा अनुबन्ध में हानि रक्षक को यदि क्षति पूर्ति करनी पड़ती है तो वह किसी भी पक्ष के विरूद्ध दावा प्रस्तुत नही कर सकता है अर्थात वह क्षति पूर्ति की गयी राशि को वसूल नहीं सकता है।	5– प्रतिभूति अनुबन्ध में यदि प्रतिभू को क्षति पूर्ति करनी पड जाती है तो वह मूल ऋणी से क्षति पूर्ति की राशि वसूल कर सकता है।
6– हानि रक्षा अनुबन्ध में प्रतिभूति अनुबन्ध सम्मिलित नही होता है।	6– प्रतिभूति अनुबन्ध में हानि रक्षा अनुबन्ध सम्मिलित होता है।
7– हानि रक्षा अनुबन्ध स्पष्ट अथवा गर्भित दोनों हो सकता है।	7– प्रतिभूति अनुबन्ध स्पष्ट ही हो सकता है गर्भित नहीं।
8–हानि रक्षा अनुबन्ध हानि की पूर्ति के लिये होते हैं।	8– प्रतिभूति अनुबन्ध ऋण दाता की जमानत के लिये होते हैं।

8.6 प्रतिभू का दायित्व (Liabilities of Surety)

प्रतिभू के दायित्व के सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण है कि प्रतिभू का दायित्व उसी दशा में उत्पन्न होता है जबकि ऋणी अपने वचन के सम्बन्ध में त्रुटि करता है। यदि मूलऋणी कोई त्रुटि नहीं करता अर्थात अपने वचन का निष्पादन स्वयं कर देता है तो प्रतिभू का दायित्व ही उत्पन्न नहीं होगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रतिभू का दायित्व द्वितीयक या गौण होता है, प्रथम दायित्व तो ऋणी का ही होता है।

धारा 128 के अनुसार, मूलऋणी की त्रुटि की दशा में, प्रतिभू का दायित्व मूलऋणी के दायित्व के साथ सह–विस्तृत (Co-extensive) होता है। उदाहरण के

लिए 'स' द्वारा स्वीकार किये गये एक विनिमय–विपत्र के सम्बन्ध में 'अ' , 'ब' को यह प्रतिभूति देता है कि 'स' उसका भुगतान कर देगा उसकी ओर से मै प्रतिभूति देता हूँ। 'स' उक्त विनिमय–विपत्र का भुगतान नहीं कर पाता, ऐसी स्थिति में 'अ' का दायित्व उक्त विनिमय–विपत्र की राशि और उस पर देय ब्याज तक ही सीमित नही है बल्कि वह उन व्ययों के लिए भी उत्तरदायी होगा जो 'ब' ने विनिमय–विपत्र के नोटिग तथा प्रोटेस्ट (Noting and Protesting) के सम्बन्ध में किये होगें। इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिभू उस समस्त धन को चुकाने के लिए उत्तरदायी होता है जो की मूलऋणी को चुकाने पडते। परन्तु प्रतिभूति देते समय प्रतिभू अपने दायित्व की सीमायें निर्धारित कर सकता है और ऐसी दशा में मूलऋणी के दायित्व की सीमायें कितनी भी क्यों न हो प्रतिभू का दायित्व निर्धारित सीमा से अधिक नहीं होगा। उदाहरण के लिए – 'अ' 'ब' से 5000 रू उधार लेता है, 'स' ने प्रतिभूति केवल 2000 रू के लिये ही दी हो तो 'स' अर्थात प्रतिभू 2000 रू से अधिक के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रतिभू के दायित्व के सम्बन्ध में अनुबन्ध अधिनियम और न्यायिक निर्णयों के अनुसार कुछ नियम निम्न प्रकार बनाये जा सकते है –

1. प्रतिभू का दायित्व गौण होता है अर्थात प्रतिभू मूलऋणी द्वारा त्रुटि किये जाने पर ही उत्तरदायी होता है। यदि मूलऋणी की त्रुटि करने से पहले ही प्रतिभू दिवालिया हो जाता है तो लेनदार को प्रतिभू के सरकारी प्रापक (Official Receiver) के समक्ष ऋण की वसूली के लिये दावा करने का अधिकार नहीं होगा।
2. लेनदार प्रतिभू के विरूद्व मुकदमा दायर करने से पूर्व मूल देनदार के विरूद्व अपने कानूनी उपचारों को समाप्त करने के लिए बाध्य नहीं होता बशर्ते की अनुबन्ध में अन्यथा तय न कर लिया गया हो'।
3. यदि लेनदार अपने ऋण के भुगतान के सम्बन्ध में देनदार की कुछ प्रतिभूतियां गिरवी रख लेता है तो प्रतिभू के विरूद्व मुकदमा दायर करने से पूर्व उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह ऋण के भुगतान के लिए उन प्रतिभूतियों को बेंचे 'बशर्ते की अनुबन्ध की शर्तों में अन्यथा तय न कर लिया गया हो'।
4. यदि लेनदार ने प्रतिभू के साथ मिथ्यावर्णन या मौन द्वारा कपट के आधार पर प्रतिभूति ली है तो प्रतिभू ऋण के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।
5. यदि कोई ऋण मूल देनदार के विरूद्व अवधि वर्जित हो गया है तो ऐसे ऋण को चुकाने के लिए प्रतिभू भी उत्तरदायी नहीं होता है। यदि प्रतिभू ऐसे ऋण का भुगतान कर देता है तो वह उसे देनदार से वसूल नहीं कर सकता है क्योंकि उसने जो भुगतान किया उसके लिए ऋणी का दायित्व समाप्त हो चुका था।
6. मूल देनदार के दिवालिया हो जाने की दशा में उसे ऋण के भुगतान करने की छूट मिल जाती है। परन्तु प्रतिभू पूरी रकम के लिए उत्तरदायी होगा।

8.7 प्रतिभूति के प्रकार (Types of Guarantee)

प्रतिभूति अनुबन्ध अनेक प्रकार के हो सकते है। यदि प्रतिभूति किसी विद्यमान ऋण के सम्बन्ध मे है तो उसे 'विद्यमान प्रतिभूति' (Restrospective Guarantee) कहते है यदि प्रतिभूति किसी भावी ऋण के सम्बन्ध में दी जाती है

तो उसे 'भावी प्रतिभूति' (Prospective Guarantee) कहते है। एक अन्य दृष्टिकोण के आधार पर प्रतिभूति निम्न दो प्रकार की होती है –

1– **विशेष प्रतिभूति (Specific Guarantee)**– जब कोई प्रतिभूति किसी एक विशेष ऋण अथवा विशेष कार्य के लिये दी जाती है तो वह साधारण प्रतिभूति या विशिष्ट प्रतिभूति कहलाती है। ऐसी प्रतिभूति में ऋण या व्यवहार का दायित्व समाप्त होने पर प्रतिभूति भी समाप्त हो जाती है।

जैसे– राम ने मोहन से कहा कि वह सोहन को मेरी जमानत पर 10 हजार रूपये उधार दे दे तो यह प्रतिभूति साधारण हुई। सोहन द्वारा 10 हजार रूपये वापस करते ही राम द्वारा दी गई प्रतिभूति भी समाप्त हो जाती है।

2– **चालू प्रतिभूति (Continuing Guarantee)**– धारा 129 के अनुसार, एक ऐसी प्रतिभूति जो कि व्यवहारों की एक श्रंखला तक विस्तृत होती है चालू प्रतिभूति कहलाती है।

जैसे– राम मोहन से कहता है कि वह सोहन को उसकी जमानत पर उधार दे दिया करे तो यह प्रतिभूति चालू हुई। क्योंकि सोहन, मोहन से अनेकों बार उधार माल ले सकता है और उधार का भुगतान भी करता रह सकता है लेकिन प्रतिभूति चालू रहती है इसलिये यह चालू प्रतिभूति कहलाती है।

अन्य उदाहरण– राम , मोहन से कहता है कि वह सोहन को अपने यहाँ नौकरी पर रख ले, मैं उसकी जमानत देता हूँ

यह प्रतिभूति चालू है क्योंकि यह प्रतिभूति किसी एक व्यवहारों के लिये न होकर अनेकों व्यवहारों के लिये है।

एक अन्य उदाहरण – 'अ' 'ब' से कहता है कि वह 'स' को दो माह तक माल उधार दे दिया करें मै उसकी दस हजार रू तक की प्रतिभूति देता हूँ यहां पर 'अ' द्वारा दी गयी प्रतिभूति चालू प्रतिभूति है क्योंकि 'ब' दो माह तक जितनी बार भी उधार लेगा उन सब के लिये 'अ' दस हजार रू तक के लिए उत्तरदायी होगा।

चालू प्रतिभूति के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है –

1. प्रतिभूति की सीमा तक एक बार उधार दिये जाने से चालू प्रतिभूति समाप्त नही होती। जैसे 'अ' एक तेल विक्रेता 'ब' को उसके द्वारा 'स' को समय समय पर बेची जाने वाली तेल के मूल्य के भुगतान के लिए दस हजार रू तक की रकम की प्रतिभूति देता है। 'ब' 'स' को 12 हजार रू मूल्य का तेल सप्लाई करता है तथा 'स' उसका भुगतान कर देता है बाद में पुनः 'ब' उसे 15 हजार रू का तेल सप्लाई करता है 'स' इसका भुगतान नहीं कर पाता 'अ' द्वारा दी गयी प्रतिभूति एक चालू प्रतिभूति थी अतः वह 'ब' को दस हजार रू तक का भुगतान करने का उत्तरदायी है।
2. कोई प्रतिभूति चालू प्रतिभूति है या नही तथ्य पक्षकारों की अनुबन्ध की शर्तों तथा उनके व्यवहार से सम्बद्व परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उदाहरण – 'अ' 'ब' द्वारा 'स' को दिये जाने वाले चावल के दस बोरों के मूल्य का भुगतान 1 माह के भीतर किये जाने के सम्बद्व में प्रतिभूति देता है। 'अ' द्वारा प्रतिभूति देने के बाद 'ब' 'स' को चावल के 10 बोरे सप्लाई करता है तथा 'स' उनके मूल्य का भुगतान भी कर देता है। 'ब' उसके पश्चात 'स' को चावल के 5 बोरे और सप्लाई

करता है जिनके मूल्य का भुगतान 'स' नहीं कर पाता। यहां पर 'अ' द्वारा दी गई प्रतिभूति चालू प्रतिभूति नहीं थी बल्कि विशेष व्यवहार के लिए प्रतिभूति थी अतः वह चावल के उक्त 5 बोरों के मूल्य का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं है।

3. चालू प्रतिभूति का एक आवश्यक तत्व यह है कि वह भिन्न (Distent) और पृथक किये जाने योग्य (Separapble) व्यवहारों की श्रृखलां के सम्बन्ध में दी जाती है अतः किसी सम्पूर्ण व्यवहार के लिये दी गयी प्रतिभूति चालू प्रतिभूति नहीं होती।

उदाहरण– 'अ' ने 'ब' को एक जमीन 5 वर्षों के लिए पट्टे पर दी तथा 'स' ने 'अ' को प्रतिभूति दी कि अनुबन्धों की शर्तों के अनुसार 'ब' किराया देता रहेगा। 2 वर्ष बाद 'स' ने 'अ' को पट्टे की शेष अवधि के लिए अपनी प्रतिभूति को समाप्त करने का नोटिस दे दिया। इस मामले में न्यायालय ने निर्णय दिया कि 'स' ने 'अ' को जो प्रतिभूति दी है एक चालू प्रतिभूति नहीं है अतः वह उसका खण्डन नहीं कर सकता। चूंकि 5 वर्ष का पट्टा भिन्न तथा पृथक करने योग्य व्यवहार की श्रृखंला न होकर एक ही व्यवहार है अतः 'स' की प्रतिभूति एक साधारण प्रतिभूति मानी जायेगी इसे चालू प्रतिभूति नहीं माना जा सकता।

8.8 चालू प्रतिभूति की समाप्ति (Termination of Continuing Guarantee)

चालू प्रतिभूति को भावी व्यवहारों के लिए निम्न प्रकार समाप्त किया जा सकता है –

1– **प्रतिभू द्वारा खण्डन की सूचना दिये जाने पर (By notice of revocation by the Surety)**– धारा 130, प्रतिभू ऋण दाता को प्रतिभूति समाप्त करने की सूचना देकर भावी व्यवहारों के लिये चालू प्रतिभूति को कभी भी समाप्त कर सकता है। सूचना देने के बाद के व्यवहारों के लिये प्रतिभू उत्तरदायी नहीं होगा। परन्तु प्रतिभू सूचना देने से पूर्व के व्यवहारों के लिये उत्तरदायी होगा। उदाहरण के लिये– राम, मोहन से कहता है कि वह उसकी प्रतिभूति पर सोहन को उधार माल दे दे। यह चालू प्रतिभूति है। राम दो माह उपरान्त मोहन को सूचना देता है कि उसने जो सोहन की जमानत दी है उसे समाप्त समझा जाये। ऐसी सूचना मिलने से पूर्व के उधार के लिये राम उत्तरदायी होगा परन्तु सूचना के बाद भी यदि मोहन उधार देता है तो उसके लिये राम उत्तरदायी नहीं होगा।

2– **प्रतिभू की मृत्यु होने पर (By Death of Surety)**– धारा 131, यदि कोई प्रतिकूल अनुबन्ध न हो तो प्रतिभू की मृत्यु होने पर भावी व्यवहारों के लिये चालू प्रतिभूति समाप्त हो जाती है। इस सम्बन्ध में ऋणदाता को प्रतिभू की मृत्यु की सूचना होना आवश्यक नहीं है। यदि प्रतिभूति की मृत्यु के पश्चात ऋणदाता कोई भी व्यवहार करता है तो उन व्यवहारों के लिये चालू प्रतिभूति समाप्त मानी जायेगी अर्थात प्रतिभू उत्तरदायी नही होगा। प्रतिभू की मृत्यु से पूर्व किये गये व्यवहारों के लिये प्रतिभू का उत्तराधिकारी दायी होता है।

3– **किसी भी ऐसी परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने पर जिसमें प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है (Condition in which Surety Discharged from Liability)**

जिन परिस्थितियों में प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है उनमें भी चालू प्रतिभूति समाप्त हो जाता है अर्थात –

1. बिना प्रतिभू की सहमति के अनुबन्ध की शर्त में परिवर्तन किये जाने पर।
2. मूलऋणी को दायितव से मुक्ति दिये जाने पर ।
3. मूलऋणी व ऋणदाता के बीच बिना प्रतिभू की सहमति के समझौता हो जाने पर।
4. ऋणदाता द्वारा कोई ऐसा कार्य अथवा भूल किये जाने पर जिससे प्रतिभू के अधिकार को हानि पहुंचती हो।
5. ऋणदाता द्वारा प्रतिभूति के खो जाने पर ।

नोट – (इनका विस्तृत वर्णन 'प्रतिभू के दायित्व की समाप्ति' शीर्षक में आगे किया गया है।)

8.9 प्रतिभू के दायित्व की समाप्ति (Discharge of Surety from Liability)

निम्नलिखित दशाओं मे से किसी भी दशा में प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता हैः–

1– **खण्डन की सूचना देकर (By Notice of Revocation)**(धारा 130) – प्रतिभू खण्डन की सूचना देकर अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। परन्तु विशेष ऋण के लिये दी गई प्रतिभूति जिसे विशिष्ट प्रतिभूति कहते हैं, का खण्डन नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसमें दायित्व उत्पन्न हो जाता है। चालू प्रतिभूति तथा विशिष्ट प्रतिभूति में यदि दायित्व उत्पन्न नहीं हुआ तो खण्डन की सूचना देकर प्रतिभू दायित्व से मुक्त हो जाता है चालू प्रतिभूति में यदि दायित्व उत्पन्न हो चुका है तो खण्डन की सूचना दे कर प्रतिभू भावी दायित्व से मुक्त हो सकता है। परन्तु उक्त सूचना से पूर्व किये गये व्यवहारों के लिए प्रतिभू उत्तरदायी बना रहता है।

2– **प्रतिभू की मृत्यु होने पर (By Death of Sruety)**(धारा 131) – यदि कोई विपरीत अनुबन्ध नही है तो प्रतिभू की मृत्यु होने पर भावी व्यवहारों के लिये चालू प्रतिभूति समाप्त हो जाती है और भावी व्यवहारों के लिये उसका कोई दायित्व नहीं रहता है। बशर्तें की इसके प्रतिकूल कोई अनुबन्ध न कर लिया गया हो। चाहे ऋणदाता को प्रतिभू की मृत्यु की जानकारी न मिली हो तो भी मृत प्रतिभू की सम्पत्ति उसकी मृत्यु के बाद किये गये किसी व्यवहार के लिए उत्तरदायी नहीं होगीं।

3– **अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन करके (By Variance in terms of contract)**–(धारा 133)

यदि ऋणी तथा ऋणदाता बिना प्रतिभू की सहमति लिये अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन कर देते हैं तो परिवर्तन के बाद किये जाने वाले व्यवहारों से उत्पन्न दायित्वों के लिए प्रतिभू मुक्त हो जाता है। उदाहरण के लिये – राम, मोहन से कहता है कि वह उसकी जमानत पर सोहन को 10 हजार रूपये मासिक पर नौकरी में रख ले मोहन उसे रख लेता है कुछ समय बाद मोहन तथा सोहन में अनुबन्ध होता है कि उसे केवल 5 हजार रूपये वेतन मिलेगा और वह लाभ/ हानि में 10 प्रतिशत का हिस्सेदार होगा इस परिवर्तन के लिये राम की सहमति नहीं ली गयी। इसीलिये इस परिवर्तन के बाद मोहन की किसी भी गलती के लिये राम(प्रतिभू) उत्तरदायी नहीं होगा।

धारा 133 के प्रावधान चालू प्रतिभूति के साथ साथ विशिष्ट प्रतिनिधि की स्थिति में भी लागू होते है अतः यदि कोई लेनदान या देनदार प्रतिभू की सहमति के बिना अनुबन्ध की शर्त में परिवर्तन कर लेते है तो प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है (भले ही ऐसा परिवर्तन प्रतिभू के लिए लाभप्रद हो या उससे प्रतिभू की

स्थिति प्रभावित न होती हो।) क्योंकि प्रतिभू केवल उसी बात के लिए उत्तरदायी होता है जिसके लिए वह अनुबन्ध में बचनबद्व हो चुका है। अनुबन्ध की शर्त में परिवर्तन होते ही प्रतिभू लेनदार से यह कहने का अधिकारी हो जाता है कि तुमने मुख्य शर्तों वाला अनुबन्ध समाप्त कर दिया है जिसके पालने के लिये मैनें प्रतिभूति दी थी और इसलिए अब मेरा दायित्व समाप्त हो गया। उदाहरण के लिए 'स' 'ब' को लेखाकार के पद पर नियुक्त करता है तथा 'अ' 'स' को 'ब' की प्रतिभूति देता है कि 'ब' यदि कार्य में हानि पहुंचायेगा तो वह उसकी पूर्ति करेगा। यदि 'अ' की सहमति के बिना 'ब' को लेखाकार के कार्य के अलावा रोकड़ प्राप्ति व भुगतान करने का कार्य भी दे दिया जाता है तो 'अ' अपने कार्य से मुक्त हो जायेगा।

4— **मूल ऋणी को छुटकारा या मुक्ति देकर (By Relese or Discharge of Principal Debtor)**–

धारा 134, यदि ऋणदाता ऋणी को उसके दायित्व से मुक्त कर देता है तो ऐसी स्थिति में प्रतिभू भी अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा।

उदाहरण– राम, मोहन से कहता है कि वह उसकी जमानत पर सोहन को 10 हजार रू0 उधार दे दे, मोहन रूपये उधार दे देता है। परन्तु कुछ समय बाद मोहन सोहन से कहता है कि जो रूपये उसने उसे उधार दिये हैं उसे वापस करने की आवश्यकता नहीं है तो ऐसी स्थिति में राम भी प्रतिभू के दायित्व से मुक्त हो जायेगा।

धारा 134 के अनुसार, प्रतिभू निम्नलिखित दो प्रकार से अपने दायित्व से मुक्त हो सकता है —

अ— जब ऋणी तथा ऋणदाता द्वारा आपस में कोई ऐसा अनुबन्ध कर लिये जाने पर जिससे मूल ऋणी अपनी देनदारियों से मुक्त हो जाता है, तो प्रतिभू भी अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

ब— जब ऋणदाता द्वारा कोई ऐसा कार्य या भूल किये जाने पर, जिसके वैधानिक परिणाम स्वरूप देनदार अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है तो प्रतिभू भी अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा। उदाहरण 'अ' तथा 'ब' के बीच एक अनुबन्ध होता है जिसके अनुसार 'अ' एक निश्चित धनराशि के बदले मकान बनाकर देगा तथा मकान के लिए सामग्री 'ब' देगा। 'स' इसमें 'ब' को प्रतिभूति देता है कि 'अ' समय पर मकान बनाकर दे देगा। कुछ समय पश्चात 'ब' मकान बनाने के सामग्री नहीं देता है तो इस कारण 'अ' मकान बनाने के दायित्व से मुक्त हो जायेगा। और साथ ही 'स' प्रतिभू भी अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा।

निम्न परिस्थितियों में प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नहीं हों सकता है :—

1. जब मूल ऋणी कों समय देने का अनुबन्ध ऋणदाता ने किसी तीसरें व्यक्ति के साथ किया हों न कि ऋणी के साथ।
2. जब मूल ऋणी पर वाद प्रस्तुत करने से या उसके विरूद्व कोई दूसरा उपचार प्रयोग में लाने से ऋण दाता केवल रूका रहे।
3. जब किसी प्रतिभूति अनुबन्ध में एक से अधिक सह—प्रतिभू हो, और ऋणदाता उनमें से किसी एक को दायित्व से मुक्त कर दे तो ऐसी दशा में शेष प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नही हो जाते और न ही इस प्रकार छुटकारा पाया हुआ प्रतिभू दूसरे प्रतिभूओं के प्रति अपने दायित्वों से मुक्त होता है।

5– प्रतिभू की सहमति के बिना ऋणी व ऋणदाता के बीच समझौता (Agreement Between Credtor and Debtor without surety's consent)– धारा 135, यदि ऋणदाता व मूल ऋणी, प्रतिभू की सहमति के बिना कोई ऐसा समझौता कर लेते है जिसके अनुसार ऋण चुकाने की अवधि बड़ जाये या ऋणी पर मुकदमा न चलाने का समझौता हो जाता है तो ऐसे समझौते होने पर प्रतिभू का दायित्व समाप्त हो जाता है।

निम्न परिस्थितियों में प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नहीं हों सकता है :–

1. जब मूल ऋणी कों समय देने का अनुबन्ध ऋणदाता ने किसी तीसरें व्यक्ति के साथ किया हों न कि ऋणी के साथ। उदाहरण – 'स' ने 'ब' को रूपया उधार दिया है 'अ' ने प्रतिभूति दी है। यदि 'स' 'म' के साथ 'ब' के भुगतान की अवधि बढ़ाने का अनुबन्ध करता है तो 'अ' प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नहीं होगा।

2. जब मूल ऋणी पर वाद प्रस्तुत करने से या उसके विरूद्व कोई दूसरा उपचार प्रयोग में लाने से ऋण दाता केवल रूका रहे। उदाहरण – 'स' ने 'ब' को रूपया उधार दिया है तथा 'अ' ने प्रतिभूति दी है उक्त ऋण देय हो जाने के बाद 'स' एक वर्ष तक उसकी वसूली के लिए 'ब' पर मुकदमा नहीं चलाता है। 'स' द्वारा मुकदमा न चलाने के कारण 'अ' प्रतिभू के रूप में अपने दायित्व से मुक्त नहीं होगा।

3. जब किसी प्रतिभूति अनुबन्ध में एक से अधिक सह–प्रतिभू हो, और ऋणदाता उनमें से किसी एक को दायित्व से मुक्त कर दे तो ऐसी दशा में शेष प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नही हो जाते और न ही इस प्रकार छुटकारा पाया हुआ प्रतिभू दूसरे प्रतिभूओं के प्रति अपने दायित्वों से मुक्त होता है।

6– ऋणदाता के किसी कार्य या भूल से जिससे प्रतिभू के अधिकार में कमी हो जाती है (By creditor's Act or Omission impairing surety' remedy) –

धारा 139, यदि ऋणदाता ऐसा कार्य करे जो प्रतिभू के अधिकारों के असंगत हो या वह किसी ऐसे कार्य के करने में भूल करे जिसका करना उसके कर्तव्यों के अनुसार प्रतिभू के प्रति आवश्यक हो और जिससे मूलऋणी के विरूद्व प्रतिभू के अधिकारों में कोई कमी आ जाती है तो ऐसी स्थिति में प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा। संक्षेप में ऋणदाता का यह कर्तव्य है कि वह प्रतिभू के अधिकारों की रक्षा के लिए हर आवश्यक कार्य करें और यदि वह अपने इस कर्तव्य का निर्वाह नहीं करता तो प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। जैसे यदि किसी खजांची की ईमानदारी के बारे में राम प्रतिभूति देता है तो खजांची द्वारा बेईमानी किये जाने पर उसके नियोक्ता का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह प्रतिभू को इसकी सूचना दे। यदि नियोक्ता सूचना नहीं देता और उसे अपने यहा नियुक्त किये रहता है तो प्रतिभू दायित्व से मुक्त हो जाता है क्योंकि नियोक्ता द्वारा प्रतिभू को सूचित न करने का कारण वसूली सम्बन्धी कार्यवाही करने के सम्बन्ध में पुलिस को सूचित करने के अधिकार को हानि पहुंची हो। उदाहरण के लिये – राम, मोहन से कहता है कि वह उसकी जमानत पर सोहन को नौकरी पर रख ले तथा साथ ही यह भी कहता है कि माह में कम से कम एक बार वह सोहन के हिसाब किताब की जॉच कर ले। मोहन ने सोहन के हिसाब की जाँच नहीं की

जिस पर सोहन ने हिसाब किताब में गड़बड़ी कर दी। ऐसी स्थिति मे राम का प्रतिभू के रूप में कोई दायित्व नहीं होगा क्योकि मोहन ने भूल की थी अर्थात हिसाब की जाँच नहीं की थी।

7– जब कपट या मिथ्या वर्णन द्वारा प्रतिभूति प्राप्त की गई हो (By Fraud or Misrepresentation)–

धारा 142, के अनुसार जब कोई प्रतिभूति ऋणदाता ने कपट या मिथ्यावर्णन द्वारा प्राप्त की हो तो ऐसी प्रतिभूति अवैद्य होती है और इसीलिये प्रतिभू इस प्रकार दी हुयी प्रतिभूति के लिये उत्तरदायी नहीं होगा।

उदाहरण के लिये– मोहन ऋणदाता को पता है कि राम धोखेबाज तथा उसकी आर्थिक स्थिति खराब है परन्तु वह सोहन (प्रतिभू) से कहता है कि राम अच्छा है उसकी जमानत दे दो। यहॉ पर ऋणदाता द्वारा प्रतिभू के साथ कपट किया गया है इसलिये सोहन का इस प्रतिभूति के लिये कोई उत्तरदायित्व नहीं होगा।

8– प्रतिभूति को खो देना या वापस कर देने पर (By Loss of Security or return security)–

(धारा 141) यदि ऋणी ने ऋणदाता के पास कोई वस्तु गिरवी रखी है साथ ही किसी व्यक्ति ने प्रतिभूति भी दी है यदि बिना प्रतिभू की सहमति के वह गिरवी रखी वस्तु वापस कर दी जाय तो प्रतिभू, प्रतिभूति के मूल्य की सीमा तक अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा। यदि गिरवी रखी हुई वस्तु खो जाये तो भी प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य बात है कि यदि खोई हुई या लौटाई गयी प्रतिभूति मूल अनुबन्ध होने के पश्चात अतिरिक्त जमानत के रूप में ली गई हो तो प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नहीं होता।

9– सह–प्रतिभू द्वारा प्रतिभू न देने पर (When Co-surety not Join)– यदि प्रतिभू ने प्रतिभूति देने से पहले ही यह शर्त लगा दी हो कि कोई अन्य व्यक्ति सह प्रतिभू होगा तो ऐसी स्थिति में यदि कोई दूसरा व्यक्ति सह प्रतिभू न हों तो प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा। यदि सह प्रतिभू बनता है परन्तु उसे दायित्व से मुक्त कर दिया जाये तो भी प्रतिभू दायित्व से मुक्त हो जायेगा।

8.10 प्रतिभू के अधिकार (Rights of Surety)

प्रतिभू को ऋणी, ऋणदाता तथा सह–प्रतिभूओं के विरूद्व कुछ अधिकार प्राप्त होते है जिनका वर्णन नीचे किया जा रहा है –

(अ). मूल ऋणी के विरूद्ध अधिकार (Right against the Principal Debtor) –

प्रतिभू को मूल ऋणी अर्थात देनदार के विरूद्व निम्न लिखित दो अधिकार प्राप्त होते हैं–

1– अनुस्थापना का अधिकार (Right of Subrogations) (धारा 140)—मूल ऋणी द्वारा चूक करने पर (धन वापस न करना या काम में गडबडी करना) जब प्रतिभू को उसके ऋण का भुगतान करना पड़ता है या उसके द्वारा पहुॅचायी हानि को पूरा करना पडता है तो प्रतिभू को लेनदार के वे सभी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो उसे मूल ऋणी के विरूद्ध प्राप्त थे। दूसरे शब्दों में प्रतिभू द्वारा ऋणी को भुगतान कर देने पर वह (प्रतिभू) लेनदार का स्थान ग्रहण कर लेता है और उन सभी उपचारों का अधिकारी हो जाता है जिन्हें ऋणदाता मूल ऋणी के विरूद्व परिवर्तित करा सकता था। अर्थात वह ऋणदाता से प्रतिभूति में रखी गई वस्तु

मांग सकता है। ऋणी के विरूद्ध मुकदमा चला सकता है और ऋणी के दिवालिया होने पर उसकी सम्पत्ति से लाभांश या अपना अंश की मांग कर सकता है।

2– **क्षतिपूर्ति का दावा करने का अधिकार (Right to claim indemnity)**(धारा 145)– प्रतिभूति के प्रत्येक अनुबन्ध में मूल ऋणी द्वारा प्रतिभू की क्षतिपूर्ति का गर्भित वचन होता है और प्रतिभू ऐसी किसी भी राशि को ऋणी से वसूल करने का अधिकारी होता है जो उसने प्रतिभूति अनुबन्ध के अर्न्तगत वैद्य रूप से भुगतान की हो। परन्तु गलत या अनुचित रूप से भुगतान की गई धनराशि प्रतिभू मूल देनदार से वसूल नहीं कर सकता है। प्रतिभू वैध रूप से भुगतान की गई राशि को प्राप्त करने का अधिकारी होता है। जैसे मूलधन तथा मूलधन पर ब्याज, किसी विनिमय–विपत्र की दशा में नोटिगं का खर्चा, मुकदमें का खर्चा (बशर्तें की मुकदमें का प्रतिवाद करने के लिए उचित आधार विद्यमान हो) आदि राशियां वैध रूप से भुगतान की श्रेणी में आती है।

उदाहरण के लिये– राम ने मोहन से ऋण लिया है और सोहन ने जमानत दी है राम द्वारा ऋण भुगतान न करने पर मोहन, सोहन से धन मांगता है सोहन के मना करने पर मोहन, सोहन के विरूद्ध वाद प्रस्तुत करता है। सोहन उचित आधार पर प्रतिवाद करता है सोहन को ऋण तथा व्यय भुगतान करने के लिये न्यायालय द्वारा आदेश दिया जाता है। प्रतिभू (सोहन) को ऋण तथा व्यय की राशि चुकानी पड़ती है। इस स्थिति में सोहन अपने द्वारा चुकाई गई समाप्त राशि राम से वसूल करने का अधिकारी है।

(ब). ऋणदाता के विरूद्ध अधिकार (Rights against the Creditor)–

प्रतिभू को ऋण दाता के विरूद्ध निम्नलिखित दो अधिकार प्राप्त होते हैं–

1– **ऋणदाता के पास विद्यमान प्रतिभूतियों का लाभ उठाने का अधिकार (Rights to benefit of creditor's security)**– धारा 141, प्रतिभू द्वारा ऋणदाता को यदि भुगतान करना पडे तो वह भुगतान करते समय ऋणदाता से उन सभी प्रतिभूतियों को प्राप्त करने का अधिकारी होता है जो ऋणी ने उसे जमानत के तौर पर दी है। प्रतिभू को ऐसी जानकारी पूर्व में थी या नही महत्वहीन है यदि ऋणदाता ली गयी किसी प्रतिभूति को अपनी लापरवाही से खो देता है या प्रतिभू की सहमति के बिना वापस कर देता है तो प्रतिभू का दायित्व उक्त प्रतिभूति कू मूल्य की सीमा तक कम हो जाता है। उदाहरण के लिये – 'अ' 'ब' को 'स' की प्रतिभूति पर 20000 रू उधार देता है तथा साथ ही कुछ आभूषण भी गिरवी रख लेता है। 'ब' दिवालिया हो जाता है और 'अ' 'स' पर भुगतान प्राप्त करने हेतु वाद प्रस्तुत करता है यहां पर 'स' आभूषणों के मूल्य की रकम के बराबर दायित्व से मुक्त हो जाता है अर्थात वह 20000 रू में से आभूषण के मूल्य कम कर शेष राशि के लिए ही उत्तरदायी होगा।

2– **प्रतिदावा करने का अधिकार (Right to counter – claim)** प्रतिभू को लेनदार के विरूद्ध ऐसा **प्रतिदावा** करने का अधिकार है जो मूल देनदार लेनदार के विरूद्ध करने का अधिकारी होता।

(स) सह–प्रतिभूओं के विरूद्ध अधिकार (Right against Co - Sureties)

धारा 146, जब किसी ऋण के सम्बन्ध में एक से अधिक व्यक्ति प्रतिभूति देते है तो उन्हें सह–प्रतिभू कहते है। सह–प्रतिभू, ऋण के भुगतान के लिये अपने मध्य हुए अनुबन्ध के अनुसार अंशदान करने के लिये उत्तरदायी होते है। परन्तु

इस सम्बन्ध में परस्पर अनुबन्ध न होने की स्थिति में यदि कोई एक सह–प्रतिभू पूरे ऋण को भुगतान करने के लिए बाध्य कर दिया जाता है तो उसे दूसरे सह–प्रतिभू से अंशदान कराने का अधिकार होता है अंशदान के सम्बन्ध में निम्न नियम है –

1. जब उन्होंने एक ही ऋण के सम्बन्ध में समान राशि के लिए प्रतिभूति दी हो ऐसी स्थिति में सह–प्रतिभू बराबर बराबर अंशदान करने के लिए उत्तरदायी होते है और यदि प्रतिभूति के रूप में कुछ सम्पत्ति गिरवी रखी है तो वे उसके लाभ को बराबर बराबर बाटने के अधिकारी होते है। उदाहरण के लिए – 'अ','ब'. 'स' 3 लाख रू के ऐसे ऋण के सम्बन्ध में प्रतिभू है जो 'द' ने 'य' को दिया है 'य' ऋण का भुगतान नहीं कर पाता। 'अ', 'ब', 'स' में से प्रत्येक 1 लाख रू का भुगतान करने के उत्तरदायी होगें। यदि 'य' दिवालिया हो जाने के कारण उसकी सम्पत्ति से 1 लाख 50 हजार रू ही वसूल हो पाता है तो 'अ', 'ब', 'स' प्रत्येक 50–50 हजार रू के लिए उत्तरदायी होगें।

2. जब उन्होंने एक ही ऋण के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न रकमों के लिए प्रतिभूति दी हो –

धारा 147 – इस सम्बन्ध में नियम यह है कि प्रत्येक प्रतिभू अपनी अपनी प्रतिभूति की सीमा तक बराबर बराबर अंशदान करेंगे, अपनी प्रतिभूति की राशि के अनुपात में नहीं। उदाहरण के लिये 'अ', 'ब' तथा 'स' तीन व्यक्ति 'द' की प्रतिभूति 'य' को देते है जिनके अनुसार 'द' द्वारा हिसाब किताब में गड़बड़ी करने पर तथा सही हिसाब न देने पर 'अ', 'ब' तथा 'स' क्रमशः 10 हजार, 20 हजार तथा 40 हजार रू तक राशि की प्रतिभूति देते है। ऐसी स्थिति में –

अ – यदि 'द' 30 हजार रू का गबन करता है तो 'अ', 'ब', 'स' प्रत्येक 10 हजार रू भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगें।

ब – यदि 'द' 40 हजार रू का गबन करता है तो ऐसी स्थिति में 'अ' 10 हजार रू के लिए तथा 'ब' व 'स' प्रत्येक 15 हजार रू के भुगतान के लिए उत्तरदायी होगें।

स – यदि 'द' 60 हजार रू का गबन करता है तो 'अ' 10 हजार, 'ब' 20 हजार तथा 'स' 30 हजार रू के भुगतान के उत्तरदायी होगें।

द – यदि 'द' ने 70 हजार या अधिक गबन किया है तो 'अ' 'ब' तथा 'स' प्रत्येक अपनी प्रतिभूति की पूरी रकम भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगें।

जब एक से अधिक प्रतिभू हो और ऋणदाता किसी एक को छुटकारा दे दे तो यह छुटकारा दूसरे प्रतिभूओं को ऋणदाता के प्रति उनके दायित्व से मुक्त नहीं करेगा। तथा साथ ही यह छुटकारा पाया हुआ प्रतिभू दूसरे प्रतिभूओं के प्रति अपने दायित्व से मुक्त नहीं होगा अर्थात दूसरे प्रतिभू इस छुटकारा पाये हुए प्रतिभू से उसके भाग का धन वसूल कर सकते है।

जहां एक से अधिक प्रतिभू हो और उनमे से केवल किसी एक ने ही ऋण का भुगतान कर दिया हो तो ऐसी स्थिति में वह अपने भाग से अधिक दिये गये धन को दूसरे सह–प्रतिभूओं से वसूल करने का अधिकारी होगा।

8.11 सारांश

हानि रक्षा अनुबन्ध वह अनुबन्ध है जिसके अन्तर्गत एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को किसी ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है जो उसे स्वयं वचनदाता

के व्यवहार द्वारा अथवा किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार द्वारा पहुंचे। हानि रक्षा अनुबन्ध में दो पक्षकार होते है – हानि रक्षक तथा हानि रक्षाधारी। हानि रक्षाधारी हानि रक्षक से उस पर मुकदमा चलाये जाने पर मुकदमे से सम्बन्धित हर प्रकार का हर्जाना व्यय तथा समझौते की रकम वसूल कर सकता है बशर्ते की उसने बुद्विमानी से तथा हानि रक्षक के आदेशानुसार कार्य किया हो।

प्रतिभूति अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की त्रुटि की दशा में उसके वचन का निष्पादन करने या उसके दायित्व को पूरा करने का वचन देता है। प्रतिभूति अनुबन्ध में तीन पक्षकार होते है – प्रतिभू, ऋणी तथा ऋणदाता।

हानि रक्षा अनुबन्ध में दो पक्षकार होते है जबकि प्रतिभूति अनुबन्ध में तीन। हानि रक्षा अनुबन्ध में एक ही अनुबन्ध होता है जबकि प्रतिभूति अनुबन्ध में तीन। हानि रक्षक का दायित्व प्राथमिक होता है जबकि प्रतिभू का दायित्व द्वितीयक होता है। हानि रक्षक को यदि क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है तो वह ऐसे भुगतान को पाने के लिए किसी के विरूद्व वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता जबकि प्रतिभू को हानिपूर्ति करनी पड़ जाती है तो वह मूल़ ऋणी के विरूद्व दावा प्रस्तुत कर सकता है। हानि रक्षा अनुबन्ध स्पष्ट अथवा गर्भित दोनों हो सकते है जबकि प्रतिभूति अनुबन्ध गर्भित नहीं होता केवल स्पष्ट होता है।

विशिष्ट प्रतिभूति किसी विशेष ऋण अथवा विशेष कार्य के लिए दी जाती है और चालू प्रतिभूति एक व्यवहार के लिए नही बल्कि व्यवहारों के श्रृखंला के लिए दी जाती है। चालू प्रतिभूति भावी व्यवहारों के लिए सूचना देकर अथवा प्रतिभू की मृत्यु होने पर समाप्त हो जाती है। प्रतिभूति अनुबन्ध में प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है यदि – खण्डन की सूचना दी जाये, प्रतिभू की मृत्यु हो जाये, ऋणी और ऋणदाता द्वारा बिना प्रतिभू की सहमति के अनुबन्ध की शर्त में परिवर्तन किया जाये, ऋणदाता द्वारा ऋणी को मुक्त कर दिया जाये, ऋणदाता के किसी भूल से यदि प्रतिभू के अधिकार में कमी आ जायें, जब प्रतिभूति कपट या मिथ्यावर्णन द्वारा ली जाये, जब ऋणदाता ने जमानत के तौर पर रखी हुई वस्तु खो दी हो या वापस कर दी हो, आदि।

ऋणी की त्रुटि की दशा में प्रतिभू को उसके वचन का निष्पादन करना पड जाये तो ऐसी स्थिति में प्रतिभू को ऋणदाता के आधिकार मिल जाते है अर्थात प्रतिभू को छतिपूर्ति के लिए दावा करने का अधिकार होता है प्रतिभू को ऋणदाता के पास रखी हुई प्रतिभूतियों का लाभ उठाने का अधिकार होता है यदि सह–प्रतिभूहों तो प्रतिभू उनसे उनका अंश वसूल कर सकता है।

8.12 शब्दावली

हानि रक्षा अनुबन्धः यह एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके द्वारा एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को किसी ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है जो उसको स्वयं वचनदाता के व्यवहार द्वारा अथवा किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार द्वारा पहुँचे।

प्रतिभूति अनुबन्धः यह एक ऐसा अनुबन्ध है जिसमें एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को, किसी तीसरे व्यक्ति की त्रुटि कि दशा में उसके (तीसरे व्यक्ति के) वचन का निष्पादन करने तथा उसके दायित्व को पूरा करने का वचन देता है।

8.13 बोध प्रश्न

क– निम्नलिखित में से सही उत्तरों का चयन कीजिये –

1. हानि की छतिपूर्ति करने वाले अनुबन्धों को कहते है –

अ. प्रतिभूति अनुबन्ध ब. हानिरक्षा अनुबन्ध

स. अर्द्व अनुबन्ध द. संयोगिक अनुबन्ध

2. वह व्यक्ति जो हानि से बचाने का वचन देता है उसे कहते है –

अ. हानिरक्षक ब. हानि रक्षाधारी

स. प्रतिभू द. ऋणदाता

3. हानि रक्षक का दायित्व होता है –

अ. द्वितीयक ब. प्राथमिक

स. प्राथमिक अथवा द्वितीयक द. प्राथमिक एवंम द्वितीयक

4. प्रतिभूति अनुबन्ध में जो गारन्टी देता है उसे कहते हैं –

अ. ऋणदाता ब. ऋणी

स. हानि रक्षाधारी द. प्रतिभू

5. एक प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है यदि –

अ. प्रतिभू द्वारा खण्डन की सूचना दी जाये।

ब. ऋणी व ऋणदाता द्वारा अनुबन्ध की शर्त में परिवर्तन किया जाये।

स. ऋणदाता द्वारा ऋणी को मुक्त कर दिया जाये।

द. उपरोक्त सभी दशाओं में ।

ख – निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य बताइयें –

1. प्रतिभू का दायित्व ऋणी से कम हो सकता है।
2. वह व्यक्ति जिसको हानि पूर्ति का वचन दिया जाता है उसे हानि रक्षाधारी कहते है।
3. प्रतिभूति अनुबन्ध में दो अनुबन्ध होते है।
4. प्रतिभू का दायित्व प्राथमिक होता है।
5. यदि ऋणदाता ऋणी को दायित्व से मुक्त कर दे तो भी प्रतिभू का दायत्वि समाप्त नहीं होता।

8.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

क –

1. ब	2. अ	3. ब	4. द	5. द

ख –

1. सत्य	2. सत्य	3. असत्य	4. असत्य	5. असत्य

8.15 स्वपरख प्रश्न

1. क्षतिपूर्ति की अनुबन्ध की परिभाषा दीजिये। जब क्षतिपूरित व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जाता है तो उसके क्या अधिकार होते है ? क्षतिपूरक व्यक्ति का दायित्व कब प्रारम्भ होता है ?

   Define a contract of indemnity? What are the rightsof an indemnity holder when sued? When does the indemnifier's commence?

2. गारंटी की अनुबन्ध किसे कहते हैं ? इनकी प्रमुख विशेषतायें कौन कौन सी हैं ? गारंटी की अनुबन्ध और क्षतिपूर्ति की संविदा के अंतर को स्पष्ट कीजिये।

What is a contract of gurantee? What are its special features? Distinguish between a contract of gurantee and contract of indemnity?

3. चालू गारंटी किसे कहते हैं ? वह कैसे खण्डित की जाती है ?

Discuss the nature and extent of surety's liability.

4. उन परिस्थितियों का उल्लेख कीजिये जिनमें प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।

State and explain the circumstances under which a surety is discharged from his liability.

(क) क्या प्रतिभू की मृत्यु हो जाने पर गारंटी की संविदा समाप्त हो जाती है ?

Does the death of a surety put an end the contract of gurantee?

(ख) यदि लेनदार सह जमानतियों में से किसी एक को उसके दायित्व से छुटकारा प्रदान कर दे तो क्या अन्य प्रतिभू भी अपने अपने दायित्व से मुक्त हो जायेंगे ?

Does the relase by the creditor of one of the sureties discharge the other?

8.16 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई–9 निक्षेप एवं गिरवी का अनुबन्ध (Contract of Bailment and Pledge)

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 निक्षेप का अर्थ व परिभाषा
9.3 निक्षेप के लक्षण
9.4 निक्षेप के प्रकार
9.5 निक्षेपी के कर्तव्य व उत्तरदायित्व
9.6 निक्षेपगृहिता के कर्तव्य व उत्तरदायित्व
9.7 निक्षेपी के अधिकार
9.8 निक्षेपगृहिता के अधिकार
9.9 निक्षेप अनुबन्ध की समाप्ति
9.10 खोया हुआ माल पाने वाले के कर्तव्य व दायित्व
9.11 खोया हुआ माल पाने वाले के अधिकार
9.12 ग्रहणाधिकार का अर्थ व प्रकार
9.13 गिरवी का अर्थ व लक्षण
9.14 कौन गिरवी रख सकते है?
9.15 गिरवी रखने वाले के कर्तव्य व अधिकार
9.16 गिरवी रख लेने वाले के कर्तव्य व अधिकार
9.17 गिरवी तथा ग्रहणाधिकार में अंतर
9.18 गिरवी तथा निक्षेप में अंतर
9.19 सारांश
9.20 शब्दावली
9.21 बोध प्रश्न
9.22 बोध प्रश्नो के उत्तर
9.23 स्वपरख प्रश्न
9.24 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- निक्षेप का अर्थ, उसकी विशेषताएं तथा प्रकारों को समझ सकें।
- निक्षेपी के कर्तव्य, उत्तरदायित्व व अधिकारों को बता सकें।
- निक्षेपगृहिता के कर्तव्य, उत्तरदायित्व व अधिकारो को समझ सकें।
- निक्षेप अनुबन्ध कैसे समाप्त होता है, को बता सकें।
- पूर्वाधिकार का अर्थ व प्रकारों को समझ सकें।
- गिरवी और उसकी विशेषताओं का वर्णन कर सकें।
- माल के स्वामी के अतिरिक्त कौन गिरवी रख सकता है, को बता सकें।
- गिरवी रखने वाले तथा गिरवी रख लेने वाले के अधिकार व कर्तव्यों का वर्णन कर सकें।

9.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाईयों में आप अध्ययन कर चुकें है कि एक वैध अनुबन्ध होने के लिए क्या विशेषताएं होनी चाहिए तथा अनुबन्ध की समाप्ति कैसे होती है। सामान्य अनुबन्धों के अलावा इस इकाई में आप विशेष प्रकार के अनुबन्धों का अध्ययन करेंगे। जैसे निक्षेप तथा गिरवी के अनुबन्ध। इन अनुबन्धों में भी सामान्य अनुबन्धों की विशेषताओं के अतिरिक्त अन्य विशेषताएं भी होनी चाहिए।

9.2 निक्षेप का अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definition of Bailment)

निक्षेप शब्द फ्रेंच भाषा के "Bailer" शब्द से लिया गया है। 'बेलर' शब्द का अर्थ 'सुपुर्द करना' है निक्षेप शब्द का अर्थ 'स्वेच्छापूर्वक किसी वस्तु को एक व्यक्ति के द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को देना है।' साधारणतः निक्षेप का अर्थ यह होता है कि इसके अन्तर्गत वस्तुओं का ऐच्छिक हस्तान्तरण मालिक द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को जो वस्तुओं के मालिक का नौकर नहीं है, इस शर्त के अन्तर्गत दिया जाता है कि वह व्यक्ति उस वस्तु का प्रयोग करेगा या उसको सुरक्षित रखेगा और काम पूरा हो जाने पर उसको मालिक को लौटा देगा या जैसा मालिक कहेगा उसके अनुसार उस सामान की व्यवस्था कर देगा।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 148 के अनुसारः— ''एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को, किसी विशेष उद्देश्य के लिये, इस अनुबन्ध पर माल सुपुर्द करना, कि उस उद्देश्य के पूरा हो जाने पर माल सुपुर्द करने वाले व्यक्ति को लौटा दिया जायेगा या उसके निर्देशानुसार उसकी व्यवस्था कर दी जायेगी। इस प्रकार की सुपुर्दगी को निक्षेप (Bailment) कहते है। जो व्यक्ति सुपुर्दगी देता है निक्षेपी (Bailor) कहलाता है और जिस व्यक्ति को सुपुर्दगी दी जाती है निक्षेपगृहिता (Bailee) कहलाता है''

उदाहरणः—

1— 'अ' अपनी साइकिल 'ब' को किराये पर देता है।

2— 'अ' अपनी घड़ी 'ब' को मरम्मत करने के लिये देता है।

3— 'अ' कमीज सिलने के लिये 'ब' को कपड़ा देता है।

उपरोक्त उदाहरणों में 'अ' निक्षेपी है और 'ब' निक्षेपगृहिता है। तथा उनके बीच का अनुबन्ध निक्षेप का अनुबन्ध है।

9.3 निक्षेप के लक्षण (Characteristics of bailment)

निक्षेप अनुबन्ध में भी पूर्व में बताए गये वैध अनुबन्ध के लक्षण (पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति, पक्षकारों में अनुबन्ध करने की योग्यता, अनुबन्ध में वैधानिक प्रतिफल व उद्देश्य) के अतिरिक्त निक्षेप अनुबन्ध में निम्नलिखित आवश्यक लक्षण होने चाहिये —

1— **माल की सुपुर्दगी (Delivery of goods)**:—निक्षेप अनुबन्ध का आवश्यक लक्षण माल की सुपुर्दगी है। सुपुर्दगी वास्तविक भी हो सकती है और रचनात्मक भी। वास्तविक सुपुर्दगी उस समय होती है जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को भौतिक रूप में वस्तु सुपुर्द करता है। परन्तु रचनात्मक सुपुर्दगी में वस्तु भौतिक रूप में सुपुर्द नही की जाती बल्कि कोई ऐसा कार्य किया जाता है जिसके द्वारा वस्तु दूसरे व्यक्ति (निक्षेपगृहिता) के अधिकार में आ जाती है। धारा 149 के

अनुसार :– ''किसी भी ऐसे कार्य द्वारा निक्षेप गृहिता को माल की सुपुर्दगी दी जा सकती है जिसका प्रभाव यह हो कि माल निक्षेप गृहिता या उसकी ओर से रखने के लिये अधिकृत व्यक्ति के अधिकार में पहुंच जाय''।

उदाहरणः–अ– 'अ' अपनी घड़ी को मरम्मत करने के लिये 'ब' को देता है। यहां पर 'अ' के द्वारा 'ब' को घडी की वास्तविक सुपुर्दगी है।

ब– 'ब' घड़ी विक्रेता है। 'अ' उससे एक घडी खरीदता है और घडी को एक सप्ताह बाद ले जाने के लिये उसकी दूकान मे ही छोड देता है और मूल्य का भुगतान कर देता है। यहां पर 'ब' ने घडी की वास्तविक सुपुर्दगी नही ली (क्योकि वह घडी तो पहले से ही उसके पास मौजूद थी) परन्तु अब वह निक्षेप गृहिता के रूप में उसे अपने पास रख रहा हैं इसलिये इसे रचनात्मकता सुपुर्दगी कहा जायेगा।

2– **सुपुर्दगी अस्थायी उद्देश्य के लिये (Delivery for temporary purpose)**– माल की सुपुर्दगी अस्थायी उद्देश्य के लिये होनी चाहिये, स्थायी उद्देश्य के लिये नही। जैसे– कोट सिलने के लिये दर्जी को कपडा देना, किराये पर साइकिल देना, प्रयोग के लिये कैमरा देना, आदि।

माल की सुपुर्दगी स्थायी उद्देश्य के लिये न हो, जैसे – 100 रू0 के बदले कपडे की सुपुर्दगी देना, या गेहूॅ लेकर चावल की सुपुर्दगी देना आदि। इस प्रकार की सुपुर्दगी को विक्रय या विनिमय कहेगे, निक्षेप नही।

3– **सुपुर्द की गयी वस्तु को वापस लेने का अधिकार (Rights of return of goods delivered)**– निक्षेप अनुबन्ध इस शर्त के साथ होना चाहिये कि सुपुर्द की गयी वस्तु को ही वापस किया जायेगा, या निक्षेपी के निर्देशानुसार उसकी व्यवस्था कर दी जायेगी। यदि वस्तु परिर्वतन के लिये दी गयी है। तो परिर्वतित रूप में वस्तु वापस कर दी जायेगी। जैसेः– कपड़े को कोट बनाने के लिये दिया जाय। तो यह भी निक्षेप होगा।

यदि सुपुर्द की गयी वस्तु को ही वापस लेने का अधिकार न हो तो ऐसी सुपुर्दगी निक्षेप नही होगी। **जैसेः**– यदि कोई व्यक्ति बैंक में अपने खाते में रूपये जमा करता हैं तो जमाकर्त्ता को वही रूपये (जो उसने जमा किये) वापस लेने का अधिकार नही होता। उसे केवल जमा की गयी धनराशि के बराबर रूपये वापस लेने का अधिकार हैं। इसलिये बैंक में जमा रूपये को निक्षेप नही कहते है परन्तु यदि कोई लॉकर में रूपये या सोना आदि बन्द करके बैक में सुरक्षा के लिये जमा करता है तो इस निक्षेप कहेगे।

4– **माल के अधिकार का हस्तांतरण (Transfer of possession)**– निक्षेप अनुबन्ध होने के लिये माल के हस्तांतरण के साथ–साथ माल के अधिकार का भी हस्तांतरण होना चाहिये। यदि माल के अधिकार का हस्तांतरण नही होगा और केवल सुपुर्दगी ही हो तो उसे निक्षेप नहीं कहेगे। जैसे– किसी नौकर को उसके स्वामी द्वारा देखभाल के लिये माल की सुपुर्दगी निक्षेप नही होगी।

निक्षेप अनुबन्ध में माल के अधिकार का ही हस्तान्तरण होना चाहिये। स्वामित्व का हस्तांतरण नहीं होना चाहिये। **जैसेः**– साइकिल को किराये पर देना निक्षेप हैं क्योंकि इसमे अधिकार का ही हस्तांतरण होता है, स्वामित्व का नही। साइकिल का स्वामी तो किराये पर देने वाला ही रहता है परन्तु यदि मूल्य ले कर साइकिल दी

जाय तो इसमें स्वामित्व का भी हस्तांतरण हो जायेगा। इसलिये इसे निक्षेप नही कहेगे। यह बिक्री हो जायेगी।

9.4 निक्षेप के प्रकार (Types of Bailment)

अ– लाभ के आधार पर **(On the basis of Benefit)** –

1– **निक्षेपी के लाभ के लिये निक्षेप (Bailment for the benefit of the Bailor)** – ऐसे निक्षेप के अनुबन्ध जिनमें केवल निक्षेपी का ही हित होता हो। जैसे– 'अ' अपने दोस्त को सुरक्षित रखने के लिये अपना सामान देता है यहॉ 'अ' निक्षेपी को ही लाभ हो रहा है।

2– **निक्षेपगृहिता के लाभ के लिये निक्षेप (Bailment for the benefit of the Bailee)** – ऐसे निक्षेप जिनमे केवल निक्षेपगृहिता का ही हित होता हो। जैसे– 'ब' 'अ' से पढ़ने के लिये किताब लेता है यहां पर 'ब' निक्षेप गृहिता को ही लाभ हो रहा है।

3– **दोनों के हित के लिये निक्षेप (Bailment for mutual Benefit)** – ऐसे निक्षेप जिनमें निक्षेपी और निक्षेपगृहिता दोनों को ही लाभ होता हो। जैसेः– 'अ' अपनी साइकिल 'ब' को 10रू0 में मरम्मत करने के लिये देता है । यहॉ पर 'अ' निक्षेपी की साइकिल ठीक हो रही है तो 'ब' निक्षेपगृहिता को 10 रू0 मिल रहे है अर्थात दोनो को लाभ हो रहा है।

ब– **प्रतिफल के आधार पर (On the basis of Reward)**–

1– **शुल्क सहित (Bailment for Remuneration)** – जब निक्षेपी या निक्षेपगृहिता किसी को भी निक्षेप के लिये पारिश्रमिक मिलना निश्चित हो जाता हैं तो इसे शुल्क सहित निक्षेप कहते है। जैसेः– 'अ' बैंक में सुरक्षित रखने के लिये आभूषण रखता है तो बैक उससे शुल्क लेता है , इसे शुल्क सहित निक्षेप कहेगें। इसी प्रकार किराये पर वस्तुए देना या मरम्मत के लिये वस्तुए देना आदि शुल्क सहित निक्षेप के उदाहरण है।

2– **शुल्क रहित (Gratuitous Bailment)** – जब निक्षेपी या निक्षेपगृहिता किसी को भी निक्षेप के लिये पारिश्रमिक नही मिलता है तो इसे शुल्क रहित निक्षेप कहते है। जैसे – 'अ', 'ब' से पढ़ने के लिये किताब ले लेता है।

स– उद्देश्य के आधार पर (On the basis of object) – उपरोक्त के अतिरिक्त निक्षेप को निम्न प्रकार से भी विभाजित किया जा सकता है।

1– **रक्षार्थ निक्षेप (Bailment for safety)**– जब एक व्यक्ति अपने ही प्रयोग के लिये दूसरे व्यक्ति को सुरक्षित रखने के लिये माल की सुपुर्दगी देता है तो इसे रक्षार्थ निक्षेप कहते है। जैसेः– बैक के लॉकर में आभूषणों को रखना।

2– **किरायें पर निक्षेप (Bailment for Hire)**– जब माल की सुपुर्दगी निक्षेपगृहिता के प्रयोग के लिये की जाती है और निक्षेपी उसके लिये किराया प्राप्त करता है तो इसे किराये पर निक्षेप कहते है। जैसे– साइकिल किराये पर देना।

3– **प्रयोग के लिये निक्षेप (Bailment for Use)**– जब माल की सुपुर्दगी निक्षेप गृहिता के प्रयोग के लिये की जाती है और इसके लिये कोई शुल्क या किराया नही लिया जाता है तो इसे प्रयोग के लिये निःशुल्क निक्षेप कहते है। जैसे– एक दोस्त दूसरे दोस्त को मुफ्त मे प्रयोग के लिये कैमरा देता है।

4– **गिरवी के लिये निक्षेप (Bailment for Pledge)**– जब ऋणी ऋणदाता को ऋण की प्रतिभूति के लिये माल की सुपुर्दगी करता है तो ऐसी सुपुर्दगी को

गिरवी रखना कहते है। और उसे भी निक्षेप कहते है। क्योंकि ऋण की राशि वापस करने पर सुपुर्द किया गया माल ऋणी (निक्षेपी) को वापस मिल जाता है।

5— **वहनीयता के लिये निक्षेप (Bailment for Carriage)**— जब माल कि सुपुर्दगी वाहक को इस उद्देश्य से कि जाती है कि माल एक स्थान से दूसरे पर पहुंचा दिया जाय, तो इसे वहनीयता के हेतु निक्षेप कहेगे। जैसे— 'अ' अपना माल बम्बई से दिल्ली भिजवाने के लिये 'ब' ट्रान्सपोर्ट कम्पनी'' को सुपुर्द करता है तो इसे वहनीयता के लिये निक्षेप कहेगे।

6— **मरम्मत के लिये निक्षेप (Bailment for Repair)**— जब माल की सुपुर्दगी मरम्मत के लिये की जाती है और मरम्मत करने के पश्चात भुगतान लेकर माल लौटा दिया जाता है तो इसे मरम्मत के लिये निक्षेप कहेगे।

9.5 निक्षेपी के कर्तव्य व उत्तरदायित्व (Duties and Responsibility of Bailor)

अनुबन्ध अधिनियम में निक्षेपी के कर्तव्य के सम्बन्ध में प्रावधान दिये हुए है, यदि निक्षेपी कर्तव्यों के पालन में त्रुटि करता है तब उसके उत्तरदायित्व उत्पन्न होते है। अधिनियम के अनुसार निक्षेपी के निम्न कर्तव्य होते है—

1— **निक्षेपित माल के दोषो को बताना (To disclose faults in goods bailed)**:— धारा 150 के अनुसार, निक्षेपी का यह कर्त्तव्य है कि वह निक्षेप गृहिता को निक्षेप किये गये माल के उन सब दोषों को बता दे, जिनका उसे ज्ञान है और जिनसे निक्षेगृहिता को माल के प्रयोग में रूकावट पड़ती हो या जो निक्षेपगृहिता को असाधारण जोखिम में डाल दे। यदि निक्षेपी ऐसे दोषों को नही बताता है तो वह इन दोषों के कारण निक्षेपगृहिता के होने वाली हानियों की क्षतिपूर्ति के लिये उत्तरदायी होगा।

उदाहरणः— 'अ' अपना स्कूटर 'ब' को चलाने के लिये देता है और शुल्क नही लेता है, 'अ' को मालूम है कि स्कूटर खराब है परन्तु 'ब' को नही बताता। स्कूटर खराब होने के कारण 'ब' को स्कूटर से गिर कर चोट लग जाती है। 'अ' 'ब' को हुई क्षति की पूर्ति करने के लिये उत्तरदायी है।

यदि माल का निक्षेप किराये पर किया गया है तो निक्षेप किये गये माल के दोष होने के कारण निक्षेपगृहिता को हुई हानि की पूर्ति करने के लिये निक्षेपी उत्तरदायी है चाहे माल में दोष की जानकारी उसे थी या नही। जैसे उपरोक्त उदाहरण में स्कूटर किराये पर दिया हैं और स्कूटर के खराब होने का 'अ' को कुछ पता नही है। परन्तु 'ब' को उस खराबी से गिर कर चोट लग जाती है तो भी 'अ' का उसकी क्षति पूर्ति करने का दायित्व है।

2— **आवश्यक व्ययों का भुगतान करना (To repay the Necessary Expenses)**— धारा 158 के अनुसार— यदि निक्षेपगृहिता को निक्षेप के लिये कोई पारिश्रमिक नही मिलता है तो ऐसी दशा में निक्षेपी का यह कर्तव्य है कि वह निक्षेपगृहिता को ऐसे सब व्ययों का भुगतान करे जो उसने निक्षेप के लिये किये हो, तथा जिनका निक्षेप के लिये किया जाना आवश्यक हो। उदाहरण के लिये— 'अ' अपना घोडा ब के अस्तबल में रखता है। ब को इसके लिये कोई पारिश्रमिक नही मिलता है । ब घोडे को खिलाने में जो भी व्यय करेगा, उसका भुगतान करने का दायित्व अ का है

यदि निक्षेपगृहिता को निक्षेप के लिये पारिश्रमिक दिया जाता है तो साधारण व्ययों को निक्षेपगृहिता ही देगा। परन्तु असाधारण व्ययों के भुगतान का दायित्व निक्षेपी का ही होगा। जैसे– उपरोक्त उदाहरण में घोडे को दाना पानी देना साधारण व्यय माना जायेगा परन्तु घोड़ा बीमार पड जाये तो उसके इलाज में जो व्यय होगा उसे असाधारण व्यय माना जायेगा।

3– निक्षेपगृहिता की क्षतिपूर्ति करना (To indemnify bailee)

(अ) धारा 159 के अनुसार, यदि माल का निक्षेप निश्चित उद्देश्य या निश्चित समय के लिये निःशुल्क किया है और निक्षेपी उद्देश्य के पूरा होने या निश्चित समय से पहले ही माल वापस मांग ले (क्योकि निःशुल्क निक्षेप में निक्षेपी किसी भी समय माल वापस ले सकता है) और इस कारण निक्षेपगृहिता को निक्षेप से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हो जाती है तो निक्षेपी ऐसी हानि को पूरा करने के लिये उत्तरदायी हैं ।

(ब) धारा 164 के अनुसार , यदि निक्षेपी को माल निक्षेप करने या वापस पाने या माल के सम्बन्ध में कोई आदेश देने का अधिकार नही था और निक्षेपगृहिता को इस कारण हानि उठानी पडे तो इस प्रकार की हानि की पूर्ति करने का दायित्व निक्षेपी का है।उदाहरण– 'अ', 'ब' को 'स' का स्कूटर देता है तथा 'स' से अनुमति नही लेता। 'स', 'ब' पर वाद प्रस्तुत करके हर्जाना वसूल कर लेता है। 'ब' को यह हर्जाना 'अ' (निक्षेपी) के पास निक्षेप करने का अधिकार न होने के कारण देना पडा। इसलिये 'अ' इस हानि की पूर्ति करने के लिये उत्तरदायी है।

9.6 निक्षेपगृहिता के कर्तव्य और उत्तरदायित्व (Duties and Resposibilities of Bailee)

निक्षेपगृहिता के कर्तव्य अनुबन्ध अधिनियम में उल्लेखित है तथा कर्तव्य का पालन न करने पर उसके उत्तरदायित्व उत्पन्न होते है। निक्षेपगृहिता के निम्न कर्तव्य होते हैं–

1– निक्षेपित माल की यथोचित देखभाल करना (To take reasonable care of the goods bailed)–

धारा 151 के अनुसार, निक्षेपगृहिता का यह कर्तव्य है कि वह निक्षेपित वस्तु की उतनी ही देखभाल करे, जितनी कि एक साधारण बुद्वि का मनुष्य, समान परिस्थितियों में, समान मात्रा, गुण और मूल्य की, अपने निजी माल की करता है। चाहे निक्षेप शुल्क के लिये हो या बिना शुल्क के हो।

निक्षेपगृहिता द्वारा उचित देखभाल करने के पश्चात भी निक्षेपित माल की हानि, विनाश या क्षय हो जाता है तो उसके लिये निक्षेपगृहिता उत्तरदायी नहीं होगा। उचित देखभाल के अभाव में हुई हानि के लिये निक्षेपगृहिता उत्तरदायी होगा (धारा 152)

साधारण बुद्वि तथा उचित क्या है यह मामले की परिस्थितियों के आधार पर तय किया जाता है। उदाहरण, 'अ' अपना सामान 'ब' को सुरक्षा के लिये निक्षेप करता है। 'ब' सामान को अपने गोदाम मे रखता है और ताला नही लगता है सामान खो जाता है। यहॉ पर 'ब' सामान की हानि पूर्ति करने के लिये उत्तरदायी है क्योकि 'ब' ने साधारण बुद्वि से काम नही लिया अर्थात गोदाम में ताला नही लगाया था। यदि साधारण बुद्वि का प्रयोग किया होता तो समान नही खो जाता।

परन्तु यदि 'ब' का गोदाम ठीक है ताला भी लगा रखा है और तूफान के कारण माल की हानि हो जाती है तो 'ब' उत्तरदायी नही होगा। क्योकि 'ब' तूफान को यथोचित बुद्धि का प्रयोग करके नहीं रोक सकता था।

निक्षेपगृहिता किसी विशिष्ट अनुबन्ध के द्वारा भी अपने इस दायित्व को कम नही कर सकता। इस दायित्व में वृद्धि कर सकता हैं। जैसेः– माल का निक्षेप सुरक्षा के लिये हो तो निक्षेपगृहिता माल को सुरक्षित रखने के अलावा चोरी से सुरक्षित रखने का दायित्व भी अपने ऊपर ले सकता हैं। परन्तु निक्षेपगृहिता किसी भी दशा में असाधारण घटना (जिस पर नियन्त्रण करना उसकी शक्ति के बाहर हो, जैसे– बिजली गिरना, शत्रु देश द्वारा आक्रमण करना आदि) के कारण होने वाली हानि के लिये उत्तरदायी नहीं होगा। निक्षेपगृहिता स्वयं की असावधानी के अतिरिक्त अपने नौकरों की असावधानी के कारण होने वाली हानि के लिये भी उत्तरदायी होता है।

2– **निक्षेपित माल वापस करना (Return of goods bailed)** – धारा 160 के अनुसार, निक्षेपगृहिता का यह कर्तव्य है कि वह निक्षेपित माल को अवधि समाप्त होने पर (यदि निक्षेप निश्चित अवधि के लिये हो) या उद्देश्य के पूरा हो जाने पर (यदि निक्षेप निश्चित उद्देश्य के लिये हो) निक्षेपी को बिना मांगे हुए वापस कर दे या उसके निर्देशानुसार उसकी व्यवस्था कर दे।

यदि निक्षेपगृहिता निश्चित अवधि समाप्त होने पर या उद्देश्य के पूरा होने पर माल वापस नही करता है या वापस करने में विलम्ब करता है तो विलम्ब के कारण होने वाली हानि या क्षय के लिये निक्षेपगृहिता उत्तरदायी होगा। (धारा 161)

यदि माल का निक्षेप अनेक सह–स्वामियों द्वारा किया गया है तो किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में निक्षेपगृहिता सभी सह–स्वामियों की सहमति के बिना, किसी एक सह–स्वामी को या उसके ओदशानुसार अन्य व्यक्ति को, माल वापस कर सकता है। (धारा 165)

यदि निक्षेपी का निक्षेपित माल पर अच्छा अधिकार नही है और निक्षेपगृहिता सद्भावना से निक्षेपी को माल वापस कर देता है तो निक्षेपगृहिता माल के वास्तविक स्वामी के प्रति उत्तरदायी नही होगा। (धारा 166)

3– **निक्षेपित माल में वृद्धि या लाभ को वापस करना (To return any increase or profit from the goods bailed)**– धारा 163 के अनुसार, निक्षेप अनुबन्ध में विपरीत शर्त के न होने पर, निक्षेपगृहिता का यह कर्तव्य है कि यदि निक्षेपित माल में कोई वृद्धि हो जाती है तो वह उस माल को वृद्धि सहित वापस कर दे। उदारहण– 'अ' अपनी गाय 'ब' को देखभाल करने के लिये निक्षेप करता है बाद में गाय का बछड़ा पैदा हो जाता है। तो निक्षेप गृहिता अर्थात 'ब' का यह कर्तव्य है कि वह गाय के साथ बछडा भी वापस करे।

4– **निक्षेप की शर्तो के विपरीत कार्य न करना (Not to do act inconsistant the terms of Bailment)** – धारा 153 के अनुसार, निक्षेपगृहिता का यह कर्तव्य है कि वह निक्षेप अनुबन्ध की समस्त शर्तो का पालन करे। यदि वह निक्षेप की शर्तो के विपरीत कार्य करता है या शर्तो का पालन नही करता है तो निक्षेपी अपनी इच्छा पर अनुबन्ध समाप्त कर सकता है और निक्षेपित माल वापस ले सकता है। यदि शर्तो के पालन न करने से निक्षेपित माल में कोई क्षति या हानि हो जाती है तो उसके लिये भी निक्षेपगृहिता उत्तरदायी होगा। उदाहरण– 'अ'

अपना घोड़ा 'ब' को सवारी के लिये किराये पर देता हैं। 'ब' घोडे को सामान ढुलाई के काम में लेता है। 'ब' द्वारा शर्त के विपरीत घोडे को काम में लेने के कारण 'अ' अनुबन्ध का समाप्त कर सकता है और घोडा वापस ले सकता है।

5– **निक्षेपित माल का अनाधिकृत उपयोग न करना (Not to make an unauthorised use of goods bailed)**– धारा 154 के अनुसार, निक्षेपगृहिता का यह कर्तव्य है कि वह निक्षेपित माल का प्रयोग शर्तो के अनुसार ही करे। यदि वह उसका प्रयोग निक्षेप की शर्तो के अनुसार नही करता तो वह ऐसे उपयोग के समय में या ऐसे उपयोग से होने वाली हानि की पूर्ति करने के लिये उत्तरदायी होगा। चाहे निक्षेपगृहिता की असावधानी का दोष सिद्व न हो सके। या क्षति किसी दुर्घटना के कारण ही क्यों न हुई हो। उदाहरण– 'अ' अपनी कार 'ब' को लखनऊ जाने के लिये किराये पर देता है। परन्तु 'ब' उस कार को बम्बई ले जाता है। रास्ते में सावधानी व सतर्कता से चलाते हुए भी दुर्घटना में कार नष्ट हो जाती है। 'अ', 'ब' से क्षति पूर्ति करा सकता है।

उपरोक्त धारा 153 व 154 में केवल नाममात्र का अन्तर है। यदि निक्षेप की शर्तो अनुसार कार्य नही किया गया हो तो धारा 153 के अनुसार निक्षेपी की इच्छा पर अनुबन्ध व्यर्थनीय (Voidable) हो जाता है परन्तु धारा 154 के अनुसार निक्षेपी क्षतिपूर्ति ही करा सकता है। यह एक तथ्य सम्बन्धी प्रश्न है और न्यायालय समस्त परिस्थितियों के आधार पर ही यह निर्णय करता है कि मामला किस श्रेणी में रखा जाय।

6– **निक्षेपी के माल को अपने निजी माल के साथ न मिलाना (Not to mix Bailor's goods with his own goods)**– निक्षेपगृहीता का यह कर्तव्य है कि वह अपने माल के साथ निक्षेपित माल को न मिलाये। यदि वह मिला देता है तो उसके सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्थायें उसके दायित्व का निर्धारण करती हैः–

(i) धारा 155 के अनुसार , यदि निक्षेपगृहीता निक्षेपी के माल को उसकी सहमति से अपने माल के साथ मिला देता है तो ऐसे मिश्रण में निक्षेपी और निक्षेपगृहिता का हित उनके अंशो के अनुसार होगा।उदाहरण– 'अ' , 'ब' के गोदाम में एक मन आलू सुरक्षित रखने के लिये रखता है। 'ब', 'अ' की सहमति से उसके आलू को अपने 2 मन आलू के साथ मिला कर रख देता है। पूरी मिलावट मे 'अ' तथा 'ब' का भाग क्रमशः 1/3 तथा 2/3 का होगा।

(ii) धारा 156 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहिता निक्षेपी के माल को उसकी सहमति के बिना अपने माल के साथ मिला देता है और माल ऐसा है कि उसे अलग–अलग किया जा सकता है तो दोनों पक्षकार अपने–अपने माल के अधिकारी होगे। परन्तु मिश्रण में से माल को अलग–अलग करने का व्यय और मिश्रण से होने वाली किसी कमी या हानि के लिये निक्षेपगृहिता ही उत्तरदायी होगा।

उदाहरण–'अ' 100 बोरी आटा जिस पर विशेष निशान लगा है 'ब' को सुरक्षित रखने के लिये देता हैं 'ब' उन्हें अपनी आटे की बोरियों (जिन पर दूसरा निशान लगा है) के साथ मिला कर रख देता है। 'अ' अपनी 100 बोरी आटा पाने का अधिकारी है और 'ब' को बोरियों को छांटने व अलग करने का व्यय सहन करना होगा।

(iii) धारा 157 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहिता निक्षेपी के माल को उसकी सहमति के बिना अपने माल के साथ मिला देता है और मिश्रण ऐसा बनता है कि निक्षेपी के माल को मिश्रण में से अलग करना व वापस करना असम्भव हो जाता है। तो निक्षेपगृहिता निक्षेपित माल की हानि पूर्ति अर्थात निक्षेपित माल का मूल्य देने के लिये उत्तरदायी होगा। उदाहरण :– 'अ' एक मन आटा जिसकी कीमत 50 रू0 मन है 'ब' को निक्षेप करता है। 'ब' बिना 'अ' की सहमति के उस आटे को अपने आटे के साथ जिसकी कीमत 35 रू0 मन है, मिला देता है। 'ब' को 'अ' के आटे की क्षति पूर्ति करनी होगी।

9.7 निक्षेपी के अधिकार (Bailor's Rights)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अर्न्तगत जो व्यवस्थायें निक्षेपगृहिता के कर्तव्यों का वर्णन करती है विशेष रूप से वही निक्षेपी के अधिकारों का वर्णन करती हैं। निक्षेपी के निम्न अधिकार हैः–

1:– धारा 152 के अनुसार, निक्षेपगृहिता, द्वारा निक्षेपित माल की उचित देखभाल न करने के कारण, यदि माल की कोई हानि या क्षति हो जाती है तो निक्षेपी ऐसी क्षति की पूर्ति निक्षेपगृहिता से कराने का अधिकारी है।

2:– धारा 160 के अनुसार, निक्षेपी निश्चित अवधि समाप्त होने पर या उद्देश्य पूरा होने पर निक्षेपित माल को बिना मांगे वापस पाने का अधिकारी है। और यदि निक्षेपगृहिता द्वारा सपय पर माल वापस न करने के कारण कोई क्षति हो जाती है तो निक्षेपी ऐसी क्षतिपूर्ति कराने का अधिकारी है।

3:– धारा 163 के अनुसार, निक्षेप अनुबन्ध में विपरीत शर्त के न होने पर, यदि निक्षेपित माल में कुछ वृद्वि या लाभ हो जाता है तो निक्षेपी निक्षेपगृहिता से ऐसी वृद्वि या लाभ पाने का अधिकारी है।

4:– धारा 153 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहिता निक्षेप की शर्तो के विपरीत कार्य करता है, तो निक्षेपी को यह अधिकार है कि वह निक्षेप अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है और निक्षेपित माल वापस ले सकता है।

5:– धारा 154 के अनुसार, निक्षेपगृहिता द्वारा निक्षेपित माल का प्रयोग निक्षेप की शर्तो के अनुसार न करने के कारण माल में कोई हानि हो जाती है तो निक्षेपी ऐसी हानि की पूर्ति निक्षेपगृहिता से कराने का अधिकारी है।

6:– धारा 155 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहिता, निक्षेपी के माल को उसकी सहमति से अपने निजी माल के साथ मिला देता है तो निक्षेपी उस मिश्रण में से अपना अंश (share) पाने का अधिकारी है।

7:– धारा 156 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहिता निक्षेपी के माल को उसकी सहमति के बिना अपने निजी माल के साथ मिलता है और माल अलग–अलग किया जा सकता हो। तो निक्षेपी अपना माल वापस पाने के अतिरिक्त यदि माल में हानि हो गयी हो तो उसे भी पाने का अधिकारी है।

8:– धारा 157 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहिता निक्षेपी के माल को उसकी सहमति के बिना अपने निजी माल के साथ मिलाता हैं और मिश्रण से माल अलग–अलग नही किया जा सकता हो तो निक्षेपी सम्पूर्ण माल की क्षतिपूर्ति अथवा मूल्य पाने का अधिकारी है।

9:— धारा 159 के अनुसार, निःशुल्क निक्षेप की दशा में निक्षेपी को यह अधिकार है कि वह निश्चित अवधि या विशिष्ट उद्देश्य के पूरा होने के पहले किसी भी समय माल वापस ले सकता हैं।

9.8 निक्षेपगृहिता के अधिकार (Bailee's Rights)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के अर्न्तगत जो व्यवस्थायें या धारायें निक्षेपी के कर्तव्यों का वर्णन करती है विशेष रूप से वही निक्षेपगृहिता के अधिकारों का वर्णन करती हैं । निक्षेपगृहिता के निम्न अधिकार हैं।

1 — धारा 150 के अनुसाार, यदि निक्षेपगृहिता को निक्षेपी द्वारा निक्षेपित माल के दोषों को न बताने के कारण हानि हो जाती है तो उसे (निक्षेपगृहिता) ऐसी हानि की पूर्ति कराने का अधिकार है।

2 — धारा 158 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहिता को निक्षेप के लिये कोई पारिश्रमिक नही मिलता है और वह निक्षेप के लिये कुछ आवश्यक व्यय करता है तो वह निक्षेपी से ऐसे व्ययों को पाने का अधिकारी है। यदि निक्षेपगृहिता को पारिश्रमिक मिलता है तो वह केवल असाधारण व्ययो को पाने का अधिकारी है।

3 — धारा 159 के अनुसार, निःशुल्क निक्षेप की दशा में यदि निक्षेपी निक्षेपित माल को निश्चित समय या विशिष्ट उद्देश्य के पूरा होने के पहले वापस मांग लेता है और निक्षेपगृहिता को समय से पहले माल वापस करने में लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हो जाती है तो निक्षेपगृहिता क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी है।

4 — धारा 164 के अनुसार, यदि निक्षेपी को निक्षेपित माल पर स्वत्व प्राप्त नही था या वह उसे निक्षेप करने का अधिकारी नही था। इस अधिकार की कमी के कारण यदि निक्षेपगृहिता को हानि होती है तो निक्षेपगृहिता ऐसी हानि की पूर्ति कराने का अधिकारी हैं।

5 — धारा 165 के अनुसार, यदि माल का निक्षेप अनेक सह—स्वामियों द्वारा किया गया है तो विपरीत शर्त के अभाव में निक्षेपगृहिता को यह अधिकार है कि वह किसी एक सह—स्वामी को अन्य सह—स्वामियों की सहमति के बिना माल वापस कर सकता है।

6 — धारा 167 के अनुसार, यदि निक्षेपी के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति निक्षेपित माल में अपने स्वामित्व का दावा करता है तो ऐसी दशा में निक्षेपगृहिता का यह अधिकार है कि वह न्यायालय में (1) निक्षेपित माल के स्वामित्व का निर्णय करने तथा (2) निक्षेपी के लिये माल की सुपुर्दगी रोकने के लिये, आवेदन कर सकता है, और वह निर्णय होने तक माल अपने पास रोक सकता है।

7 — धारा 170 के अनुसार, यदि निक्षेपगृहिता ने निक्षेप के उद्देश्य के अनुसार, निक्षेपित वस्तु के सम्बन्ध में कोई ऐसी सेवा की हो जिसमें श्रम या कौशल की आवश्यकता हो, तो किसी विपरीत शर्त के अभाव में, निक्षेपृहिता उस वस्तु को तब तक अपने पास रोक कर रखने का अधिकारी है जब तक उसे सेवाओं के लिये यथोचित पारिश्रमिक न मिल जाय। अर्थात निक्षेपगृहिता को विशिष्ट ग्रहणाधिकार प्राप्त है।

8 — धारा 180 के अनुसार, यदि निक्षेपी के अतिरिक्त अन्य कोई तीसरा व्यक्ति निक्षेपगृहिता को दोषपूर्ण रूप से निक्षेपित माल के प्रयोग करने या अधिकार से वंचित रखने का प्रयास करता है या हानि पहुंचाता है तो निक्षेपगृहिता को वे सब अधिकार प्राप्त हो जाते है। जो ऐसी परिस्थिति में माल के वास्तविक स्वामी के

होतें है।ऐसी दशा में निक्षेपी या निक्षेपगृहिता तीसरे व्यक्ति के विरूद्व वाद प्रस्तुत कर सकते है।

9 – धारा 181 के अनुसार, उपरोक्त धारा 180 के अर्न्तगत किये गये वाद से क्षतिपूर्ति के रूप में जो कुछ भी मिलेगा उसमें निक्षेपी तथा निक्षेपगृहिता का उनके हितों के अनुसार अधिकार होगा।

9.9 निक्षेप अनुबन्ध की समाप्ति (Termination of the Contract of Bailment)

निक्षेप अनुबन्ध की समाप्ति निम्नलिखित दशाओं मे होती हैः–

1 – यदि निक्षेप निश्चित अवधि के लिये थे, तो निश्चित अवधि के समाप्त होने पर निक्षेप अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

2 – यदि निक्षेप विशिष्ट उद्देश्य के लिये हो, तो विशिष्ट उद्देश्य के पूरा होने पर निक्षेप अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

3 – जब निक्षेपगृहिता निक्षेप की शर्तो के विपरीत कार्य करता है तो निक्षेपी किसी भी समय, निक्षेप अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है।

4 – जब निक्षेप निःशुल्क हो तो निक्षेपी किसी भी समय निक्षेप अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है। भले ही निक्षेप निश्चित अवधि अथवा उद्देश्य के लिए किया गया हो।

5 – जब निक्षेप निःशुल्क हो तो निक्षेपी या निक्षेपगृहिता किसी की भी मृत्यु होने पर निक्षेप अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

9.10 खोया या पड़ा हुआ माल पाने वाले के कर्तव्य एवं दायित्व (Duties and liabilities of finder of goods)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 71 के अनुसार, यदि किसी व्यक्ति को दूसरे का खोया हुआ माल मिल जाता है, और यदि वह उस माल को अपने अधिकार में ले लेता है (वह अपने अधिकार में लेने के लिये बाध्य नही है) तो वह उस वस्तु का निक्षेपगृहिता के रूप में हो जाता हैं। और उसके निम्नलिखित वे ही कर्तव्य एंव उत्तरदायित्व हो जाते हैं जो कि निक्षेपगृहिता के होते हैः–

1 – उसे पाये हुए माल की उतनी सावधानी पूर्वक देखभाल करनी चाहिए जितनी सावधानी से साधारण दूरदर्शिता वाला व्यक्ति सामान परिस्थितियों में अपने माल की करता है।

2 – उसे पाये हुए माल को, अपने निजी माल के साथ नही मिलना चाहिये।

3 – उसे पाये हुए माल का अनुचित प्रयोग नही करना चाहिये।

4 – उसे पाये हुए माल के वास्तविक स्वामी का पता लगाने की उचित कोशिस करनी चाहिये। जो वस्तु मिली है उसके मुल्य व उसकी प्रकृति के अनुसार ही स्वामी का पता लगाने के तरीके का प्रयोग करना चाहिए।

5 – वास्तविक स्वामी का पता लग जाने पर, पाया हुआ माल उसे वापस कर देना चाहिये ।

6 – यदि पाये हुए माल में कुछ वृद्वि हो गयी हो तो वृद्वि को भी वापस कर देना चाहिये।

9.11 खोया हुआ माल पाने वाले के अधिकार (Rights of finder of goods)

खोया हुआ माल पाने वाले के निम्नलिखित अधिकार हैः–

1. **वास्तविक स्वामी के मिलने तक माल को अपने अधिकार में रखने का अधिकार (Right to retain possession of goods until the true owner is found)** – माल पाने वाला व्यक्ति वास्तविक स्वामी के अलावा, माल को अपने कब्जे में रखने का अधिकारी होता है। वह माल का स्वामी तो नहीं बन सकता परन्तु अपने कब्जे में रखने का अधिकारी होता है।

2 – **माल पर विशिष्ट पूर्वाधिकार (Particular lien on goods)** – धारा 168 के अनुसार, यदि माल का पाने वाला, माल के वास्तविक स्वामी को खोजने या माल को सुरक्षित रखने में कुछ व्यय करता हैं तो वह उस माल को अपने पास तब तक रोकने का अधिकारी है जब तक उसे व्यय की गयी राशि की क्षतिपूर्ति न कर दी जाय। यहॉ पर यह बात ध्यान रखने योग्य है कि ऐसा माल का पाने वाला माल के वास्तविक स्वामी के विरूद्व व्ययों को पाने के लिये वाद प्रस्तुत नही कर सकता है, क्योंकि व्यय करने के संबन्ध में माल के स्वामी और उसके मध्य कोई अनुबन्ध नहीं होता।

3 – **घोषित पुरस्कार के लिये वाद (Suit for raward offerred)** – धारा 168 के अनुसार, यदि माल के स्वामी ने माल पाने वाले को (जो भी माल वापस करेगा) पुरस्कार देने की घोषणा की हो तो माल पाने वाले को पुरस्कार के लिये माल के स्वामी पर वाद प्रस्तुत करने का अधिकार है। और वह पुरस्कार मिलने तक माल को अपने पास रोके रखने का अधिकारी है। परन्तु यहॉ पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि माल पाने वाले को पुंरस्कार के घोषित होने की जानकारी माल पाने से पहले से हो गयी हो अन्यथा वह पुरस्कार पाने का अधिकारी नही होगा।

4 – **माल को बेचने का अधिकार (Right of sale)**:– धारा 169 के अनुसार, यथोचित परिश्रम करने पर भी खोये हुए माल के वास्तविक स्वामी का पता न चल सके या वास्तविक स्वामी माल पाने वाले को उसके द्वारा किये गये व्ययों का भुगतान करने से मना कर दे तो माल को पाने वाला निम्न दशाओं में माल को बेचने का अधिकारी हैः–

अ– जब माल नष्ट होने वाला हो या माल के मूल्य का अधिकांश भाग कम हो जाने की सम्भावना हो।

ब– जब पाये हुए माल के सम्बन्ध में किये गये व्यय, माल के मूल्य के दो तिहाई (2/3) तक पहुंच गये हो।

परन्तु माल का वास्तविक स्वामी, माल की विक्रय राशि में से उचित व्ययों का भुगतान करने के पश्चात माल पाने वाले से शेष राशि प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

5 – **माल को गिरवी रखने का अधिकार (Right to Pledge)**– धारा 179 के अनुसार, माल को पाने वाला अपने हित की सीमा तक पाये हुए माल को गिरवी रख सकता है।

उदाहरण– 'अ' को एक घड़ी मिलती है जो खराब है। 'अ' 20 रू0 खर्च करके घड़ी को ठीक करवा लेता हैं। ऐसी दशा में 'अ' उस घडी को 20 रू0 के लिये गिरवी रख सकता है।

9.12 पूर्वाधिकार या ग्रहणाधिकार (Lien)

पूर्वाधिकार, एक व्यक्ति का 'ऐसे माल' को अपने पास तब तक रोके रखने का अधिकार है जब तक उसकी वैधानिक मांगे पूरी न कर दी जाय। 'ऐसे माल' का तात्पर्य है जो माल उसके अधिकार में तो है परन्तु उसका स्वामी दूसरा व्यक्ति है। पूर्वाधिकार माल पर अधिकार होने पर ही उत्पन्न होता है। यह अधिकार अनुबन्ध द्वारा नही ंबल्कि राजनियम द्वारा उत्पन्न होता है। उदाहरण– 'अ' अपनी सूट सिलने के लिये 'ब' (दर्जी) को कपडा देता है। 'ब' सूट तैयार कर देता है ऐसी दशा में 'ब' सूट को तब तक अपने अधिकार में रोके रख सकता है जब तक कि 'अ' उसे निश्चित सिलाई या उचित सिलाई का पैसा नही दे देता 'अ' तथा 'ब' विपरीत अनुबन्ध करके पूर्वाधिकार को समाप्त कर सकते है।

ऐसा पूर्वाधिकार तब ही प्राप्त होता है जब कि कार्य उचित या निश्चित समय पर कर दिया जाय। अन्यथा नही। जैसे उपरोक्त उदाहरण में यदि सूट को 10 दिन में सिलने का अनुबन्ध हो तो 'ब' को सूट रोकने का अधिकार तब ही होगा जब कि वह 10 दिन के अन्दर सूट तैयार कर लेगा। यदि 'ब' एक माह में सूट तैयार करता है तो उसे उस सूट पर पूर्वाधिकार प्राप्त नही होगा।

पूर्वाधिकार के भेद (Kinds of Lien)

पूर्वाधिकार दो प्रकार का होता हैः–

1– **विशिष्ट पूर्वाधिकार (Particular lien)**– दूसरे व्यक्ति की वस्तु विशेष के सम्बन्ध में किये गये व्ययों या परिश्रम के लिये उसी वस्तु को रोकने के अधिकार को विशिष्ट पूर्वाधिकार कहते है''।

उदाहरण– 'अ' अपना रेडियो 'ब' को 100 रूपये में मरम्मत कराने के लिये देता है। 'ब' रेडियो की मरमम्त कर देता है । 'ब' को यह अधिकार है कि वह रेडियो को 100रू0 का भुगतान मिलने तक अपने पास रोक सके। यहॉ पर 'ब' को रेडियो पर विशिष्ट पूर्वाधिकार है क्योकि वह रेडियो को रेडियो के सम्बन्ध में किये गये व्यय या परिश्रम के लिये ही रोक सकने का अधिकारी है।

अधिनियम के अनुसार निम्नलिखित व्यक्तियों को विशिष्ट पूर्वाधिकार प्राप्त हैः–

1 – निक्षेप गृहिता को (Bailee)

2 – पडा हुआ माल पाने वाले को (Finder of goods)

3 – गिरवी रख लेने वाले को (Pawnee)

4 – एजेन्ट को (Agent)

5 – माल के अदत्त विक्रेता को (Unpaid sellers)(वस्तु विक्रय अधिनियम के अर्न्तगत)

2– **सामान्य या व्यापक पूर्वाधिकार (General lien)**ः– दूसरे व्यक्ति के किसी भी माल को, तब तक रोकने का अधिकार जब तक वह व्यक्ति पूरा हिसाब (चाहे किसी भी प्रकार से बाकी हो) चुकता न कर दे, सामान्य पूर्वाधिकार कहलाता है। उदाहरण– 'अ' ने स्टेट बैक कानपुर से 10,000 रू के एक ऋण के लिये जवाहरात बैक में जमा किये। 'अ' ने उसी बैक से 5000 रू का एक ऋण बिना जमानत के और लिया था यदि 'ब' 10,000 रू वापस कर देता है तो भी बैक को यह अधिकार है कि वह 'अ' के जवाहरातों को शेष 5000 रू के भुगतान होने तक अपने पास रोक सके। यद्यपि ये जवाहरात 10,000 रू के ऋण के लिये जमा किय थे। बैक के इस अधिकार को ही सामान्य पूर्वाधिकार कहते हैं

धारा 171 के अनुसार, विपरीत अनुबन्ध के अभाव में निम्नलिखित व्यक्तियों को सामान्य पूर्वाधिकार प्राप्त होता हैः–

1– बैंकर (Bankers)

2– आढ़तिया (Factors)

3– बन्दरगाह के गोदाम के अधिकारी या घाटपाल (Wharfingers)

4– हाई–कोर्ट के वकील (Adovcate of high-court)

5– बीमे के दलाल (Policy brokers)

6– अन्य कोई भी व्यक्ति जो लिखित अनुबन्ध द्वारा सामान्य पूर्वाधिकार प्राप्त कर ले।

विशिष्ट पूर्वाधिकार एवं सामान्य पूर्वाधिकार में अन्तर (Difference between particular lien and General lien)

विशिष्ट पूर्वाधिकार (Particular lien)	सामान्य पूर्वाधिकार (General lien)
1:– यह अधिकार सभी निक्षेपगृहिताओ को प्राप्त होता हैं विशिष्ट पूर्वाधिकार निम्नव्यक्तियों को प्राप्त हैः– (अ) निक्षेपगृहिता (ब) पड़ा हुआ माल पाने वाला (स) गिरवी रख लेने वाला (द) ऐजेन्ट (य) माल का अदत्त विक्रेता	1:– यह अधिकार सभी निक्षेप गृहिताओ को प्राप्त नही होता। यह निम्न व्यक्तियों को प्राप्त हैः– (अ) बैंकर (ब) आढ़तिया (स) घाटपाल (द)हाईकोर्ट के वकील (य)बीमें के दलाल (व) अन्य व्यक्ति जो स्पष्ट ठहराव द्वारा इस अधिकार को प्राप्त कर लें।
2:– यह अधिकार केवल किसी विशेष माल के सम्बन्ध में किये गये व्यय तथा पारिश्रमिक के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है।	2:– यह हिसाब की साधारण बाकी के सम्बन्ध में प्रयोग में लाया जा सकता है।
3:– यह उसी माल के विरूद्व प्रयोग में लाया जा सकता है जिसके सम्बन्ध में व्यय या परिश्रम किया गया हैं ।	3:– यह निक्षेप की गयी किसी भी माल के विरूद्व प्रयोग में लाया जा सकता है।

9.13 गिरवी का अर्थ व लक्षण (Meaning and Essential of Pledge)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 172** के अनुसार, ऋण के भुगतान या बचन के निष्पादन के लिये प्रतिभूति के रूप में माल के निक्षेप को 'गिरवी रखना' (Pledge) कहते हैं। ऐसी दशा में निक्षेपी को ''गिरवी रखने वाला'' (pawnor या Pledgor) कहते है। तथा निक्षेपगृहिता को ''गिरवी रख लेने वाला''(Pawnee या Pledgee) कहते हैं। दूसरे शब्दों में माल के रखने वाले को 'गिरवी रखने वाला' तथा जिसके पास माल रखा जाता है उसको 'गिरवी रख लेने वाला' कहते है'।

उदाहरण :–(1) 'अ' अपना रेडियो 'ब' के पास जमानत पर रख कर 200रू0 ऋण लेता है। यहॉ पर 'अ' द्वारा 'ब' के पास रेडियो का रखना ऋण के भुगतान के लिये 'गिरवी रखना' कहलायेगा।

(2) 'अ', 'ब' के साथ एक निश्चित समय के अन्दर उसका मकान बनाने का अनुबन्ध करता है। मकान को समय पर बनाने के लिये 'अ'आभूषण ब' के पास जमानत पर रखता है, यहॉ पर 'अ द्वारा 'ब' के पास आभूषण रखना बचन के निष्पादन के लिये 'गिरवी रखना' कहलायेगा।

गिरवी के आवश्यक लक्षण (Essential of a pledge)

एक वैध गिरवी के निम्नलिखित आवश्यक लक्षण है:–

1– **माल पर वैधानिक अधिकार होना** (Judicial possession):– 'गिरवी रखने वाले' को गिरवी रखी जाने वाली वस्तु पर वैधानिक अधिकार होना चाहिये। केवल वस्तु पर 'अधिकार' का हो जाना पर्याप्त नही है। वैधानिक अधिकार का तात्पर्य है कि माल का प्रयोग (बिक्री, दान, किराये पर, आदि) अपनी इच्छानुसार करने का अधिकार, जिस पर अन्य व्यक्ति रूकावट न डाल सके। **उदाहरण**– 'अ' जब शहर से बाहर जाता है तो उसके मकान व माल की देखभाल उसका नौकर करता है। ऐसी दशा में 'अ' का माल उसके नौकर के अधिकार मे आ जाता हैं। परन्तु नौकर 'अ' के माल को गिरवी नही रख सकता। क्योकि नौकर के पास उस माल का वैधानिक अधिकार नही हैं। वैधानिक अधिकार तो 'अ' के पास ही हैं।

यदि किसी व्यक्ति का किसी माल पर कुछ हित है तो उसके हित के बराबर उस माल की गिरवी वैध होगी।

2:– **चल वस्तुओं का ही गिरवी रखा जाना** (Pledge of only movable goods)– किसी भी प्रकार की चल वस्तुओं को गिरवी रखा जा सकता हैं **जैसे**– बहुमूल्य पदार्थ, अंश एवं प्रतिभूतियां आदि।

3:– **माल के अधिकार का हस्तातरण** (Transfer of possession of goods)– वैध गिरवी के लिये यह भी आवश्यक है कि माल के अधिकार का हस्तातरण, वास्तविक या रचनात्मक सुपूर्दगी (Actual or constructive delivery) के द्वारा ''गिरवी रख लेने वाले'' को हो जाय।

9.14 कौन गिरवी रख सकते है (Who Can Pledge)

निम्नलिखित व्यक्ति गिरवी रख सकते है:–

1:– **माल का स्वामी** (Owner of goods) – सिद्वान्तः माल का स्वामी (owner) ही अपने माल को गिरवी रख सकता है।

2:– **माल के स्वामी के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों द्वारा गिरवी रखना** (Pledge by non-owner):– सामान्यतः तो माल का स्वामी ही अपने माल को वैध गिरवी रख सकता है, अन्य व्यक्तियों द्वारा गिरवी रखना वैध नही हैं। परन्तु निम्नलिखित व्यक्ति माल के स्वामी न होते हुए भी वैध गिरवी रख सकते है:–

(अ) **व्यापारिक एजेन्ट या वाणिज्य अभिकर्त्ता द्वारा गिरवी रखना** (Pledge by mercantile agent):– व्यापारिक एजेन्ट अपने मालिक के माल या 'माल के अधिकार सम्बन्धी प्रलेख (Doccuments of Title of Goods) को, निम्न शर्तो के पूरा होने पर, वैध गिरवी रख सकता है:–

(i) व्यापारिक एजेन्ट मालिक की सहमति से माल या माल के अधिकार सम्बन्धी प्रलेख' पर अधिकार रखता हो।

(ii) व्यापारिक एजेन्ट ने व्यापार की साधारण प्रगति में व्यापारिक एजेन्ट की स्थिति में कार्य करते हुए गिरवी रखा हो।

(iii) 'गिरवी रख लेने वाले' (pawnee) ने सद्भावना (goods faith) से कार्य किया हो। तथा उसे यह ज्ञात न हो कि 'गिरवी रखने वाले' (व्यापारिक एजेन्ट) को गिरवी रखने का अधिकार नही है।

उपरोक्त शर्तो के पूरा होने पर व्यापारिक एजेन्ट द्वारा रखी गयी गिरवी उतनी ही वैध होगी **जैसे** कि उसे माल के मालिक ने गिरवी रखने के लिये स्पष्ट रूप से अधिकृत किया हो।

स्त्री, या नौकर या किराये पर माल का लेने वाला अपने पति या मालिक के माल को वैध गिरवी नही रख सकते है। **(धारा 178)**

(ब) **व्यर्थनीय अनुबन्ध के आधीन अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा गिरवी रखना** (Pledge by a person in possession under voidable contract)– जब गिरवी रखने वाले को माल का अधिकार व्यर्थनीय अनुबन्ध (उत्पीड़न, मिथ्यावर्णन, कपट, अथवा अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित अनुबन्ध) के आधीन प्राप्त हुआ है और गिरवी के अनुबन्ध होने तक माल के वास्तविक स्वामी ने व्यर्थनीय अनुबन्ध को निरस्त (rescind) नही किया है तो 'गिरवी रख लेने वाले' को माल पर वैध अधिकार प्राप्त हो जाता हैं परन्तु यह भी आवश्यक है कि 'गिरवी रख लेने वाले' ने सद्भावना से कार्य किया हो और उसे 'गिरवी रखने वाले' के अधिकार सम्बन्धी दोष की जानकारी भी न हो।

उदाहरण– 'अ', 'ब' से बन्दूक के जोर पर उसका रेडियो 50 रू0 में खरीद लेता है। यहॉ पर रेडियो का विक्रय उत्पीडन (coercion) द्वारा प्रेरित कहा जायेगा। यदि 'अ' इस रेडियो को 'स' के पास गिरवी रख देता है तो 'स' को रेडियो पर वैध अधिकार मिल जायेगा।**(धारा 178 अ)**

(स) **माल पर सीमित हित रखने वाले व्यक्ति द्वारा गिरवी रखना** (Pledge by a person having limited interest in goods)–यदि कोई व्यक्ति माल का स्वामी तो नही है परन्तु उसका उस माल में कुछ हित है तो वह अपने हित की सीमा तक उस माल को वैध गिरवी रख सकता है।

ग्रहणाधिकारी (Lien-owner) या खोये हुए माल का पाने वाला (finder of goods) अपने हित की सीमा तक दूसरे के माल को, जो उनके अधिकार में है, वैध गिरवी रख सकते है।

उदाहरण–'अ', 'ब' की घडी की मरम्मत समय पर कर देता है परन्तु 'ब' मरम्मत के 50 रू0 नही देता है तो 'अ' को घड़ी पर पूर्वाधिकार प्राप्त हो जाता है। 'अ' घड़ी को 50 रू तक के लिये गिरवी रख सकता है। **(धारा 179)**

(द) **सह–स्वामी द्वारा गिरवी रखना** (Pledge by co-owner) यदि किसी माल के एक से अधिक स्वामी है और सभी सह–स्वामियों की सहमति से वह माल एक सह–स्वामी के पास रखा हो, तो वह सह–स्वामी उस माल को गिरवी रख सकता है परन्तु 'गिरवी रख लेने वाले' ने सदभावना से कार्य किया हो और उसे यह मालूम न हो कि 'गिरवी रखने वाला' सह–स्वामी है।

(य) **विक्रय के बाद विक्रेता द्वारा और विक्रय पूर्ण होने से पहले क्रेता द्वारा गिरवी रखना** (Pledge by seller after sale and by buyer before sale)– यदि विक्रेता के पास, माल का विक्रय कर देने के बाद भी, माल का अधिकार रहता है और वह उसे गिरवी रख देता है तो 'गिरवी रख लेने वाले को अच्छा अधिकार मिल जाता है। बशर्ते 'गिरवी रख लेने वाले' ने सद्भावना से कार्य किया हो और उसे पिछले विक्रय की जानकारी न हो। **उदाहरण** –'अ' कुछ माल 'ब' को बेचता है । 'ब' अपनी सुविधा के लिये उस माल को 'अ' के पास ही रख देता है। 'अ' उस माल को 'स' के पास गिरवी रख देता है । 'स' सद्भावना से और पिछले विक्रय की जानकारी के बिना गिरवी रख लेता है । इस दशा में 'स' को उस माल पर अच्छा अधिकार मिल जाता है।

इसी प्रकार यदि किसी क्रेता को माल का स्वामित्व मिलने से पहले माल प्राप्त हो जाता है और वह उसे गिरवी रख देता है तो 'गिरवी रख लेने वाले' को उस माल पर अच्छा अधिकार मिल जाता है। बशर्ते उसने सदभावना से कार्य किया हो और उसे पूर्व विक्रेता के माल पर पूर्वाधिकार की जानकारी न हो।**(वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 30)**

9.15 गिरवी रखने वाले के कर्तव्य तथा अधिकार (**Duties and Rights of the pawnor**)

अ – गिरवी रखने वाले के कर्तव्य (Duties of Pawnor)

सामान्यतः गिरवी रखने वाले के वे ही कर्तव्य है जो एक निक्षेपी के होते है। जैसे–माल के दोष बताना, आवश्यक व्यय का भुगतान करना, गिरवी रख लेने वाले की क्षतिपूर्ति करना। इसके अतिरिक्त उसका यह भी कर्तव्य है कि:–

(1) ऋण चुकाना या बचन का निष्पादन करना, गिरवी रखने वाले का यह कर्तव्य है कि वह निश्चित समय के अन्दर ऋण का भुगतान कर दे। यदि गिरवी किसी बचन के निष्पादन के लिये हो तो समय के अन्दर वचन का निष्पादन कर दे। यदि वह ऋण का भुगतान या बचन का निष्पादन करने में त्रुटि करता है जिसके कारण 'गिरवी रख लेने वाले, को कोई हानि हो जाती है तो उसे 'गिरवी रख लेने वाले' की क्षतिपूर्ति करनी होगी।

(2) जब गिरवी रखी जाने वाली वस्तु पर 'गिरवी रखने वाले' का सीमित हित है, तो वह उस वस्तु के सम्बन्ध में अपने हित की सीमा तक दायी होगा।

ब – गिरवी रखने वाले के अधिकार (Rights of the pawnor)

'गिरवी रखने वाले' के अधिकार वे ही है जो एक निक्षेपी के होते है जैसे– गिरवी रखी गयी वस्तु की उचित देखभाल न करने के कारण हुई हानि की पूर्ति कराना, गिरवी रखे माल को वापस पाना, गिरवी रखी गयी वस्तु में हुई वृद्धि को लेना, गिरवी की शर्तो के विपरीत कार्य करने पर हुई हानि की पूर्ति कराना, गिरवी की वस्तु को 'गिरवी रख लेने वाले द्वारा अपने निजी माल के साथ मिलाने के कारण हुई हानि की पूर्ति कराना। इसके अतिरिक्त निम्न अधिकार है:–

(1) 'गिरवी रखने वाले' को वस्तु वापस पाने का अधिकार तभी प्राप्त होता है जब वह ऋण का भुगतान या बचन का निष्पादन कर दे।

(2) यदि 'गिरवी रखने वाला' ऋण के भुगतान या बचन के निष्पादन में त्रुटि करता है तो भी वह गिरवी रखी गयी वस्तु की विक्री से पहले ऋण का भुगतान

करके या बचन का निष्पादन करके वस्तु को वापस ले सकता है , गिरवी रख लेने वाला वस्तु वापस करने से इन्कार नही कर सकता।

उदाहरण–'अ' अपना रेडियो 'ब' के पास गिरवी रख कर उससे 200 रू0 एक वर्ष के लिये ऋण लेता है । एक वर्ष तक ऋण का भुगतान नही होता। 6 माह बाद 'अ' ऋण, ब्याज, तथा हानि की पूर्ति कर (यदि 'ब' को भुगतान एक वर्ष में न करने के कारण हानि हुई हो) अपना रेडियो वापस लेने का अधिकारी है (बशर्ते 'ब' ने भुगतान न मिलने पर भी रेडियो की बिक्री न की हो)। धारा (177) (3) यदि 'गिरवी रखने वाला' ऋण का भुगतान या बचन का निष्पादन करने में त्रुटि करता है और 'गिरवी रख लेने वाला' गिरवी रखी गयी वस्तु को बेच देता है तो 'गिरवी रखने वाला' बिक्री से यदि आधिक्य (ऋण, व्याज व व्यय को पूरा करने के बाद शेष) प्राप्त हो तो उसे पाने का अधिकारी है,।

9.16 गिरवी रख लेने वाले के कर्त्तव्य तथा अधिकार (Duties and Right of the pawnee)

अ – गिरवी रख लेने वाले के कर्तव्य (Duties of Pawnee)

सामान्यतः 'गिरवी रख लेने वाले' के कर्तव्य वे ही है जो एक निक्षेगृहिता के होते है जैसे– गिरवी रखे गये माल की उचित देखभाल करना, गिरवी रखे माल को वापस करना, गिरवी रखे गये माल में वृद्वि (यदि हो) को वापस करना, गिरवी की शर्तो के विपरीत कार्य न करना, गिरवी रखे माल को अपने निजी माल के साथ न मिलाना। इसके अतिरिक्त निम्न हैः–

(1) 'गिरवी रख लेने वाले' का माल वापस करने का कर्तव्य उसी दशा मे होता है जब कि 'गिरवी रखने वाला' ऋण का भुगतान या वचन का निष्पादन कर देगा।

(2) 'गिरवी रख लेने वाले' ने गिरवी की वस्तु को अपने निजी प्रयोग में नही लाना चाहिये।

ब – गिरवी रख लेने वाले के अधिकार (Rights of the pawnee)

गिरवी रख लेने वाले के निम्नलिखित अधिकार हैः–

(1) **माल को रोक रखने का अधिकार (Right to retain the goods pledged)**– धारा 173 के अनुसार, 'गिरवी रख लेने वाला' गिरवी की वस्तु को , केवल ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन के लिये ही नही बल्कि ऋण के व्याज तथा आवश्यक व्ययो (जो उसने माल को अधिकार मे रखने के सम्बन्ध तथा माल की रक्षा के लिये किये हो) के लिये, रोक सकता है। दूसरे शब्दो में गिरवी रख लेने वाला ऋण, व्याज व आवश्यक व्ययो को भुगतान होने तक गिरवी की वस्तु को अपने पास रोके रख सकता है।

धारा 174 के अनुसार, गिरवी रख लेने वाले को माल पर विशिष्ट पूर्वाधिकार प्राप्त होता हैं अर्थात विपरीत अनुबन्ध के अभाव में गिरवी, जिस ऋण वा वचन के लिये हो, उसी ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन के लिये ही गिरवी की वस्तु को रोका जा सकता हैं, अन्य ऋणो या बचनो के निष्पादन के लिये नही रोका जा सकता है। परन्तु गिरवी रख लेने वाले द्वारा गिरवी रखने के बाद में दिये गये ऋणो के लिये ऐसा अनुबन्ध का होना माना जाता है जब तक इसके विपरीत

अनुबन्ध न हो। अर्थात विपरीत अनुबन्ध के अभाव में गिरवी रखने के बाद दिये गये अन्य ऋणो के लिये गिरवी की वस्तु को रोका जा सकता है।

(2) असाधारण व्यय पाने का अधिकार (Right to get extra-ordinary expenses)–

धारा 175 के अनुसार, यदि 'गिरवी रख लेने वाले ने गिरवी की वस्तु के सम्बन्ध में कोई असाधारण व्यय किया है तो वह 'गिरवी रखने वाले' से ऐसे व्यय प्राप्त करने का अधिकारी है। यहॉ पर यह महत्वपूर्ण है कि 'गिरवी रख लेने वाला' असाधारण व्ययो को प्राप्त करने के लिये न्यायालय में मुकदमा तो चला सकता है परन्तु गिरवी रखी वस्तु को रोक नही सकता है।

(3) गिरवी रखने वाले की त्रुटि की दशा में अधिकार (Right where pawnor making default)–

धारा 176 के अनुसार, जिस ऋण के भुगतान या बचन के निष्पादन के लिये माल गिरवी रखा गया है यदि 'गिरवी रखने वाला' उस ऋण का भुगतान या बचन का निष्पादन निश्चित या यथोचित समय पर नही करता है अर्थात त्रुटि करता है तो ऐसी दशा में 'गिरवी रख लेने वाले' को निम्न अधिकार प्राप्त हो जाते है–

(अ) वह 'गिरवी रखने वाले' के विरूद्व ऋण का भुगतान पाने या वचन का निष्पादन करवाने के लिये न्यायालय में मुकदमा चला सकता है। तथा गिरवी की वस्तु को सम्पार्श्विक जमानत के रूप में अपने पास रोक सकता है।

(ब) वह 'गिरवी रखने वाले' को बिक्री की उचित सूचना दे कर गिरवी की वस्तु को बेच सकता है। यदि गिरवी की वस्तु को बेचने से प्राप्त धनराशि देय राशि (Amount due) से कम हो तो 'गिरवी रखने वाला' शेष धनराशि के लिये उतरदायी होगा। यदि बिक्री से प्राप्त धनराशि अधिक है तो उसे बकाया धनराशि 'गिरवी रखने वाले' को वापस करनी होगी।

(यदि 'गिरवी रख लेने वाला' गिरवी रखे माल की बिक्री करता है तो वह स्वंय उस माल को खरीद नही सकता है। और यदि न्यायालय से डिक्री करा लेने पर माल नीलाम द्वारा बेचा जाता है तो वह स्वयं के लिये बोली (Bid) बोल सकता है। अर्थात नीलाम द्वारा वह उस माल को खरीद सकता है।)

नोट– गिरवी का अनुबन्ध, निक्षेप अनुबन्ध का ही एक रूप है इसलिये 'गिरवी रखने वाले' तथा 'गिरवी रख लेने वाले' के अधिकार एवं कर्तव्य वे ही होते हैं जो 'निक्षेपी' तथा 'निक्षेपगृहिता' के होते है। जिनका वर्णन पिछले अध्याय में विस्तृत रूप से किया गया है। इस अध्याय में उपरोक्त कुछ महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट अधिकारों एंव कर्तव्यों का ही वर्णन किया गया है।

9.17 गिरवी एवं पूर्वाधिकार/ ग्रहणाधिकार में अन्तर (Diference between Pledge and Lien)

गिरवी (Pledge)	**पूर्वाधिकार या ग्रहणाधिकार** (Lien)
1– गिरवी की उत्पति अनुबन्ध के द्वारा होती है।	1– पूर्वाधिकार की उत्पति राजनियम के द्वारा होती हैं।
2– गिरवी का उदेश्य किसी ऋण के भुगतान या वचन के निष्पादन के लिये	2– पूर्वाधिकार का उदेश्य मांग को पूरा करने तक माल को अपने अधिकार में

जमानत के रूप में माल का निक्षेप करना है।	रोके रखना है।
3– 'गिरवी रखने वाले' की त्रुटि करने की दशा में 'गिरवी रख लेने वाले' को माल बेचने का अधिकार होता है।	3– पूर्वाधिकार में माल बेचने का अधिकार नही होता है।
4– गिरवी रखा हुआ माल 'गिरवी रखने वाले' (वास्तविक स्वामी) को वापस कर देने पर गिरवी का अनुबन्ध प्रत्येक दशा में समाप्त नही होता है।	4– पूर्वाधिकार में माल वास्तविक स्वामी को वापस कर देने पर ऐसा अधिकार प्रत्येक दशा में समाप्त हो जाता है। (प्रत्येक दशा का तात्पर्य है कि मांग के पूरा होने या न होने पर, पूर्वाधिकार समाप्त हो जायेगा)
5– 'गिरवी रख लेने वाला' ऋण का भुगतान या बचन का निष्पादन न्यायालय के द्वारा भी करा सकता है।	5–पूर्वाधिकार रखने वाला अपनी मांग को न्यायालय द्वारा पूरा नही करा सकता हैं।

9.18 गिरवी एवं निक्षेप में अन्तर (Differenece between Pledge and Bailment)

गिरवी (Pledge)	निक्षेप (Bailment)
1– गिरवी के अनुबन्ध में वस्तु की सुपुर्दगी ऋण के भुगतान या बचन के निष्पादन के लिये प्रतिभूति के रूप में दी जाती है।	1–निक्षेप के अनुबन्ध में साधारणतः ऐसा ध्येय नही होता है।
2–गिरवी के अनुबन्ध में 'गिरवी रख लेने वाले' को कुछ परिस्थितियें में गिरवी रखी गयी वस्तु को बेचने का अधिकार होता हैं।	2– निक्षेप के अनुबन्ध में 'निक्षेप गृहिता' को निक्षेपित वस्तु को बेचने का अधिकार नही होता।
3– 'गिरवी रख लेने वाले' को गिरवी रखी गयी वस्तु को प्रयोग करने का अधिकार नही होता है।	3– निक्षेपगृहिता के लिये निक्षेपित वस्तु के प्रयोग के सम्बन्ध में ऐसा प्रतिबन्ध नही होता। क्योकि निक्षेप 'प्रयोग के लिये' या 'किराये के लिये' आदि भी हो सकता है।
4– 'गिरवी रखने वाले' को ऋण का भुगतान या बचन का निष्पादन करने के बाद ही गिरवी रखी वस्तु को वापस पाने का अधिकार हैं।	4– 'निक्षेपी ' को निश्चित समय या विशिष्ट उदेश्य के पूरा होने पर ही निक्षेपित वस्तु को वापस पाने का अधिकार हैं

9.19 सारांश

जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को किसी विशेष उद्देश्य के लिए इस शर्त पर माल सुपुर्द करता है कि उद्देश्य के पूरा हो जाने पर माल सुपुर्द करने वाले व्यक्ति को लौटा दिया जायेगा या उसके निर्देशानुसार उसकी व्यवस्था कर दी

जायेगी, इस प्रकार की सुपुर्दगी को निक्षेप कहते है। माल सुपुर्द करने वाले को निक्षेपी तथा जिसे सुपुर्द किया जाता है उसे निक्षेपगृहिता कहते है। निक्षेप अनुबन्ध में भी वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों के साथ साथ कुछ और विशेषताएं भी होनी चाहिये, जैसे– निक्षेप अनुबन्ध में माल की सुपुर्दगी दी जानी चाहिए, सुपुर्दगी अस्थायी उद्देश्य के लिए होनी चाहिए, सुपुर्दगी देने वाले को माल वापस पाने का अधिकार होना चाहिए तथा माल के अधिकार का भी हस्तान्तरण अवश्य होना चाहिए।

निक्षेप अनुबन्ध अनेक प्रकार का होता है, जैसे निक्षेपी के लाभ के लिए, निक्षेपगृहिता के लाभ के लिए, दोनों के लाभ के लिए, शुल्क सहित, निःशुल्क, सुरक्षा के लिए निक्षेप, किराये के लिए निक्षेप, गिरीवी के लिए निक्षेप तथा मरम्मत के लिए निक्षेप आदि।

निक्षेप अनुबन्ध में निक्षेपी के कुछ कर्तव्य निर्धारित है जैसे निक्षेपित माल के दोष बताना, निक्षेपगृहिता द्वारा किये गये व्ययों का भुगतान करना, निक्षेपगृहिता को निक्षेप के कारण हानि होने पर उसकी पूर्ति करना आदि। इसी प्रकार निक्षेपगृहिता के भी कर्तव्य निर्धारित होते है जैसे – निक्षेपित माल की उचित देखभाल करना, निक्षेपित माल वापस करना, निक्षेपित माल में यदि कोई वृद्वि हुई हो तो उसे भी वापस करना, निक्षेपित माल का अनाधिकृत उपयोग न करना तथा निक्षेपित माल को अपने निजी माल के साथ न मिलाना आदि।

निक्षेपी तथा निक्षेपगृहिता द्वारा कर्तव्यों का पालन न करने पर दूसरे पक्षकार को यदि हानि होती है तो उन्हें हानि की पूर्ति करनी होती है।

ऋण के भुगतान या वचन की निष्पादन के लिए प्रतिभूति के रूप में माल के निक्षेप को गिरवी रखना कहते है, जो व्यक्ति माल गिरवी रखता है उसे 'गिरवी रखने वाला' तथा जिस व्यक्ति के पास माल रखा जाता है उसे 'गिरवी रख लेने वाला' कहते है। गिरवी रखने के लिए आवश्यक होता है कि माल पर वैधानिक अधिकार होना चाहिए तथा चल वस्तु को ही गिरवी रखा जा सकता है। गिरवी में माल के अधिकार का हस्तान्तरण होना चाहिए। माल के स्वामी के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति भी गिरवी रख सकते है जैसे व्यापारिक एंजेन्ट द्वारा, व्यर्थनीय अनुबन्ध के अधीन, अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा, माल पर सीमित हित रखने वाले व्यक्ति द्वारा तथा विक्रय के बाद विक्रेता द्वारा गिरवी आदि।

गिरवी रखने वाले के वही कर्तव्य होते है जो निक्षेपी के होते है जैसे – गिरवी रखने वाले माल के दोष बताना, आवश्यक व्ययों का भुगतान करना, गिरवी रख लेने वाले की क्षतिपूर्ति करना तथा इसके अतिरिक्त ऋण चुकाना या वचन का निष्पादन करना भी गिरवी रखने वाले का कर्तव्य होता है। इसके अधिकार निक्षेपी के अधिकार की तरह ही होते है, जैसे – गिरवी रखी गयी वस्तु की उचित देखभाल न होने पर होने वाली हानि की पूर्ति करवाना, गिरवी रखे गये माल को वापस पाना आदि यह अधिकार सामान्यतः तभी प्राप्त होने है जब उसने ऋण का भुगतान कर दिया हो।

गिरवी रख लेने वाले के कर्तव्य निक्षेपगृहिता के कर्तव्य के समान होते है जैसे – गिरवी रखे गये माल की देखभाल करना, माल वापस करना, माल में वृद्वि वापस करना आदि। गिरवी रख लेने वाले के अधिकार निक्षेपगृहिता के समान होते है जैसे – माल को रोक रखने का अधिकार, असाधारण व्यय पाने का अधिकार,

गिरवी रखने वाले ने यदि ऋण का भुगतान नहीं किया तो नोटिस देकर माल बेचने का अधिकार, परन्तु वह स्वयं माल क्रय नहीं कर सकता है।

9.20 शब्दावली

निक्षेपः स्वेच्छापूर्वक किसी वस्तु को एक व्यक्ति के द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को देना है।

पूर्वाधिकारः एक व्यक्ति का 'ऐसे माल' को अपने पास तब तक रोके रखने का अधिकार है जब तक उसकी वैधानिक मांगे पूरी न कर दी जाय।

गिरवीः ऋण के भुगतान या बचन के निष्पादन के लिये प्रतिभूति के रूप में माल के निक्षेप को गिरवी रखना कहते हैं।

9.21 बोध प्रश्न

क– निम्नलिखित प्रश्न सत्य है अथवा असत्य –

1. निक्षेप बिना अनुबन्ध किये भी हो सकता है।
2. निक्षेप के लिए दोनों पक्षकारों को लाभ होना आवश्यक है।
3. निक्षेपगृहिता को निक्षेपित माल पर विशिष्ट पूर्वाधिकार प्राप्त होता है।
4. गिरवी एक प्रकार का निक्षेप है।
5. बैंक के लॉकर में रूपये रखना निक्षेप अनुबन्ध है।
6. बैंक में खाते में जमा धन भी निक्षेप अनुबन्ध है।
7. एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण निक्षेप कहलाता है।
8. चल सम्पत्ति के स्वामी द्वारा ही निक्षेप किया जा सकता है।
9. निक्षेपी के दिवालिया धोषित हो जाने पर निक्षेप अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।
10. खोये हुए माल को पाने वाले व्यक्ति को सामान्य ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है।
11. गिरवी अनुबन्ध में केवल चल वस्तुएं ही गिरवी रखी जा सकती है।
12. गिरवी रख लेने वाला बिना सूचना दिए गिरवी रखे माल को बेच सकता है।
13. गिरवी रख लेने वाला गिरवी रखे माल को स्वयं नहीं खरीद सकता है।
14. माल पर ग्रहणाधिकार रखने वाला व्यक्ति माल को बेच कर अपना धन वसूल कर सकता है।
15. यदि निक्षेपगृहिता निक्षेपित माल का प्रयोग निक्षेप के शर्तों के विपरीत करता है तो निक्षेपी अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है।

ख – सही उत्तर का चयन कीजिये –

1. .... का स्वामी माल का निक्षेप कर सकता है–

अ– केवल चल सम्पत्ति।
ब– केवल अचल सम्पत्ति।
स– उक्त दोनों सम्पत्ति।
द– इनमें से कोई नहीं।

2. विशिष्ट पूर्वाधिकार .... को प्राप्त है –

अ– निक्षेपगृहिता।
ब– खोया हुआ माल पाने वाला।
स– अदत्त विक्रेता।
द– उपरोक्त सभी को।

3. सामान्य ग्रहणाधिकार .... को प्राप्त है –
अ– निक्षेपगृहिता ।
ब– बैंकर।
स– एजेन्ट।
द– उपरोक्त सभी को।

4. निक्षेपी या निक्षेपगृहिता की मृत्यु होने पर निक्षेप अनुबन्ध समाप्त हो जाता है, यदि –
अ– निक्षेप शुल्क सहित हो।
ब– निक्षेप शुल्क रहित हो।
स– निक्षेप किराये के लिए हो।
द– निक्षेप सुरक्षा के लिए हो।

5. निम्न दशाओं में से किस दशा में निक्षेप समाप्त नहीं होता –
अ– निश्चित अवधि समाप्त हो जाने पर।
ब– उद्देश्य के पूर्ण हो जाने पर।
स– निक्षेपी के दिवालिया हो जाने पर।
द– निक्षेपी या निक्षेपगृहिता की मृत्यु पर।

9.22 बोध प्रश्नों के उत्तर

क–

1. सत्य	2. असत्य	3. सत्य	4. सत्य
5. सत्य	6. असत्य	7. असत्य	8. सत्य
9. असत्य	10. असत्य	11. सत्य	12. असत्य
13. सत्य	14. असत्य	15. सत्य	

ख–

1. अ	2. द	3. ब	4. ब	5.स

9.23 स्वपरख प्रश्न

1. निक्षेप क्या है ? निक्षेपी के कर्तव्य एवं अधिकार बताइये।
   What is bailment? Describe the duties and rights of a bailor.
2. निक्षेप की परिभाषा दीजिए और निक्षेपगृहिता के कर्तव्य एवं अधिकार बताइये।
   Define bailment and state the duties and rights of the bailee.
3. निक्षेप की परिभाषा दीजिये और उसके आवश्यक लक्षण बताइये । यह कितने प्रकार का होता है ? निक्षपेगृहिता के कर्तव्यों और अधिकारों की व्याख्या कीजिए।
   Define bailment and give its essentials. What are its kinds? Explain the rights and duties of a bailee.

4. सामान्य ग्रहणाधिकार और विशिष्ट ग्रहणाधिकार में अन्तर बताइये। खोये हुए माल के पाने वाले के अधिकार व कर्तव्य क्या है?

   Distinguish between a general lien and a prarticular lien. What are the rights and duites of a finder of goods lost?
5. गिरवी की परिभाषा दीजिए। गिरवी रखने वाले के अधिकारों और कर्तव्यों का संक्षेप में विवेचना कीजिए।

   Define pledge. Discuss briefly the rights and duites of Pawnee.
6. गिरवी से आप क्या समझते है? गिरवी तथा ग्रहणाधिकार में अन्तर बताइये।

   What do you mean by the term pledge? Explain the difference between pledge and lien.
7. जब गिरवी रखने वाला कोई त्रुटि करता है तो गिरवी रख लेने वाले के क्या अधिकार है?

   What are the rights of the Pawnee, When the powner make a default?
8. क्या माल को वास्तविक स्वामी के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति वैध रूप से गिरवी रख सकता है ? यदि हॉ तो किन परिस्थितियों में तथा किस सीमा तक ?

   Can a person other than the true owner make a valid pledge of goods? If so, under what cirrcumstance and to what extent?
9. 'गिरवी' की व्याख्या कीजिए तथा निक्षेप से अन्तर बताइये।

   Explain pledge and distinguish if from bailement.

9.24 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई – 10 एजेन्सी (**Agency**)

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 एजेन्सी का अर्थ
10.3 कौन एजेन्ट नियुक्त कर सकता है और कौन एजेन्ट बन सकता है
10.4 एजेन्टों के प्रकार
10.5 एजेन्सी की स्थापना
10.6 उप–एजेन्ट
10.7 स्थानापन्न एजेन्ट
10.8 नियोक्ता के प्रति एजेन्ट के कर्तव्य
10.9 नियोक्ता के विरूद्व एजेन्ट के अधिकार
10.10 एजेन्ट के कार्यो के सम्बन्ध में नियोक्ता के दायित्व
10.11 एजेन्ट का व्यक्तिगत दायित्व
10.12 अप्रकट नियोक्ता
10.13 एजेन्सी की समाप्ति
10.14 अखण्डनीय एजेन्सी
10.15 सारांश
10.16 शब्दावली
10.17 बोध प्रश्न
10.18 बोध प्रश्नो के उत्तर
10.19 स्वपरख प्रश्न
10.20 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- एजेन्सी का अर्थ तथा एजेन्सी की स्थापना कैसे होती है, को समझ सकें।
- एजेन्ट तथा नियोक्ता के कर्तव्य व अधिकारों को बता सकें।
- विभिन्न प्रकार के एजेन्टों का वर्णन कर सकें।
- एजेन्ट कब व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है का वर्णन कर सकें।
- एजेन्सी की समाप्ति कैसे होती है को समझ सकें।

10.1 प्रस्तावना

पिछले इकाईयों में आप सामान्य अनुबन्धों का अध्ययन कर चुकें है, तथा विशिष्ट अनुबन्धों में से संयोगिक अनुबन्धों, अर्द्वअनुबन्धों तथा निक्षेप व गिरवी के अनुबन्धों के बारे में पढ़ चुकें है। इस इकाई में आप एक और विशिष्ट अनुबन्ध एजेन्सी का अध्ययन करेगें। वास्तव में हर एक व्यक्ति अपने सभी कार्यों को स्वयं नहीं कर सकता है उसे कभी–कभी दूसरे व्यक्तियों का भी सहारा लेना पड़ता है। जैसे हम अपना कार्य नौकर के माध्यम से कर लेते है तथा व्यापार में अपना कार्य करने के लिए कुछ व्यक्तियों को नियुक्त करते है ऐसे व्यक्ति जो नियुक्त करने वाले व्यक्ति की ओर से कार्य करते है उन्हें एजेन्ट कहते है और वह व्यक्ति जिसके लिए वह कार्य करता है उसको नियोक्ता कहते है, यह व्यवस्था एजेन्सी अनुबन्धों के अन्तर्गत आती है जिसका अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे।

10.2 एजेन्सी का अर्थ (Meaning of Agency)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 182 में 'एजेन्ट' तथा नियोक्ता (मालिक) को परिभाषित किया गया है।

एजेन्ट– "एक एजेन्ट (अभिकर्ता) वह व्यक्ति है जो किसी दूसरे की ओर से कार्य करने के लिये अथवा तृतीय पक्ष के साथ व्यवहारों में प्रतिनिधित्व करने के लिये नियुक्त किया जाता है"।

नियोक्ता – "वह व्यक्ति जिसकी ओर से ऐसा कार्य किया जाता है अथवा जिसकी ओर से इस प्रकार का प्रतिनिधित्व किया जाता है नियोक्ता अथवा प्रधान कहलाता है"।

एजेन्सी – एक नियोक्ता और एजेन्ट के बीच जो अनुबन्ध होता है उसे एजेन्सी कहते हैं। नियोक्ता एवं एजेन्ट के बीच परस्पर एक वैधानिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जिसे एजेन्सी कहते हैं।

उदाहरण– 'अ' 'ब' को अपने मकान के किरायेदारों से किराया वसूल करने के लिये नियुक्त करता है। यहाँ पर 'अ' नियोक्ता है तथा 'ब' एजेन्ट। 'अ' तथा 'ब' के बीच के अनुबन्ध को एजेन्सी का अनुबन्ध कहते हैं। एजेन्ट द्वारा किये गये कार्य नियोक्ता द्वारा किये गये माने जायेगे इसलिए एक नियोक्ता साधारणतया एक एजेन्ट द्वारा केवल वह कार्य कर सकता है जिसको वह स्वयं करने की क्षमता रखता है। यदि कोई कार्य स्पष्ट रूप से व्यक्तिगत प्रकृति का हो तो उसे एजेन्ट द्वारा नहीं कराया जा सकता है।

एक व्यक्ति के किसी दूसरे व्यक्ति का एजेन्ट होने तथा उनके मध्य एजेन्सी का अनुबन्ध होने के लिए यह आवश्यक है कि वह दूसरे व्यक्ति के कारोबारी व्यवहारों में उसके प्रतिनिधि के रूप में कार्य करे और ऐसे दूसरे व्यक्ति तथा अन्य व्यक्ति के मध्य अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करें। एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को कारोबारी मामलों में परामर्श देने मात्र से उसका एजेन्ट नहीं बन जाता, कारखाने में कार्य करने वाला कोई कर्मचारी एजेन्ट नही बन सकता क्योकि वह अन्य व्यक्तियों के साथ नियोक्ता की ओर से अनुबन्धात्मक सम्बन्धों का स्थापित करने के लिए अधिकृत नहीं होते।

10.3 कौन व्यक्ति एजेन्ट नियुक्त कर सकता है ? तथा कौन एजेन्ट बन सकता है?(Who may employ Agent and Who may be an Agent?)

क – कौन व्यक्ति एजेन्ट नियुक्त कर सकता है? (Who may employ Agent)-

धारा 183 के अनुसार, "कोई भी व्यक्ति जो उस पर लागू होने वाले कानून के अनुसार वयस्क हो और स्वस्थ मस्तिष्क का हो, एजेन्ट की नियुक्ति कर सकता है"। दूसरे शब्दों में नियोक्ता में अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक है। स्पष्टतः कोई अवयस्क, पागल या शराबी व्यक्ति एजेन्ट की नियुक्ति नहीं कर सकता है।

क्या धारा 183 का अभिप्राय केवल प्राकृतिक व्यक्ति ही एजेन्ट नियुक्त कर सकते है? इसका अभिप्राय ऐसा नही है क्योकि समामेलित सस्था जो एक कृत्रिम व्यक्ति है वह भी एजेन्ट नियुक्त कर सकती है समामेलित संस्थाओं के अधिकांश कार्य उनके प्रतिनिधि या एजेन्ट जैसे संचालक द्वारा ही सचालित किये

जाते है। एक सरकार भी अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से दायित्वों का निर्वाह करती है। अवयस्क अनुबन्ध करने योग्य नही होता है। परन्तु ऐसी परिस्थितियों में जहाँ पर वह उत्तरदायी होता है या उसकी सम्पत्ति उत्तरदायी होती है उस दशा में अवयस्क भी एजेन्ट नियुक्त कर सकता है।

कौन व्यक्ति एजेन्ट हो सकता है ?(Who may be an Agent ?)

धारा 184 में बताया गया है कि –

यद्यपि नियोक्ता में अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक है परन्तु एजेन्ट होने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि उसमें अनुबन्ध करने की क्षमता हो। अतएव एक अवयस्क अथवा अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति भी एजेन्ट बन सकता है और ऐसा व्यक्ति नियोक्ता के प्रति अपने कार्यो के लिये उत्तरदायी नहीं होता है। अतएव एजेन्ट को नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी ठहराने के लिये यह आवश्यक है कि वह वयस्क हो तथा स्वस्थ मस्तिष्क का हो।

सिद्वान्त के अनुसार एजेन्ट द्वारा किये गये कार्य नियोक्ता द्वारा किये गये कार्य माने जाते हैं इसलिये जहाँ तक नियोक्ता तथा तीसरे पक्षकार का सम्बन्ध है एजेन्ट में क्षमता होना या न होना महत्वपूर्ण नही। परन्तु नियोक्ता तथा एजेन्ट के परस्पर सम्बन्धों के निर्धारित करने मे एजेन्ट की क्षमता भी महत्वपूर्ण है। यदि एजेन्ट मे अनुबन्ध करने की क्षमता है तो नियोक्ता उसके द्वारा हानि होने की स्थिति में उसे उत्तरदायी ठहरा सकता है अर्थात एजेन्ट के विरूद्व दावा भी कर सकता है परन्तु यदि एजेन्ट अवयस्क है तो उसके दुराचरण से हानि होने की दशा में वह नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी नही होगा।

क्या एजेन्सी के लिये प्रतिफल होना आवश्यक है ?(Does Consideration in necessary for Agency?)

धारा 185, एजेन्सी के अनुबन्ध के लिये प्रतिफल होना आवश्यक नहीं है। अर्थात एजेन्ट को प्रतिफल (पारिश्रमिक या कमीशन) दिया भी जा सकता है और नहीं भी। बिना किसी पारिश्रमिक के लिये नियुक्त कोई एजेन्ट अपने नियोक्ता की ओर से उसी प्रकार कार्य करने का अधिकार रखता है। जैसे पारिश्रमिक के लिये नियुक्त किया गया एजेन्ट और उसके अधिकार तथा कर्तव्य भी उसी प्रकार होते है ऐसा एजेन्ट 'पारिश्रमिक रहित एजेन्ट'' (Gratuitious Agent) कहलाता है, ऐसे एजेन्ट तथा पारिश्रमिक सहित एजेन्ट में अन्तर केवल यह है कि यदि एजेन्ट को प्रतिफल नहीं दिया जाता है और एजेन्ट ने एजेन्सी का कार्य प्रारम्भ कर दिया है तो उसका कर्तव्य है कि वह सुपुर्द किये हुए कार्यो को पूर्ण लगन के साथ नियोक्ता के निर्देशानुसार करे। यदि एजेन्ट ने एजेन्सी का कार्य प्रारम्भ नहीं किया है तो उसे कार्य को करने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता है। परन्तु इसके विपरीत यदि एजेन्ट को प्रतिफल दिया जाता है तो एजेन्ट को एजेन्सी का कार्य प्रारम्भ करने तथा उसे सन्तोषजनक ढंग से कार्य करने के लिये बाध्य किया जा सकता है।

धारा 185 की उक्त व्यवस्था उस स्थिति में महत्वपूर्ण हो जाती है जब एजेन्सी गर्भित अधिकार द्वारा स्थापित होती है, ऐसी स्थिति में एजेन्ट को कितना पारिश्रमिक दिया जायेगा अर्थात दिया जायेगा अथवा नही दिया जायेगा यह निर्णय नही हो सकता है। ऐसी स्थिति में एजेन्ट को बिना पारिश्रमिक के कार्य करना पड़ सकता है, एजेन्ट के इन कार्यो से नियोक्ता बाध्य होगा।

10.4 एजेन्टों के प्रकार (**Kinds of Agents**)

एजेन्टों का वर्गीकरण दो दृष्टिकोणों के आधार पर किया जा सकता है।

I. 'प्राधिकार की सीमा' की दृष्टि से (From the point of view of extent of Authority)– इस दृष्टिकोण से एजेन्ट निम्न तीन प्रकार के होते हैः–

अ) **सामान्य एजेन्ट (General Agent)** – एक एजेन्ट जिसे किसी विशिष्ट व्यापार या उपक्रम से सम्बद्व सभी कार्यो को करने के लिये नियुक्त किया जाता है उसे 'सामान्य एजेन्ट' कहते है। उदाहरण के लिये किसी फर्म का मैनेजर अथवा किसी कम्पनी का प्रबन्ध संचालक, ये ऐसे सभी कार्य करते हैं, जो फर्म या कम्पनी के सामान्य कार्य सचालंन के अन्तर्गत आते है। ये नियोक्ता को अन्य पक्षकारों के प्रति बाध्य कर सकता है। समस्त तृतीय पक्षकार यह मान लेते है कि ऐसे एजेन्ट (प्रबन्धक या प्रबन्धक सेचालक) को वे सभी कार्य करने का अधिकार है जो उस तरह के व्यापार में एक सामान्य एजेन्ट द्वारा साधारणतया किये जाते है।

ब) **पूर्णाधिकारी एजेन्ट (Universal Agent)** – नियोक्ता से असीमित अधिकार प्राप्त व्यक्ति को 'पूर्णाधिकारी एजेन्ट' कहते हैं। जिन कार्यो को नियोक्ता कानूनी रूप से स्वंय कर सकता है उसे पूर्णाधिकारों एजेन्ट भी कर सकता है। ऐसे एजेन्ट को नियोक्ता की ओर से प्रत्येक कार्य करने का व्यापक अधिकार प्राप्त होता है, व्यवहार में ऐसे एजेन्ट विरले ही होते है।

स) **विशिष्ट एजेन्ट (Special Agent)** – एक एजेन्ट जिसे किसी विशेष कार्य को करने के लिये नियुक्त किया जाता है उसे विशिष्ट एजेन्ट कहते है। जैसे – एक वकील को किसी विशेष विवाद के लिए नियुक्त किया जाये, एक व्यक्ति को एक विशेष सम्पत्ति खरीदने या बेचने क लिये नियुक्त किया जाये। इस प्रकार के एजेन्ट को सौपा गया कार्य जैसे ही पूर्ण हो जाता है उसका अधिकार समाप्त हो जाता है अर्थात उसके साथ एजेन्सी समाप्त हो जाती है। यदि विशिष्ट एजेन्ट अपने अधिकार की सीमा से बाहर कार्य करता है तो उसके इन कार्यो से नियोक्ता उत्तरदायी नही होगा।

II. कार्यो की प्रकृति की दृष्टि से (From the point of view of Nature of work)

एजेन्टों द्वारा किये जाने वाले कार्यो की प्रकृति की दृष्टि से एजेन्ट को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

अ) **व्यापारिक एजेन्ट (Mercantile Agent)**–

व्यापारिक एजेन्ट एक ऐसा एजेन्ट होता है जिसके पास माल बेचने या माल कय करने या माल की जमानत पर धन उधार लेने आदि का अधिकार होता है। व्यापारिक एजेन्टों के विभिन्न प्रकार निम्न हैः–

1. **आढ़ती (Factor)** – आढ़ती एक ऐसा व्यापारिक एजेन्ट होता है जिसके पास नियोक्ता अपना माल बेचने के लिये भेजता है। आढ़ती नियोक्ता के माल को अपने नाम से बेचता है वह माल को ऐसी शर्तो के अधीन बेच सकता है जिन्हे वह उचित समझे आवश्यकता पड़ने पर वह नियोक्ता के माल को गिरवी भी रख सकता है। उसे नियोक्ता के माल में सामान्य ग्रहणाधिकार भी प्राप्त होता है।

2. **कमीशन एजेन्ट (Commission Agent)** – कमीशन एजेन्ट एक ऐसा व्यापारिक एजेन्ट होता है जो अपने नियोक्ता के लिये अपने नाम से माल खरीदता

अथवा बेचता है। नियोक्ता विदेशी भी हो सकता है ऐसा एजेन्ट तृतीय पक्षकारों के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है वह अपने नियोक्ता के प्रति भी उत्तरदायी होता है ऐसे एजेन्ट को माल के मूल्य के हिसाब से कमीशन दिया जाता है जिसे एजेन्ट का पारिश्रमिक कहा जाता है।

3. **दलाल (Broker)** – दलाल एक ऐसा व्यापारिक एजेन्ट होता है जो मध्यस्थता करके दो पक्षकारों के बीच अनुबन्ध कराता है। वह माल के क्रेता तथा विक्रेता के बीच सम्बन्ध स्थापित कराता है जबकि माल उसके कब्जे में नही होता, माल के अतिरिक्त वह अन्य सौदों के लिये भी दो पक्षकारों के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है। यदि दो पक्षो के बीच सौदा तय हो जाता है तो उसे उस सौदे के लिये कमीशन दिया जाता हैं जिसे 'दलाली' कहते है। दलाल दो पक्षों के बीच हुए सौदे की शर्तो के पालन होने या न होने के लिये उत्तरदायी नही होता है।

4. **आश्वासी एजेन्ट (Del-credere Agent)** – आश्वासी एजेन्ट एक ऐसा व्यापारिक एजेन्ट होता है जो नियोक्ता को इस बात की गारन्टी देता है कि क्रेता माल की कीमत भुगतान कर देगा और यदि क्रेता माल का मूल्य भुगतान नही करेगा तो वह स्वयं भुगतान करेगा। इस प्रकार आश्वासी एजेन्ट एक व्यापारिक एजेन्ट के साथ साथ जमानती भी होता है इसके लिये वह साधारण कमीशन के अलावा अतिरिक्त कमीशन भी लेता है। जिसे आश्वासी कमीशन (Del-credere commission) कहते है।

5. **नीलाम कर्ता (Auctioneer)** – नीलामकर्ता एक ऐसा व्यापारिक एजेन्ट है जो दूसरो के माल को नीलाम करके बेचता है। वह दूसरो के माल को सबसे अधिक बोली लगाने वाले क्रेता को बेचता है और इस कार्य के लिये वह कमीशन लेता है।

ब) **गैर व्यापारिक एजेन्ट (Non- Mercantily Agent)** –

ऐसे अनेको प्रकार के एजेन्ट जो गैर व्यापारिक कार्यो को करने के लिये नियोक्ता द्वारा नियुक्त किये जाते है गैर व्यापारिक एजेन्ट कहलाते है। इस श्रेणी के एजेन्टों में निम्न शामिल हैं– कानूनी कार्यो के लिए वकील, वित्तीय कार्यो के लिये बैकर, तकनीकी कार्यो के लिये इन्जीनियर, बीमा के लिये बीमा एजेन्ट , पत्नी आदि।

10.5 एजेन्सी की स्थापना (Creation of Agency)

एजेन्सी की स्थापना निम्नलिखित रीतियों में से किसी भी रीति द्वारा की जा सकती है :–

(1) **स्पष्ट ठहराव द्वारा एजेन्सी (Agency By Express Agreement)**:–यदि नियोक्ता लिखित या मौखिक रूप से एजेन्ट को अधिकार प्रदान करता है अर्थात जब एजेन्ट की नियुक्ति लिखित या मौखिक रूप से की जाती है तो इसे स्पष्ट ठहराव द्वारा एजेन्सी की स्थापना कहते हैं। सामान्यतया एजेन्सी की स्थापना इसी रीति से होती है। (धारा 187)

एक वकील को न्यायालय में किसी वाद में वकालत करने के लिये लिखित रूप में अधिकृत करना होता है अर्थात् वकील एजेन्ट की नियुक्ति स्पष्ट अधिकार द्वारा होती है।

उदाहरण – 'अ' 'ब' को एक लिखित अनुबन्ध द्वारा अपना एजेन्ट नियुक्त करता है तो इसे 'अ' तथा 'ब' के बीच एजेन्सी की स्थापना स्पष्ट ठहराव द्वारा मानी जायेगी।

(2) **गर्भित ठहराव द्वारा एजेन्सी (Agency By Implied Agreement)**:–जब लिखित या मौखिक रूप से अधिकार प्रदान नहीं किये जाते बल्कि पक्षकारो के व्यवहार, आचरण तथा उनकी स्थिति या उनके सम्बन्ध के अनुसार एक व्यक्ति को अधिकार मिल जाते हैं और वह व्यक्ति जो भी कार्य करेगा उसका नियोक्ता उत्तरदायी होगा। ऐसी एजेन्सी को गर्भित ठहराव द्वारा एजेन्सी की स्थापना कहते हैं। जैसे– मालिक तथा उसके कर्मचारी, पति और पत्नी, साझेदारी में प्रत्येक साझेदार गर्भित रूप से एक दूसरे का एजेन्ट होता है और उनके बीच एजेन्सी मानी जाती है। (धारा 187)

उदाहरण – 'अ' की पत्नी 'ब' बाजार से अपनी आवश्यकता की वस्तुएं उधार ले आती है तो इस उधार का रूपया चुकाने के लिये 'अ' बाध्य होगा। यहाँ पति व पत्नी के बीच गर्मित अधिकार द्वारा एजेन्सी मानी जायेगी।

(3) **आवश्यकता द्वारा एजेन्सी (Agency by Necessity)**:–परिस्थितिवश किसी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के लिये (बिना उसके स्पष्ट अधिकार के) कार्य करना पड़ जाता है तो ऐसी स्थिति में दोनो के बीच आवश्यकता द्वारा एजेन्सी मान ली जाती है। आवश्यकता द्वारा एजेन्सी की उत्पत्ति के लिये निम्न बातें पूरी होनी चाहिये :–

1. आवश्यकता अचानक उत्पन्न हुई हो तथा कार्य करना अति आवश्यक होना चाहिये।
2. शीघ्र कार्य करना आवश्यक हो।
3. नियोक्ता से तुरन्त सम्पर्क करना सम्भव न हो।
4. एजेन्ट द्वारा नियोक्ता के हित में ही कार्य करना।
5. एजेन्ट ने पूर्ण सद्भावना से नियोक्ता का कार्य किया हो।

उदाहरण– 'अ' ने रेल द्वारा अपने घोड़े भेजे। स्टेशन पर पहुचने के पश्चात 'अ' ने न तो घोड़ो को छुड़ाया और न ही उनके खाने पीने की व्यवस्था की। अतएव बाध्य हो कर रेलवे के स्टेशन मास्टर को उन घोड़ो को खिलाने की व्यवस्था करनी पड़ी। यहाँ पर स्टेशन मास्टर उन घोड़ो के सम्बन्ध में आवश्यकतानुसार घोडे के मालिक का एजेन्ट माना जायेगा। (धारा 189)

(4) **गत्यावरोध द्वारा एजेन्सी (Agency by Estoppel):**–जब कोई व्यक्ति अपने शब्दो या आचरण द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को यह विश्वास करने के लिये प्रेरित करता है कि तीसरा व्यक्ति उसका एजेन्ट है जब कि वह उसका एजेन्ट नहीं होता है। दूसरा व्यक्ति उसकी बात पर विश्वास करके तीसरे व्यक्ति के साथ अनुबन्ध कर लेता है तो यहाँ पर पहले व तीसरे व्यक्ति के बीच में 'गत्यावरोध द्वारा एजेन्सी' का होना माना जायेगा। गत्यावरोध के अर्न्तगत पहले व्यक्ति को यह कहने से रोक दिया जाता है कि 'मैंने गलत कहा था' कि वह मेंरा एजेन्ट है। धारा 237 में यही कहा गया है कि 'यदि किसी एजेन्ट ने बिना किसी अधिकार के, अपने नियोक्ता की ओर से कुछ कार्य कर लिया है या अन्य व्यक्तियों के प्रति दायित्व ले लिया है तथा नियोक्ता ने अपने शब्दों या आचरण से ऐसे अन्य व्यक्तियों को यह विश्वास कर लेने के लिए प्रेरित किया हो कि ऐसे कार्य दायित्व

एजेन्ट के अधिकार की सीमा के अन्तर्गत थे, तो नियोक्त ऐसे कार्यों और दायित्वों से बाध्य होगा'।

उदाहरण– 'अ' 'ब' से कहता है कि 'ग' उसका एजेन्ट है जबकि वास्तव में 'ग' उसका एजेन्ट नहीं है परन्तु 'ब' 'अ' की बात पर विश्वास करके 'ग' के साथ व्यवहार कर लेता है तो यहाँ पर इस व्यवहार के लिये 'अ' उत्तरदायी होगा। यहाँ पर 'अ' तथा 'ग' के बीच गत्यावरोध के सिद्वान्त के अनुसार एजेन्सी मानी जायेगी।

(5) **अधिनियम के प्रर्वतन द्वारा (By Operation of Law):–** कभी–कभी एजेन्सी की स्थापना किसी अधिनियम के प्रर्वतन अर्थात लागू होने पर भी हो जाती है। जैसे– कम्पनी अधिनियम के अनुसार कम्पनी के समामेंलन से पूर्व उसके प्रर्वतक कम्पनी के एजेन्ट माने जाते है। क्योंकि उनके कार्यो से कम्पनी बाध्य होती है। इसी प्रकार साझेदारी अधिनियम के लागू होने के कारण ही एक साझेदार दूसरे साझेदार का एजेन्ट माना जाता है इसीलिये एक साझेदार के कार्यो से दूसरे साझेदार बाध्य होते हैं।

(6) **पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी (Agency by Ratification)**:– जब कोई व्यक्ति बिना किसी दूसरे व्यक्ति के अधिकार के ही उसके लिये कोई कार्य कर देता है बाद में उसके इस अनाधिकृत कार्य की पुष्टि कर दी जाती है तो ऐसा कार्य करने वाला व्यक्ति पुष्टिकरण द्वारा नियुक्ति एजेन्ट कहलाता है और यहाँ पर पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी का होना माना जाता है। (धारा 196)

उदाहरण– 'अ' ने 'ब' को 10 हजार रूपये उधार दिये हैं 'ब' ने बिना 'अ' की सहमति के ये रूपये 'स' को दे दिये और उससे कहा कि ये रूपये 'अ' के हैं। यदि 'स' 10 हजार रूपये का ब्याज 'अ' को दे तथा 'अ' ब्याज स्वीकार कर लेता है तो यह माना जायेगा कि 'ब' ने 'अ' के एजेन्ट का कार्य किया जिसकी पुष्टि 'अ' ने ब्याज स्वीकार करके कर दी। यहाँ पर 'अ' तथा 'ब' के बीच पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी मानी जायेगी।

वैध पुष्टिकरण के अनिवार्य तत्व (Essentials of a valid ratification)

वैध पुष्टिकरण के लिये निम्न शर्तो का पूरा होना आवश्यक है:–

1. **दूसरे व्यक्ति की ओर से (On behalf of another person)** – अनुबन्ध करते समय एजेन्ट को तीसरे पक्षकार को यह बात स्पष्ट रूप से बता देनी चाहिये कि वह किसी नियोक्ता के लिये अर्थात दूसरे व्यक्ति के लिए कार्य कर रहा है। वह नियोक्ता का नाम बता सकता है या ऐसा विवरण दे सकता है जिससे उसकी पहचान की जा सके। जैसे नियोक्ता की पहचान के लिये उसके पदनाम का उल्लेख किया जा सकता है।

2. **कार्य पुष्टिकरण होने योग्य हो (The Act must be ratifiable)** – एजेन्टों द्वारा किया गया कार्य ऐसा होना चाहिए जो वैधानिक हो तभी उसका पुष्टिकरण किया जा सकता है। अवैधानिक कार्यो या अधिकार क्षेत्र से बाहर किये गये कार्यो का पुष्टिकरण नही किया जा सकता है। उदाहरण के लिये – कम्पनी के संचालक द्वारा अधिकारों के बाहर कार्य (उद्देश्य वाक्य से बाहर) किये जाने पर अंशधारियों द्वारा उसका पुष्टिकरण नही किया जा सकता है।

3. **नियोक्ता का अस्तित्व होना चाहिये (The Principal must be in existence)** – एजेन्ट द्वारा अनुबन्ध किये जाने के समय नियोक्ता अस्तित्व में

होना चाहिये। यदि एजेन्ट द्वारा जो तृतीय पक्ष के साथ अनुबन्ध किया है उस समय नियोक्ता अस्तित्व में नही है तो नियोक्ता ऐसे अनुबन्ध का पुष्टिकरण नही कर सकता है। उदाहरण के लिये – कम्पनी के समामेलन से पूर्व प्रवर्तको द्वारा किये गये अनुबन्धों का कम्पनी पुष्टिकरण नही कर सकती है। हॉ इस नियम के कुछ अपवाद विशिष्ट सहायता अधिनियम 1963 (Specific Relief Act 1963) में अवश्य दिये हे जिसके अनुसार कम्पनी के समामेलन से पूर्व प्रवर्तकों द्वारा कम्पनी के 'उद्देश्यवाक्य' के अनुरूप किये गये अनुबन्धों का कम्पनी पुष्टिकरण कर सकती है।

4. **नियोक्ता में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिये (The principal must be Competent to Contract)** – एजेन्ट द्वारा जिस समय कार्य किया जाता है उस समय नियोक्ता अनुबन्ध करने की क्षमता रखता हो। यदि एजेन्ट द्वारा मूल अनुबन्ध करते समय नियोक्ता अवयस्क हो तो वह एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यो का पुष्टिकरण नही कर सकता है । दूसरे शब्दों मे एजेन्ट द्वारा मूल अनुबन्ध करते समय यदि नियोक्ता अवयस्क है तो ऐसा नियोक्ता वयस्क होने के पश्चात भी एजेन्ट के कार्य का पुष्टिकरण नही कर सकता है।

5. **नियोक्ता को सभी महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी होनी चाहिए (The principal must have full knowledge of material facts)** – धारा 198 के अनुसार, एक नियोक्ता ऐसे अनुबन्ध का वैध पुष्टिकरण नही कर सकता है जिसके बारे में उसे त्रुटिपूर्ण तथ्य दिये गये हो। अर्थात एजेन्ट द्वारा किये गये उन्ही अनुबन्धों का नियोक्ता वैध पुष्टिकरण कर सकता है जिसके बारे में उसे सभी महत्वपूर्ण तथ्यो की जानकारी हो। यदि एजेन्ट कुछ महत्वपूर्ण जानकारियो को नियोक्ता से छिपाता है तो ऐसे पुष्टिकरण से नियोक्ता बाध्य नही होगा।

6. **पुष्टिकरण पूर्ण तथा शर्त रहित होना चाहिये (Retification should be Absolute and unconditional)** – धारा 199 वैध पुष्टिकरण के लिये यह भी आवश्यक है कि पुष्टिकरण सम्पूर्ण व्यवहार का हो तथा शर्त रहित हो। नियोक्ता पुष्टिकरण के समय अपनी ओर से कोई शर्त न लगाये। नियोक्ता यदि एजेन्ट द्वारा किये गये अनुबन्ध के किसी भाग को स्वीकार करे तो सम्पूर्ण अनुबन्ध गर्भित रूप से स्वीकृत माना जाता है। यदि नियोक्ता अनुबन्ध के एक भाग को स्वीकार तथा दूसरे भाग को अस्वीकार करे तो ऐसा पुष्टिकरण वैध नही होता।

7. **पुष्टिकरण उचित समय के अन्दर किया जाना चाहिये (Ratification should be with in reasonable time)** – नियोक्ता द्वारा पुष्टिकरण उचित समय के अंदर किया जाना चाहिये। उचित समय अनुबन्ध की परिस्थितियों के आधार पर निश्चित होता हैं यदि अनुबन्ध में निष्पादन का समय निश्चित हो, पुष्टिकरण निर्धारित समय समाप्त होने से पूर्व होना चाहिये।

8. **पुष्टिकरण से किसी तृतीय पक्ष को हानि नही पँहुचनी चाहिये (Ratification must not cause damage to third party)** – धारा 200 यदि एजेन्ट द्वारा बिना अधिकार के किये गये कार्य से किसी तृतीय पक्षकार को हानि हो अर्थात एजेन्ट के कार्य का पुष्टिकरण करने से तृतीय पक्षकार को हर्जाना देना पड़ता हो तो ऐसे कार्य का वैध पुष्टिकरण नही किया जा सकता है।

10.6 उप–एजेन्ट (Sub- Agent)

धारा 191 के अनुसार, "उप–एजेन्ट वह व्यक्ति है जो एजेन्सी के व्यापार में मूल एजेन्ट द्वारा नियुक्त किया गया है, और जो मूल एजेन्ट के नियन्त्रण में कार्य करता हो"। दूसरे शब्दो में नियोक्ता द्वारा नियुक्त किये गये एजेन्ट द्वारा नियुक्त एजेन्ट उप–एजेन्ट कहलाता है और वह एजेन्ट के नियन्त्रण में कार्य करता है।

उदाहरण– 'अ' 'ब' को अपना एजेन्ट नियुक्त करता है और 'ब' अपनी सहायता के लिये किसी तीसरे व्यक्ति 'स' को नियुक्त कर लेता है तो 'स' उप–एजेन्ट कहलायेगा।

सामान्यतः नियमानुसार एक एजेन्ट स्वयं ही दूसरे का प्रतिनिधि होता है। अतएव वह किसी तीसरे को कैसे प्रतिनिधि बना सकता है अर्थात एजेन्ट किसी को उप–एजेन्ट नहीं बना सकता है। परन्तु इस नियम के कुछ अपवाद है अर्थात निम्न दशाओ में एक एजेन्ट, उप–एजेन्ट नियुक्त कर सकता है :–

I. जब व्यवसाय में प्रचलित रीति रिवाजों के अनुसार उप–एजेन्ट रखा जाता हो।
II. जब एजेन्सी का स्वभाव इस प्रकार का हो कि उप–एजेन्ट की नियुक्ति आवश्यकीय होती हो।
III. जब नियोक्ता ने एजेन्ट को स्पष्ट अधिकार दे रखा हो कि वह उप–एजेन्ट नियुक्त कर सकता है।
IV. जब नियोक्ता यह जानता हो कि उसका एजेन्ट उप–एजेन्ट रखना चाहता है और नियोक्ता आपत्ति नही करता।
V. जब काम ऐसा हो जिसमें गोपनीयता की आवश्यकता नहीं है अर्थात कार्य कार्यालयी (लिपकीय) हो।
VI. किसी आकस्मिक घटना के समय उप–एजेन्ट रखना अनिवार्य हो जाये।

नियोक्ता, एजेन्ट एवं उप–एजेन्ट के बीच वैधानिक स्थिति (Legal Position of Principal, Agent and Sub Agent)–

(A) जब उप–एजेन्ट की नियुक्ति अधिकृत रूप से हुई हो (Sub Agent appointed with authority) :–यदि उप–एजेन्ट को नियुक्त करने का अधिकार नियोक्ता द्वारा मूल एजेन्ट को दिया गया हो तो :–

1. इस स्थिति में उप–एजेन्ट के द्वारा किये गये कार्यो के लिये नियोक्ता उत्तरदायी होगा।

2. मूल एजेन्ट उप–एजेन्ट के कार्यो के लिये नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होगा।

3. उप–एजेन्ट अपने कार्यो के लिये सदैव मूल एजेन्ट के प्रति उत्तरदायी होता है। नियोक्ता के प्रति नहीं अर्थात नियोक्ता उप–एजेन्ट के कार्यो के लिये मूल एजेन्ट को उत्तरदायी ठहरा सकता है उप–एजेन्ट को नही। क्योंकि नियोक्ता एवं उप–एजेन्ट के बीच कोई अनुबन्ध नहीं होता इसलिये उप–एजेन्ट अपने पारिश्रमिक के लिये नियोक्ता के विरूद्व वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता और न ही नियोक्ता अपना रूपया वसूल करने के लिये उप–एजेन्ट के विरूद्व वाद प्रस्तुत कर सकता है। यदि उप–एजेन्ट कोई कार्य कपट या जानबूझ कर लापरवाही द्वारा करता है तो ऐसी दशा में वह केवल मूल एजेन्ट के प्रति ही नहीं वरन नियोक्ता के प्रति भी उत्तरदायी होगा अर्थात कपट की दशा में नियोक्ता, एजेन्ट तथा उप–एजेन्ट दोनों के विरूद्व वाद प्रस्तुत कर सकता है। (धारा 192)

(B) **जब उप–एजेन्ट की नियुक्ति बिना अधिकार के हुई हो (When Sub Agent appointed without authority)**:–जब नियोक्ता ने मूल एजेन्ट को उप–एजेन्ट नियुक्त करने का अधिकार नहीं दिया था परन्तु एजेन्ट ने उप–एजेन्ट नियुक्त कर दिया हो तो –

1. नियोक्ता ऐसे उप–एजेन्ट के कार्यो के लिये उत्तरदायी नहीं होगा।
2. नियोक्ता उप–एजेन्ट को उसके द्वारा कपट करने पर भी उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता।
3. उप–एजेन्ट के प्रत्येक कार्य के लिये मूल एजेन्ट उत्तरदायी होगा। (धारा 193)

10.7 स्थानापन्न एजेन्ट (Substituted Agent)

धारा 194 के अनुसार, ''जब कोई एजेन्ट नियोक्ता से प्राप्त स्पष्ट अथवा गर्मित अधिकार के आधार पर एजेन्सी के कारोबार में किसी अन्य व्यक्ति को नियोक्ता की ओर से कार्य करने के लिये नामांकित करता है तो ऐसा अन्य व्यक्ति 'स्थानापन्न एजेन्ट' कहलाता है''।

उदाहरण के लिये– 'अ' अपने वकील 'ब' को अपनी जमीन नीलाम द्वारा बिकवाने तथा इसके लिये नीलामकर्ता को नियुक्त करने का आदेश देता है 'ब' नीलामकर्ता के रूप में 'स' को नियुक्त करता है यहाँ पर 'स' स्थानापन्न एजेन्ट कहलायेगा न कि उप–एजेन्ट।

स्थानापन्न एजेन्ट की प्रमुख विशेषताये या लक्षण निम्न हैं :–

1. स्थानापन्न एजेन्ट की नियुक्ति मूल एजेन्ट द्वारा की जाती है।
2. एजेन्ट इसकी नियुक्ति नियोक्ता से प्राप्त स्पष्ट या गर्मित अधिकार के अर्न्तगत करता है।
3. ऐसा स्थानापन्न एजेन्ट सीधे नियोक्ता के अधीन कार्य करता है।
4. स्थानापन्न एजेन्ट व्यवसाय के केवल उसी भाग के लिये नियोक्ता के एजेन्ट के रूप में कार्य करता है जो कि वास्तव में इसे सौंपा जाये।
5. स्थानापन्न एजेन्ट के कार्यो के लिये नियोक्ता उत्तरदायी होता है न कि मूल एजेन्ट।

स्थानापन्न एजेन्ट नियुक्त करते समय एजेन्ट का कर्तव्य –

धारा 195 के अनुसार, अपने नियोक्ता के लिये स्थानापन्न एजेन्ट की नियुक्ति करते समय एजेन्ट को उतने ही विवेक व चतुराई तथा ईमानदारी से कार्य करना चाहिये जितने विवेक से एक साधारण बुद्विं का व्यक्ति अपने निजी मामले में करता, और यदि वह ऐसा करता है तो इस प्रकार से चुने हुए स्थानापन्न एजेन्ट के कार्यो के लिये अथवा उसकी असावधानियों के लिये मूल एजेन्ट उत्तरदायी नहीं होगा।

10.8 नियोक्ता के प्रति एजेन्ट के कर्तव्य (Duties of an Agent to his Principal)

नियोक्ता के प्रति एजेन्ट के निम्नलिखित कर्तव्य हैं :–

(1) **कार्य का निष्पादन करना (To perform the work)**:– एजेन्सी अनुबन्ध के अर्न्तगत नियोक्ता ने उसे जो कार्य करने को दिया है एजेन्ट का कर्तव्य है कि वह उस कार्य को पूरा करे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो इससे नियोक्ता को होने वाली हानि की पूर्ति के लिये वह उत्तरदायी होगा।

(2) **आदेशानुसार कार्य करना (To conduct the work according to Direction)**:– एजेन्ट का यह कर्तव्य है कि वह नियोक्ता द्वारा दिये गये आदेशों व निर्देशो के अनुसार एजेन्सी का कार्य करे। इसके अभाव में हानि होने पर हानि पूर्ति के लिये उत्तरदायी होगा।

उदाहरण– 'अ' अपने एजेन्ट 'ब' को निर्देश देता है कि वह माल केवल नकद बेचे उधार नहीं। यदि 'ब' माल उधार बेचे और उधार का पैसा वसूल न हो पाये तो इसके लिये एजेन्ट उत्तरदायी होगा।

(3) **आदेश के अभाव में प्रथानुसार कार्य करना (To conduct according to prevailing Custom)**:–यदि नियोक्ता ने एजेन्सी के कार्य के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं दिये हैं तो एजेन्ट का कर्तव्य है कि वह प्रचलित व्यापारिक रीतियों के अनुसार एजेन्सी का कार्य करे। इसके विपरीत कार्य करने पर एजेन्ट इससे नियोक्ता को होने वाली क्षति की पूर्ति के लिये उत्तरदायी होगा।

उदाहरण– 'अ' अपने एजेन्ट 'ब' को माल की बिक्री के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं देता है कि माल उधार बेचना है या नहीं। परन्तु प्रचलित रीति के अनुसार वहाँ पर माल उधार नहीं बेचा जाता है तो एजेन्ट का कर्तव्य है कि वह माल उधार न बेचे। यदि वह उधार बेचता है तो इससे नियोक्ता को होने वाली हानि के लिये वह उत्तरदायी होगा।

(4) **उचित चतुराई, सावधानी एवं परिश्रम से कार्य करना (To carry out the work with reasonable care and diligence)**:– एक एजेन्ट को एजेन्सी का कार्य उतनी ही चतुराई, सावधानी एवं परिश्रम से करना चाहिये जितनी की एक व्यक्ति स्वयं के कार्य में करता है। यदि एजेन्ट ने उचित सावधानी, चतुराई व परिश्रम से एजेन्सी का कार्य नहीं किया है तो इस कारण नियोक्ता को होने वाली हानि के लिये वह उत्तरदायी होगा।

उदाहरण– 'अ' अपने एजेन्ट 'ब' के पास बिक्री हेतु माल भेजता है 'ब' का कर्तव्य है कि वह माल को ठीक से रखे जिससे कि वह खराब न हो, यदि 'ब' माल को ऐसी जगह रख देता है जहाँ पर कि पानी या धूप से खराब हो जाता है तो इसे एजेन्ट की लापरवाही माना जायेगा अर्थात एजेन्ट ने उचित सावधानी नहीं बरती। इससे माल की जो क्षति होगी उसकी पूर्ति के लिये एजेन्ट उत्तरदायी होगा।

(5) **कठिनाई के समय नियोक्ता को सूचित करना (To communicate with principal in case of difficulty)**:–एजेन्सी के कार्य में यदि कभी कोई कठिनाई आ जाये तो एजेन्ट का कर्तव्य है कि वह अपने नियोक्ता को इसकी सूचना दे तथा उससे निर्देश प्राप्त करे। यदि नियोक्ता को सूचित करना सम्भव न हो सके तो ऐसी स्थिति में उसे साधारण बुद्धि वाले व्यक्ति के समान सावधानी पूर्वक कार्य करना चाहिये।

(6) **स्वयं (निज) के हिसाब में व्यवहार न करना (Not to deal on this own account)**:–एजेन्ट का यह कर्तव्य है कि वह अपने नियोक्ता की सहमति के बिना तथा महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी नियोक्ता को दिये बिना, एजेन्सी के व्यापार का अपने निजी हिसाब में व्यवहार नहीं करना चाहिये अन्यथा नियोक्ता को ऐसे व्यवहार निरस्त करने का अधिकार होगा।

उदाहरण– 'अ' अपने एजेन्ट 'ब' को अपनी जमीन बेचने के लिये आदेश देता है 'ब' इस जमीन को नियोक्ता को सूचित किये बिना अपने लिये क्रय कर लेता है। 'अ' को अधिकार है कि वह इस भूमि बिक्री के अनुबन्ध को निरस्त कर सकता है।

(7) **नियोक्ता के लिये प्राप्त धन नियोक्ता को देना (To pay to his principal all sum received on his behalf)**:–एजेन्ट का यह कर्तव्य है कि एजेन्सी के व्यवसाय में नियोक्ता के लिये जितना भी धन उसे प्राप्त हो सम्पूर्ण धनराशि नियोक्ता को दे दे या उसके खाते में जमा कर दे। जो धनराशि उसे नियोक्ता से लेनी है उसे वह प्राप्त राशि में से अपने पास रोक सकता है। (जैसे – एजेन्सी के व्यापार में उसने स्वयं अग्रिम धन दिया हो, उसके द्वारा किये गये व्यय तथा एजेन्ट के रूप में कार्य करने का पारिश्रमिक की राशि रोक सकता है।)

(8) **अपने अधिकार का हस्तांतरण न करना (Not to delegate authority)**:–एजेन्ट को अपने अधिकार का हस्तांतरण किसी अन्य व्यक्ति को नहीं करना चाहिये (केवल उप–एजेन्ट नियुक्त करने की दशा को छोड़कर)। अर्थात एजेन्ट को नियोक्ता द्वारा जो कार्य दिया गया हो उस कार्य को वह स्वयं करे।

(9) **एजेन्सी के दौरान प्राप्त सूचना को नियोक्ता के विरूद्व प्रयोग न करना (Not to use information obtained in the course of agency against the principal)**:– यदि एजेन्सी का कार्य करने के दौरान एजेन्ट को कोई सूचना मिलती है तो एजेन्ट का कर्तव्य है कि वह उस सूचना को नियोक्ता को दे तथा उसका प्रयोग नियोक्ता के विरूद्व न करे।

(10) **नियोक्ता की मृत्यु या पागलपन की दशा में उसके हितो की रक्षा करना (To protect the interest in case of Principal's death or unsoundness)**:–यदि नियोक्ता की मृत्यु हो जाती है या नियोक्ता पागल हो जाता है तो एजेन्ट का कर्तव्य है कि वह ऐसे सभी कदम उठाये या उपाय करे जिससे नियोक्ता के हितों की रक्षा हो।

(11) **नियोक्ता के माल या सम्पत्ति पर विपरीत अधिकार स्थापित न करे (Not to set up adverse title)**:–एजेन्ट का कर्तव्य है कि उसके नियोक्ता ने उसे एजेन्सी के कार्य हेतु जो माल या सम्पत्ति दे रखी है उस पर विपरीत अधिकार स्थापित न करे अर्थात उस पर स्वामित्व स्थापित न करे।

10.9 नियोक्ता के विरूद्व एजेन्ट के अधिकार (Rights of Agent against the Principal)

नियोक्ता के विरूद्व एजेन्ट को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं :–

(1) **प्राप्त धन रोके रखने का अधिकार (Right to retain money due to himself):**–एजेन्ट को यह अधिकार है कि नियोक्ता के लिये उसने जो धन प्राप्त किया है उस धन में से वह ऐसी राशि रोक सकता है जो कि (i) उसने एजेन्सी के व्यवसाय में अपनी ओर से व्यय किये हो तथा (ii) एजेन्ट के रूप में कार्य करने के लिये प्राप्त पारिश्रमिक।

(2) **पारिश्रमिक पाने का अधिकार (Right to receive remuneration)**:–यदि एजेन्ट का पारिश्रमिक निश्चित है तो वह निश्चित पारिश्रमिक पाने का अधिकारी है और यदि पारिश्रमिक निश्चित नहीं है तो वह उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकारी

है। विशेष शर्तो के अभाव में सामान्यतः एजेन्सी का कार्य पूरा करने पर ही पारिश्रमिक पाने का अधिकार होता है। एजेन्ट ऐसे कार्य का पारिश्रमिक पाने का अधिकारी नहीं होगा जिसमें कि वह दुराचरण का दोषी हो। यदि एजेन्ट ने एजेन्सी के व्यापार में कोई गुप्त कमीशन प्राप्त किया है तो नियोक्ता ऐसे कमीशन की राशि को उसके पारिश्रमिक से काट सकता है।

(3) **पूर्वाधिकार (Right of Lien)**:–किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में एजेन्ट को यह अधिकार है कि उसने जो धनराशि नियोक्ता से प्राप्त करनी है उसके लिये वह नियोक्ता की किसी सम्पत्ति को (जो उसके अधिकार में है) तब तक अपने पास रोके रख सकता है जब तक कि उसे धन प्राप्त न हो जाये। एजेन्ट के इस अधिकार को पूर्वाधिकार कहते हैं।

(4) **माल को मार्ग में रोकने का अधिकार (Right to stoppage of goods in transit)**:– एजेन्ट ने नियोक्ता के लिये जो माल क्रय किया है वह उसने अपने धन से खरीदा हो, या अपनी जमानत पर उधार खरीदा हो तो ऐसी स्थिति में उसे अधिकार होता है कि वह माल को मार्ग में रूकवा सकता है।

(5) **हानिपूर्ति कराने का अधिकार (Right of Indemnification)**:--

(I) वैध कार्यो के सम्बन्ध में हुई हानि की पूर्ति कराना (Indemnification for lawful Act)– एजेन्ट को एजेन्सी के समस्त वैध कार्यो को करने के परिणाम स्वरूप हुई हानि की पूर्ति नियोक्ता से कराने का अधिकार होता है। एजेन्ट ऐसे कार्यो के सम्बन्ध में क्षतिपूर्ति का दावा नहीं कर सकता जो अवैधानिक या आपराधिक प्रकृति के होते हैं।

जैसे – 'अ' 'स' को पीटने के लिये 'ब' को नियुक्त करता है और उसे वचन देता है कि 'स' को पीटने पर यदि उसे जुर्माना पड़ेगा तो उसकी क्षतिपूर्ति वह करेगा। इस पर 'ब' 'स' को पीट देता है इसके परिणाम स्वरूप 'स' को हर्जाना देना पड़ जाता है 'ब' इस हर्जाने की राशि को 'अ' से क्षतिपूर्ति नहीं करा सकता है क्योंकि यहाँ एजेन्ट अर्थात 'ब' ने आपराधिक कार्य किया है।

(II) सद्भावना से कार्य करने पर हुई हानि की पूर्ति कराना (Indemnification for Act by Agent in good faith)– यदि एजेन्ट एजेन्सी के कार्य को सद्भावना के साथ करता है परन्तु उसे हानि हो जाती है या उसे तृतीय पक्ष को हर्जाना देना पड़ जाता है तो एजेन्ट, नियोक्ता से ऐसी हानि की पूर्ति कराने का अधिकारी होता है।

उदाहरण –'अ' एक एजेन्ट 'ब' नियोक्ता द्वारा दिये माल को बेच कर धन नियोक्ता को दे देता है बाद में ज्ञात होता है कि वह माल तो 'स' का था। 'स' 'अ' पर वाद प्रस्तुत कर देता है इस पर न्यायालय के आदेश पर 'अ' को माल का मूल्य तथा व्यय देना पड़ता है। इस स्थिति में 'अ' इस प्रकार की गई सम्पूर्ण राशि को नियोक्ता से वसूल कर सकता है।

नियोक्ता की उपेक्षा अथवा चतुराई के अभाव के कारण एजेन्ट को हानि होती है, तो एजेन्ट ऐसी हानि की पूर्ति करा सकता है।

उदाहरण – 'अ' एक मकान बनाने में 'ब' को ईट रखने वाले के रूप में एजेन्ट नियुक्त करता है और स्वयं ईट रखने का मचान तैयार करता है। मचान चतुराई से नहीं बनाया गया और जिसके फलस्वरूप 'ब' को चोट लग जाती है 'ब' 'अ' से इसकी क्षतिपूर्ति करा सकता है।

नियोक्ता के अधिकार एवं कर्तव्य

एजेन्ट के कर्तव्य परोक्ष रूप से नियोक्ता के अधिकार होते हैं और एजेन्ट के अधिकार परोक्ष रूप से नियोक्ता के कर्तव्य होते हैं। एजेन्ट के कर्तव्यों एवं अधिकारों का वर्णन पहले किया जा चुका है।

10.10 एजेन्ट के कार्यो के सम्बन्ध में नियोक्ता के दायित्व (**Principal's liability for the acts of agent**) अथवा तृतीय पक्षकारों के प्रति नियोक्ता के दायित्व (**Principal Liability to third parties**)

नियोक्ता अपने एजेन्टों के उन कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। जो एजेन्ट ने अपने अधिकार के अधीन किये है, अथवा नियोक्ता की सहमति से किये है अथवा जिनका नियोक्ता ने बाद में पुष्टिकरण किया हो। ऐसे सभी कार्यों में नियोक्ता ही अनुबन्ध करने वाला पक्षकार हो जाता है। जबकि एजेन्ट तो केवल एक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक श्रंखला का कार्य करता है।

एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यो के सम्बन्ध मे तृतीय पक्षकारो के प्रति नियोक्ता के उत्तरदायित्व की सीमा का निर्धारण निम्न नियमों के अनुसार किया जाता हैः–

1. **जब एजेन्ट अपने अधिकारो के अन्तर्गत कार्य करता है (When agent acts with in the authority)**

जब एजेन्ट ने अपने अधिकारो के अन्तर्गत कार्य किया हो तो नियोक्ता उसके कार्यो के लिये तृतीय पक्षकारों के प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदायी होगा, नियोक्ता एजेन्ट के ऐसे सभी कार्यो के लिये भी उत्तरदायी होता है जिन्हे वह आपात स्थिति में नियोक्ता को हानि से बचाने के लिये करता है।

2. **जब एजेन्ट अपने अधिकार से बाहर कार्य करता है (When agent acted beyond his authority)**

जब एजेन्ट अपने अधिकारो के बाहर कार्य करता है तो नियोक्ता को एजेन्ट के ऐसे कार्यो को अस्वीकार करने या उनका पुष्टिकरण करने का अधिकार होता है। यदि नियोक्ता एजेन्ट के ऐसे कार्यो को स्वीकार कर लेता है तो इन कार्यो के लिये वह उसी प्रकार से उत्तरदायी होगा मानो ये कार्य एजेन्ट के अधिकार के अन्दर किये है। यदि नियोक्ता एजेन्ट के ऐसे कार्यो को अस्वीकार कर देता हे तो नियोक्ता तृतीय पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी नही होगा और एजेन्ट स्वंय उत्तरदायी होगा।

यदि एजेन्ट द्वारा किया गया कार्य ऐसा है जिसे अधिकार के अन्दर तथा अधिकार के बाहर अलग–अलग किया जा सकता हो तो नियोक्ता केवल अधिकार के अन्दर किये गये भाग के लिये ही उत्तरदायी होगा। (धारा 227) उदाहरण के लिए, 'अ' अपने एजेन्ट 'ब' को अपनी कार का बीमा कराने के लिए अधिकृत करता है 'ब' कार का बीमा तो कराता है और साथ ही माल का बीमा भी करा देता है। यहां पर 'अ' कार के बीमें का प्रीमियम देने के लिए बाध्य है। माल के बीमें का प्रीमियम देने के लिए बाध्य नहीं हैं।

यदि एजेन्ट द्वारा किया गया कार्य अधिकार के अन्दर तथा अधिकार के बाहर को अलग–अलग नही किया जा सकता है तो नियोक्ता एजेन्ट द्वारा किये गये सम्पूर्ण व्यवहार को निरस्त करने का अधिकारी होगा तथा एजेन्ट उसके लिये

व्यकितगत रूप से उत्तरदायी होगा। (धारा 228) उदाहरण के लिए, 'अ' 'ब' को पचास हजार रूपये में टायर खरीदने का अधिकार देता है। 'ब' पचास हजार रूपये में टायर तथा ट्यूब खरीद लेता है, यहां पर 'अ' पूरे व्यवहार को निरस्त कर सकता है।

3. **एजेन्ट द्वारा कपट या मिथ्यावर्णन पर नियोक्ता का दायित्व (Liablites of employer for agent fraud or misrepresentation)** (धारा 238)

यदि एजेन्ट ने अपने अधिकार की सीमा के अन्दर कार्य करते हुए तृतीय पक्षों के साथ कपट या मिथ्यावर्णन किया हो तो इसके लिये नियोक्ता उत्तरदायी होगा क्योंकि कानून नियोक्ता तथा एजेन्ट को एक ही व्यक्ति मानता है। एजेन्ट द्वारा किये गये कपट या मिथ्यावर्णन के लिये नियोक्ता को उत्तरदायी ठहराने के लिये एक मात्र शर्त यह है कि एजेन्ट ने एजेन्सी के सामान्य काम–काज के दौरान किया हो और एजेन्ट ने अधिकार के अन्तर्गत कार्य किया हो। एजेन्ट द्वारा कपट या मिथ्यावर्णन ऐसे कार्य में किया हो जो उसके अधिकार के अन्तर्गत नही आता तो ऐसी दशा मे नियोक्ता उत्तरदायी नही होगा।

4. **एजेन्ट को दी गई सूचना से नियोक्ता बाध्य होता है(Principal bound by notice given to agent)** (धारा 229)

एजेन्सी के काम–काज के दौरान एजेन्ट को दी जाने वाली सूचना अथवा एजेन्ट द्वारा प्राप्त जानकारी से नियोक्ता बाध्य होता है। ऐसा समझा जाता है कि सूचना की जानकारी नियोक्ता को भी है। यदि एजेन्ट को कोई जानकारी एजेन्सी के काम–काज के दौरान प्राप्त नही हुई हो तो वह नियोक्ता पर लागू नही होगी अर्थात ऐसी जानकारी के लिये नियोक्ता उत्तरदायी नही होगा।

10.11 एजेन्ट का व्यक्तिगत दायित्व (Personal liability of Agent)

एजेन्ट की नियुक्ति नियोक्ता द्वारा अपना प्रतिनिधित्व करने के लिये की जाती है अर्थात एजेन्ट अपने नियोक्ता की ओर से कार्य करता है। एजेन्ट द्वारा किये गये कार्य नियोक्ता द्वारा किये गये कार्य समझे जाते हैं अर्थात एजेन्ट जो भी कार्य करता है उसके लिये सामान्यतः या अधिकांशतः नियोक्ता ही उत्तरदायी होता है एजेन्ट नहीं। परन्तु इस नियम के कुछ अपवाद भी हैं अर्थात निम्नलिखित परिस्थितियों में कोई विपरीत अनुबन्ध न होने पर एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है तथा एजेन्ट के विरूद्व वाद प्रस्तुत किया जा सकता है।:–

1. **जब एजेन्ट ने स्पष्ट सहमति दी हो (When Agent himself agrees)**–जब एजेन्ट ने यह सहमति दी हो कि वह तृतीय पक्षकारों के साथ किये जाने वाले अनुबन्धों में व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा। ऐसी स्थिति में अनुबन्ध भंग होने पर एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

2. **जब नियोक्ता विदेशी हो (When Foreign Principal)**–यदि एजेन्ट ऐसे व्यक्ति का नियोक्ता हो जो कि विदेशी है तो एजेन्ट एजेन्सी के कार्यो के लिये व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा क्योंकि कोई भी तृतीय पक्षकार, विदेशी नियोक्ता के विरूद्व सामान्यतः वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है।

3. **जब नियोक्ता अप्रकट हो (When undisclosed Principal)**–जब एजेन्ट अपने नियोक्ता का नाम प्रकट नहीं करता है और एजेन्सी के अनुबन्ध अपने नाम से करता है तो वह तीसरे पक्षकार के प्रति उत्तरदायी होगा अर्थात वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा। यदि एजेन्ट के विरूद्व निर्णय प्राप्त करने से पूर्व तीसरे

पक्षकार को नियोक्त के अस्तित्व का पता चल जाता है तो वह नियोक्ता या एजेन्ट या दोनों पर मुकदमा चला सकता है।

4. **जब नियोक्ता के विरूद्व वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता हो (When the Principal cannot be sued)** – जब एजेन्ट का नियोक्ता ऐसा व्यक्ति है जिस पर मुकदमा न किया जा सकता हो तो ऐसा एजेन्ट एजेन्सी के कार्यो के लिये व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा। जैसे– यदि नियोक्ता अवयस्क हो अथवा राजदूत हो या विदेशी सम्राट हो तो ऐसे नियोक्ता के विरूद्व दावा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है इसलिये ऐसे नियोक्ता का एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

5. **जब एजेन्ट ने अपने अधिकारों के बाहर कार्य किया हो (When Agent exceed his authority)** – यदि एजेन्ट अपने अधिकारों के बाहर कार्य करता है तो अधिकारों के बाहर किये गये कार्यो के प्रति एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

6. **जहाँ एजेन्सी में एजेन्ट का हित हो (When Agent's authority is 'Coupled with interest)** – यदि एजेन्सी में एजेन्ट का हित सम्मिलित है तो हित की सीमा तक एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

10.12 अप्रकट नियोक्ता (Undisclosed Principal)

जब एजेन्ट नियोक्ता से अधिकार प्राप्त कर किसी तृतीय ऐसे पक्ष से अनुबन्ध करता है जो कि यह नही समझता कि वह एजेन्ट है और न ऐसा समझने के लिये कोई उचित आधार रखता है तो ऐसे एजेन्ट का नियोक्ता 'अप्रकट नियोक्ता ' कहलाता हैं। एजेन्ट भी अपने नियोक्ता का नाम नही बताता है और एजेन्ट स्वयं को नियोक्ता की हैसियत से अपने नाम से अनुबन्ध करता है साथ ही तृतीय पक्षकार जिसके साथ एजेन्ट अनुबन्ध करता है वह उसे ही नियोक्ता समझ कर अनुबन्ध करता है तो ऐसा नियोक्ता 'अप्रकट नियोक्ता' होता है। जबकि वास्तव में कोई अन्य व्यक्ति नियोक्ता होता है, ऐसी स्थिति में अप्रकट नियोक्ता के अधिकार व दायित्व को निर्धारित करने के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम हैः–

1. अप्रकट नियोक्ता की स्थिति में एजेन्ट, अपने ही नाम से अनुबन्ध करता है इसलिये तीसरे पक्षकार के प्रति वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। अनुबन्ध के सम्बन्ध मे तृतीय पक्षकार एजेन्ट पर तथा एजेन्ट तृतीय पक्षकार पर मुकदमा चला सकते है। बशर्ते कि अप्रकट नियोक्ता अप्रकटित ही रहे।

2. यदि एजेन्ट के विरूद्व निर्णय प्राप्त करने से पूर्व तृतीय पक्षकार को नियोक्ता के बारे मे जानकारी प्राप्त हो जाती है तो वह नियोक्ता या एजेन्ट या दोनों पर मुकदमा चला सकता है।

धारा 233 के अनुसार ऐसे मामलो में नियोक्ता तथा एजेन्ट के उत्तरदायित्व सयुक्त एवं पृथक पृथक (Jonit and Several) होते है। यदि तृतीय पक्षकार केवल एजेन्ट पर मुकदमा चलाता है और न्यायालय के निर्णय के बाद उसका दावा आंशिक रूप से असन्तुष्ट रह जाता है तो वह बाद मे शेष राशि के लिये नियोक्ता पर मुकदमा चला सकता है।

3. धारा 231 के अनुसार यदि अनुबन्ध पूर्ण होने से पूर्व नियोक्ता स्वंय को प्रकट कर दे तो तृतीय पक्षकार अनुबन्ध को पूरा करने से मना कर सकता है।

इसके लिये तृतीय पक्षकार को यह सिद्व करना होगा कि यदि उसने अनुबन्ध में नियोक्ता को जान लिया होता अथवा यह जान लिया होता कि एजेन्ट स्वयं नियोक्ता नही है, तो वह अनुबन्ध नही करता।

4. अप्रकट नियोक्ता चाहे तो वह एजेन्ट तथा तृतीय पक्षकार के मध्य विवाद में हस्तक्षेप कर सकता है और अनुबन्ध के निष्पादन के सम्बन्ध मे तृतीय पक्षकार के विरूद्व मुकदमा चला सकता है। परन्तु वह अपने इस अधिकार का प्रयोग तृतीय पक्षकार के हितो के विरूद्व नही कर सकता और तृतीय पक्षकार को नियोक्ता के विरूद्व वही अधिकार प्राप्त होगें जो उसे एजेन्ट के विरूद्व होते (यदि एजेन्ट ही नियोक्ता रहा होता)।

10.13 एजेन्सी की समाप्ति (Termination of Agency)

एजेन्सी की समाप्ति निम्नलिखित तरीकों से हो सकती है :—

(1) **ठहराव द्वारा (By Agreement)**—नियोक्ता तथा एजेन्ट के बीच किसी भी समय या किसी भी स्थिति में ठहराव करके एजेन्सी समाप्त की जा सकती है। चाहे एजेन्सी निश्चित समय के लिए हो अथवा किसी निश्चित कार्य के लिए स्थापित हुई हो।

(2) **एजेन्सी का कार्य पूर्ण होने पर (By Completion of agency work)**—यदि एजेन्सी की स्थापना किसी विशेष कार्य को करने के लिये हुई है तो उस कार्य के पूर्ण होने पर एजेन्सी समाप्त हो जाती है। जैसे— 'अ' ने अपना मकान बेचने के लिये 'ब' को एजेन्ट नियुक्त किया। जैसे ही मकान बिक जायेगा तभी एजेन्सी समाप्त हो जायेगी।

(3) **एजेन्सी का समय समाप्त हो जाने पर (By laps of agency terms)**—जब नियोक्ता द्वारा एजेन्ट की नियुक्ति एक निश्चित अवधि के लिये की गई हो तो निश्चित अवधि समाप्त हो जाने पर एजेन्सी समाप्त हो जायेगी।

(4) **नियोक्ता या एजेन्ट की मृत्यु हो जाने पर (By death of principal or agent)**— नियोक्ता या एजेन्ट की मृत्यु हो जाने पर एजेन्सी समाप्त हो जाती है।

(5) **नियोक्ता या एजेन्ट के पागल हो जाने पर (By insanity of principal a or agent)**— नियोक्ता या एजेन्ट के पागल हो जाने पर भी एजेन्सी अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

(6) **विषय वस्तु के नष्ट हो जाने पर (By distruction of subject matter)**— जब एजेन्ट की नियुक्ति किसी विशिष्ट वस्तु के लिये की गयी हो और वह वस्तु ही नष्ट हो जाये तो एजेन्सी भी समाप्त हो जाती है। जैसे— 'अ' ने अपना घोड़ा बेचने के लिये 'ब' को एजेन्ट नियुक्त किया। यदि घोड़ा बेचने से पहले मर जाता है तो एजेन्सी समाप्त हो जायेगी।

(7) **यदि एजेन्ट कार्य छोड़ दे (If agent left the agency work)**—जब एजेन्ट अपनी इच्छा से एजेन्सी का कार्य छोड़ देता है तो एजेन्सी समाप्त हो जाती है परन्तु इस प्रकार एजेन्सी छोड़ने पर नियोक्ता को हानि हो तो एजेन्ट हानिपूर्ति के लिये उत्तरदायी होगा।

(8) **नियोक्ता के दिवालिया होने पर (By insolvency of the principal)**—यदि नियोक्ता दिवालिया घोषित हो जाता है तो एजेन्सी समाप्त हो जाती है।

10.14 अखण्डनीय एजेन्सी (Irrevocable Agency)

जब नियोक्ता द्वारा एजेन्ट के अधिकारों को समाप्त नहीं किया जा सकता हो तब ऐसी एजेन्सी को 'अखण्डनीय एजेन्सी' कहते हैं। निम्न दशाओं में एजेन्सी अखण्डनीय होती है :–

(1) **जब एजेन्ट का एजेन्सी में हित हो (When agency is coupled with intrest)**– जब एजेन्सी की विषय वस्तु में स्वयं एजेन्ट का भी हित विद्यमान होता है तो ऐसी एजेन्सी को 'हित सहित एजेन्सी' कहते हैं। ऐसी एजेन्सी को नियोक्ता समाप्त नहीं कर सकता है। ऐसी एजेन्सी नियोक्ता की मृत्यु ,पागलपन या दिवालियापन से भी समाप्त नहीं होती हैं।

उदाहरण– 'अ' ने 'ब' को 10,000 रू0 दिये। 'अ' अपना मकान बेचने के लिये 'ब' को नियुक्त करता है और उससे कहता है कि वह बिक्री की राशि में से अपने 10 हजार रू0 भी काट ले। यहाँ पर 'अ' तथा 'ब' के बीच की एजेन्सी 'हित सहित एजेन्सी' कहलायेगी क्योंकि एजेन्सी की बिक्री में से एजेन्ट ने अपने ऋण के पैसे लेने हैं अर्थात एजेन्सी में उसका हित है।

(2) **जब एजेन्ट ने व्यक्तिगत दायित्व स्वीकार किया हो (When agent accepted personal liability)**–जब एजेन्सी के कार्य में एजेन्ट ने अपने ऊपर कोई व्यक्तिगत दायित्व स्वीकार कर लिया हो तो एजेन्सी को समाप्त नहीं किया जा सकता है।

उदाहरण –'अ' 'ब' को गेहूँ खरीदने के लिये एजेन्ट नियुक्त करता है। 'ब' अपनी जिम्मेंदारी पर गेहूँ खरीदता है अर्थात भुगतान के लिये व्यक्तिगत दायित्व लेता है। गेहूँ के भुगतान के लिये 'अ' एजेन्सी समाप्त नहीं कर सकता है।

(3) **जब एजेन्ट ने अपने अधिकार का प्रयोग आंशिक रूप से कर लिया हो (When agent has Partly exercised his authority)**–यदि एजेन्ट ने एजेन्सी अनुबन्ध के अर्न्तगत कुछ कार्य कर लिया है तो ऐसे कार्यो के द्वारा उत्पन्न दायित्वों के सम्बन्ध में एजेन्सी अखण्डनीय बन जाती है अर्थात समाप्त नहीं की जा सकती है।

उदाहरण– 'अ' अपने एजेन्ट 'ब' को माल क्रय करने हेतु नियुक्त करता है। 'ब' ने 'स' तथा 'द' से माल क्रय कर 'अ' के पास भेज दिया यहाँ पर 'ब' द्वारा 'स' तथा 'द' के साथ किये गये कार्यो के लिये एजेन्सी समाप्त नहीं की जा सकती है। अर्थात 'अ' को 'स' तथा 'द' को मूल्य भुगतान करना पड़ेगा तथा एजेन्ट भी इस कार्य का पारिश्रमिक पाने का अधिकारी हो जायेगा।

10.15 सारांश

एक व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति की ओर से कार्य करने के लिये रखा गया है 'एजेन्ट' कहलाता है और वह व्यक्ति जो उसको रखता है उसे 'नियोक्ता' कहते है। एजेन्ट एवं नियोक्ता के बीच में जो अनुबन्ध होता है उसे 'एजेन्सी' कहते है।

कोई भी व्यक्ति जो अधिनियम के अनुसार वयस्क है और स्वस्थ मस्तिष्क का है वह एजेन्ट नियुक्त कर सकता है परन्तु एजेन्ट कोई भी व्यक्ति बन सकता है। अर्थात अवयस्क अथवा अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति भी एजेन्ट बन सकते है। एजेन्सी अनुबन्ध के लिए एजेन्ट को पारिश्रमिक मिलना आवश्यक नहीं है।

एजेन्सी की स्थापना निम्न प्रकार हो सकती है – 1. स्पष्ट ठहराव द्वारा, 2. गर्भित ठहराव द्वारा, 3. आवश्यकतानुसार, 4. गत्यावरोध द्वारा, 5. पुष्टिकरण द्वारा, 6. अधिनियम के प्रवर्तन द्वारा। व्यापारिक एजेन्ट के अतिरिक्त गैर–व्यापारिक एजेन्ट भी होते है जैसे वकील, बैंकर और बीमा के लिए बीमा एजेन्ट आदि। जब एजेन्सी में एजेन्ट का हित हो या एजेन्ट ने एजेन्सी के कार्य के लिए व्यक्तिगत दायित्व लिया हो या जब एजेन्ट ने अपने अधिकार का आंशिक प्रयोग कर लिय हो तो ऐसे में एजेन्सी अखण्डनीय बन जाती है अर्थात एजेन्सी समाप्त नहीं की जा सकती है।

10.16 शब्दावली

नियोक्ताः वह व्यक्ति जिसकी ओर से ऐसा कार्य किया जाता है अथवा जिसकी ओर से इस प्रकार का प्रतिनिधित्व किया जाता है नियोक्ता अथवा प्रधान कहलाता है।

एजेन्सीः एक नियोक्ता और एजेन्ट के बीच जो अनुबन्ध होता है उसे एजेन्सी कहते हैं।

अप्रकट नियोक्ताः जब एजेन्ट नियोक्ता से अधिकार प्राप्त कर किसी तृतीय ऐसे पक्ष से अनुबन्ध करता है जो कि यह नही समझता कि वह एजेन्ट है और न ऐसा समझने के लिये कोई उचित आधार रखता है तो ऐसे एजेन्ट का नियोक्ता 'अप्रकट नियोक्ता ' कहलाता हैं।

स्थानापन्न एजेन्टः जब कोई एजेन्ट नियोक्ता से प्राप्त स्पष्ट अथवा गर्भित अधिकार के आधार पर एजेन्सी के कारोबार में किसी अन्य व्यक्ति को नियोक्ता की ओर से कार्य करने के लिये नामांकित करता है तो ऐसा अन्य व्यक्ति 'स्थानापन्न एजेन्ट' कहलाता है"।

10.17 बोध प्रश्न

क – बताइयें निम्न कथन सत्य है अथवा असत्य –

1. एक एजेन्ट में अनुबन्ध करने की क्षमता होना आवश्यक नहीं है।
2. एक एजेन्सी का अनुबन्ध प्रतिफल के बीना वैध नहीं होता है।
3. 'हित सहित एजेन्सी' को किसी भी समय नियोक्ता द्वारा समाप्त किया जा सकता है।
4. नियोक्ता द्वारा एजेन्ट की नियुक्ती लिखित होनी चाहिए।
5. एक व्यक्ति जिसे एजेन्सी के कार्य हेतु एजेन्ट द्वारा नियुक्त किया जाता है उसे भी एजेन्ट कहते है।
6. अप्रकट नियोक्ता की दशा में, तृतीय पक्षकार केवल एजेन्ट के विरूद्व वाद प्रस्तुत कर सकता है।
7. यदि एजेन्ट ऐसे नियोक्ता की ओर से कार्य करता है जो अनुबन्ध करने की क्षमता नही रखता है तो एजेन्ट स्वयं व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।
8. एक अवयस्क व्यक्ति को एजेन्ट के रूप में नियुक्त किया जा सकता है।
9. यदि नियोक्ता दिवालिया धोषित हो जाता है तो एजेन्सी समाप्त हो जाती है।
10. यदि एजेन्ट दिवालिया धोषित हो जाए तो एजेन्सी समाप्त हो जाती है।

ख – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. यदि हित सहित एजेन्सी हो तो उसे .... किया जा सकता है।
2. एजेन्ट को नियोक्ता के माल पर .... ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है।
3. मूल एजेन्ट द्वारा नियुक्त किया गया एजेन्ट .... कहलाता है।
4. जब एजेन्ट नियोक्ता के स्पष्ट अधिकार से किसी तीसरे व्यक्ति को नियोक्ता की ओर से एजेन्ट नियुक्त करता है तो ऐसे एजेन्ट को .... कहते है।
5. जब नियोक्ता विदेशी हो तो एजेन्सी के कार्यो के लिए .... व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।
6. एजेन्ट की मृत्यु हो जाने पर एजेन्सी .... हो जाती है।
7. जब नियोक्ता द्वारा एजेन्सी को समाप्त नहीं किया जा सकता है तो ऐसे एजेन्सी को .... कहते है।
8. एक अवयस्क वयक्ति एजेन्ट नियुक्त..................... सकता है।
9. एक वैध एजेन्सी अनुबन्ध के लिये प्रतिफल का होना .... है।
10. यदि एजेन्ट अधिकृत कार्य करते हुए तृतीय पक्ष के साथ कपट करता है तो इसके द्वारा किये गये कार्यो के लिए .... उत्तरदायी होगा।

10.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

क –

1. सत्य	2. असत्य	3. असत्य	4. असत्य	5. असत्य
6. असत्य	7. सत्य	8. सत्य	9. सत्य	10. असत्य

ख –

1. समाप्त नहीं, 2. विशिष्ट, 3. उपएजेन्ट, 4. स्थानापन्न एजेन्ट
5. एजेन्ट 6. समाप्त 7. अखण्डनीय एजेन्सी 8. नही कर
9. आवश्यक नहीं 10. नियोक्ता

10.19 स्वपरख प्रश्न

(1) एजेन्सी अनुबन्ध से आप क्या समझते है ? क्या अवयस्क व्यक्ति (**i**) एजेन्ट नियुक्त कर सकता है (**ii**) एजेन्ट के रूप में नियुक्त किया जा सकता है?

What is a contract of Agency? Can a minor **(i)** appoint an agent **(ii)** Be appointed as agent.

(2) एजेन्सी की परिभाषा दीजिये। यह किस प्रकार उत्पन्न होती है और किस प्रकार समाप्त होती है ?

Define an agency. How it is created and how it is terminated?

(3) एजेन्सी की परिभाषा दीजिये तथा एजेन्ट के अपने नियोत्का के प्रति अधिकार व कर्तव्य समझाइये ?

Define agency and explain the rights and duties of an agent towards the principal.

(4) एजेन्सी समाप्त करने की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये। एजेन्सी किन दशाओं में समाप्त नहीं की जा सकती है?

State the various methods of terminating an agency. When an agency irrevocable?

(5) किन दशाओं में एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है ?

In which circumstanceas agent personally lialibe?

(6) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिपण्णी लिखिये –Write short note on the following:

(i) उप–एजेन्ट Sub Agent

(ii) स्थानापन्न एजेन्ट Substituted agent

(iii) हित सहित एजेन्सी Agency coupled with interest

(iv) अखण्डनीय एजेन्सी Irrevocable Agency

(v) एजेन्सी के लिये प्रतिफल Consideration for Agency

(7) एजेन्सी अनुबन्ध क्या है? एजेन्ट कितने प्रकार के होते हैं?

What is a contract of agency? What are the different kinds of agents?

(8) पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी से आप क्या समझते है? वैध पुष्टिकरण के अनिवार्य तत्व क्या हैं?

What do you understand by agency for ratification? What are the essential factor of a valid ratification ?

(9) एजेन्ट के कार्यों के सम्बन्ध में नियोक्ता के अन्य पक्षकारों के प्रति उत्तरदायित्व की सीमा का सविस्तार वर्णन कीजिए?

Discuss fully the extent of principal's liabilities to third party for the act of the agent.

10.20 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 11 विक्रय अनुबंध का अर्थ तथा शर्त एवं आश्वासन

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 विक्रय अनुबंध का अर्थ
11.3 विक्रय अनुबंध के लक्षण
11.4 विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में अन्तर
11.5 विक्रय तथा निक्षेप में अन्तर
11.6 विक्रय तथा दान में अन्तर
11.7 विक्रय तथा वस्तु विनिमय में अन्तर
11.8 विक्रय तथा गिरवी में अन्तर
11.9 विक्रय तथा भाड़े पर खरीद के ठहराव में अन्तर
11.10 विक्रय अनुबंध की निर्माण विधि
11.11 विक्रय अनुबंध की विषय सामग्री
11.12 विषय वस्तु का नष्ट होना
11.13 मूल्य अथवा कीमत
11.14 मूल्य के भुगतान की रीति
11.15 शर्तें तथा आश्वासन
11.16 बन्धन का अर्थ
11.17 आश्वासन का अर्थ
11.18 शर्त तथा आश्वासन में अन्तर
11.19 गर्भित शर्त तथा आश्वासन
11.20 क्रेता सावधानी सिद्धान्त
11.21 सारांश
11.22 शब्दावली
11.23 बोध प्रश्न
11.24 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.25 स्वपरख प्रश्न
11.26 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वस्तु विक्रय अनुबंध के अर्थ को समझ सकें।
- वस्तु विक्रय अनुबंध के ऐतिहासिक पृष्टभूमि को जान सकें।
- विक्रय अनुबंध के आधारभूत शब्दों के अर्थ को समझ सकें।
- विक्रय तथा अन्य व्यवहारों में अन्तर जान सकें।
- वस्तु विक्रय अनुबंध के निर्माण विधि को जान सकें।
- वस्तु विक्रय, विषय–वस्तु के नष्ट होने तथा मूल्य को जान सकें।

11.1 प्रस्तावना

इकाई 10 में एजेन्सी अनुबंध तथा इसके पूर्व अनुबंध अधिनियम के बारे में आप पढ़ चुके है। प्रारंभ में वस्तु–विक्रय से सम्बन्धित नियम भारतीय अनुबन्ध अधिनियम

1872 का हिस्सा था। किन्तु वस्तु–विक्रय की मान्यताओं मे परिवर्तन के कारण अनुबंध अधिनियम 1872 की धारा 76 से 123 को हटा दिया गया तथा वस्तु विक्रय अनुबंध अधिनियम 1930 बना। इसी के संदर्भ मे वस्तु विक्रय का अर्थ, वस्तु विक्रय का अनुबंध एवं ठहराव तथा अन्य व्यवहारों के अन्तर को सम्मिलित किया गया है। इसके साथ ही विक्रय अनुबंध के निर्माण, विक्रय अनुबंध की विषय–सामग्री, माल की किस्म को बताया गया है। विषय–वस्तु के नष्ट होने का भी उल्लेख किया गया है। विक्रय अनुबंध में मूल्य महत्वपूर्ण है। अतः मूल्य तथा मूल्य के भुगतान को भी बताया गया है। विक्रय अनुबन्ध अधिनियम विधि या कानून है। अतः इसमें धाराओं तथा केस लॉ (वाद–विधि) का भी उल्लेख किया गया है।

वस्तु विक्रय के अनुबंध में शर्त तथा आश्वासन भी महत्वपूर्ण है। शर्त तथा आश्वासन का अर्थ आप समझ सकेंगे। शर्त तथा आश्वासन के अन्तर को भी समझ सकेंगे। उदाहरण के माध्यम से शर्त तथा आश्वासन के महत्व को भी आप समझ सकेंगे।

11.2 विक्रय–अनुबन्ध का अर्थ

वस्तु–विक्रय अधिनियम की धारा 4 (1) के अनुसार, वस्तु–विक्रय अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके द्वारा विक्रेता, क्रेता को एक निश्चित मूल्य के बदले में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण करता है अथवा हस्तान्तरण करने का ठहराव करता है। विक्रय–अनुबन्ध माल के एक सह–स्वामी तथा दूसरे सह–स्वामी के बीच हो सकता है। धारा 4 (2) के अनुसार विक्रय अनुबन्ध पूर्ण अर्थात् शर्त–रहित और शर्त–सहित दोनों प्रकारका हो सकता है। इसी प्रकार धारा 4 (3) में यह उल्लेख किया गया है कि यदि किसी विक्रय–अनुबन्ध के अन्तर्गत माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता को हो जाता है, तो उसे विक्रय कहा जाता है, लेकिन यदि माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण भविष्य में किसी शर्त के पूरा करने पर निर्भर रहता है, तो ऐसे अनुबन्ध को विक्रय के लिये ठहराव कहा जाता है और जब वह शर्त पूर्ण हो जाती है अथवा शर्त को पूरी करने की अवधि समाप्त हो जाती है, तो विक्रय का ठहराव, विक्रय में परिवर्तित हो जाता है।

11.3 विक्रय–अनुबन्ध के लक्षण

उपर्यक्त परिभाषा के आधार पर एक विक्रय–अनुबन्ध में निम्नलिखित लक्षण होने चाहिएः

(1) क्रेता तथा विक्रेता

अन्य अनुबन्धों की ही तरह विक्रय–अनुबन्ध में भी कम से कम दो पक्षकार होने चाहिए, यह एक क्रेता और दूसरा विक्रेता। 'क्रेता' उसे कहते है जो माल का क्रय करता है अथवा क्रय करने के लिए सहमत हो जाता है। इसी प्रकार विक्रेता उसे कहते है जो माल का विक्रय करता है अथवा विक्रय करने के लिये सहमत हो जाता है। विक्रय करने का तात्पर्य यह है कि विक्रय–अनुबन्ध के लिए दो अलग–अलग पक्षकार होने चाहिए। एक व्यक्ति जो माल को बेचता हो वह स्वयं माल का क्रेता नही हो सकता। (Bell vs. Liver Bros. Ltd. [(1932) A. C. 161] के मुकदमे में यह निर्णय दिया जा चुका है कि एक व्यक्ति स्वयं अपनी वस्तु का क्रय नहीं कर सकता। लेकिन इस नियम का एक अपवाद है। जब कोई वस्तु

कुर्की द्वारा बेची जा रही हो, तो उस वस्तु का स्वामी बोली लगाकर स्वयं वस्तु को क्रय कर सकता है।

(2) माल

विक्रय–अनुबन्ध के लिये माल का होना आवश्यक है। वास्तव में माल ही विक्रय–अनुबन्ध की विषय–वस्तु है, जिसके अभाव में विक्रय–अनुबन्ध नहीं हो सकता। माल से आशय (अभियोग–योग्य दावे और मुद्रा के अतिरिक्त) सभी प्रकार की चल सम्पत्तियों से होता है। माल की परिभाषा के अन्तर्गत स्कन्ध एवं अंश, खड़ी फसलें, घास तथा वे वस्तुएँ जो भूमि से जुड़ी हुईं हों अथवा भूमि का ही एक भाग हों और जिन्हें विक्रय से पूर्व या विक्रय–अनुबन्ध के आधीन अलग करने का ठहराव कर लिया गया हो, वे वस्तुएँ भी माल में ही सम्मिलित की जाती है। लेकिन अभियोग–योग्य दावे अर्थात् ऋण को माल में सम्मिलित नहीं किया जाता, क्योंकि ऋण का विकय नहीं किया जा सकता बल्कि इसे तो अभियोग चलाकर ही प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार मुद्रा को भी माल में सम्मिलित नहीं किया जाता है। लेकिन Compress Vs. Juggessur [(1878)3,Cal 379] के विवाद में यह निर्णय दिया जा चुका है कि पुराने तथा दुर्लभ सिक्के, जो कानूनी मुद्रा नहीं है, को माल ही समझना चाहिए। इसी तरह डिक्री, ख्याति, ट्रेडमार्क, पेटेण्ट–राइट, पानी,बिजली, गैस आदि को माल कहा जा सकता है, क्योंकि इनका क्रय–विक्रय किया जाता है।

(3) मूल्य अथवा कीमत

अन्य अनुबन्धो की भॉति विक्रय अनुबन्ध के लिए भी प्रतिफल का होना आवश्यक है। विक्रय–अनुबन्ध का प्रतिफल 'मूल्य' कहलाता है और यह प्रतिफल मुद्रा के रूप में ही होना चहिए। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, मूल्य का तात्पर्य मुद्रा प्रतिफल से होता है। विक्रय–अनुबन्ध में विक्रेता माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण मूल्य के बदले में ही करता है क्योंकि बिना मूल्य के माल का हस्तान्तरण वैध नहीं होता। इसी लक्षण के आधार पर पर विक्रय को दान तथा वस्तु–विनिमय से भिन्न माना जाता है। लेकिन Aldrige Vs. Johnson (1857) के विवाद में यह निर्णय दिया जा चुका है कि अंशतः मुद्रा तथा अंशतः वस्तु से वस्तु का हस्तान्तरण, विक्रय माना जा सकता है।

(4) माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण

विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता को होना आवश्यक है, या भविष्य में किसी शर्त के पूरा होने पर निर्भर कर सकता है। जब माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता को अनुबन्ध के समय ही हो जाता है, तो इसे 'विक्रय' कहा जाता है, और जब माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण भविष्य में किसी शर्त के पूरा होने पर आधारित होता है तो उसे 'विक्रय' के लिये ठहराव' कहा जाता है। इस प्रकार 'विक्रय का ठहराव' भी सम्मिलित होता है। लेकिन जब शर्त पूरी हो जाती है, तो 'विक्रय का ठहराव' 'विक्रय' बन जाता है।

(5) पूर्ण एवं शर्तयुक्त अनुबन्ध

वस्तु–विक्रय अधिनियम की धारा 4 (2) के अनुसार विक्रय–अनुबन्ध पूर्ण अर्थात् शर्त–रहित एवं शर्तयुक्त दानों हो सकता है। जब विक्रय–अनुबन्ध होते समय ही वस्तु का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता को कर दिया जाता है, तो इसे पूर्ण

विक्रय– अनुबन्ध कहा जाता है, लेकिन जब किसी शर्त के साथ विक्रय–अनुबन्ध किया जाता है, अर्थात् वस्तु की सुपुर्दगी की शर्त पर जब विक्रय–अनुबन्ध होता है अथवा वस्तु के हस्तान्तरण के पूर्व वस्तु को तौलना, नापना, या अन्य कुछ कार्य करना शेष रहता है, तो ऐसे विक्रय–अनुबन्ध को शर्तयुक्त विक्रय–अनुबन्ध कहाँ जाता है।

(6) लिखित अथवा मौखिक

विक्रय–अनुबन्ध लिखित अथवा मौखिक दोनों हो सकता है या अंशतः लिखित तथा अंशतः मौखिक हो सकता है। लिखित या मौखिक अनुबन्ध को स्पष्ट विक्रय–अनुबन्ध कहते हैं। विक्रय–अनुबन्ध गर्भित भी हो सकता है, अर्थात् पक्षकारों के आचरण के आधार पर भी विक्रय–अनुबन्ध किया जा सकता है।

(7) चल सम्पत्ति का ही विक्रय

विक्रय–अनुबन्ध केवल चल सम्पत्तियों के सम्बन्ध में ही किया जा सकता है। अचल सम्पत्तियों का विक्रय इस अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आता। अचल सम्पत्तियों के विक्रय के सम्बन्ध में एक अलग अधिनियम बनाया गया है जिसे 'सम्पत्ति हस्तान्तरण अधिनियम' कहते है।

(8) वैध अनुबन्ध के अन्य सभी लक्षण

विक्रय अनुबन्ध में अन्य वे सभी आवश्यक लक्षण होने चाहिए जो एक वैध अनुबन्ध के लिए आवश्यक होते है, जैसे– पक्षकारों का अनुबन्ध करने के योग्य होना, पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति का होना, न्यायोचित प्रतिफल अनुबन्ध का व्यर्थ न होना, आदि।

एक विक्रय–अनुबन्ध में उपर्युक्त सभी लक्षणों का होना आवश्यक है। यदि इनमें से किसी भी लक्षण का अभाव रहेगा तो वह विक्रय–अनुबन्ध नहीं कहलायेगा। इसीलिए विक्रय–अनुबन्ध, गिरवीं, निक्षेप, वस्तु–विक्रय, दान तथा किराया–क्रय पद्धति, आदि से भिन्न होता है।

11.4 विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में अन्तर

विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में में निम्नलिखित अन्तर हैं:

विक्रय	विक्रय का ठहराव
(1) विक्रय में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण अनुबन्ध के समय ही विक्रेता से क्रेता को कर दिया जाता है।	(1) विक्रय के ठहराव में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण एक निश्चित अवधि के बाद या शर्त के पूरा होने पर विक्रेता से क्रेता को किया जाता है।
(2) यह एक निष्पादित अनुबन्ध है, अर्थात् इसमें अनुबन्ध का निष्पादन अनुबन्ध के समय ही कर दिया जाता है।	(2) यह एक निष्पादनीय अनुबन्ध है, अर्थात इसमें अनुबन्ध का निष्पादन भविष्य में किसी तिथि को दिया जाता है।
(3) विक्रय समाप्त होने पर माल की क्षति की जिम्मेदारी (जोखिम) क्रेता की होती है, भले ही माल विक्रेता के पास हो।	(3) इसमें माल में यदि कोई क्षति पहुॅचती है, तो उसकी जिम्मेदारी (जोखिम) विक्रेता की होती है, भले ही माल क्रेता के पास हो।
(4) क्रेता द्वारा मूल्य न चुकाये जाने पर	(4) इसमें क्रेता द्वारा मूल्य का भुगतान

विक्रेता मूल्य के लिए उस पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।	न किये जाने पर विक्रेता केवल हर्जाने के लिए क्रेता के ऊपर वाद प्रस्तुत कर सकता है।
(5) यदि विक्रेता द्वारा माल की सुपुर्दगी करने में त्रुटि की जाती है, तो क्रेता को विक्रेता के विरूद्ध केवल वैयक्तिक उपचार ही प्राप्त ही प्राप्त नही होता, बल्कि माल के सम्बन्ध में उसे अन्य उपचार भी प्राप्त होते हैं जैसे यदि माल किसी तीसरे व्यक्ति के अधिकार में है तो क्रेता माल के स्वामी की हैसियत से तीसरे व्यक्ति के विरूद्ध भी वाद प्रस्तुत कर सकता है।	(5) इसमें विक्रेता द्वारा त्रुटि करने पर क्रेता को केवल वैयक्तिक, उपचार ही प्राप्त होता है, अर्थात् क्रेता क्षति के लिये विक्रेता के ऊपर वाद प्रस्तुत कर सकता है, अन्य तीसरे व्यक्ति के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकता, क्योंकि माल पर क्रेता का स्वामित्व नहीं होता।
(6) इसमें विश्वव्यापी अधिकारों का सृजन होता है, अर्थात् क्रेता को सम्पूर्ण संसार के विरूद्ध अपने ढंग से वस्तु के प्रयोग करने का अधिकार होता है।	(6) इसमें केवल व्यक्तिगत अधिकार का ही सृजन होता है, अर्थात केवल क्रेता और विक्रेता को ही परस्पर वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होता है।
(7) इसमें यदि माल की सुपुर्दगी देने के पूर्व ही विक्रेता दिवालिया होता जाता है, तो क्रेता को विक्रेता के सरकारी प्रापक से माल की सुपुर्दगी प्राप्त करने का अधिकार होता है, क्योंकि माल पर स्वामित्व क्रेता का होता है।	(7) इसमें यदि विक्रेता दिवालिया हो जाता है तो क्रेता को केवल क्षतिपूर्ति का ही अधिकार प्राप्त होता है। माल की सुपुर्दगी प्राप्त करने का अधिकार नहीं होता, क्योंकि माल पर उसका स्वामित्व नहीं रहता।
(8) यदि क्रेता दिवालिया हो जाता है, तो उसके द्वारा क्रय किया गया माल उसके सरकारी प्रापक को सुपुर्द करना पड़ता है।	(8) इसमें यदि क्रेता मूल्य का भुगतान करने के पूर्व दिवालिया हो जाता है तो विक्रेता उसे माल की सुपुर्दगी देने से इन्कार कर सकता है।
(9) इसमें विक्रेता माल की पुनः बिक्री नहीं कर सकता, क्योंकि माल का स्वामित्व क्रेता के पास चला जाता है।	(9) इसमें विक्रेता माल की पुनः बिक्री कर सकता है, लेकिन उसके पूर्व क्रेता को क्षति का भुगतान करना पड़ेगा।

11.5 विक्रय तथा निक्षेप मे अन्तर

विक्रय तथा निक्षेप में अन्तर समझने के पूर्व हमें निक्षेप का अर्थ जान लेना आवश्यक हो जाता है। अनुबन्ध अधिनियम की धारा 148 के अनुसार, "जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को किसी विशेष उद्देश्य से इस शर्त पर माल का हस्तान्तरण करता है कि उस उद्देश्य के पूरा हो जाने पर माल का हस्तान्तरण करने वाले को लौटा दिया जायेगा अथवा उसके आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर दी जायेगी, तो माल के ऐसे हस्तान्तरण को '**निपेक्ष**' कहेंगे।" विक्रय और निपेक्ष का अन्तर निम्नलिखित तालिका की सहायता से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

आधार का अन्तर	विक्रय	निपेक्ष
1. स्वामित्व का हस्तान्तरण	विक्रय द्वारा किसी वस्तु के स्वामित्व का हस्तान्तरण सदैव के लिए हो सकता है।	इसमें केवल कुछ समय के लिए वस्तु के अधिकार (Possession) मात्र का ही हस्तान्तरण होता है, स्वामित्व का नहीं।
2. प्रतिफल	विक्रय में माल का हस्तान्तरण करने वाला उसके बदले में प्रतिफल पाता है।	निपेक्ष में माल का हस्तान्तरण करने वाला स्वयं उसको मूल रूप से वापस पाने का अधिकारी होता है अतएव इसमें प्रतिफल नहीं मिलता।
3. उपयोग का क्षेत्र	विक्रय में क्रेता को माल से सम्बन्धित सभी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, अतएव वह अपनी इच्छानुसार उसका उपयोग करने में पूर्ण स्वतन्त्र है।	इसमें निक्षेपगृहीता को यह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती, वह केवल निर्दिष्ट रीति के अनुसार ही माल का उपयोग कर सकता है।
4. वस्तु का लौटाना	विक्रय की दशा में विक्रय की गई वस्तु विक्रेता को लौटाई नहीं जाती है।	निपेक्ष की दशा में वस्तु को निश्चित समय की समाप्ति पर अथवा उद्देश्य पूरा हो जाने पर वस्तु को लौटाना पड़ता है।
5. उद्देश्य	विक्रय का उद्देश्य केवल लाभ कमाना होता है।	निक्षेप को उद्देश्य केवल लाभ कमाना न होकर इसके विभिन्न उद्देश्य होते है; जैसे सुरक्षा, दूसरे व्यक्ति को लाभ पहुँचाना, गिरवी रखना, वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना आदि।
6. वस्तु के विक्रय का अधिकार	विक्रय मे क्रेता को वस्तु के विक्रय का अधिकार होता है।	निक्षेप में निक्षेपगृहीता का वस्तु के विक्रय का अधिकार नहीं होता है।
7. स्थायी अथवा अस्थायी	विक्रय सदैव स्थायी रूप से होता है।	निक्षेप सदैव अस्थायी रूप से होता है।
8. अधिनियम का लागू होना	विक्रय पर वस्तु विक्रय अधिनियम लागू होता है।	निक्षेप पर भारतीय अनुबन्ध अधिनियम लागू होता है।

11.6 विक्रय तथा दान में अन्तर

विक्रय मे मूल्य प्रतिफल के रूप में होना अनिवार्य है। यह प्रतिफल आवश्यक रूप से मुद्रा में ही होना चाहिए। इसके विपरीत दान निःशुल्क होता है अर्थात् इसमें प्रतिफल नही होता। संक्षेप में, विक्रय में माल का हस्तान्तरण प्रतिफल के बदले में होता है जबकि दान में यह निःशुल्क होता है।

11.7 विक्रय तथा वस्तु विनिमय में अन्तर

विक्रय अनुबन्ध में प्रतिफल सदैव मुद्रा में ही होना आवश्यक होता है। इसके विपरीत, वस्तु–विनिमय में प्रतिफल मुद्रा में न होकर किसी अन्य वस्तु के रूप में होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, 'अ' अपनी कमीज का विनिमय 'ब' की पतलून से करता है, तो यह **'विक्रय'** न होकर **'वस्तु–विनिमय'** होगा। किन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य बात है कि यदि अनुबन्ध के अन्तर्गत माल के बदले से दूसरा माल तथा मुद्रा मिलती हो तो ऐसे अनुबन्ध को **'विक्रय'** कहा जायेगा न कि **'वस्तु–विनिमय'**।

11.8 विक्रय तथा गिरवी में अन्तर

रहन अथवा गिरवी की दशा में ऋण प्राप्त करने हेतु कुछ समय के लिए वस्तु में समस्त हित का हस्तान्तरण कर दिया जाता है। जब गिरवी रखने वाला ऋण अदा कर देता है, तो ऋणदाता गिरवी रखी हुई वस्तु को वापस कर देता है। इस प्रकार रहन अथवा गिरवी रखना विक्रय से बिल्कुल भिन्न है क्योकि रहन अथवा गिरवी में स्वामित्व का हस्तान्नरण नहीं होता, केवल कुछ समय के लिए समस्त हितों का हस्तान्तरण हो जाता है। इसके विपरीत, विक्रय में वस्तु का सदैव के लिए हस्तान्तरण हो जाता है तथा बाद में उसको लेने अथवा देने का प्रश्न ही नहीं उठता।

11.9 विक्रय तथा भाड़े पर खरीद के ठहराव में अन्तर

भाड़े पर खरीद के ठहराव के अन्तर्गत माल का स्वामी उसे (माल को) भाड़े पर देता है और भाड़े पर लेने वाले के द्वारा नियम भुगतानों के किये जाने पर उसको (माल को) बेचने का दायित्व लेता है। इस प्रकार विक्रय तथा भाड़े पर खरीद के ठहराव में पर्याप्त अन्तर विद्यमान है। यह अन्तर निम्न तालिका की सहायता से और अधिक स्पष्ट हो जायेगा :

अन्तर का आधार	विक्रय	भाड़े का खरीद का ठहराव
1. स्वामित्व का हस्तान्तरण	विक्रय में माल का स्वामित्व तुरन्त क्रेता के पास हस्तान्तरित हो जाता है।	इसमें स्वामित्व का हस्तान्तरण उस समय तक नहीं होता जब तक कि भाड़े की सभी किस्तों का भुगतान न कर दिया जाय।
2. क्रेता का होता	विक्रय में क्रेता का होना आवश्यक है।	इसमें माल को भाड़े पर लेने वाले उसे क्रय करने का अधिकार मात्र होता

		है, जिसका चाहे वह उपयोग करे अथवा नहीं।
3. लौटाने का अधिकार	विक्रय अनुबन्ध के पूरा हो जाने पर क्रेता उसे लौटा नहीं सकता।	इसमें भाड़े पर लेने वाला माल को किसी भी समय लौटा सकता है और भाड़ा देना बन्द कर सकता है।
4. अनुबन्ध की शुद्धता	यह प्रारम्भ से अन्त तक अर्थात् पूर्ण रूप से विक्रय अनुबन्ध रहता है।	इसमें विक्रय और भाड़ा अनुबन्ध दोनों का मिश्रण रहता है।

11.10 विक्रय अनुबन्ध की निर्माण विधि

विक्रय–अनुबन्ध भी सामान्य अनुबन्धों की भाँति होता है। अतः जिस प्रकार साधारण अनुबन्ध का वैध रूप से निर्माण किया जाता है, ठीक उसी प्रकार से विक्रय अनुबन्ध का भी निमार्ण होता है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते है कि एक साधारण अनुबन्ध के निर्माण के लिए जिन तत्वों की आवश्यता होती है, उन्हीं तत्वों की आवश्यकता विक्रय–अनुबन्ध में भी होती है। वस्तु विक्रय–अनुबन्ध की धारा 4 तथा 5 के अनुसार, एक वैध विक्रय–अनुबन्ध का निर्माण करने के लिए निम्नलिखित तत्व विद्यमान रहने चाहिए :

(1) दो पक्षकार होने चाहिए, एक विक्रेता तथा दूसरे क्रेता।

(2) दोनों पक्षकारों में प्रस्ताव एवं स्वीकृति होनी चाहिए। विक्रेता द्वारा माल को बेचने का प्रस्ताव एवं स्वतीकृति होनी चाहिए तथा क्रेता द्वारा उस प्रस्ताव पर अपनी सहमति प्रदान की जानी चाहिए।

(3) क्रेता और विक्रेता में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चहिए।

(4) क्रेता और विक्रेता की स्वतन्त्र सहमति होनी चाहिए।

(5) माल होना चाहिए, जिसके स्वामित्व का हस्तान्तरण मूल्य (मुद्रा में प्रतिफल) के बदले होना चाहिए।

(6) विक्रय–अनुबन्ध स्पष्ट एवं गर्भित दोनों हो सकता है। स्पष्ट विक्रय–अनुबन्ध लिखित अथवा मौखिक या अंशतः लिखित और अंशतः मौखिक हो सकता है। इसके अतिरिक्त विक्रय–अनुबन्ध पक्षकारों के आचरण द्वारा गर्भित भी हो सकता है।

(7) विक्रय–अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार माल की तत्काल सुपुर्दगी की जा सकती है अथवा मूल्य का तत्काल चुकाया जा सकता है अथवा दोनों ही तत्काल किये जा सकते हैं, अथवा सुपुर्दगी अथवा दोनों भविष्य में किये जा सकते हैं।

11.11 विक्रय अनुबन्ध की विषय–सामग्री

विक्रय अनुबन्ध की विषय–वस्तु साधारणतः माल ही होता है। माल से आशय अभियोग के योग्य दावे और मुद्रा को छोड़कर प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति से है और इसमें स्टॉक, अंश, खड़ी फसलें, घास तथा अन्य वस्तुएँ जो भूमि में लगी हों अथवा भूमि से पृथक् करने का ठहराव कर लिया गया हो, सम्मिलित है।'' {धारा 2(7)} माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता के पास पहुँचता

है। माल जिसके विषय में विक्रय का अनुबन्ध किया गया है, या तो अनुबन्ध के साथ विक्रेता के स्वामित्व अथवा अधिकार में विद्यमान माल हो सकता है, अथवा विक्रय अनुबन्ध ऐसे माल के सम्बन्ध में भी किया जा सकता है जो कि अनुबन्ध के समय विद्यमान न हो अर्थात् भावी माल हो।

माल का वर्गीकरण

विक्रय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 6 के अनुसार माल निम्न प्रकार का होता है :

माल

(1) विद्यमान माल (2) भावी माल (3) संयोगिक माल

(1) विद्यमान माल → निश्चित अथवा विशिष्ट माल, अनिश्चित माल

1. **विद्यमान माल**

विद्यमान माल से तात्पर्य ऐसे माल से है जो विक्रय अनुबन्ध करते समय विक्रेता के स्वामित्व अथवा अधिकार में हो, अर्थात् माल वास्तव में विद्यमान हो {धारा 1(1)} अन्यथा अनुबन्ध व्यर्थ होगा। उदाहरण के लिए, यदि 'अ'—अपना कुत्ता, जहाज या पुस्तक, यह विश्वास करते हुए कि वे विद्यमान है, जबकि वास्तविकता यह है कि कुत्ता मर चुका है, जहाज समुद्र में डूब चुका है और पुस्तक खो चुकी है, 'ख' को बेचता है, तो वह अनुबन्ध व्यर्थ होगा। किन्तु यदि विक्रय योग्य माल विक्रय के समय अंशतः नष्ट हो चुका हो तो अनुबन्ध का त्याग कर सकता है, अथवा उसके मूल्य में आनुपातिक कमी करके उनका क्रय कर सकता है। विद्यमान माल विशिष्ट या निश्चित अथवा अनिश्चित हो सकता है।

निश्चित अथवा विशिष्ट

निश्चित माल से तात्पर्य ऐसे माल से है जिसे अनुबन्ध करते समय पहचाना और स्वीकृत कर लिया हो। उदाहरण के लिए, 'अ' 'ब' से कहता है कि मैं आपके द्वारा प्रकाशित 'व्यावसायिक संगठन' नामक पुस्तक जिसके लेखक बी0के0 गुप्ता है, खरीदूँगा तो यह निश्चित माल के विक्रय का अनुबन्ध माना जायेगा।

अनिश्चित माल

से तात्पर्य ऐसे माल से है जो कि विक्रय अनुबन्ध करते समय पहचाना न गया हो तथा जिसका विक्रय केवल वर्णन द्वारा किया गया हो। उदाहरण के लिए, 'अ' के पास औद्योगिक संगठन लेखक (बी0के0 गुप्ता) की 25 पुस्तकें है और उनमें से एक पुस्तक 'ख' को बेचने का वचन देता है, तो ऐसी दशा में अनुबन्ध अनिश्चित माल के लिए कहलायेगा। यदि विक्रय के समय वह 'ब' को पुस्तक दिखा देता है तथा उसे 'ब' के लिये अलग रख देता है, तो यह निश्चित माल के विक्रय का अनुबन्ध माना जायेगा।

2. **भावी माल**

विक्रय अनुबन्ध की धारा 6(1) के अनुसार भावी माल का भी विक्रय किया जा सकता है। 'भावी माल' से आशय ऐसे माल से है जिसे विक्रेता द्वारा विक्रय अनुबन्ध होने के पश्चात् निर्मित अथवा उत्पादित अथवा प्राप्त किया जाता हो।

उदाहरण के लिए अ, ब को पाँच महीने पश्चात् 50 साइकिल बेचने का अनुबन्ध करता है। यह अनुबन्ध भावी माल के विक्रय का माना जायेगा। भावी माल के लिए किया गया विक्रय अनुबन्ध, विक्रय न होकर 'विक्रय का ठहराव' होता है।

3. **संयोगिक माल**

विक्रय अनुबन्ध की धारा 6(2) के अनुसार संयोगिक माल का भी विक्रय किया जा सकता है। यंयोगिक माल से तात्पर्य ऐसे माल से है जिसे प्राप्त करना किसी घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' से कहता है कि यदि रंगून से जहाज कलकत्ता सुरक्षित आ गया तो वह 5 टन चावल बेच देगा। संयोगिक माल के विक्रय अनुबन्ध में किसी शर्त का विद्यमान होना आवश्यक है।

11.12 विषय वस्तु का नष्ट होना

विक्रय–अनुबन्ध की विषय–वस्तु अर्थात् माल यदि अनुबन्ध के निष्पादन के पूर्व ही नष्ट हो जाय, तो इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम लागू होते हैः

(1) **विक्रय–अनुबंध से पूर्व माल के नष्ट होने पर**

वस्तु–विक्रय अधिनियम की धारा 7 के अनुसार, "यदि विक्रय–अनुबंध किसी विशिष्ट माल के सम्बन्ध में किया गया है और वह माल विक्रेता की बिना जानकारी के अनुबंध के पूर्व ही नष्ट हो चुका है, अथवा माल इतना क्षतिग्रस्त हो चुका है कि अनुबंध में किये गये वर्णन से मेल नहीं खाता है, तो ऐसा अनुबंध व्यर्थ होगा।"

(2) **विक्रय ठहराव के बाद लेकिन विक्रय के पूर्व माल के नष्ट होने पर** वस्तु–विक्रय अधिनियम की धारा 8 के अनुसार, यदि किसी विशिष्ट माल के सम्बन्ध में विक्रय का ठहराव किया गया हो, लेकिन क्रेता को माल के स्वामित्त्व का हस्ताक्षर करने के पूर्व ही विक्रेता या क्रेता की बिना गलती के माल इस प्रकार नष्ट हो जाय कि वह ठहराव में किये गये वर्णन से मेल न खाये, तो ठहराव व्यर्थ माना जायेगा।

(3) क्रेता के पास माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण होने के पूर्व ही माल नष्ट होना चाहिए। यदि पक्षकारों की गलती के बिना माल नष्ट हो गया हो और माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण क्रेता को कर दिया गया हो तो क्षति क्रेता को सहन करनी पड़ेगी। यदि माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित न किया गया हो तो क्रेता अपनी इच्छानुसार विक्रय के ठहराव को व्यर्थ घोषित कर सकता है।

यह बात महत्वपूर्ण है कि धारा 7 तथा 8 में दिये गये नियम केवल निश्चित माल के सम्बन्ध में ही लागू होते है, अनिश्चित माल के विषय के सम्बन्ध में नहीं। दूसरी बात यह है कि धारा 7 उस समय लागू होती है जबकि माल अनुबन्ध के पूर्व ही नष्ट हो जाय। यदि माल अनुबन्ध के बाद नष्ट हो जाय तो उस समय धारा 8 लागू होती है। इसके अतिरिक्त धारा 7 के अन्तर्गत ठहराव

प्रारम्भ से ही व्यर्थ होता है, लेकिन धारा 8 के अन्तर्गत ठहराव उस अवस्था में व्यर्थ होता है, जबकि उसका निष्पादन असम्भव हो जाय।

11.13 मूल्य अथवा कीमत

मूल्य का आशय

मूल्य अथवा कीमत वस्तु–विक्रय–अनुबंध का एक आवश्यक लक्षण है। बिना मूल्य के किसी भी वस्तु का विक्रय नही किया जा सकता। **धारा 2(10)** के अनुसार 'मूल्य' से आशय वस्तु–विक्रय के लिये मुद्रा रूपी प्रतिफल से है। यदि वस्तुओं के स्वामित्व का हस्तान्तरण बिना प्रतिफल के किया जाता है, तो इसे 'दान' कहते है। यह प्रतिफल मुद्रा में ही होना चाहिए। यदि प्रतिफल मुद्रा में न होकर अन्य वस्तु में है, तो उसे 'वस्तु–विनिमय' कहा जायेगा। इस प्रकार 'मूल्य' के निम्न तीन लक्षण बताये जा सकते है : (i) मूल्य मुद्रा में ही होनी चाहिए। (ii) मूल्य निश्चित होना चाहिए। (iii) मूल्य वास्तविक होना चाहिए।

मूल्य निर्धारण करने की विधियाँ

विक्रय–अनुबन्ध में मूल्य के निर्धारण की निम्नलिखित पाँच विधियाँ है :

(1) **अनुबन्ध द्वारा मूल्य निर्धारण–**

विक्रय–अनुबन्ध करते समय पक्षकारों को यह स्वतंत्रता रहती है कि वे वस्तु का कुछ भी मूल्य निर्धारित कर लें।

(2) **अनुबन्ध द्वारा प्रस्तावित विधि से मूल्य निर्धारण**

विक्रय–अनुबन्ध करते समय क्रेता और विक्रेता वस्तु का मूल्य बाद में किसी विधि द्वारा तय करने के लिए छोड़ सकते है।

(3) **पक्षकारों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा मूल्य निर्धारण**

यदि विक्रय–अनुबन्ध में वस्तु का कोई स्पष्ट मूल्य न दिया गया हो और न ही अनुबन्ध में मूल्य के निर्धारण की कोई विधि ही दी गई हो, तो मूल्य का निर्धारण पक्षकारों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा किया जा सकता है।

(4) **उचित मूल्य का निर्धारण**

यदि उपर्यक्त विधियों द्वारा मूल्य का निर्धारण नहीं किया गया है, और विक्रेता ने क्रेता को माल बेच दिया है तथा क्रेता ने माल को स्वीकार कर लिया है, तो क्रेता, विक्रेता को माल का उचित मूल्य देने के लिए बाध्य होगा। उचित मूल्य क्या है ? यह मामले की विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करता है। अधिकतर बाजार–मूल्य को उचित मूल्य माना जाता है।

(5) **किसी तृतीय पक्षकार द्वारा मूल्य निर्धारण**

विक्रय के अनुबन्ध मे यह शर्त हो सकती है कि मूल्य का निर्धारण किसी तीसरे पक्षकार द्वारा होगा। ऐसी दशा मे क्रेता वह मूल्य देने के लिए बाध्य होता है जो कि एक तृतीय पक्षकार द्वारा निर्धारित किया गया हो। यदि अनुबन्ध के पक्षकारों की गलती से तृतीय पक्षकार मूल्य का निर्धारण नहीं कर पाता है, तो दोषी पक्षकार क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होता है और निर्दोष पक्षकार दोषी पक्षकार पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

11.14 मूल्य के भुगतान की रीति

क्रेता द्वारा मूल्य का भुगतान देश की प्रचलित मुद्रा में ही किया जाना चाहिए। विक्रेता देश में प्रचलित मुद्रा के अतिरिक्त अन्य किसी रूप में मूल्यों को

स्वीकार करने के लिए बाध्य नही किया जा सकता। लेकिन यदि विक्रेता अन्य किसी रीति से मूल्य को स्वीकार करने के लिए किसी स्पष्ट या गर्भित ठहराव के अन्तर्गत राजी हो जाता है, तो ऐसा सम्भव है। मूल्य का भुगतान विधिग्राह्य मुद्रा में ही किया जाना चाहिये। विक्रेता, चेक, बिल अथवा हुण्डी के मूल्य को स्वीकार करने के लिए बाध्य नही किया जा सकता।

विक्रेता को मूल्य में राजकीय कर में वृद्धि या कमी को जोड़ने या घटाने का अधिकार होता है। यदि मूल्य निश्चित करने के बाद राजकीय करों में वृद्धि हो जाती है, तो विक्रेता बढ़ें हुए कर की सीमा तक मूल्य को बढ़ा सकता है, और यदि करों मे कमी हो जाती है, तो वह मूल्य मे उतनी कमी भी कर सकता है।

यदि अनुबन्ध करते समय क्रेता द्वारा विक्रेता को कोई अग्रिम राशि दी गई हो, तो अनुबन्ध पूरा होने पर मूल्यों में अग्रिम राशि को विक्रेता द्वारा समायोजित किया जाना चाहिए। यदि क्रेता की गलती से अनुबन्ध पूरा नही होता, तो विक्रेता द्वारा यह अग्रिम राशि जब्त की जा सकती है।

11.15 शर्तें तथा आश्वासन

वस्तु–विक्रय अधिनियम 1930 की धारा 12(4) के अनुसार, "विक्रय–अनुबन्ध में कोई बन्धन शर्त है अथवा आश्वासन यह प्रत्येक अनुबंध की बनावट पर निर्भर करता है। कोई बन्धन शर्त भी हो सकता है यद्यपि अनुबंध में आश्वासन कहा गया है।"

11.16 बन्धन का अर्थ

विक्रय अनुबंध की धारा 12(1) के अनुसार, "किसी विक्रय अनुबंध के माल से सम्बन्धित बन्धन शर्त अथवा आश्वासन के रूप में हो सकता है।" इसका प्रदर्शन निम्नलिखित चार्ट से स्पष्ट है :

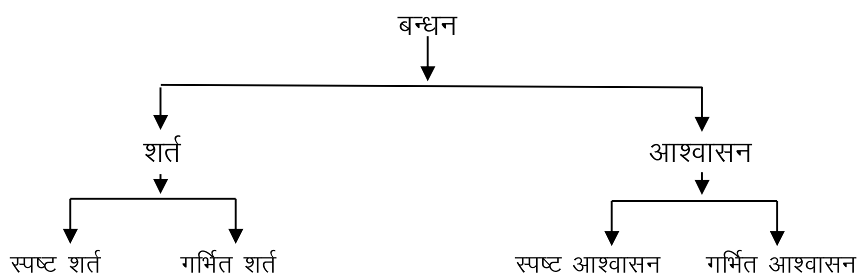

उपर्युक्त का स्पष्टीकरण निम्नलिखित रूप मे होगा।

शर्त का अर्थ– धारा 12(2) के अनुसार "शर्त एक ऐसा बन्धन है, जो अनुबंध के मुख्य आशय के लिए परम, आवश्यक है और जिसका खण्डन होने पर अनुबंध का परित्याग करने का अधिकार उत्पन्न हो जाता है।"

उपर्यक्त परिभाषा में तीन तथ्य स्पष्ट है :

(1) शर्त एक बंधन है।

(2) यह बंधन मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक है।

(3) बंधन के भंग होने पर अनुबंध भंग होगा।

उदाहरण

'अ' अपनी हीरो होन्डा स्प्लेन्डर प्लस मोटर साईकिल 'ब' को 25,000 रू0 मे बेचने का प्रस्ताव करता है। 'ब' कहता है कि यदि बाइक 2005 या उसके बाद की बनी

है तो मैं खरीद लूँगा। बाइक देखने पर पता चला कि यह 2002 की बनी थी यहाँ 'ब' बाइक खरीदने से इनकार कर सकता है।

11.17 आश्वासन का अर्थ

धारा 12(3) के अनुसार, "आश्वासन एक ऐसा बन्धन है जो अनुबन्ध के मुख्य आशय के लिए समपार्श्विक है ; जिसका खण्डन क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार तो उत्पन्न करता है, किन्तु माल को अस्वीकृत करने और अनुबन्ध का प्ररित्याग करने का अधिकार उत्पन्न नहीं करता।"

विवेचना– उपर्युक्त परिभाषा की विवेचना करने पर इसके निम्नलिखित चार तत्व होते है :

(1) आश्वासन एक बन्धन होता है।

(2) यह अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक नही है बल्कि समपार्श्विक है।

(3) आश्वासन का भंग होने की दशा में माल को अस्वीकार करने तथा अनुबन्ध को भंग करने का अधिकार नहीं है।

(4) आश्वासन के भंग होने की दशा में केवल क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत किया जा सकता है।

उदाहरण– 'अ' 'ब' से अनुबंध करता है कि यदि तुम्हारी हीरो होन्डा मोटर साइकिल अच्छी हालत मे है तो मै, उसे 30,000 रू0 में खरीद लूँगा। अनुबंध के निष्पादन के समय पाया गया कि बाइक चालू अवस्था मे थी किन्तु उसका रंग, खराब हो रहा था। यहाँ 'अ' अनुबंध को व्यर्थ घोषित नही कर सकता क्योकिं रंग का खराब होना आवश्यक शर्त नही थी। अ केवल क्षतिपूर्ति कर सकता है। यहाँ आश्वासन भंग हुआ है।

11.18 शर्त तथा आश्वासन में अन्तर

अन्तर निम्न तालिका से स्पष्ट है–

क्र0सं0	अन्तर का आधार	शर्त	आश्वासन
1.	**अनुबन्ध के मुख्य आशय की पूर्ति के लिए आवश्यकता**	शर्त अनुबन्ध के मुख्य आशय की पूर्ति के लिए परम आवश्यक है।	यह अनुबन्ध के मुख्य आशय की पूर्ति के लिए समपार्श्विक (अर्थात् सहायक) है।
2.	**भंग होने की दशा में**	शर्त भंग करने की दशा में पीड़ित पक्षकार को अनुबन्ध समाप्त करने का अधिकार होता है।	इसमें पीड़ित पक्षकार को केवल क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार होता है। वह अनुबन्ध को भंग नहीं कर सकता।
3.	**अनुबन्ध के निष्पादन से मुक्ति**	शर्त भंग होने की दशा में पीड़ित पक्षकार को अनुबन्ध के	आश्वासन भंग की दशा में पीड़ित पक्षकार को निष्पादन से मुक्ति नहीं मिल सकती है।

		निष्पादन से मुक्ति मिल सकती है।	
4.	स्वत्व का हस्तान्तरण	शर्त के पालन किये बिना स्वत्व का हस्तान्तरण नहीं हो सकता है।	आश्वासन के पालन के बिना ही स्वत्व का हस्तान्तरण हो सकता है।
5.	शर्त–भंग और आश्वासन	कुछ परिस्थितियों में शर्त–भंग को आश्वासन का भंग माना जा सकता है।	आश्वासन भंग को शर्त भंग नही माना जा सकता है।
6.	प्रतिफल पर प्रभाव	शर्त का सम्पूर्ण प्रतिफल पर प्रभाव पड़ता है।	आश्वासन का प्रतिफल के किसी एक–एक भाग पर ही प्रभाव पड़ता है।
7.	संख्या	गर्भित आश्वासनों की तुलना में गर्भित शर्तों की संख्या अधिक है।	गर्भित शर्तों की तुलना में गर्भित आश्वासनों की संख्या कम है।

11.19 गर्भित शर्त तथा आश्वासन

शर्तें तथा आश्वासन स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकते है। जब सम्बन्धित पक्षकार स्पष्ट रूप से उसका वर्णन करते हैं तो वे स्पष्ट शर्तें तथा स्पष्ट आश्वासन कहलाते है। स्पष्ट शर्तें तथा स्पष्ट आश्वासन लिखित या मौखिक रूप से वर्णित होते है। इसके विपरीत गर्भित शर्ते तथा गर्भित आश्वासन वे होते है जिनका लिखित या मौखिक रूप से वर्णन किया जाना अनिवार्य नहीं होता, क्योंकि वे स्वयं अनुबन्ध पर लागू होते हैं, अर्थात् राजनियम स्वयं उनका होना मान लेता है। इनका विस्तृत वर्णन नीचे किया गया है।

गर्भित शर्तें

माल के विक्रय के अनुबन्ध में निम्नलिखित गर्भित शर्तें होती है :

1. **माल के स्वत्व अथवा अधिकार सम्बन्धी शर्तें–** प्रत्येक विक्रय अनुबंध में, जब तक कि अनुबंध की परिस्थितियों से कोई विपरीत आशय प्रकट न होता हो, यह गर्भित शर्त रहती है कि विक्रेता को–(अ) 'विक्रय की दशा में' माल के बेचने का अधिकार प्राप्त है, तथा (ब) 'विक्रय के ठहराव की दशा में, स्वामित्व के हस्तान्तरण के समय माल के बेचने का अधिकार प्राप्त है।'

2. **वर्णन द्वारा विक्रय के सम्बन्ध में– जहाँ वर्णन द्वारा विक्रय अनुबन्ध हुआ हो, वहाँ पर यह गर्भित शर्त है कि (अ) माल वर्णन से मेल खायेगा, तथा (ब) यदि माल का विक्रय नमूने तथा वर्णन दोनों के द्वारा किया गया हो, तो केवल यह पर्याप्त नहीं है कि अधिकांश माल नमूने से मेल खाता है अर्थात माल का नमूने तथा वर्णन दोनों से मेल खाना परम आवश्यक है। लार्ड ब्लेकवर्न** के अनुसार, **"यदि आप मटर बेचने का अनुबन्ध करते है तो दूसरे पक्ष को सेम की फली**

खरीदने के लिए बाध्य नहीं कर सकते।" उदाहरण के लिए, 'अ' ने 'ब' को 20 किलो बीकानेरी भुजिया बेचने का अनुबन्ध किया तथा साथ में उसका नमूना भी दिखाया। 'अ', 'ब' को 20 किलो भुजिया बेचता है तो दिखाये गये नमूनों से तो मिलती–जुलती है, किन्तु बीकानेर की नहीं है। ऐसी दशा में 'ब' इसे शर्त–भंग मानकर अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है।

3. **माल की किस्म अथवा उपयुक्तता के सम्बन्ध में–** सामान्यतः किसी भी विक्रय अनुबन्ध में ऐसी कोई भी गर्भित शर्त अथवा आश्वासन नहीं रहता कि माल किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त होगा जिसके लिए कि वह खरीदा जा रहा है। इसमें **क्रेता की सावधानी का नियम'** लागू होता है। इस नियम का आशय यह है कि माल क्रय करते समय क्रेता को स्वयं यह देख लेना चाहिए कि वह उसके आशय अथवा उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता, तो विक्रेता उसे वापस लेने के लिए बाध्य नहीं है। परन्तु यदि क्रेता स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से विक्रेता को यह बता दे कि वह अमुक विशिष्ट आशय, उद्देश्य के लिए माल खरीद रहा है और वह यह प्रकट कर दे कि इसके लिए वह विक्रेता की दक्षता तथा कुशलता पर विश्वास करता है और यदि माल इस प्रकार का है जिसे विक्रेता अपने कारोबार के सामान्य क्रम में बेचता है (चाहे वह उसका उप्पादन या निर्माता हो अथवा नहीं), तो अनुबन्ध मे इसे गर्भित शर्त का होना माना जायेगा कि माल उस विशिष्ट आशय अथवा उद्देश्य के लिए उपयुक्त होगा। उदाहरण के लिए, 'अ' किसी दवा विक्रेता से जुकाम ठीक करने की दवा देने के लिए कहता है। यहाँ पर गर्भित शर्त है कि दवा जुकाम ठीक करने के लिए ही होगी।

अपवाद

उपर्युक्त कथन का यह अपवाद है कि यदि विशिष्ट माल का विक्रय किसी पेटेण्ट अथवा ट्रेडमार्क के अन्तर्गत हुआ हो, तो किसी विशिष्ट आशय अथवा उद्देश्य सम्बन्धी कोई भी गर्भित शर्त नहीं होगी। उदाहरण के लिए 'ब' से 'मालिका' सिलाई की मशीन माँगता है। 'ब' उसे उक्त मशीन दे देता है। यह मशीन उसके कपड़े सीने के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त है। ऐसी दशा में 'ब' किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि माल का विक्रय ट्रेड मार्क के अन्तर्गत हुआ है।

1. **माल की व्यापार योग्यता के सम्बन्ध में**

जहाँ माल वर्णन के आधार पर ऐसे विक्रेता से क्रय किया जाय जो उसी प्रकार के माल को बेचता है (चाहे वह उसका निर्माता अथवा उत्पादक है अथवा नही) तो ऐसी दशा में यह गर्भित शर्त है कि माल व्यापार योग्य होगा; किन्तु यदि क्रेता ने माल की जाँच की हो तो ऐसे दोष के लिए भी गर्भित शर्त नहीं होगी (अर्थात् विक्रेता बाध्य नहीं होगा) जो साधारण जाँच से पता लग जाने लायक हो।

2. **व्यापार की रीति के सम्बन्ध में**

व्यापार की रीति अनुसार भी माल के गुण, उपयुक्तता अथवा किसी विशेष आशय के लिए गर्भित शर्त हो सकता है।

3. **नमूने द्वारा विक्रय के सम्बन्ध में**

नमूने द्वारा विक्रय के सम्बन्ध में निम्नलिखित गर्भित शर्तें होती है :

(अ) अधिकांश माल नमूने के समान होगाः

(ब) क्रेता को नमूने के साथ तुलना करने का उचित अवसर प्राप्त होगा;

(स) माल में ऐसा कोई दोष नहीं होगा जिससे वह व्यापार–योग्य न रहे और जो नमूने की उचित जाँच के बाद भी ज्ञात न हो सके।

गर्भित आश्वासन

माल के विक्रय के अनुबन्ध में निम्नलिखित गर्भित आश्वासन होते है :

1. **माल पर शान्तिपूर्ण अधिकार एवं उपयोग का गर्भित आश्वासन**– प्रत्येक विक्रय के अनुबन्ध में जब तक कि अनुबन्ध की परिस्थितियों से कोई विपरीत आशय प्रकट न होता हो, यह गर्भित आश्वासन होता है कि माल के क्रेता को खरीदे हुए माल पर शान्तिपूर्ण ढंग से अपना अधिकार रखने तथा इच्छानुसार उपयोग करने का अधिकार होगा।
2. **माल के भार–मुक्त होने का आश्वासन**– प्रत्येक विक्रय के अनुबन्ध में, जब तक कि अनुबन्ध की परिस्थितियों से कोई विपरीत आशय प्रकट न होता, तो यह गर्भित आश्वासन होता है कि माल ऐसे तृतीय पक्षकार के भार से मुक्त होता रहेगा जो अनुबन्ध करते समय या उससे पूर्व न तो घोषित किया गया था और न जिसका क्रेता को ही ज्ञान था। उदाहरण के लिए, 'अ', 'ब' को 200 बोरे गेहूँ बेचता है वह उसे नहीं बताता कि उसने गेहूँ के बोरों की साख पर 'स' से 4,000रू. का तथा 500 रू. ब्याज के रूप में चुकाने के लिए बाध्य होता है। ऐसी दशा में 'ब', 'अ' से 4,000 रू. तथा आवश्यक हर्जाना वसूल करने का अधिकारी है।
3. **व्यापार की रीति के अनुसार माल के गुण अथवा उपयुक्तता सम्बन्धी गर्भित आश्वासन**– व्यापार की रीति के अनुसार माल के गुण अथवा उपयुक्तता अथवा किसी विशेष आशय के लिए गर्भित आश्वासन हो सकता है।
4. **वस्तु की शुद्धता अथवा वास्तविकता सम्बन्धी गर्भित आश्वासन**– इण्डियन मर्केण्डाइज मार्कस अधिनियम के अनुसार विक्रय की जाने वाली वस्तुएँ शुद्ध एवं वास्तविक होनी चाहिए, नकली नहीं। यदि किसी वस्तु पर कोई व्यापारिक चिन्ह लगा है तो वस्तु के विक्रेता की ओर से यह गर्भित आश्वासन होगा कि उक्त वस्तु पर लगा व्यापारिक चिन्ह असली है।
5. **माल की खतरनाक प्रकृति को प्रकट करने के सम्बन्ध में गर्भित आश्वासन**– खतरनाक अथवा हानिप्रद माल के विक्रय के सम्बन्ध में विक्रेता का यह कर्तव्य है कि क्रेता को इस सम्बन्ध में सचेत कर दे और यह भी बता दे कि ऐसी वस्तुओं के लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता है अन्यथा वह आश्वासन भंग का दोषी माना जायेगा और क्रेता की क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा।

11.20 क्रेता सावधानी सिद्धान्त

अर्थ एवं परिभाषा–

कैवियट इम्पटर (Caveat Emptor) शब्द लैटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है– **'क्रेता सावधान रहें'**। यह सामान्य सिद्धान्त की बात है कि क्रेता माल खरीदते समय सावधान रहे अथार्त् वह अपने हितों की स्वयं ही रक्षा करें। इस प्रकार क्रेता को सावधानीपूर्वक क्रय करना चाहिए। वह माल को अच्छी तरह से देखभाल करके ही खरीदे। यदि वह खराब, अनुपयुक्त एवं दोषपूर्ण माल खरीद लेता है तो इसमें विक्रेता का दोष नही होगा। इस सिद्धान्त के अनुसार क्रेता का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह माल क्रय करते समय पूर्णतः सावधान रहे तथा अपने विवेक एवं

चतुराई से काम ले। उसे माल की अच्छी तरह जाँच कर लेनी चाहिए। माल उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप है या नहीं, यह देखने व पता लगाने का काम क्रेता का है, विक्रेता का नही। विक्रेता से यह आशा कदापि नहीं की जानी चाहिए कि अपने माल के दोषों को स्वयं ही बता दें। अपने माल के दोषों को प्रकट करना विक्रेता का उत्तरदायित्व नहीं है। यदि क्रेता माल क्रय करते समय अपनी स्वयं की बुद्धि, विवेक व कौशल पर निर्भर करता है और फिर भी माल दोषपूर्ण निकल जाता है तो इसके लिये क्रेता ही उत्तरदायी होगा। जोन्स बनाम जस्ट के विवाद में यह स्पष्ट कर दिया गया कि यदि विक्रेता द्वारा कोई कपट नहीं किया गया है तो क्रेता द्वारा क्रय किये गये माल के दोषों के लिए विक्रेता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। **निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि क्रेता की सावधानी के सिद्धान्त के अनुसार क्रेता का यह कर्तव्य है कि वह सावधानीपूर्वक अपने विवेक को काम में लेते हुए पर्याप्त जाँच करके यथोचित गुण, किस्म व उद्देश्य के लिए ही माल खरीदे। विक्रेता का यह दायित्व नहीं है कि वह क्रेता को माल के दोषों, अवगुणों व विशिष्ट उद्देश्य के लिए अनुपयुक्तता के विषय में बताये जब तक कि यह बताना विक्रय की एक शर्त न हों।"**

अपवाद

सामान्यतः क्रेता की सावधानी का नियम लागू होता है किन्तु इसके निम्नलिखित अपवाद हैः

(1) **विक्रेता को उद्देश्य प्रकट करने की दशा में–** यदि क्रेता विक्रेता की किसी वस्तु को क्रय करने से पूर्व ही उस वस्तु को खरीदने के अपने उद्देश्य को स्पष्ट अथवा गर्भित रूप में प्रकट कर देता है तो क्रेता की सावधानी का सिद्धान्त लागू नहीं होगा। किन्तु इस सम्बन्ध में निम्न शर्तों को पूरा करना होगा :

(i) वस्तु को क्रय करने से पूर्व उसने क्रय का उद्देश्य विक्रय को स्पष्ट अथवा गर्भित रूप में बता दिया है।

(ii) क्रेता विक्रेता की वस्तु के विक्रय में कुशलता एवं विवेक पर विश्वास रखता हो।

(iii) वस्तु ऐसी हो जिसे विक्रेंता अपने व्यापार के दौरान बेचता हों।

(2) **वर्णन द्वारा विक्रय की दशा में–** यदि माल का विक्रय वर्णन के द्वारा हुआ हो तो यह गर्भित शर्त है कि माल वर्णन के अनुसार होगा। ऐसी स्थिति में माल में व्यापार योग्यता होना आवश्यक है। यहाँ पर क्रेता की सावधानी का नियम लागू नहीं होगा।

(3) **व्यापार की रीति अथवा परम्परा की दशा में–** कुछ अनुबन्धों में व्यापार की रीति–रिवाज तथा परम्परा के अनुसार माल की किस्म अथवा उपयुक्तता की शर्त हो सकती है। ऐसी स्थिति में क्रेता की सावधानी का सिन्द्धान्त लागू नहीं होगा।

(4) **नमूने द्वारा विक्रय की दशा में–** यदि माल का विक्रय नमूने द्वारा होता है तो ऐसी स्थिति में यह गर्भित शर्त है कि माल नमूने के अनुसार ही होगा। माल में ऐसा कोई भी दोष नहीं होगा जिसे साधारण जाँच से मालूम न किया जा सकता हो। यदि दोष सामान्य जाँच से ज्ञात नहीं होता है ऐसी स्थिति में माल नमूने के अनुसार न होने पर क्रेता की सावधानी का नियम लागू नही होता।

(5) कपट अथवा छिपाव की दशा में– यदि माल के विक्रय अनुबन्ध में विक्रेता ने जानबूझकर क्रेता के साथ कपट किया है तथा क्रेता की सहमति कपट द्वारा प्राप्त की है, तो क्रेता की सावधानी का सिद्धान्त लागू नहीं होगा।

(6) पेटेण्ट अथवा ट्रेडमार्क के अन्तर्गत विक्रय की दशा में– यदि किसी विशिष्ट पेटेण्ट अथवा ट्रेडमार्क के अधीन माल के विक्रय का अनुबन्ध हुआ हो तो वहाँ पर यह गर्भित शर्त नहीं होगी कि माल किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए उपयुक्त होगा। अतएव क्रेता की सावधानी का नियम लागू नहीं होगा।

(7) विक्रेता द्वारा मिथ्या वर्णन की दशा में– यदि विक्रेता विक्रय किये गये माल के सम्बन्ध में मिथ्या वर्णन करता है और क्रेता उस पर विश्वास करता है तो क्रेता की सावधानी का नियम लागू नहीं होगा।

11.21 सारांश

वस्तु विक्रय का अनुबंध एक अनुबंध है जिसके द्वारा विक्रेता एक निश्चित मूल्य के बदले माल का स्वामित्व हस्तांतरित करता है अथवा हस्तांतरण करने का ठहराव करता है। विक्रय उसे कहते है जब अनुबंध के अन्तर्गत माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता को हस्तान्तरित होता है तो उस अनुबंध को विक्रय कहते है।

जब माल के स्वामित्व का हस्तांतरण भविष्य मे हो तो उसे विक्रय के लिये ठहराव कहते है। विक्रय अनुबंध में विक्रेता तथा क्रेता दो पक्ष होते है। विक्रेता जो माल बेचता है तथा क्रेता जो माल खरीदता है। विक्रय अनुबंध में माल का होना आवश्यक है। इसमें मूल्य का निर्धारण होता है जो सदैव मुद्रा में होता है। माल के स्वामित्व का हस्तांतरण भी आवश्यक है। विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में अन्तर होता है। विक्रय अनुबंध पूर्ण होता है किन्तु विक्रय का ठहराव भविष्य के स्वामित्व हस्तांतरण पर होता है। विक्रय तथा निक्षेप में अन्तर होता है। विक्रय में स्वामित्व का हस्तातंरण सदैव के लिए होता है, जबकि निक्षेप में स्वामित्व का हस्तांतरण निश्चित समय के लिये होता है। इसी प्रकार विक्रय तथा भाड़े पर खरीद के ठहराव में अन्तर है। विक्रय में माल के स्वामित्व का हस्तांतरण तुरन्त होता है, जबकि भाड़े पर खरीद में स्वामित्व का हस्तांतरण अन्तिम किश्त पाने पर होता है।

वस्तु विक्रय के निर्माण विधि वह होती है जिसमें वस्तु विक्रय अनुबंध के रूप में प्रस्ताव तथा स्वीकृति होती है। वस्तु विक्रय अनुबंध की विषय सामग्री साधारणतः माल ही होता है। यह तीन प्रकार का होता है विद्यमान माल, भावी माल तथा संयोगिक माल। विक्रय अनुबंध मे विषय वस्तु का नष्ट होना भी महत्वपूर्ण है। अनुबंध के पूर्ण होने के पहले यदि माल नष्ट हो जाता है तो अनुबंध व्यर्थ होगा। अगर माल का कुछ हिस्सा नष्ट होता है तो क्रेता के इच्छा पर शेष बचे माल के लिए अनुबंध होगा। विक्रय अनुबंध में मूल्य निर्धारण किया जाता है तथा इस मूल्य का विक्रेता को क्रेता द्वारा मुद्रा के रूप में भुगतान करना आवश्यक है।

विक्रय अनुबंध में शर्त तथा आश्वासन का भी महत्व है। शर्त से आशय एक बंधन से है जो अनुबंध के मुख्य आशय के लिए परम आवश्यक है और जिसका खण्डन होन पर अनुबंध के परित्याग का अधिकार उत्पन्न हो जाता है, जबकि आश्वासन एक ऐसा बंधन है जो अनुबंध के मुख्य आशय के लिये समपार्श्विक है। अर्थात् इसका खण्डन होने पर क्रेता क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है। अतः इस रूप मे शर्त तथा आश्वासन में अन्तर है।

11.22 शब्दावली

वस्तु विक्रय अनुबंध– विक्रय अनुबंध वह अनुबंध है, जिसके द्वारा विक्रेता एक निश्चित मूल्य के बदले क्रेता को माल का स्वामित्व हस्तांतरित करता है, किन्तु जब माल के स्वामित्व का हस्तांतरण भविष्य में हो तो उसे वस्तु विक्रय का ठहराव कहते है।

विक्रय अनुबंध का निर्माण– किसी अन्य अनुबंध की तरह विक्रय अनुबंध के निमार्ण के लिए प्रस्ताव तथा उसकी स्वीकृति की आवश्यकता होती है। इसमें माल तथा माल के मूल्य का निर्धारण भी मुद्रा में होता है।

विषय वस्तु का नष्ट होना– विक्रय अनुबंध के सम्बन्ध में माल महत्वपूर्ण है। अनुबंध के पूर्व यदि माल पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से नष्ट हो जाता है, तो उसे वस्तु का नष्ट होना कहते है।

मूल्य– वस्तु विक्रय अनुबंध में माल का प्रतिफल मुद्रा में ही होना चाहिये। इसे ही मूल्य कहते है। यदि मुद्रा के स्थान पर वस्तु दी जाय तो उसे वस्तु विनिमय कहते है।

मूल्य का भुगतान– मूल्य का भुगतान देश में प्रचलित मुद्रा से ही होता है।

शर्त– शर्त एक बंधन है जो अनुबंध के मुख्य आशय के लिए परम आवश्यक है। इसके खण्डन होने पर अनुबंध के परित्याग का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

आश्वासन– आश्वासन एक ऐसा बंधन है जो अनुबंध के मुख्य आशय के लिए समपार्श्विक होता है तथा इसका खण्डन होने पर क्रेता विक्रेता को क्षतिपूर्ण के लिए बाध्य कर सकता है।

गर्भित शर्त तथा आश्वासन– शर्ते तथा आश्वासन स्पष्ट तब होते है जब लिखित या मौखिक रूप से वर्णित होते है। गर्भित शर्त तथा आश्वासन तब होते है जब वे राजनियम के अन्तर्गत मान्य समझे जाते है।

क्रेता सावधानी सिद्धान्त– क्रेता सावधानी सिद्धान्त से तात्पर्य है कि क्रेता स्वयं वस्तु के विषय में सावधान रहे अर्थात वह अपने हितो की रक्षा करें। इसका अर्थ यह है कि वह वस्तु को स्वयं जाँच–परख कर ले कि वस्तु उसकी आवश्यकता के अनुसार हों।

11.23 बोध प्रश्न

(अ)– इंगित करें कि निम्नलिखित वक्तव्य सही है या गलत–

(i) विक्रेता से आशय उस व्यक्ति से है जो माल बेचता है अथवा माल बेचने के लिए सहमत होता है।

(ii) विक्रय में अधिकतर हस्तांतरण होता है, स्वामितव का नही।

(iii) विक्रय एक निष्पादित अनुबंध है।

(iv) विक्रय हो जाने के पश्चात सारा जोकिम क्रेता का होता है।

(v) विक्रय के पश्चात यदि क्रेता दिवालिया हो जाता है तो विक्रेता माल को रोक सकता है।

(vi) विक्रय के पश्चात यदि विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने से पूर्व दिवालिया हो जाय तो उनके प्रापक काके माल की सुपुर्दगी देने के लिए बाध्य किया जा सकता।

(vii) शर्त एक ऐसा बंधन है जो कि अनुबंध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक है।

(viii) शर्त के भंग होने पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत किया जा सकता है।
(ix) आश्वासन के भंग होने पर अनुबंध के भंग के लिए वाद प्रस्तुत किया जा सकता है।
(x) शर्त का भंग आश्वासन का भंग माना जा सकता है।
(xi) आश्वासन का भंग शर्त का भंग नही माना जा सकता है।
(xii) विक्रय अनुबंध में स्वत्व गर्भित आश्वासन होता है।
(ब) कोष्ठक में दिये हुए उपयुक्त शब्दो से रिक्त स्थानो को भरिए–
(i) विक्रय के माल के .... का हस्तांतरण होता है। (अधिकार/अधिकार तथा स्वामित्व दोनो)
(ii) विक्रय में यदि क्रेता मूल्य का भुगतान करने से पूर्व दिवालिया हो जाता है तो विक्रेता माल को .... सकता है। (रोक/नही रोक)
(iii) विक्रय समाप्त हो जाने के पश्चात माल की जोखिम .... पर होती है। (विक्रेता/क्रेता)
(iv) विक्रय .... होता है। (शर्त रहित/ शर्त सहित)

11.24 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ)
(i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) सही (v) गलत (vi) गलत (vii) सही (viii) सही (ix) गलत (x) सही (xi) सही (xii) गलत।
(ब)
(उत्तर– (i)– अधिकार तथा स्वामित्व दोनो, (ii) नही रोक, (iii) क्रेता (iv) शर्त रहित)

11.25 स्वपरख प्रश्न

1. विक्रय अनुबंध क्या है ? इसके लक्षणों को बताइयें।
2. विक्रय अनुबंध के अन्तर्गत माल की परिभाषा एवं उसके प्रकार बताइये।
3. विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में क्या अन्तर है।
4. मूल्य से क्या आशय है ? मूल्य निर्धारण सम्बन्धी नियमों को बताइये।
5. शर्त क्या है ? गर्भित शर्त को उदाहरण सहित बताइये।
6. शर्त तथा आश्वासन में अन्तर बताइये।
7. क्रेता सावधानी सिद्धान्त से क्या आशय है ? इस नियम के अपवाद बताइये।

11.26 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 12 विक्रय अनुबंध का निष्पादन, स्वत्व का हस्तांतरण तथा अदत्त विक्रेता

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 विक्रय अनुबंध के निष्पादन का अर्थ
12.3 विक्रेता के कर्त्तव्य
12.4 विक्रेता के अधिकार
12.5 क्रेता के कर्त्तव्य
12.6 क्रेता के अधिकार
12.7 माल की सुपुर्दगी
12.8 सुपुर्दगी के नियम
12.9 माल के स्वामित्व (स्वत्व) का हस्तान्तरण
12.10 अदत्त विक्रेता का अर्थ
12.11 अदत्त विक्रेता के लक्षण
12.12 अदत्त विक्रेता के अधिकार
12.13 क्रेता के विरूद्ध अधिकार
12.14 माल के विरूद्ध अधिकार
12.15 ग्रहणाधिकार अथवा विशेषाधिकार
12.16 माल को मार्ग मे रोकने का अधिकार
12.17 माल को पुनः बेचने का अधिकार
12.18 विक्रय अनुबंध भंग के लिए वाद
12.19 नीलाम द्वारा विक्रय
12.20 सारांश
12.21 शब्दावली
12.22 बोध प्रश्न
12.23 बोध प्रश्न के उत्तर
12.24 स्वपरख प्रश्न
12.25 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- विक्रय अनुबन्ध के निष्पादन के अर्थ का वर्णन कर सकें ।
- विक्रेता तथा क्रेता के कर्त्तव्य को बता सकें ।
- माल के मूल्य के भुगतान तथा सुपुर्दगी सम्बन्धी शर्ते एक साथ पूरी होने को स्पष्ट कर सकें ।
- माल की सुपुर्दगी का अर्थ स्पष्ट कर सकें ।
- क्रेता द्वारा माल की स्वीकृति का वर्णन कर सकें ।
- माल के अधिकार के हस्तान्तरण के अर्थ को बता सकें ।
- अदत्त विक्रेता का अर्थ बता सकें ।
- अदत्त विक्रेता के अधिकार को स्पष्ट कर सकें।

12.1 प्रस्तावना

इकाई 11 में वस्तु विक्रय अनुबन्ध के सम्बन्ध में आप पढ़ चुके है। अगला महत्वपूर्ण सन्दर्भ वस्तु विक्रय अनुबन्ध के निष्पादन के सम्बन्ध मे है। इस सन्दर्भ में विक्रेता तथा क्रेता के कर्त्तव्य को स्पष्ट किया गया है। वस्तु विक्रय अनुबन्ध के निष्पादन मे माल के सुपुर्दगी सम्बन्धी नियम को स्पष्ट किया गया है, इसमें क्रेता द्वारा माल की स्वीकृति को बताया गया है। यदि माल के मूल्य का पूर्ण भुगतान विक्रेता को नही हुआ है तो उसे अदत्त विक्रेता कहा जायेगा। इस सन्दर्भ में यह भी समझाया गया है कि इस तरह के अदत्त विक्रेता के माल के विरूद्ध अधिकार होते हैं। इसमें अदत्त विक्रेता के माल पर विशेषाधिकार का भी वर्णन किया गया है।

12.2 वस्तु विक्रय अनुबन्ध के निष्पादन का अर्थ

वस्तु विक्रय के अनुबंध का निष्पादन हेतु "भुगतान तथा सुपुर्दगी एक साथ पूरी होनी चाहिये"। इसका अर्थ यह है कि निष्पादन में यह नितांत आवश्यक है क्रेता तथा विक्रेता दो अपने–अपने कर्त्तव्यो का पालन करे। दोनों मे से कोई कभी ऐसा कार्य न करे कि जो उसके अधिकार की सीमा के बाहर हो।

12.3 विक्रेता के कर्त्तव्य

विक्रेता का कर्त्तव्य है कि विक्रय के अनुबंध की शर्तो के अनुसार माल की सुपुर्दगी दे। धारा 31 के अनुसार क्रेता के दो कर्त्तव्य है–

(i) क्रेता माल की सुपुर्दगी ले।

(ii) वह माल के मूल्य का भुगतान करे।

इस सम्बन्ध मे सुपुर्दगी का अर्थ है एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल का हस्तांतरण होता है। माल के भौतिक सुपुर्दगी को वास्तविक सुपुर्दगी कहते है। जब माल विक्रेता की ओर से किसी अन्य के पास रहे तो रचनात्मक सुपुर्दगी होती है। सुपुर्दगी के लिए माल पर अधिकार एवं नियंत्रण आवश्यक है। कभी–कभी आंशिक सुपुर्दगी भी होती है। उदाहरण के लिए यदि विक्रेता खेत के घास के एक हिस्से को बेचता है सम्पूर्ण खेत के घास को नही बेचता तो उसे आंशिक सुपुर्दगी कहते है।

12.4 विक्रेता के अधिकार

विक्रेता के निम्नलिखित अधिकार है–

(i) मूल्य प्राप्त करने का अधिकार– धारा 32 के अनुसार माल का विक्रेता क्रेता को सुपुर्द किये जाने वाले माल के लिए मूल्य प्राप्त करने का अधिकारी है।

(ii) मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार– धारा 55(1) के अनुसार जहॉ विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल का स्वामित्व क्रेता को मिल चुका है अथवा क्रेता दोषपूर्ण ढंग से अनुबन्ध की शर्तो के अनुसार माल का मूल्य चुकाने की उपेक्षा अथवा इन्कार करता है, तो विक्रेता माल के मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी है।

(iii) अस्वीकृति के लिए क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार– धारा 56 के अनुसार जहॉ क्रेता दो सम्पूर्ण ढंग से माल की स्वीकृति अथवा मूल्य चुकाने मे

उपेक्षा एवं इन्कार करता है, तो विक्रेता माल की अस्वीकृति के लिए क्षतिपूर्ति का वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(iv) विशिष्ट निष्पादन– विक्रेता को अनुबन्ध का विशिष्ट निष्पादन करने का अधिकार है।

(v) विशिष्ट क्षतिपूर्ति के रूप में ब्याज प्राप्त करने का अधिकार– विक्रेता माल के मूल्य पर ब्याज प्राप्त करने का उस समय से अधिकारी है जिस तिथि को माल सुपुर्द किया गया था अथवा भुगतान देय था।

12.5 क्रेता के कर्त्तव्य

क्रेता का कर्त्तव्य है कि वह माल की सुपुर्दगी ले। माल की सुपुर्दगी लेने पर माल का जोखिम अब क्रेता पर आ जायेगा। अब क्रेता का कर्त्तव्य होगा कि माल के मूल्य का भुगतान करें।

12.6 क्रेता के अधिकार

क्रेता के निम्नलिखित अधिकार हैं–

(i) माल की सुपुर्दगी लेने का अधिकार– धारा 31 के अनुसार क्रेता को माल की सुपुर्दगी लेने का मूलभूत अधिकार है।

(ii) गलत मात्रा की सुपुर्दगी की दशा में– धारा 32 के अनुसार विक्रेता द्वारा माल की गलत मात्रा में सुपुदर्गी की दशा में क्रेता का यह अधिकार है कि वह चाहे तो उसे स्वीकार करे अथवा अस्वीकार करें।

(iii) माल की परीक्षा करने का अधिकार– यदि क्रेता को ऐसा माल सुपुर्द किया गया है, जिसे उसने परीक्षण नही किया है, तो तब तक माल को स्वीकार नहीं किया जायेगा जब तक वह माल का परीक्षण न कर लें।

(iv) सुपुर्दगी प्राप्त न होने पर क्षतिपूर्ति का अधिकार– धारा 57 के अनुसार जहॉ विक्रेता दोषपूर्ण ढंग से माल की सुपुर्दगी देने में उपेक्षा अथवा इन्कार करता है, तो क्रेता क्षतिपूर्ति के लिये वाद प्रस्तुत कर सकता है।

12.7 माल की सुपुर्दगी

विक्रेता को माल के मूल्य मिल जाने के पश्चात् उसका कर्त्तव्य है कि वह माल की सुपुर्दगी क्रेता को कर दें। सुपुर्दगी का अर्थ है कि, ''**एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल का हस्तान्तरण सुपुदर्गी कहलाता है।**''

12.8 सुपुर्दगी के नियम

सुपुर्दगी के नियम निम्नलिखित हैंः

1 **सुपुदर्गी का ढंग–** यह प्रश्न कि विक्रेता को माल के क्रेता के पास भेजना है अथवा क्रेता को स्वयं जाकर सुपुर्दगी प्राप्त करनी है, यह बात पक्षकारों के अनुबन्ध पर निर्भर करती है, जो स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकती है। ऐसे किसी अनुबन्ध के अभाव में सुपुर्दगी का ढंग व्यापार की रीति के अनुसार निश्चित किया जाता है।

2 **सुपुर्दगी का स्थान–** साधारणतः अनुबन्ध में सुपुर्दगी का स्थान दिया जाता है। अतः जब अनुबन्ध में स्थान दिया हो, तो विक्रेता का यह कर्तव्य है कि कार्य के दिन तथा कार्य के समय के भीतर ही उक्त स्थान पर सुपुर्दगी दे।

3 **सुपुर्दगी का समय**– किसी स्पष्ट अनुबन्ध के अभाव में विक्रेता माल को उस समय तक सुपुर्द करने के लिए बाध्य नहीं है, जब तक कि क्रेता सुपुर्दगी के लिए आवेदन या मांग न करें।

4 **माल का तीसरे व्यक्ति के अधिकार में होना**– जब बिक्री के समय माल किसी तीसरे व्यक्ति के अधिकार में है, तो जब तक यह तीसरा व्यक्ति माल को क्रेता की तरफ से रखने की सहमति प्रदान प्रदान न कर दे सुपुर्दगी नहीं मानी जायेगी। यह रचनात्मक सुपुर्दगी होती है। माल के अधिकार सम्बन्धी प्रलेखों का हस्तान्तरण भी सुपुर्दगी ही माना जाता है।

5 **सुपुर्दगी का व्यय अथवा लागत**– सुपुर्दगी का खर्च विक्रेता को सहन करना पड़ेगा अथवा यदि अनुबन्ध में स्पष्ट रूप से तय हो गया है कि क्रेता को ऐसे व्ययों को सहन करना होगा। किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में लाने तथा इससे सम्बद्ध सभी व्यय विक्रेता को करने पड़ेंगे।

6 **गलत मात्रा में माल की सुपुर्दगी**– **(क)** जब विक्रेता, क्रेता को जितना माल भेजने का अनुबन्ध हुआ है उससे कम माल भेजता है, तो क्रेता उसे लेने से इन्कार कर सकता है, पर जब क्रेता इस तरह सुपुर्द किये गये माल को स्वीकार कर लेता है तो उसे अनुबन्ध की दर के अनुसार मूल्य का भुगतान करना होगा। **'अ'**, **'ब'** को 2,000 मीटर धागे की रील (प्रत्येक रील में 200 मीटर धागा) विक्रय करता है। सुपुर्दगी लेने के बाद **'ब'** को ज्ञात होता है कि रीलों में धागा 200 मीटर से कम है और यह कमी औसत रूप से 6 प्रतिशत है। **'ब'** माल को वापस कर सकता है, परन्तु अगर वह नहीं लौटाता है तो उसे तय किये हुए मूल्य की दर से नाप के अनुसार भुगतान करना होगा।

7 **किस्तो मे सुपुर्दगी**– किसी विशेष अनुबंध के अभाव में **क्रेता किस्तों में सुपुर्दगी लेने के लिए बाध्य नहीं है।** इसका अभिप्राय यह है कि किस्तों में सुपुर्दगी उसी समय दी एवं मांगी जा सकती है जबकि अनुबन्ध में ऐसी व्यवस्था की गयी है।

8 **वाहक को सुपुर्दगी**– जब कभी माल वाहक द्वारा जैसे– रेलवे बिल्टी या जहाज द्वारा भेजा जाता है तो उसे वाहक द्वारा माल की सुपुर्दगी मानते है। इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण केस लॉ (वादविधि) का उल्लेख करना आवश्यक है, जो निम्नलिखित है–

केस लॉ– **'शंकरदास** बनाम **भानामल (1926) लाहौर'** के विवाद में विक्रेता ने तेल बेचने का अनुबन्ध किया तथा उसका मूल्य क्रेता से प्राप्त करके अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार माल रेलवे अधिकारियों को सुपुर्द करके उसकी रेलवे बिल्टी को क्रेता के पास भेज दिया। न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण हो चुका है।

वाहक द्वारा माल की सुपुर्दगी के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम है–

(1) जब विक्रय अनुबन्ध के अनुसार विक्रेता को माल को क्रेता के पास भेजने का अधिकार है, तो ऐसी दशा में किसी एक वाहक को, जिसका नाम क्रेता के द्वारा बताया गया है क्रेता के पास माल पहुंचाने के उद्देश्य से माल की सुपुर्दगी देना, क्रेता को सुपुर्दगी देना समझा जायेगा।

(2) क्रेता द्वारा दिये गये किसी विपरीत अधिकार के अभाव में, विक्रेता, क्रेता की ओर से वाहक के साथ ऐसा अनुबंध कर सकता है जो कि माल की प्रकृति तथा मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उचित हो। यदि विक्रेता ऐसा करने में असावधानी करता है तथा माल मार्ग में खो जाता है अथवा उसे कोई हानि पहुँचती है, तो क्रेता ऐसे वाहक को सुपुर्दगी देने को अपने लिए सुपुर्दगी मानने से इन्कार कर सकता है, अथवा ऐसी हानि के लिए विक्रेता को उत्तरदायी ठहरा सकता है।

(3) किसी विपरीत ठहराव के अभाव में, यदि माल विक्रेता द्वारा क्रेता को ऐसी स्थिति में जलमार्ग से भेजा जाय जिसमें माल का बीमा कराना आवश्यक हो, तो विक्रेता को ऐसी सूचना क्रेता को देनी चाहिए जिससे कि वह आसानी से माल का बीमा करा सके, परन्तु यदि विक्रेता इस प्रकार की सूचना नहीं देता तो सामुद्रिक यात्रा के समय माल विक्रेता की जोखिम पर समझा जायेगा।

अतः किसी विशिष्ट अनुबन्ध के अभाव में वाहक को सुपुर्दगी दे देने के बाद माल का स्वामित्व मार्ग में होने वाली जोखिम के साथ क्रेता के पास चला जाता है।

9 क्रेता को माल की जांच करने का अधिकार

जब क्रेता को ऐसे माल की सुपुर्दगी दी जाती है जिसकी उसने पहले कभी जांच नहीं की है, तो माल उसके द्वारा तब तक स्वीकृत नहीं माना जाता जब तक कि उसे जांच करने का यथोचित अवसर प्राप्त न हो जाय, जिससे कि वह यह निश्चित कर सके कि माल अनुबन्ध के अनुसार है या नहीं। ऐसा अवसर देने के बाद यदि क्रेता माल की जांच नहीं करता तो माल क्रेता द्वारा स्वीकार किया गया माना जाता है।

किसी विपरीत ठहराव के अभाव में जब विक्रेता क्रेता को माल की सुपुर्दगी देता है, तो क्रेता के अनुरोध पर यह निश्चित करने के उद्देश्य से की माल अनुबंध के अनुसार है या नहीं, विक्रेता माल की जांच के लिए यथोचित अवसर प्रदान करने के लिए बाध्य है।

12.9 माल के स्वामित्व (स्वत्व) का हस्तान्तरण

माल के अधिकार के हस्तान्तरण से आशय– माल के स्वत्व या अधिकार के हस्तान्तरण से आश्य, **'माल के स्वामित्व के अधिकार के हस्तान्तरण'** से है, केवल **'माल के हस्तान्तरण'** से नही। 'माल के स्वामित्व या स्वत्व के हस्तान्तरण' और 'माल के हस्तान्तरण' में बहुत अन्तर है। **यहां हम यह अध्ययन करेंगे कि माल के स्वामित्व या स्वत्व का हस्तान्तरण किसके द्वारा वैध है।**

माल का विक्रय ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो माल का स्वामी नहीं है– स्वामित्व के हस्तान्तरण के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि माल का स्वामी विक्रेता होता है। इसी कारण विक्रेता ही **'माल के स्वामित्व'** का क्रेता को हस्तांतरण करने की योग्यता रखता है। प्रायः विक्रेता वही माल बेचते है, जिसे बेचने का उन्हें अधिकार होता है, परन्तु कभी–कभी विक्रेता चोरी का माल क्रेता को बेचता है, अथवा कोई एजेण्ट अपने अधिकार की सीमा के बाहर किसी माल का विक्रय कर देता है। इन दोनों ही परिस्थितियों में विक्रेता माल का वास्तविक स्वामी नहीं होता। **अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसी दशा में किस पक्षकार को माल के मूल्य की हानि सहन करनी पड़ेगी :**

1 क्या वास्तविक स्वामी सदैव के लिए माल से वंचित हो जायेगा ?
अथवा
2 क्या निर्दोष क्रेता हानि को सहन करेगा ?
3 क्या दोषी विक्रेता हर्जाना देगा ?

ऐसी परिस्थितियों मे, यदि विक्रेता (जो कि माल का असली स्वामी नहीं है) दोषपूर्ण विक्रय के लिए माल का मूल्य निर्दोष क्रेता को वापस करने में समर्थ है तो क्रेता अपनी हानि की पूर्ति विक्रेता से ही करा सकता है, परन्तु यदि माल का विक्रेता (जो वास्तविक स्वामी नहीं है) एक दिवालिया व्यक्ति है अर्थात् इस योग्य नहीं है कि वह मूल्य का भुगतान कर सके, तो ऐसी परिस्थिति में कठिनाई यह होती है कि विक्रेता से कुछ भी वसूल नहीं किया जा सकता। **भारतीय विक्रय के अनुबंध में ऐसी स्थिति से निबटने के लिए कुछ नियम दिये गये है।**

धारा 27 के अनुसार– कोई भी क्रेता अपने माल के विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता इसका आशय यह है कि यदि विक्रेता का अधिकार अच्छा है, तो क्रेता का भी अधिकार अच्छा होगा। इसके विपरीत यदि विक्रेता का अधिकार सीमित या दूषित है तो क्रेता का अधिकार भी सीमित या दूषित होगा अर्थात् क्रेता को विक्रेता से अच्छा अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता, भले ही क्रेता ने सद्विश्वास से माल खरीदा हो और उसके लिए मूल्य चुकाया हों।

धारा 27 में दिया गया उपर्युक्त नियम लैटिन भाषा के इस सिद्धान्त पर आधारित है "Nemo dat quod non habet" है जिसका अर्थ है कि **'कोई भी वह वस्तु नहीं दे सकता जो उसके अधिकार में नहीं है।'** (None can give or transfer what he does not himself possess)। इस नियम को दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि क्रेता वस्तु के ऊपर विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। अतः यदि विक्रेता का अधिकार श्रेष्ठ है, तो क्रेता को भी श्रेष्ठ अधिकार की प्राप्ति हो जाती है।

नियम के अपवाद

नियम यह है कि विक्रेता के अधिकार के समान ही क्रेता का स्वत्व होता है अर्थात् विक्रेता के स्वत्व से अच्छा स्वत्व क्रेता प्राप्त नहीं कर सकता है, परन्तु कुछ दशाओं में क्रेता विक्रेता से अच्छा अधिकार भी प्राप्त कर सकता है। यह निम्नलिखित परिस्थितियों में हो सकता है :

(1) **अवरोध द्वारा स्वत्वाधिकार की प्राप्ति–** यदि माल का स्वामी अपने आचरण से क्रेता को यह प्रदर्शित करता है अथवा विश्वास करा देता है कि विक्रेता माल का स्वामी है अथवा स्वामी से उसे माल बेचने का अधिकार प्राप्त है तथा क्रेता को इस विश्वास पर माल क्रय करने के लिए प्रेरित करता है तो बाद में स्वामी यह नहीं कह सकता है कि विक्रेता को माल बेचने का कोई अधिकार न था। उदाहरणार्थ, **'अ'** के गोदाम में **'ब'** 100 गाठें रूई की रखी है। **'अ'** इस रूई को **'स'** को बेच देता है। विक्रय के समय **'ब'** वहीं पर उपस्थित था, परन्तु वह इस विक्रय के सम्बन्ध में मौन रहता है तथा कुछ भी नहीं कहता। यहाँ **'ब'** का आचरण यह प्रदर्शित करता है कि **'अ'** रूई का स्वामी है।

(2) **व्यापारिक एजेण्ट द्वारा विक्रय–** जब किसी व्यापारिक एजेण्ट के अधिकार में स्वामी की सहमति से माल अथवा माल सम्बन्धी अधिकार प्रपत्र हो तो व्यापार

की साधारण प्रगति में उसके द्वारा किया गया विक्रय स्वामी पर लागू होगा बशर्ते कि क्रेता ने सद्विश्वास से कार्य किया है तथा अनुबन्ध के समय उसे यह –सूचना नहीं थी कि विक्रेता को माल बेचने को कोई अधिकार नहीं है। माल के क्रेता को विक्रेता (एजेण्ट) से उत्तम अधिकार प्राप्त होगा। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित केसलॉ महत्वपूर्ण है–

फॉक्स बनाम **किंग** के वाद मे **'अ'** ने एक मोटर एक व्यापारिक एजेण्ट **'ब'** को इस शर्त पर बेचने के लिए दी थी कि मोटर एक निश्चित मूल्य से कम पर न बेची जाय। **'ब'** मोटर को निश्चित मूल्य से कम पर बेचकर बिक्री की रकम हजम कर गया। क्रेता ने मोटर सद्विश्वास के साथ **'ब'** के दोष की जानकारी न होते हुए खरीदी थी। न्यायालय ने निर्णय दिया कि **'अ'** क्रेता से मोटर वापस नहीं ले सकता।

(3) **संयुक्त स्वामियों में से किसी एक के द्वारा विक्रय–** यदि माल के अनेक संयुक्त स्वामियों में से किसी एक को संयुक्त स्वामियों की सहमति से माल पर एकाकी अधिकार प्राप्त है, तो माल का स्वामित्व किसी भी ऐसे व्यक्ति को हस्तान्तरित हो सकता है, जो कि माल को सद्विश्वास के साथ खरीदे तथा जिसे विक्रय अनुबन्ध करते समय यह ज्ञात न हो कि विक्रेता को विक्रय करने का कोई अधिकार नहीं हैं। उदाहरण के लिए, **'अ'** और **'ब'** एक विशिष्ट माल के संयुक्त स्वामी है। **'अ'** माल को **'ब'** के अधिकार में देता है। **'ब'** माल को **'स'** के हाथ में बेच देता है, जो सद्विश्वास के साथ इसे खरीदता है। ऐसी परिस्थिति में **'स'** को माल पर वैध अधिकार प्राप्त होगा।

(4) **व्यर्थनीय अनुबन्ध के अधीन माल पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा विक्रय–** यदि विक्रेता ने माल पर अधिकार भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की **धारा** 19 तथा 19 (अ) क अधीन व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त किया है तथा वह अनुबन्ध विक्रय के समय तक निरस्त नहीं किया गया है, तो क्रेता को ऐसे माल पर अच्छा अधिकार प्राप्त होगा, यदि वह सद्भावना से माल खरीदे तथा उसे विक्रेता के दोषपूर्ण अधिकार की जानकारी न हों।

(5) **विक्रय के बाद माल पर अधिकार रखने वाले विक्रेता द्वारा विक्रय–** जब किसी विक्रेता द्वारा माल बेच देने के बाद भी माल अथवा माल के अधिकार सम्बन्धी प्रपत्र उसके अधिकार में है और वह अथवा उसका व्यापारिक एजेण्ट माल को किसी तीसरे व्यक्ति के हाथ बेच देता है जो कि माल की सुपुर्दगी सद्विश्वास के साथ तथा पूर्व विक्रय की जानकारी न रखते हुए ले लेता है तो वह माल के ऊपर वैध अधिकार प्राप्त कर लेगा। उदाहरणार्थ, **'अ'** कुछ माल **'ब'** को बेचता है। **'ब'** माल को **'अ'** के पास कुछ समय के लिए छोड़ देता है। **'अ'** उस माल को **'स'** के हाथ बेच देता है। **'स'** सद्भावना के साथ तथा पूर्व विक्रय का ज्ञान न होते हुए माल खरीदता है। **'स'** को इस माल पर वैध अधिकार प्राप्त होगा।

(6) **माल पर अधिकार रखने वाले क्रेता द्वारा विक्रय–** जब क्रेता, विक्रेता की सहमति से माल का स्वामित्व हस्तांतरित होने से पहले ही माल पर अधिकार प्राप्त कर ले तथा इसके बाद माल को तीसरे व्यक्ति को बेच दे, अथवा किसी अन्य प्रकार से इसकी व्यवस्था कर दे और यदि तीसरा व्यक्ति सद्विश्वास के साथ

तथा मूल विक्रेता का वस्तु पर ग्रहणाधिकार अथवा किसी अन्य अधिकार की सूचना के बिना, माल की सुपुर्दगी ले, तो उसे माल पर वैध अधिकार प्राप्त होगा।

12.10 अदत्त विक्रेता का अर्थ

निम्नलिखित दशाओं में माल का विक्रेता अदत्त विक्रेता माना जाता है।

(1) (i) जब उसे कोई माल का पूरा भुगतान न किया गया हो अथवा न भुगतान करने का प्रस्ताव ही किया गया हो

(ii) धारा 45 (1) के अनुसार जब उसे कोई विनिमय बिल अथवा कोई विनिमय साध्य प्रलेख शर्त युक्त भुगतान के रूप में प्राप्त हुआ हो तथा वह शर्त उस प्रलेख के अप्रतिष्ठित अथवा किसी अन्य कारण से पूर्ण न हुई हों। उदाहरणार्थ–'अ', 'ब' को क्रय किये गये माल के बदले 1000 रू0 का चेक देता है किन्तु उस बैंक में प्रस्तुत करने पर 'ब' को उसका भुगतान प्राप्त नहीं होता। ऐसी दशा में 'ब' एक अदत्त विक्रेता समझा जायेगा।

(2) धारा 45 (2) के अनुसार विक्रेता शब्द में वे सभी व्यक्ति सम्मिलित किये जा सकते है, जो विक्रेता की स्थिति में हों जैसे–विक्रेता का प्रतिनिधि जिसे जहाजी बिल्टी का बेचान किया गया हो अथवा कोई प्रेषक अथवा प्रतिनिधि जिसने स्वयं मूल्य का भुगतान किया हो अथवा जो अप्रत्यक्ष रूप से मूल्य का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हो।

अदत्त विक्रेता के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवाद महत्वपूर्ण है–

खुशाल भाई महजी भाई पटेल बनाम मोहम्मद हुसैन रहीम वक्स के विवाद में वादी ने प्रतिवादी के यहाँ बिना किसी आदेश के माल भेजा जो उसने स्वीकार कर लिया। बाद में प्रतिवादी ने इस आधार पर माल का भुगतान करने से इन्कार कर दिया कि उसने माल का कोई आदेश नहीं दिया था। भारत के उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि प्रतिवादी द्वारा माल स्वीकार किया जाना यह मानने का पर्याप्त आधार है कि उसने माल का वास्तविक आदेश दिया था। अतः मोहम्मद हुसैन रहीम वक्स माल का भुगतान करने के लिए बाध्य है।

12.11 अदत्त विक्रेता के लक्षण

अदत्त विक्रेता के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है–

1. ऐसा व्यक्ति जिसने दूसरे व्यक्ति को माल बेंच दिया है और माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण हो चुका है। यह महत्वहीन है कि उसने माल की सुपुर्दगी क्रेता को दी है अथवा नहीं।
2. विक्रय किये गये माल का पूर्ण अथवा आंशिक भुगतान न हुआ हो।
3. एक बार का अदत्त विक्रेता पुनः अदत्त विक्रेता बन सकता है यदि उस विक्रेता को दिया गया विनिमय साध्य विलेख (प्रतिज्ञा पत्र, चैक अथवा विनिमय पत्र) माल की सुपुर्दगी से पूर्व ही अप्रतिष्ठित हो गया हो।
4. विक्रय किये गये माल के मूल्य के बदले अदत्त विक्रेता को चैक विनियमय पत्र अथवा प्रतिज्ञा पत्र प्राप्त हुआ हो किन्तु वह अप्रतिष्ठित हो गया हो।

12.12 अदत्त विक्रेता के अधिकार

अदत्त विक्रेता के अधिकारों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(अ) क्रेता के विरूद्ध अधिकार

(ब) माल के विरूद्ध अधिकार।

12.13 क्रेता के विरूद्ध अधिकार

अदत्त विक्रेता द्वारा जब माल की सुपुर्दगी क्रेता को की जाती है तो उस दशा में अदत्त विक्रेता क्रेता के विरूद्ध निम्न कानूनी अधिकारों का प्रयोग कर सकता है–

1. **मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत करना** जब––– तक कि कोई अन्य ठहराव न हो गया हो, माल का विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने के समय ही मूल्य का भुगतान पाने का अधिकारी है। यदि क्रेता मूल्य चुकाने में त्रुटि करता है तो विक्रेता मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

2. **क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करना**––– धारा 56 के अनुसार जब क्रेता दोषपूर्ण ढंग से माल स्वीकार करने तथा मूल्य का भुगतान करने में असावधानी करता है अथवा इन्कार करता है तो क्रेता पर ऐसी अस्वीकृति के कारण होने वाली क्षति की पूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

3. **निश्चित तिथि से पूर्व अनुबन्ध का खण्डन करने का अधिकार**––– धारा 60 के अनुसार जब क्रेता सुपुर्दगी की तिथि से पूर्व ही अनुबन्ध का खण्डन कर देता है तो विक्रेता अपनी इच्छानुसार अनुबन्ध को चालू समझकर सुपुर्दगी की तिथि तक प्रतीक्षा कर सकता है अथवा उस दिन अनुबन्ध का खण्डन हुआ मान कर क्रेता पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

4. **ब्याज के लिए वाद प्रस्तुत करना**––– धारा 61 (1) के अनुसार जब क्रेता सुपुर्दगी की तिथि से पूर्व ही अनुबन्ध का खण्डन कर देता है तो विक्रेता अपनी इच्छानुसार अनुबन्ध को चालू समझकर सुपुर्दगी की तिथि तक प्रतीक्षा कर सकता है अथवा उस दिन अनुबन्ध का खण्डन हुआ मानकर क्रेता पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

12.14 माल के विरूद्ध अधिकार

(i) माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण होने की दशा में––– जब माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो गया हो तो अदत्त विक्रेता को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं–

1. माल पर ग्रहणाधिकार अथवा विशेषाधिकार यदि माल उसके अधिकार में हो।
2. क्रेता के दिवालिया होने की स्थिति में मार्ग में माल को रोकने का अधिकार यदि माल उसके पास से चला गया हो तथा
3. माल को पुनः विक्रय करेन का अधिकार

12.15 ग्रहणाधिकार अथवा विशेषाधिकार

धारा 47 के अनुसार ग्रहणाधिकार से आशय माल के मूल्य प्राप्त करने तक अपने पास रोक रखने से है, अदत्त विक्रेता जिसके अधिकार में माल हों, निम्नलिखित परिस्थितियों में माल उस समय तक अपने पास रोके रख सकता है जब तक कि उसे मूल्य चुकाया न जाय अथवा प्रस्तुत न किया जाय :

(i) जब माल उधार की शर्त पर न बेचा गया हो।

(ii) जब माल उधार बेचा गया हो किन्तु उधार की अवधि समाप्त हो गयी हो।

(iii) जब क्रेता दिवालिया हो गया हो

अदत्त विक्रेता अपने ग्रहणाधिकार का प्रयोग उस समय भी कर सकता है जबकि उसके पास माल पर अधिकार क्रेता के प्रतिनिधि अथवा निक्षेपगृहीता के रूप में हो।

आंशिक सुपुर्दगी की दशा में ग्रहणाधिकार

जहाँ अदत्त विक्रेता ने माल की आंशिक सुपुर्दगी दे दी हो, तो वह शेष माल पर ग्रहणाधिकार का उपयोग कर सकता है जब तक इस तरह की आंशिक सुपुर्दगी ऐसी परिस्थितियों मे न दी गयी हो जिससे यह प्रतीत हो कि उसने ग्रहणाधिकार का परित्याग करने का ठहराव किया है।

ग्रहणाधिकार सम्बन्धी नियम

निम्नलिखित शर्तों का पालन किये जाने पर ही ग्रहणाधिकार का प्रयोग कियाा जा सकता है–

1. यदि माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता को हस्तांतरित हो गया है–
2. यदि माल उधार की शर्त पर न बेचा गया हो।
3. यदि माल उधार की शर्त पर बेंचा गया हो तो उधार की अवधि समाप्त हो गई हो।
4. यदि माल वास्तविक रूप से अदत्त विक्रेता के अधिकार में हों।
5. यदि विक्रय अनुबन्ध में ग्रहणाधिकार के विरूद्ध कोई विपरीत बात न हो।
6. यदि माल के सम्पूर्ण मूल्य का भुगतान प्राप्त न हुआ हो।
7. ग्रहणाधिकार का उपयोग केवल माल के मूल्य के लिए ही किया जा सकता है, व्ययो के लिए नहीं।
8. क्रेता के दिवालिया होने पर ग्रहणाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।
9. ग्रहणाधिकार व्यक्तिगत अधिकार है, इसलिए यह स्वयं विक्रेता अथवा उसके एजेन्ट द्वारा प्रयोग में लाया जा सकता है तथा अन्य किसी व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता है।
10. यदि विक्रेता ने सम्पूर्ण माल में से आंशिक माल की सुपुर्दगी क्रेता को दे दी हो तो माल के शेष भाग पर, जो उसके पास है, वह अपना ग्रहणाधिकार प्रयोग कर सकता है बशर्तें कि आंशिक सुपुर्दगी का आशय सम्पूर्ण माल पर ग्रहणाधिकार का परित्याग न हो।

ग्रहणाधिकार की समाप्ति

निम्नलिखित परिस्थितियों में अदत्त विक्रेता का ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है–

1. जब वह क्रेता के पास माल पहुँचाने के उद्देश्य से तथा माल की व्यवस्था करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखे बिना ही अदत्त विक्रेता से सुपुर्दगी किसी वाहक अथवा अन्य किसी निक्षेपगृहीता को कर देता है।
2. जब क्रेता अथवा उसका प्रतिनिधि वैधानिक ढंग से माल पर अधिकार कर लेता है।
3. जब वह (अदत्त विक्रेता) अपने ग्रहणाधिकार का परित्याग कर देता है।

4. माल का मूल्य अदत्त विक्रेता को प्राप्त हो जाने पर उसके ग्रहणाधिकार का अन्त हो जाता है, किन्तु यदि उसने माल पर डिक्री प्राप्त कर ली है तो उसका अधिकार समाप्त नहीं होगा।

5. यदि अदत्त विक्रेता को माल की आंशिक सुपुर्दगी दे देता है और उससे यह प्रकट होता है कि उसने अपने ग्रहणाधिकार का परित्याग कर दिया है तो भी ग्रहणाधिकार समाप्त हुआ माना जाता है।

6. यदि माल का क्रेता विक्रेता को उचित रूप में यथासमय माल का भुगतान प्रस्तुत करता है किन्तु वह उसे स्वीकार नहीं करता है तो अदत्त विक्रेता का ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है।

7. यदि अदत्त विक्रेता ने अपने आचरण या शब्दों से ऐसा प्रदर्शन किया है जिससे तीसरे पक्षकार को यह विश्वास हो जाता है कि माल पर अदत्त विक्रेता का ग्रहणाधिकार नहीं है तो अवरोध द्वारा ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है।

8. जब विक्रेता क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने से अनुचित रूप से इन्कार कर देता है तो उसके इस इन्कार से विक्रय अनुबन्ध का खण्डन हो जाता हे जिसके परिणामस्वरूप उस माल पर विक्रेता का ग्रहणाधिकार भी समाप्त हो जाता है।

12.16 माल को मार्ग में रोकने का अधिकार

[धारा 50–52 के अनुसार]– यदि माल का क्रेता दिवालिया हो गया हो तो अदत्त विक्रेता जिसके अधिकार से माल निकल गया हो, माल को मार्ग में रोक सकता है और जब तक माल मार्ग में है, वह माल को अपने अधिकार में ले सकता है और जब तक उसे मूल्य न चुकाया जाय अथवा मूल्य प्रस्तुत न किया जाय तब तक वह उसे रोके रख सकता है।

मुल्ला एवं पोलक के अनुसार, 'अदत्त विक्रेता द्वारा ऐसे माल को जो क्रेता के दिवालिया हो जाने की दशा में क्रेता द्वारा माल पर वास्तविक अधिकार प्राप्त करने के पूर्व पुनः अपने अधिकार में लिए जाने के अधिकार को माल को मार्ग में रोकने को अधिकार कहते है।

इस प्रकार अदत्त विक्रेता को यह अधिकार उस समय प्राप्त होता है जब क्रेता दिवालिया हो गया हो और माल मार्ग में ही हों।

माल को मार्ग में रोकने के अधिकार के प्रयोग की शर्तें

माल को मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जायः

(i) जब माल अदत्त विक्रेता के अधिकार में न हो।

(ii) जब क्रेता दिवालिया हो चुका हो।

(iii) जब माल मार्ग में हो।

(iv) क्रेता के दिवालिया होने की सूचना अदत्त विक्रेता को प्राप्त हो गयी हो।

(v) अदत्त विक्रेता ने माल पृथक कर दिया हो अर्थात् माल क्रेता को पहुँचाने के लिए भेज दिया गया हो।

(vi) जब अदत्त विक्रेता का माल को मार्ग में रोकने का अधिकार इस अधिनियम अथवा किसी अन्य अधिनियम द्वारा समाप्त न हुआ हो।

(vii) जब विक्रेता को माल का सम्पूर्ण मूल्य न मिला हो।

(viii) जब विक्रेता से माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित हो चुका हो।

माल को मार्ग में रहने की अवधि

माल के मार्ग मे रहने की अवधि के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम लागू होते है–

1. धारा 51 (1) के अनुसार माल उस समय मार्ग में रहना समझा जाता है जब वह क्रेता को सुपुर्दगी देने के उद्‌देश्य से किसी वाहक अथवा अन्य निक्षेपगृहीता को दे दिया जाता है या क्रेता अथवा उसका प्रतिनिधि उसकी सुपुर्दगी प्राप्त न कर लें।

2. धारा 51 (2) के अनुसार– यदि क्रेता अथवा उसका प्रतिनिधि माल की सुपुर्दगी उसके नियत स्थान पर पहुॅचने से पूर्व ले लेता है, तो माल का मार्ग में रहना समाप्त हो जाता है।

3. धारा 51 (3) के अनुसार– यदि नियत स्थान पर पहुँचने के बाद माल का वाहक अथवा कोई अन्य निक्षेपगृहीता क्रेता या उसके एजेन्ट के सम्मुख यह स्वीकार कर लेता है कि वह उसकी ओर से माल को अपने अधिकार में रखता है और वह क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि के लिए निक्षेपगृहीता के रूप में माल को रखे रहता है तो माल का मार्ग में रहना समाप्त हो जाता है और इस बात का कोई महत्व नहीं रहता कि क्रेता ने किसी अन्य स्थान पर माल पहुँचाने का आदेश दिया हो।

4. धारा 51 (4) के अनुसार– यदि क्रेता माल लेने से इन्कार कर देता है और वाहक अथवा अन्य निक्षेपगृहीता माल को अपने अधिकार में रखे रहता है, तो माल का मार्ग में रहना समाप्त नहीं होता, भले ही विक्रेता ने माल को वापस लेने से इन्कार कर दिया हो।

उदाहरणार्थ– 'अ', 'ब' को 100 चाय की पेटी रेलवे से भेजता है तथा 'ब' इसे लेने से इन्कार कर देता है तथा 'अ' भी उस माल को वापस लेने से इन्कार कर देता है और इस प्रकार माल रेलवे के पास ही रहता है। यहाँ पर माल का अभी तक मार्ग में ही होना माना जायेगा।

5. जब माल किसी ऐसे जहाज को सुपुर्द कर दिया गया हो जिसे क्रेता ने किराये पर लिया हो, तो यह प्रत्येक मामले की परिस्थिति पर निर्भर करता है कि जहाज का मास्टर माल को एक वाहक के रूप में रखता है अथवा क्रेता के प्रतिनिधि के रूप में।

6. जब वाहक अथवा अन्य निक्षेपगृहीता दोषपूर्ण ढंग से क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि को माल की सुपुर्दगी देने से इन्कार कर देता है, तो माल का मार्ग में रहना समाप्त समझा जाता है।

7. जब क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि को माल की आंशिक सुपुर्दगी दे दी गयी हो तो शेष माल को मार्ग में रोका जा सकता है बशर्ते आंशिक सुपुर्दगी ऐसी परिस्थिति में न दी गयी हो, जिससे कि सम्पूर्ण माल की सुपुर्दगी देने का ठहराव प्रकट होता हो।

माल को मार्ग में किस प्रकार रोका जा सकता है ?

निम्नलिखित परिस्थितियों में माल को मार्ग में रोका जा सकता है–

1. धारा 52 (2) के अनुसार अदत्त विक्रेता माल पर वास्तविक रूप से अधिकार करके अथवा वाहक या अन्य निक्षेपगृहीता को जिसके अधिकार में माल हो अपने दावे की सूचना देकर मार्ग में अपने माल को रोकने के अधिकार का प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार की सूचना या तो उस व्यक्ति को दी जा सकती है जिसके वास्तविक अधिकार में माल हो अथवा उसके प्रधान को दी जा सकती है।

2. जब विक्रेता द्वारा माल को मार्ग में रोकने की सूचना वाहक अथवा निक्षेपगृहीता को दी जाती है, जिसके अधिकार में माल है तो वह विक्रेता के आदेशानुसार माल की पुनः सुपुर्दगी देगा। पुनः सुपुर्दगी का व्यय विक्रेता को सहन करना पड़ेगा।

क्रेता द्वारा उप–विक्रय अथवा बन्धक का प्रभाव

धारा (53) के अनुसार क्रेता द्वारा किया गया उप–विक्रय अथवा बन्धक अदत्त विक्रेता के ग्रहणाधिकार अथवा मार्ग में रोकने के अधिकार को निम्नलिखित रूप से प्रभावित करता है–

(i) जब तक विक्रेता अपनी सहमति न दे, क्रेता के उप–विक्रय अथवा बन्धक का अदत्त विक्रेता के ग्रहणाधिकार अथवा मार्ग में रोकने के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(ii) विक्रेता के ग्रहणाधिकार अथवा मार्ग में रोकने के अधिकार उस समय निष्फल हो जाते है, जब क्रेता माल सम्बन्धी अधिकार पत्र निर्गमित होने अथवा वैध रूप में हस्तांतरित करने के बाद अपना अधिकार पत्र किसी ऐसे व्यक्ति के पक्ष में हस्तांतरित कर देता है, जो सद्विश्वास तथा प्रतिफल के फलस्वरूप प्राप्त करता है। ऐसी दशा में यदि हस्तान्तरण बन्धक के रूप में किया गया है, तो विक्रेता का ग्रहणाधिकार तथा मार्ग में रोकने का अधिकार के अधीन ही प्रयोग में लाया जा सकता है।

(iii) जब क्रेता माल का अधिकार पत्र बन्धक के रूप में रख कर माल को हस्तान्तरित कर देता है तो ऐसी दशा में अदत्त विक्रेता बन्धकगृहीता को इस बात के लिए बाध्य कर सकता है कि वह क्रेता के विरूद्ध अपनी मांग को सर्वप्रथम अपने हाथ में क्रेता के किसी अन्य माल अथवा प्रतिभूति से संतुष्ट करें।

ग्रहणाधिकार तथा मार्ग में रोकने के अधिकार में अन्तर– अन्तर को निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है–

	अन्तर का आधार	ग्रहणाधिकार	मार्ग में रोकने का अधिकार
1.	अर्थ	ग्रहणाधिकार का अर्थ माल को अपने पास रोकना है।	इसका अर्थ है कि माल को वाहक के माध्यम से पुनः प्राप्त करना यदि विक्रेता के हाथ से निकल गया हो किन्तु क्रेता के पास न पहुँचा हो।
2.	प्रयोग	ग्रहणाधिकार का प्रयोग क्रेता द्वारा भुगतान न करने की दशा में अदत्त	इसका प्रयोग क्रेता के दिवालिया होने की दशा में ही किया जा सकता है।

		विक्रेता द्वारा किया जा सकता है।	
3.	माल का अधिकार	इसका उपयोग उसी समय किया जा सकता है जबकि माल अदत्त विक्रेता के वास्तविक या रचनात्मक अधिकार में हो।	इसका प्रयोग उस समय किया जा सकता है जबकि माल अदत्त विक्रेता के अधिकार में न पहुँचा हो अर्थात् माल मार्ग में ही हो।
4.	उद्देश्य	इसका उद्देश्य माल को तब तक रोक रखना है जब तक कि विक्रेता को उसका भुगतानन न प्राप्त हो जाय।	माल को मार्ग में रोकने का उद्देश्य माल को पुनः अधिकार में लेना है।
5.	समाप्ति पर अधिकार	ग्रहणाधिकार के समाप्त होने पर माल के विरूद्ध विक्रेता को कोई अधिकार नहीं प्राप्त होता है।	माल को मार्ग में रोक लेने पर माल विक्रेता के अधिकार में आ जाता है।

12.17 माल को पुनः बेचने का अधिकार

अदत्त विक्रेता निम्नलिखित परिस्थितियों में माल का पुनः विक्रय कर सकता है–

1. धारा 54 (2) के अनुसार– जब अदत्त विक्रेता, जिसने ग्रहणाधिकार अथवा मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग कर लिया हो, माल का पुनः विक्रय करता है तथा मूल क्रेता को इसकी सूचना न दी गयी हो तो भी क्रेता को माल के विरूद्ध अच्छा अधिकार प्राप्त होगा।

2. धारा 54 (3) के अनुसार– जब माल शीघ्र नष्ट होने वाली प्रकृति का है अथवा अदत्त विक्रेता जिसने ग्रहणाधिकार अथवा मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग कर लिया है, क्रेता को पुनः बेचने के आशय की सूचना दे देता है तो अदत्त विक्रेता, यदि क्रेता को उचित समय के अन्दर माल का मूल्य नहीं चुकाता है अथवा प्रस्तुत नहीं करता है तो माल को पुनः बेच सकता है और मूल्य क्रेता से उसके द्वारा अनुबन्ध भंग किये जाने के कारण हुई हानि की क्षतिपूर्ति वसूल कर सकता है किन्तु यदि पुनः विक्रय पर विक्रेता को लाभ हुआ हो तो क्रेता इसके पाने का अधिकारी नहीं है। इसके विपरीत, यदि ऐसी सूचना नहीं दी जाती है तो विक्रेता हानि की पूर्ति कराने का अधिकारी नहीं होगा। यही नहीं, यदि पुनः विक्रय पर कोई लाभ हुआ हो तो क्रेता पाने का अधिकारी होगा।

3. जहाँ विक्रेता क्रेता द्वारा त्रुटि किये जाने पर स्पष्ट रूप से माल के पुनः विक्रय का अधिकार अपने हाथों में सुरक्षित रखता है और क्रेता के द्वारा त्रुटि किये जाने पर माल का विक्रय करता है, तो विक्रय के मूल अनुबन्ध का परित्याग हो

जाता है, किन्तु इससे विक्रेता को क्षतिपूर्ति कराने के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

4. माल का पुनः विक्रय करना अथवा न करना यह बात पूर्णतः अदत्त विक्रेता की इच्छा पर निर्भर करती है। अतः क्रेता अदत्त विक्रेता को माल का पुनः विक्रय करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है।

5. धारा 46 (2) के अनुसार– यदि माल का स्वामित्व क्रेता के पास हस्तान्तरित न हुआ हो, तो अदत्त विक्रेता को उपरोक्त अधिकारों के अतिरिक्त माल की सुपुर्दगी रोक लेने का अधिकार भी प्राप्त हो जाता है, जो क्रेता के पास स्वामित्व चले जाने की स्थिति मे उसके ग्रहणाधिकार तथा मार्ग में रोक रखने के अधिकार की भाँति सह–विस्तृत होता है।

12.18 विक्रय अनुबन्ध भंग के लिए वाद

विक्रेता के उपचार–

क्रेता द्वारा किसी अनुबन्ध के भंग किये जाने पर विक्रेता को उसके विरूद्ध निम्नलिखित उपचार प्राप्त होते है–

1. **धारा 55 (1) के अनुसार मूल्य के लिए वाद** – जहाँ विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो जाता है और क्रेता दोषपूर्ण ढंग से अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार माल का मूल्य चुकाने में उपेक्षा अथवा इन्कार करता है, तो विक्रेता माल के मूल्य का वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी है।

2. **धारा 55 (2) के अुनसार माल का स्वामित्व हस्तांतरित न होने पर** – जब विक्रय अनुबन्ध के अंतर्गत सुपुर्दगी का विचार किये बिना माल का मूल्य किसी निश्चित दिन चुकाना हो और क्रेता दोषपूर्ण ढंग से मूल्य चुकाने में उपेक्षा अथवा इन्कार करता है, तो विक्रेता उस मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है, भले ही माल का स्वामित्व अभी हस्तान्तरित नहीं हुआ हो तथा अनुबन्ध के लिए पृथक नहीं किया गया हो।

3. **धारा 56 के अनुसार अस्वीकृत पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद** – जब क्रेता दोषपूर्ण ढंग से माल स्वीकार करने अथवा उसका मूल्य चुकाने में असावधानी करता है अथवा इन्कार करता है, तो विक्रेता उस पर अस्वीकृति के कारण होने वाली क्षति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

4. **धारा 60 के अनुसार निश्चित तिथि से पूर्व अनुबन्ध के खण्डन पर वाद** – यदि अनुबन्ध की तिथि से पहले ही क्रेता अनुबन्ध का खण्डन न कर देता है तो विक्रेता उसे अनुबन्ध का खण्डन मान कर क्रेता पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

5. **धारा 61 के अनुसार व्याज के लिए वाद** – यदि विक्रेता तथा क्रेता के बीच माल के मूल्य के भुगतान के लिए कोई तिथि निश्चित है और उस तिथि के बाद भुगतान न करने की दशा में, व्याज चुकाने का प्रावधान है तो विक्रेता क्रेता के विरूद्ध व्याज प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

क्रेता के उपचार

विक्रेता द्वारा विक्रय अनुबन्ध के भंग किये जाने पर क्रेता को निम्नलिखित उपचार प्राप्त है–

1. **धारा 57 के अनुसार सुपुर्दगी प्राप्त न होने पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद–** जब विक्रेता दोषपूर्ण ढंग से माल की सुपुर्दगी देने में उपेक्षा अथवा इन्कार करता है तो क्रेता क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

2. **धारा 58 के अनुसार विशिष्ट निष्पादन के लिए वाद–** यदि विक्रेता ने निश्चित माल की सुपुर्दगी देने में अनुबन्ध को भंग किया हो, तो क्रेता को उस पर वाद प्रस्तुत करने का अधिकार है। यहाँ पर यदि न्यायालय उचित समझे तो वह अपनी डिक्री द्वारा अनुबन्ध के निर्दिष्ट निष्पादन की आज्ञा दे सकता है। डिक्री शर्त सहित या शर्त रहित हो सकती है।

3. **धारा 59 के अुनसार आश्वासन भंग के लिए उपचार–** जब विक्रेता ने किसी आश्वासन को भंग किया हो अथवा किसी शर्त के भंग को आश्वासन का भंग माना गया हो, तो क्रेता उसके लिए क्षतिपूर्ति कराने का अधिकारी है।

4. **धारा 60 के अनुसार निश्चित तिथि से पूर्व अनुबन्ध भंग करने का अधिकार–** यदि विक्रेता ने निश्चित तिथि के पूर्व ही अनुबन्ध भंग कर दिया है तो यदि क्रेता चाहे तो अनुबन्ध को उसी दिन समाप्त कर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है अथवा सुपुर्दगी की तिथि तक प्रतीक्षा कर सकता है।

5. **धारा 61 (2) के अनुसार ब्याज के लिए वाद–** यदि विक्रेता ने अनुबन्ध भंग किया है तथा इसके फलस्वरूप क्रेता दिये गये मूल्य को वापस पाने का अधिकारी है तो वह उस पर ब्याज पाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। इस ब्याज का भुगतान उस तिथि से किया जायेगा जिस तिथि को क्रेता ने विक्रेता को मूल्य का भुगतान किया था।

6. **अन्य उपचार–** विक्रेता के विरूद्ध उपर्युक्त अधिकारों के अतिरिक्त एक क्रेता के निम्नलिखित उपचार भी है–

(i) धारा 37 के अनुसार अनुबन्ध के अनुसार सुपुर्दगी पाने का अधिकार।

(ii) धारा 38 के अनुसार विपरीत अनुबन्ध के अभाव में किस्तों में सुपुर्दगी होने पर, अनुबन्ध समाप्त करने का अधिकार।

(iii) धारा 41 के अनुसार सुपुर्दगी प्राप्त होने पर वस्तुओं के निरीक्षण का अधिकार।

क्षतिपूर्ति तथा विशिष्ट क्षतिपूर्ति के रूप में ब्याज–

1. यह अधिनियम विक्रेता अथवा क्रेता के ब्याज वसूल किये जाने अथवा विशिष्ट क्षतिपूर्ति के अधिकार को उस स्थिति से प्रभावित नही करता है जबकि किसी सन्नियम द्वारा ब्याज अथवा विशिष्ट क्षति वसूल की जा सकती हो।

2. किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में न्यायालय निम्नलिखित परिस्थितियों में उचित दर से ब्याज की घोषणा कर सकती है–

(i) विक्रेता द्वारा मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत किये जाने की तिथि से अथवा भुगतान की नियत तिथि से ब्याज दिलाया जा सकता है।

(ii) क्रेता द्वारा मूल्य की वापसी के लिए वाद प्रस्तुत किये जाने पर जबकि विक्रेता द्वारा अनुबन्ध भंग किया गया हो– जिस तिथि को मूल्य का भुगतान किया गया था उस तिथि से ब्याज दिलवाया जा सकता है।

12.19 नीलाम द्वारा विक्रय

नीलाम द्वारा विक्रय का अर्थ– नीलाम द्वारा विक्रय सार्वजनिक विक्रय का वह स्वरूप है जिसके अन्तर्गत सबसे उँची बोली लगाने वाले को माल का विक्रय किया जाता है।

नीलाम द्वारा विक्रय में निम्नलिखित नियम लागू होते है–

1. धारा 64 (1) के अनुसार– जब माल विक्रय के लिए अनेक ढेर में रखा जाता है तो प्रत्येक ढेर का विक्रय एक पृथक अनुबन्ध की विषय–वस्तु समझी जायेगी।
2. धारा 64 (2) के अनुसार– विक्रय उस समय पूर्ण हो जाता है जब नीलामकर्त्ता हथौड़े की चोट से अथवा किसी अन्य प्रचलित तरीके से उसका पूर्ण होना घोषित कर देता है और जब तक ऐसी घोषणा न कर दी जाय बोली बोलने वाला अपनी बोली वापस ले सकता है।
3. धारा 64 (3) के अनुसार– बोली बोलने का अधिकार स्पष्ट रूप से विक्रेता अथवा उसकी ओर से अन्य किसी के द्वारा सुरक्षित रक्षा जा सकता है और यदि ऐसा अधिकार सुरक्षित रखा गया हो, तो विक्रेता अथवा उसकी ओर से अन्य कोई व्यक्ति दी गयी व्यवस्थाओं के अनुसार बोली बोल सकता है।
4. धारा 64 (4) के अनुसार– यदि विक्रेता की ओर से बोली बोलने के अधिकार को सूचना नहीं दी गयी हो, तो विक्रेता द्वारा स्वयं बोली बोलना अथवा उसके द्वारा इस कार्य के लिए किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त किया जाना अवैध होगा अथवा यदि नीलामकर्ता जानबूझकर विक्रेता अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति को बोली स्वीकार न करे तो इस प्रकार से किये गये विक्रय को क्रेता कपटपूर्ण मान सकता है।
5. धारा 64 (5) के अनुसार– विक्रय किसी आरक्षित अथवा नियत मूल्य के अन्तर्गत सूचित किया जा सकता है।
6. धारा 64 (6) के अनुसार– यदि विक्रेता मूल्य को बढ़ाने के उद्देश्य से बनावटी का प्रयोग करे तो विक्रय क्रेता की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है।

नीलाम द्वारा विक्रय में अन्य महत्वपूर्ण नियम–

1. गलती से आरक्षित मूल्य से कम पर माल का विक्रय करने पर नीलामकर्त्ता यदि गलती से आरक्षित या निर्धारित मूल्य से कम मूल्य पर नीलाम समाप्त कर देता है तो वह अधिकतम बोली लगाने वाले को माल की सुपुर्दगी देने के लिए बाध्य नहीं है।
2. यदि विक्रेता को क्षति पहुँचाने के उद्देश्य से कई क्रेता द्वारा मिलकर बोली लगाने पर नीलामकर्त्ता विक्रय को निरस्त कर सकता है।
3. विक्रेता चाहे तो पहले से ही बोली लगाने का अधिकार सुरक्षित रख सकता है किन्तु शर्त यह है कि उसने एक बोली लगायी हो। यदि वह एक से अधिक बोली लगाये जो उसका मन्तव्य अपने हित की सुरक्षा करना नहीं है बल्कि मूल्य बढ़ाना है जो कि कपट है।

नोक आउट समझौता

नोक आउट समझौते से आशय बोली बोलने वाले व्यक्तियों के बीच एक ऐसे परस्परिक समझौते से है जिसके द्वारा वे एक दूसरे के विरूद्ध बोली बोलने से अपने आप को विरत रखते है तथा इस प्रकार को धोखा देने की दृष्टि से नहीं किया गया है तो वह वैध समझौता है। विक्रेता ऐसे समझौते से अपने हितों को बचाने के लिए निम्नतम मूल्य का निर्धारण कर सकता है।

नीलाम द्वारा विक्रय में गर्भित आश्वासन

नीलाम द्वारा विक्रय में नीलामकर्त्ता क्रेता को निम्नलिखित गर्भित आश्वासन देता है–

1. नीलामकर्त्ता वस्तु के विक्रय का वैधानिक अधिकार रखता है।
2. नीलामकर्त्ता वास्तविक स्वामी के अधिकार में दोष से अनभिज्ञ है।
3. क्रेता मूल्य के बदले में माल पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लेगा।

12.20 सारांश

विक्रय अनुबंध के निष्पादन से तात्पर्य है कि क्रेता तथा विक्रेता दोनो अपने–अपने कर्त्तव्यों का अनुपालन करें। दोनों में से कोई भी ऐसा कार्य न करें जो उनके अधिकार सीमा के परे हो। इसके अन्तर्गत विक्रेता का कर्त्तव्य है कि वह माल की सुपुर्दगी दे। वह माल के सम्बन्ध में वाहक से अनुबंध करें साथ ही क्रेता को यह उचित अवसर दे कि वह माल का परिक्षण कर लें। उसे मूल्य प्राप्त करने का अधिकार है यदि क्रेता मूल्य देने में आनाकानी करता है या मूल्य नहीं देता है तो विक्रेता क्रेता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है। विक्रेता क्रेता की अस्वीकृति के लिए क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है। यदि विशिष्ट क्षतिपूर्ति होती है तो विक्रेता को ब्याज प्राप्त करने का अधिकार है।

विक्रय अनुबंध के निष्पादन में क्रेता का कर्त्तव्य है कि वह मूल्य का भुगतान करें माल के सुपुर्दगी की माँग करें। यदि गलत मात्रा में माल की सुपुर्दगी होती है तो क्रेता माल लेने से इन्कार कर सकता है। यदि क्रेता माल की सुपुर्दगी लेने से इन्कार करता है। यदि क्रेता हानि के लिए उत्तरदायी होगा। क्रेता के अपने अधिकार भी है। उसे अधिकार है कि माल की सुपुर्दगी से माल की परीक्षा या जाँच करें। यदि विक्रेता द्वारा आश्वासन भंग किया जाता है तो क्रेता क्षतिपूर्ति का अधिकार है।

विक्रय अनुबंध निष्पादन के लिये भुगतान तथा सुपुर्दगी एक साथ पूरी होने वाली शर्तें है। माल की सुपुर्दगी से आशय है एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल के अधिकार का हस्तान्तरण हो। सुपुर्दगी के कई प्रकार जैसे वास्तविक, रचनात्मक तथा सांकेतिक होते है।

इस सम्बन्ध में दूसरा महत्वपूर्ण शीर्षक माल के अधिकार अथवा स्वत्वाधिकार अथवा स्वत्व के अधिकार का हस्तांतरण है। वास्तव में विक्रेता ही माल का असली स्वामी है अतः उसे ही यह अधिकार है कि वह माल को बेचे तथा क्रेता को माल की सुपुर्दगी दे यदि विक्रेता चोरी के माल को बेचता है तो स्वत्व का अधिकार गलत है तथा क्रेता माल का स्वामी नहीं हो सकता। अधिकार के सम्बन्ध में भारतीय वस्तु विक्रय अनुबंध की अधिनियम 1930 की धारा 27 के अनुसार कोई भी क्रेता अपने माल के विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार नहीं प्राप्त कर सकता। इसका मतलब है विक्रेता को यदि श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त हो तो क्रेता को श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होगा। इस ईकाई में अदत्त विक्रेता का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है। अदत्त विक्रेता से तात्पर्य यह है कि विक्रेता जिसे विक्रय किये गये माल का सम्पूर्ण मूल्य प्राप्त नहीं हुआ है, माल को अपने पास रोक सकता है अथवा मार्ग में रोक सकता है अथवा किसी विशिष्ट दशाओं में माल को पुनः बेच सकता है। इसे ग्रहणाधिकार या विशेषाधिकार भी कहते है।

12.21 शब्दावली

विक्रय अनुबंध का निष्पादन– विक्रय अनुबंध के निष्पादन से तात्पर्य है कि भुगतान तथा सुपुर्दगी एक साथ पूरी होने वाली शर्त है। यहाँ आवश्यक है कि क्रेता तथा विक्रेता अपने कर्त्तव्यों का पालन करें तथा अपने अधिकार सीमा से परे कार्य न करें।

विक्रेता– जो माल बेचता है, वह क्रेता है।

क्रेता– जो माल क्रय करता है, वह क्रेता है।

माल का हस्तांतरण– विक्रय अनुबंध के निष्पादन में विक्रेता से क्रेता को माल का हस्तांतरण होता है।

विक्रेता के कर्त्तव्य– विक्रेता का कर्त्तव्य है कि वह क्रेता को माल की सुपुर्दगी दे तथा वह क्रेता को माल परीक्षण का अवसर दे।

विक्रेता के अधिकार– विक्रेता को यह अधिकार है कि वह क्रेता से माल का मूल्य प्राप्त करें। यदि क्रेता मूल्य देने में आनाकानी करता है तो विक्रेता वाद प्रस्तुत कर सकता है।

क्रेता का कर्त्तव्य– क्रेता का कर्त्तव्य है कि वह माल के मूल्य का भुगतान करें। वह माल की सुपुर्दगी की माँग करें।

क्रेता के अधिकार– क्रेता का अधिकार है कि वह माल की सुपुर्दगी प्राप्त करें। यदि सुपुर्दगी प्राप्त न हो तो क्रेता क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त करता है। उसे अधिकार है कि उसे माल के परीक्षण का अवसर मिले।

माल की सुपुर्दगी– सुपुर्दगी से तात्पर्य "एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल के अधिकार का हस्तांतरण करना है।"

वास्तविक सुपुर्दगी– जब विक्रेता द्वारा क्रेता को वास्तविक माल सुपुर्द किया जाता है तो उसे वास्तविक सुपुर्दगी कहते है।

रचनात्मक सुपुर्दगी– इसके अन्तर्गत माल तो विक्रेता या उसके प्रतिनिधि के पास रहता है, किन्तु माल सम्बन्धी अधिकार पत्र जैसे– रेलवे रसीद (R/R) तथा बिल ऑफ लैडिंग (B/L) क्रेता या उसके प्रतिनिधि को सौप दिया जाता है।

सांकेतिक सुपुर्दगी– जब माल का परिमाण या तौल बहुत अधिक हो तथा हस्तांतरण करना कठिन हो तो विक्रेता केवल संकेत (जैसे गोदाम की कुंजी) प्रदान करता है तो उसे सांकेतिक सुपुर्दगी कहते है।

माल की किस्तों मे सुपुर्दगी– कभी–कभी विक्रेता माल को कई किश्तों में अर्थात कई भाग में क्रेता को सुपुर्द कर सकता है।

स्वत्वाधिकार का हस्तांतरण– सामान्य रूप में माल के प्रयोग का अधिकार क्रेता को हस्तांतरित होता है। माल का अधिकार या स्वत्वाधिकार के हस्तांतरण से तात्पर्य माल के स्वामित्व एवं प्रयोग दोनों का हस्तांतरण क्रेता को होने से है।

अदत्त विक्रेता– अदत्त विक्रेता से तात्पर्य है कि ऐसा विक्रेता जिसे माल का सम्पूर्ण मूल्य प्राप्त न हो। उसे चेक या विनिमय पत्र मिला हो किन्तु बैंक से वह प्रतिष्ठित न हुआ हो।

ग्रहणाधिकार या विशेषाधिकार– ग्रहणाधिकार या विशेषाधिकार से तात्पर्य माल के मूल्य प्राप्त होने तक माल को अपने पास रोके रखना।

माल को मार्ग में रोकना– यदि माल का क्रेता दिवादिया हो गया हो तो अदत्त विक्रेता माल को मार्ग में रोक सकता है।

माल को पुनः बेचना– यदि बेचा गया माल नाशवान प्रकृति का है तो अदत्त विक्रेता उसे पुनः बेच सकता है।

विक्रय अनुबंध का भंग होना– क्रेता द्वारा विक्रय अनुबंध भंग होने पर विक्रेता को उपचार प्राप्त होता है तथा विक्रेता द्वारा अनुबंध भंग होने पर क्रेता को उपचार प्राप्त होता है।

नीलाम द्वारा विक्रय– नीलाम द्वारा विक्रय सार्वजनिक विक्रय का वह स्वरूप है जिसके अन्तर्गत सबसे ऊँची बोली बोलने वाले को माल का विक्रय किया जाता है।

क्रेता को विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार नहीं प्राप्त होना– लैटिन भाषा के शब्द "Nemo dat quod non habet जिसका अर्थ है कि, "कोई भी वह वस्तु नही दे सकता जो उसके अधिकार में नहीं है।" अर्थात क्रेता को विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त नही होता।

अवरोध का सिद्धान्त– यदि माल के वास्तविक स्वामी ने अपने आचरण द्वारा क्रेता को यह विश्वास दिलाया हो कि विक्रेता ही माल का वास्तविक स्वामी है। या माल को बेचने हेतु स्वामी से उसे अधिकार प्राप्त है और क्रेता को इस विश्वास पर माल क्रय करने हेतु प्रेरित किया है तो बाद में वह अर्थात माल का वास्तविक स्वामी यह नही कहेगा कि उसके पास माल को बेचने का अधिकार नही था तो क्रेता को अच्छा अधिकार प्राप्त हो जाता है।

12.22 बोध प्रश्न

सही उत्तर चुनिये–

(i) अदत्त विक्रेता के माल के विरूद्ध अधिकार है–

(अ) ग्रहणाधिकार (ब) माल को मार्ग में रोकने का अधिकार

(स) माल को पुनः बेचने का अधिकार (द) उपरोक्त सभी

(ii) अदत्त विक्रेता के विरूद्ध अधिकार है–

(अ) मूल्य के लिये वाद (ब) क्षतिपूर्ति के लिये वाद

(स) ब्याज के लिये वाद (द) उपरोक्त सभी

(iii) अदत्त विक्रेता माल के पुनः विक्रय के अधिकार का उपयोग कर सकता है–

(अ) जब माल शीघ्र नष्ट होने वाली प्रकृति का हो।

(ब) जब क्रेता भुगतान को तत्पर हो।

(स) जब क्रेता को पुनः बेचने की सूचना नहीं दी गई हो।

(द) इनमें से कोई नहीं।

12.23 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर– (i) (द) (ii) (द) (iii) (अ)]

12.24 स्वपरख प्रश्न

1. विक्रय अनुबंध के निष्पादन से क्या आशय है ?

2. वस्तु विक्रय अनुबंध में सुपुर्दगी की परिभाषा दीजिये तथा इसके नियमों को बताइये।
3. माल की सुपुर्दगी से क्या आशय है ? सुपुर्दगी तथा मूल्य के भुगतान सम्बन्धी नियम बताइए।
4. 'कोई भी व्यक्ति' माल के अपने अधिकार से अच्छा अधिकार क्रेता को नहीं दे सकता। इस कथन को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
5. अदत्त विक्रेता की परिभाषा दीजिए।
6. ग्रहणाधिकार या विशेषाधिकार को स्पष्ट कीजिए।
7. अवरोध द्वारा सिद्धान्त को समझाइये।
8. नीलाम द्वारा विक्रय को बताइये।

12.25 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई–13 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उपभोक्ता संरक्षण का अर्थ
13.3 उपभोक्ता के सामान्य अधिकार
13.4 भारत में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता एवं महत्व
13.5 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 का संक्षिप्त परिचय
13.6 अधिनियम के उद्देश्य
13.7 उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम 2002 के प्रावधान
13.8 परिभाषाएं
13.9 उपभोक्ता संरक्षण परिषदें
13.10 विवाद निवारण ऐजेन्सीज
13.11 विविध
13.12 सारांश
13.13 शब्दावली
13.14 बोध प्रश्न
13.15 बोध प्रश्न के उत्तर
13.16 स्वपरख प्रश्न
13.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- उपभोक्ता संरक्षण का अर्थ समझ सकें।
- उपभोक्ता के अधिकारों को समझ सकें।
- उपभोक्ता अधिनियम 1986 के नियमों को जान सकें।
- उपभोक्ता संरक्षण संशोधित अधिनियम 2002 के नियमों को जान सकें।
- उपभोक्ता संरक्षण परिषदों को समझ सकें।
- विवाद निवारण ऐजेन्सियों के बारे में जान सकें।

13.1 प्रस्तावना

वर्तमान अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता व्यावसायिक जगत का केन्द्र माना जाता है। **'ग्राहक सदैव ठीक है'** , **'उपभोक्ता बाजार का राजा है'**, **'ग्राहक ही परम परमेश्वर है'** आदि नारे उपभोक्ता के महत्व का संकेत देते है। उपभोक्ता की आवश्यकतानुसार ही उत्पादन एवं वितरण किये जाने तथा उपभोक्ता की सन्तुष्टि से ही व्यावसायिक इकाइयाँ लाभ कमाती है। जिस उत्पादन से उपभोक्ता की सन्तुष्टि अधिक होगी उसकी बिक्री भी अधिक होगी। बिक्री अधिक होने पर उसका उत्पादन बड़े पैमाने पर होगा और व्यावसायिक इकाई को बड़ी मात्रा में उत्पादन की मितव्ययिताएँ प्राप्त होगी। इससे लाभ में भारी वृद्धि होगी।

उपभोक्ता के इतने ज्यादा महत्वपूर्ण होने के बावजूद भी उपभोक्ता केवल नाम के राजा के समान है जो राजा होते हुए भी अधिकारों एवं सुविधाओं से सवर्था वंचित रहता है।

उसका शोषण कभी कम माप–तौल के कारण तो कभी वस्तुओं की घटिया किस्म के कारण, कभी मिलावट करके, कभी नकली वस्तुएँ उपलब्ध कराके, कभी वस्तुओं की कालाबाजारी, कभी मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि करके किया जाता है। दैनिक उपभोग में व्यापक मिलावट, घटिया किस्म की दवाएँ एवं बिजली उपकरण तथा खतरनाक रसायनों से उपभोक्ताओं के जीवन से खिलवाड़ किया जाता है।

अतएव उपभोक्ता वर्ग को शोषण से संरक्षण देने हेतु ही भारत में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 एक ऐतिहासिक एवं महत्वपूर्ण प्रभावी कदम है।

13.2 उपभोक्ता संरक्षण का अर्थ

उपभोक्ता संरक्षण से आशय उन सभी उपायों से है जो कि उपभोक्ता को उनका विभिन्न रूप में होने वाले शोषण से मुक्ति प्रदान करने में सहायक है। उपभोक्ता के मुख्य अधिकारों व हितों को सुरक्षा प्रदान करना ही उपभोक्ता संरक्षण है। उपभोक्ताओं के अधिकारों एवं हितों की रक्षा करने में उपभोक्ता चेतना, उपभोक्ता शिक्षा, वैधानिक अधिनियम, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, प्रदूषण की रोकथाम के उपाय आदि सहायक होते है।

13.3 उपभोक्ता के सामान्य अधिकार

उपभोक्ता को विभिन्न अधिकार प्राप्त है। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति **जॉन एफ. कैनेडी व जॉनसन** पहले व्यक्ति थे जिन्होने उपभोक्ता के अधिकारों को निम्नवत् रूप में सूत्रबद्ध किया–

(1) सुरक्षा का अधिकार,

(2) चुनाव का अधिकार,

(3) जानने का अधिकार,

(4) सुनवाई का अधिकार,

बाद में इन अधिकारों में **पाँचवाँ अधिकार जोड़ा गया जिसे 'मूल्य के अधिकार'** के रूप में जाना जाता है।

भारत के उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की टिप्पणी तथा **धारा** 6 में उपभोक्ता के अधिकारों को बताया गया है। इनमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य आठ अधिकारों में से सात अधिकार है। आठवाँ अधिकार 'पर्यावरण का अधिकार' हमारे देश में सम्मिलित नहीं है।

1. **सुरक्षा का अधिकार**– सुरक्षा का अधिकार उपभोक्ता को समस्त ऐसी वस्तुओं के विपणन के लिए सुरक्षा प्रदान करने में सहायक है जो कि उसके स्वास्थ्य एवं जीवन के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं, जैसे– वस्तुओं में मिलावट एवं खतरनाक रसायन आदि। इस प्रकार उपभोक्ता को माल एवं सेवाओं (जो हानिकारक हो) से सुरक्षा प्रदान की जाती है।

2. **चयन करने का अधिकार**– चयन के अधिकार के अन्तर्गत वह विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं में से अपनी इच्छा एवं आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त वस्तु अथवा सेवा का चयन कर सकता है। उसे किसी वस्तु अथवा सेवा को क्रय करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। उपभोक्ता व्यापक उत्पादों में से कोई भी उत्पाद चुन सकता है।

3. **सूचना पाने का अधिकार**– कोई वस्तु अथवा सेवा क्रय करने से पूर्व उपभोक्ता उसके सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाएँ जैसे– वस्तु की किस्म, स्तर, मूल्य,

उपयोग, वजन, नाप–तौल आदि को प्राप्त कर सकता है। इसीलिए सभी आवश्यक सूचनाएँ उत्पाद के पैकेट पर देनी होती है।

4. **सुने जाने का अधिकार–** उपभोक्ता का यह अधिकार है कि उसकी परिवेदनाओं तथा सुरक्षा एवं हितों के संरक्षण से सम्बन्धित विचारों को सुना जाय। बहुत से व्यावसायिक संस्थानों ने अपने सेवा एवं शिकायत प्रकोष्ठ स्थापित किये है।

5. **उपचार का अधिकार–** उपभोक्ता को परिवेदनाओं एवं शिकायतों का उचित न्यायपूर्ण उपचार अथवा समाधान प्रदान किया गया है तथा वह न्यायालय की शरण ले सकता है।

6. **उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार–** उपभोक्ता को अधिकार है कि वह जीवन भर ज्ञान व सूचनाएँ प्राप्त करें। ऐसी जानकारी मिलावट जाँचने की विधि, नाप–तौल की विधि आदि के सम्बन्ध में हो सकती है।

7. **मूल्य अथवा प्रतिफल का अधिकार–** उपभोक्ता चुकाये गये धन, वस्तु विक्रय के दौरान अथवा विज्ञापन में किये गये वायदों एवं जगाई गई आशाओं को पूरा करने का अधिकार रखता है।

13.4 भारत में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता एवं महत्व

उपभोक्ताओं के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता उस समय अनुभव हुई, जब उपभोक्ताओं को सही मूल्य पर सही मात्रा में सही किस्म की सही समय पर सही वस्तुएँ उपलब्ध होने में कठिनाई होने लगी तथा वितरण श्रृंखलाओं ने भ्रामक सूचनाओं तथा विभिन्न प्रकार से उपभोक्ताओं को जाने की विधियों द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण किया।

भारत में उपभोक्ताओं के संरक्षण हेतु उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता इसलिए हुई क्योंकि भारतीय उपभोक्ता बाजार दुनिया के सबसे बड़ा उपभोक्ता बाजार की स्थिति प्राप्त करने जा रहा है तथा उस अनुपात में उपभोक्ताओं को प्राप्त सुविधाएँ नगण्य है।

भारत में अधिकांश उपभोक्ता गरीब, असहाय एवं अज्ञानी है। यहाँ अधिकांश बाजार में **विक्रेता का बाजार** है तथा अधिकांश विक्रेता भ्रष्ट, धोखेबाज एवं मुनाफाखोरी करने वाले है। दैनिक जीवन तक में प्रयोग में आने वाली वस्तुओं में मिलावट, घटिया दवाएँ एवं बिजली के उपकरण और खतरनाक रसायन से उपभोक्ताओं के जीवन को खतरा दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है।

वर्तमान में भारत के सन्दर्भ में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की सर्वाधिक आवश्यकता निम्नवत् कारणों से है–

1. **सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति जागरूकता लाना–** व्यवसायियों मे सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति चेतना लाने के प्रयास किये जा रहे है क्योंकि गलत तरीकों से अधिकाधिक लाभ कमाने की लालसा उन्हें सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन बना रही है।

2. **शोषण की प्रवृत्ति से रक्षा करने के लिए–** व्यवसायियों द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण करने के लिए कम तोलना, उपभोग की वस्तुओं में मिलावट करना, कृत्रिम कमी उत्पन्न कर देना, कालाबाजारी करना आदि तरीके अपनाये जाते है। तथा उपभोक्ता आसानी से व्यवसायियों की शोषण करने की मनोवृत्ति से बचाने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम आवश्यक है।

3. **उपभोक्ता को जागरूक करने के लिए–** सामान्य उपभोक्ता अपने अधिकारों के प्रति उदासीन है तथा उसे अपने अधिकारों की जानकारी नहीं है। वह कुछ करने के लिए अपने आपको पूर्णतः अकेला, असहाय एवं निष्क्रीय अनुभव करता है।

4. **आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध कराने हेतु–** सामान्य उपभोक्ता को वस्तुओं की गुणवत्ता, शुद्वता, उपयोगिता, मूल्य–स्तर आदि के बारे में जानकारी कराना परम आवश्यक है। उपभोक्ता के इस मूलभूत अधिकार की क्रियान्विति के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता है।

5. **शिकायतों का निपटारा करने के लिए–** उपभोक्ताओं को शिकायतें करने का अधिकार प्राप्त है तथा उनकी शिकायतों का निपटारा यथाशीघ्र करने की भी व्यवस्था है।

6. **एकाधिकारी मनोवृत्ति से मुक्ति प्रदान करने के लिए–** व्यवसायियों के अनाधिकृत संयोजनों से वस्तुओं के उत्पादन तथा वितरण पर एकाधिकार स्थापित कर लेने की प्रवृत्ति से उपभोक्ताओं का शोषण होता है। इस प्रकार उपभोक्ताओं को एकाधिकारी व्यावसायिक संगठनों के शोषण का शिकार होना पड़ता है। इस अनुचित एकाधिकारी मनोवृत्ति से उपभोक्ताओं को बचाने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता है। प्रदूषण की दूषित बीमारी के प्रति उपभोक्ता को सुरक्षा प्रदान करने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता है।

मानव कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि सभी मनुष्यों को उपभोग के लिए पर्याप्त मात्रा में सस्ती, सुन्दर, शुद्ध एवं सही गुणवत्ता वाली वस्तुएँ उपलब्ध हो। इसलिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम आवश्यक है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता के कुछ अन्य कारण निम्नवत् है– (i) उत्पाद की गुणवत्ता के प्रति जागरूक करने के लिए; (ii) उपभोग के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए, (iii) गुणवत्ता वाली वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करेन के लिए (iv) वितरण प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिए, (v) जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने के लिए, (vi) उपभोक्ताओं को मानसिक तनाव से मुक्ति प्रदान करने के लिए आदि।

13.5 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 का संक्षिप्त परिचय

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 का प्राथमिक उद्देश्य उपभोक्ताओं के हितों को अच्छे तरीके से रक्षा करना तथा इस उद्देश्य के लिए उपभोक्ता विवादों तथा अन्य सम्बन्धित मामलों का निपटारा करने के लिए उपभोक्ता परिषदों तथा अन्य एजेन्सियों की स्थापना करना है। यह एक व्यापक अधिनियम है। इसमें उपभोक्ताओं की शिकायतों तथा अन्य सम्बन्धित मामलों को निपटाने के लिए उपभोक्ता परिषदों एंव अन्य सत्ताओं की स्थापना का प्रावधान किया गया है। यह अधिनियम 24 दिसम्बर, 1986 को संसद द्वारा पारित हुआ। 15 अप्रैल, 1987 से जम्मू कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू हुआ। स्थापना, गठन एवं क्षेत्र से सम्बन्धित धाराएँ 1 जुलाई, 1987 से लागू हुई है। यह अधिनियम सभी माल एवं सेवाओं, छोटे व बड़े उपक्रमों, चाहे वे निजी क्षेत्र में हो या लोक क्षेत्र में पर लागू होता है।

इस अधिनियम में 31 धाराएँ जो कि चार अध्यायों में विभक्त है– पहला अध्याय है **प्रारम्भिक** (1 से 3 तक की धाराएँ), दूसरा अध्याय है **उपभोक्ता संरक्षण परिषदें** (4 से 8 तक की धाराएँ) तीसरा अध्याय **उपभोक्त विवाद निवारण एजेन्सीज** (9 से लेकर 27 तक धाराएँ) तथा चौथा अध्याय है **विविध** (28 से लेकर 31 तक धाराएँ) है। प्रस्तुत अधिनियम उपभोक्ता की शिकायतों को शीघ्र तथा कम व्यय पर हल करेन की व्यवस्था करता है। इस अधिनियम में उपभोक्ता वर्ग को कुछ अधिकार दिये गये है।

13.6 अधिनियम के उद्देश्य

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के निम्नलिखित उद्देश्य है–

1. उपभोक्ता के हितों का श्रेष्ठ संरक्षण करना–

उपभोक्ताओं के हितों का श्रेष्ठ संरक्षण करने के लिए इसमें उपभोक्ता विवादों का निपटारा करने के लिए उपभोक्ता परिषद् तथा अन्य फोरमों की स्थापना का प्रावधान है।

2. अधिकारों का संवर्द्धन एवं संरक्षण करना–

अधिनियम का उद्देश्य उपभोक्ताओं के विभिन्न अधिकारों का संवर्द्धन एवं संरक्षण करना है। उद्देश्यों का संवर्द्धन एवं संरक्षण केन्द्र एंव राज्यों के स्तर पर स्थापित व्यवसाय संरक्षण परिषदों द्वारा किया जाता है।

3. विवादों का शीघ्र एंव सरल निपटारा करने के लिए न्यायिक तन्त्र की स्थापना–

उपभोक्ता के विवादों का शीघ्र एवं सरल ढंग से निपटारा करने के लिए जिला, राज्य तथा केन्द्रीय स्तर पर अर्द्ध–सरकारी न्यायिक तन्त्र की स्थापना किये जाने का प्रावधान है। अधिनियम त्रि–स्तरीय शिकायत निपटारा तन्त्र की स्थापना करने की व्यवस्था करता है। जिला फोरम, राज्य उपभोक्ता समाधान आयोग तथा राष्ट्रीय आयोग की स्थापना क्रमशः जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर की गयी है।

13.7 उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम 2002 के प्रावधान

अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों को निम्नवत् दिया जा रहा है–

प्रारम्भिक–

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का अध्याय 1 प्रारम्भिक बातों से सम्बन्धित है जिसमें शीर्षक, क्षेत्र, इसके लागू होने की परिभाषाओं के बारे में प्रावधान किया गया है–

शीर्षक, क्षेत्र, प्रारम्भ एवं प्रयुक्ति [धारा 1]

1. **संक्षिप्त शीर्षक–** इस अधिनियम का नाम उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 2002 है।

2. **क्षेत्र–** यह अधिनियम जम्मू कश्मीर राज्य को छोड़कर शेष सम्पूर्ण भारत में प्रभावी होता है।

3. **प्रयुक्ति–** प्रस्तुत अधिनियम सभी माल व सेवाओं पर लागू होता है जब तक कि केन्द्रीय सरकार किसी माल अथवा सेवा को इस अधिनियम के प्रावधानों से पृथक् न कर दें।

अधिनियम के लक्ष्य

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 2002 के प्रमुख लक्ष्य निम्नलिखित है–

(i) अधिनियम के कार्यक्षेत्र को व्यापक बनाना, ताकि उपभोक्ता प्रतिबन्धित व्यापार व्यवहार से सम्बन्धित अपनी शिकायतें प्रस्तुत कर सके।

(ii) स्व–रोजगार में लगे उपभोक्ताओं द्वारा अपने व्यापार हेतु क्रय की गई वस्तुओं के दूषित पाये जाने पर संस्था के समक्ष शिकायत पेश करना।

(iii) भवन निर्माण से सम्बन्धित सेवाओं को शामिल करना।

(iv) जिला मंच, राज्य आयोग तथा राष्ट्रीय आयोग में प्रस्तुत की जाने वाली शिकायतों के सम्बन्ध में मौद्रिक सीमा को बढ़ाना।

(v) शिकायतें सुनने वाली एजेन्सियों के अधिकार को बढ़ाना।

(vi) मिथ्या शिकायतें करने वालों के विरूद्ध दण्डात्मक कार्यवाही करना।

(vii) एक वर्ष की समय सीमा के भीतर पेश की गयी शिकायतों हेतु प्रावधान करना।

13.8 परिभाषाएँ [धारा 2]

जब तक विषय या सन्दर्भ से कोई प्रतिकूल अर्थ न निकले, परिभाषित शब्दों का अर्थ इस धारा की उप–धाराओं मे बताए अनुसार रहेगा–

1 उचित प्रयोगशाला

उपयुक्त प्रयोगशाला का आशय ऐसी प्रयोगशाला या संगठन से है जो कि–

(i) केन्द्रीय सरकार से मान्य हो,

(ii) केन्द्रीय सरकार द्वारा दिशानिर्देशों के अनुरूप राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हो,

(iii) देश में लागू किसी विधान द्वारा अथवा उसके अधीन स्थापित कोई भी प्रयोगशाला या संगठन जो किसी माल का विश्लेषण या जाँच करने के लिए केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस विचार को सुनिश्चित करने लिए उक्त माल में कोई दोष है या नहीं, संचालित, वित्त पोषित अथवा सहायता प्राप्त हो।

2 शिकायतकर्ता या परिवादी– [धारा 2 (1) (b)]

शिकायतकर्ता से अभिप्रेत है–

(i) किसी भी उपभोक्ता से है।

(ii) ऐसी स्वैच्छिक उपभोक्ता संस्था से है जिसका पंजीयन कम्पनी अधिनियम, 1956 अथवा तत्सम प्रचलित किसी अन्य संविधि के अन्तर्गत हुआ हो।

(iii) देश में प्रचलित किसी भी अन्य संविधि के अन्तर्गत पंजीकृत स्वैच्छिक उपभोक्ता संघ।

(iv) केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार से है।

(v) समान प्रकार का हित रखने वाले उपभोक्ताओं की दशा में उनकी ओर से एक अथवा अधिक उपभोक्ता से है।

3 शिकायत का परिवाद– [धारा 2 (1) (c)]

शिकायत का आशय शिकायतकर्ता द्वारा इस अधिनियम के अधीन राहत प्राप्त करने के लिए लिखित रूप में प्रस्तुत किये गये किसी दोषारोपण से है जो–

(i) किसी व्यापारी अथवा सेवा प्रदाता द्वारा अपनाये गये किसी अनुचित व्यापार–व्यवहार या प्रतिबन्धात्मक व्यापार–व्यवहार के कारण हो जिसके परिणामस्वरूप शिकायतकर्ता को कोई हानि उठानी पड़ी हो,

(ii) शिकायत में वर्णित माल में एक अथवा एक से अधिक दोष विद्यमान हो,

(iii) उसके द्वारा किराये पर ली गई या प्राप्त की गई सेवाओं अथवा उन सेवाओं, जिनकों किराये पर लेने या प्राप्त करने का ठहराव किया गया हो, एक या अधिक दोष हों,

(iv) शिकायत में वर्णित माल के लिए किसी व्यापारी अथवा सेवा प्रदाता ने निर्धारित मूल्य से अथवा उस समय प्रचलित विधान के अधीन निश्चित मूल्य से अधिक मूल्य प्राप्त किया हो अथवा माल पर या उसके पैकेज पर आधिक मूल्य अंकित किया हो,

(v) व्यापारी अथवा सेवाप्रदाता ऐसे माल की बिक्री हेतु प्रस्तुति जो जीवन एवं सुरक्षा के लिए खतरनाक हो अथवा उन नियमों के विरूद्ध हो जिनके अन्तर्गत ऐसे माल के संघटक तत्व, उपयोग के ढंग एवं प्रभाव के सम्बन्ध में सूचना का प्रदर्शन अनिवार्य हो, अथवा व्यापारी या सेवा प्रदाता पर्याप्त परिश्रम से यह पता लगा सकता हो कि माल जनता के लिए असुरक्षित है।

(vi) सेवाएँ, जो कि उपयोग होने पर जनता की सुरक्षा की दृष्टि से खतरनाक है या खतरनाक हो सकती है, सेवा प्रदाता द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

4 उपभोक्ता

(a) कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने प्रतिफल के बदले किसी माल को खरीदा हो जिसका भुगतान कर दिया गया हो अथवा भुगतान करने का वचन दिया हो अथवा आंशिक भुगतान एवं आंशिक वचन दिया हो अथवा किसी प्रणाली के अधीन भुगतान स्थगित कर दिया हो।

व्यापारिक उद्देश्य तब तक नहीं माना जायेगा जब तक कि कोई व्यक्ति स्वरोजगार द्वारा अपनी आजीविका चलाने के लिए कोई माल खरीदता अथवा उपयोग नही करता है। इसमें ऐसा व्यक्ति सम्मिलित नहीं किया जाता है जो माल को पुनः विक्रय अथवा वाणिज्यिक उद्देश्य से प्राप्त करता हो।

(b) ऐसा व्यक्ति जो प्रतिफल के बदले किन्हीं ऐसी सेवाओं को किराये पर लेता है जिनका भुगतान कर दिया हो अथवा भुगतान करने का वचन दिया हो अथवा किसी प्रणाली के अधीन भुगतान स्थगित कर दिया हो। इसमें ऐसी सेवाओं से लाभ उठाने वाले व्यक्ति को भी शामिल करते है जिसने सेवाओं का लाभ किसी ऐसे व्यक्ति के अनुमोदन पर उठाया हो।

उपभोक्ता में ऐसे व्यक्ति को सम्मिलित नहीं किया जायेगा जो किसी वाणिज्यिक उद्देंश्य के लिए सेवाएँ उपलब्ध कराता है।

निम्नलिखित उपभोक्ता नहीं है : उपभोक्ता में निम्नलिखित को सम्मिलित नहीं किया जाता है– (i) व्यक्ति जो किसी वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए माल खरीदता है। (ii) व्यक्ति जिसने माल का क्रय नहीं किया है। एक व्यक्ति तब तक शिकायत नहीं कर सकता जब तक कि उसने माल क्रय नहीं किया हो अथवा सेवाओं का

उपयोग नही किया हो। यह शर्त स्वैच्छिक उपभोक्ता संस्थाओं अथवा सरकार द्वारा प्रस्तुत की गई शिकायत की स्थिति में प्रभावी न होगी।

इस प्रकार उपभोक्ता से आशय ऐसे व्यक्ति से है–

(i) जो माल को प्रतिफल के बदले उपयोग के लिए खरीदता हो,

(ii) जो माल का उपयोग क्रेता की अनुमति से करता हो,

(iii) जो माल का क्रय अथवा सेवा का क्रय या सेवा को किराये पर प्रतिफल दे चुका हो अथवा देने का वचन देता हो,

(iv) माल या सेवा का प्रतिफल दे चुका हो अथवा देने का वचन देता हो,

(v) जो प्रतिफल के फलस्वरूप किराये पर माल अथवा सेवाएँ लेता हो,

(vi) जो किराये पर लेने वाले व्यक्ति की आज्ञा से सेवाओं का उपयोग करता हो,

(vii) जो अस्थगित भुगतान अथवा विलम्बित भुगतान विधि अथवा किस्त भुगतान विधि के अन्तर्गत भुगतान करने का वचन देता हो।

अपवाद

यदि माल को पुनः विक्रय या वाणिज्यिक प्रयोगन के लिए प्राप्त किया जाय तो वह उपभोक्ता नहीं है।

5. **उपभोक्ता विवाद**– [धारा 2 (1) (e)]

उपभोक्ता विवाद से आशय ऐसे विवाद से है जिसके अन्तर्गत वह व्यक्ति जिसके विरूद्ध शिकायत की गई है, शिकायत से सम्बन्धित आरोपों का प्रतिवाद करता है।

6 **दोष** [धारा 2 (1) (f)]

दोष से आशय किसी माल की किस्म, मात्रा, क्षमता, शुद्धता अथवा मानक जिसे उस समय प्रचलित किसी विधान के अधीन व्यापारी द्वारा, किसी भी ढंग से, माल के सम्बन्ध में बनाये रखना आवश्यक हो, में किसी त्रुटि, अपूर्णता अथवा कमी से है।

7 **कमी** [धारा 2 (1) (g)]

कमी से आशय निष्पादन की किस्म, प्रकृति तथा निष्पादन का ढंग, जिसे उस समय लागू किसी विधान के अधीन व्यक्ति द्वारा किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत या सेवा के सम्बन्ध में निष्पादन का दायित्व लिया हो, में त्रुटि, अपूर्णता, कमी अथवा अपर्याप्तता से है।

8 **जिला मंच** [धारा 2 (1) (h)]

जिला मंच से आशय ऐसे उपभोक्ता विवाद निवारण मंच से है जिसकी स्थापना धारा 9 (a) के अधीन की गई हो।

9 **माल** [धारा 2 (1) (i)]

माल से आशय उस माल से है जिसे वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930 (3) में परिभाषित किया गया है।

वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930 की धारा 2 (7) के अनुसार माल से आशय "प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति से है, जिसमें अभियोज्य दावे एवं मुद्रा सम्मिलित नही होते, किन्तु स्कंध व अंश, खड़ी फसलें, घास तथा ऐसी वस्तुयें जो भूमि से जुड़ी हो।"

10 **विनिर्माता से आशय उस व्यक्ति से है जो–**

(i) किसी माल अथवा उसके किसी भाग को बनाता अथवा निर्मित करता हो, या

(ii) स्वयं तो किसी माल को बनाता अथवा निर्मित नहीं करता हो किन्तु दूसरे के द्वारा बनाये अथवा निर्मित किये गये हिस्सों को जोड़ता हो तथा अन्तिम उत्पाद को स्वयं द्वारा निर्मित घोषित करता हो, अथवा

(iii) दूसरे निर्माताओं द्वारा निर्मित माल पर स्वयं का चिन्ह लगाता हो अथवा लगाने देता हो तथा उक्त माल को स्वयं द्वारा निर्मित हुआ माल घोषित करता हो।

11 **सदस्य** [धारा 2 (1) (j)]

सदस्य में अध्यक्ष तथा राष्ट्रीय आयोग, राज्य आयोग तथा जिला मंच का सदस्य भी आता है।

12 **राष्ट्रीय आयोग** [धारा 2 (1) (k)]

राष्ट्रीय आयोग से आशय राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग से है जिसकी स्थापना इस अधिनियम की धारा 9 (c) के अधीन हुई हो।

13 **व्यक्ति** [धारा 2 (1) (m)]

व्यक्ति में निम्न को शमिल किया जायेगा–

(i) कोई फर्म चाहे पंजीकृत हो अथवा नहीं,

(ii) कोई अविभाजित हिन्दू परिवार,

(iii) कोई सहकारी समिति,

(iv) अन्य व्यक्तियों की संस्था चाहे उसका समिति पंजीयन अधिनियम के अधीन पंजीयन हुआ हो या नहीं।

14 **नियमन** [धारा 2 (1) (nn)]

नियमन से आशय इस अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रीय आयोग द्वारा बनाये गये नियमन से है।

15 **प्रतिबन्धित व्यापार–व्यवहार** [धारा 2 (1) (nnn)]

प्रतिबन्धित व्यापार व्यवहार से आशय उस व्यापार–व्यवहार से है जो कि मूल्य अथवा सुपुर्दगी की शर्तो अथवा बाजार में माल अथवा सेवाओं के प्रवाह को आकर्षित करने के लिए किया गया हो तथा उपभोक्ताओं पर अनुचित लागतों अथवा प्रतिबन्धों को आरोपित करता हो। इसमें मूल्य वृद्धि के लिए व्यापारी द्वारा माल/सेवाओं की पूर्ति में विलम्ब करने अथवा माल को किराये पर लेने अथवा क्रय से पूर्व माल को प्राप्त करने सम्बन्धी व्यापार व्यवहार भी शामिल है।

कोई भी विक्रेता किसी माल या सेवा के विक्रय करते समय क्रेता को किसी वस्तु या सेवा का क्रय करने के लिए बाध्य नही कर सकता।

16 **सेवा [धारा 2(1) (o)]**

सेवा से आशय किसी भी विवरण की ऐसी सेवा से है जो कि सम्भावित उपयोगकर्ता के लिए उपलब्ध की गई हो तथा इसमें बैकिंग, वित्त, बीमा, परिवहन, माल तैयार करने, विद्युत अथवा ऊर्जा की आपूर्ति, भोजन या रहने का अस्थायी स्थान या दोनों, आवास निर्माण, मनोरंजन या नवीन समाचारों या अन्य सूचनाओं को प्रदान करने के सम्बन्ध में प्रदान की गई सुविधाएँ भी आती है। इसमें किसी

ऐसी सेवा को सम्मिलित नहीं किया जाता हो जो कि निःशुल्क हो अथवा किसी व्यक्तिगत सेवा के अनुबन्ध के अधीन प्रदान की गई हो।
सरकारी अस्पतालों में निःशुल्क उपचार मिलने के कारण इसे सेवा में शामिल नहीं किया जाता।

17 **भ्रामक माल एवं सेवाएँ** [धारा 2 (1) (oo)]
भ्रामक माल अथवा सेवा से अभिप्राय ऐसे माल अथवा सेवा से है जो कि शुद्ध बतलायी गई हो किन्तु वास्तव में ऐसा न हो।

18 **राज्य आयोग** [धारा 2 (1) (p)]
राज्य आयोग से अभिप्राय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग से है जिसकी स्थापना धारा 9 (b) के अन्तर्गत की गई हो।

19 **व्यापारी** [धारा 2 (1) (q)]
माल के सम्बन्ध में व्यापारी से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो विक्रय के उद्देश्य से माल को बेचता है अथवा उसका वितरण करता है तथा इसमें निर्माता भी सम्मिलित है। माल का विक्रय अथवा वितरण पैकेज के रूप में होने पर उसकी पैकिंग करने वाला भी व्यापारी में शामिल किया जाता है।

20 **अनुचित व्यापार–व्यवहार** [धारा 2 (1) (r)]-
अनुचित व्यापार–व्यवहार से आशय उस व्यापारिक व्यवहार से है जिसके द्वारा किसी वस्तु का विक्रय, उपभोग या आपूर्ति बढ़ाने के लिए या सेवाओं की व्यवस्था करने के लिए निम्नलिखित में से एक या अधिक प्रकार के अनुचित तरीके या धोखाधड़ीपूर्ण व्यवहार का उपयोग किया जाता है–

(I) लिखित, मौखिक या प्रत्यक्ष प्रदर्शन द्वारा होने वाला कोई कथन हो–

(i) माल के किसी विशेष मानक, किस्म, श्रेणी, मिश्रण, शैली या प्रतिरूप के सम्बन्ध मे मिथ्या प्रस्तुतिकरण करता हो।

(ii) सेवा के किसी विशेष मानक, किस्म या श्रेणी के सम्बन्ध में मिथ्या प्रस्तुतिकरण करता हो।

(iii) पुनः निर्मित, पुराने, नवीनीकृत या पुनः अनुकूलित वस्तुओं को नया बताता हो।

(iv) माल या सेवाओं के बारे में ऐसा प्रयोजन, अनुमोदन, कार्य निष्पादन, विशेषताएँ, अतिरिक्त सामग्री प्रयोग अथवा उपयोगिताएँ बताना जो वास्तव में नही होता है।

(v) वस्तु या सेवा के उपयोग के सम्बन्ध में मिथ्या प्रचार करने के सम्बन्ध में है।

(vi) बिना किसी आधार पर किसी वस्तु या माल की उपयुक्तता, क्षमता या जीवन काल आदि को शर्त अथवा आश्वासन के रूप में जनता में प्रचार करना।

(vii) उपयुक्त जाँच के बिना किसी वस्तु की निष्पादन क्षमता, उपादेयता अथवा आयु सीमा के सम्बन्ध में गारण्टी या आश्वासन देना।

(viii) जनता में ऐसा प्रचार करना जिसका अभिप्राय–

(a) वस्तु अथवा सेवा के लिए वारण्टी अथवा गारण्टी देना हो,

(b) वस्तु या उसके किसी भाग को प्रतिस्थापित करने, रख–रखाव या उसकी मरम्मत करने का वचन देना जब तक वह वस्तु विशिष्ट परिणाम प्राप्त न कर सकें।

(ix) उत्पाद या सेवा को विक्रय किये जाने या विक्रय किये जाने वाली कीमत के विषय में भ्रम उत्पन्न करना।

(x) अन्य व्यक्ति के माल अथवा सेवाओं के विषय में झूठी अथवा भ्रमपूर्ण बातें करना जिससे अन्य के माल या सेवा या व्यापार को खराब नाम मिले।

(II) **सौदेबाजी मूल्यों अथवा प्रलोभन के द्वारा विक्रय के विज्ञापन करना–** जब वह किसी ऐसे विज्ञापन के समाचार पत्र अथवा अन्य प्रकार से प्रकाशन की आज्ञा देता है जिसमें **सौदाकारी मूल्य पर माल बेचने का प्रस्ताव** हो तथा विक्रेता उस मूल्य पर माल बेचने की इच्छा न रखता हो या कम से कम माल के विक्रय की इच्छा न रखता हो, तब तक यह अनुचित व्यापार माना जायेगा।

(III) व्यापारी द्वारा **उपहार, पुरस्कार या अन्य वस्तुओं को देने का प्रस्ताव** जब वास्तव में उसका ऐसा कोई इरादा नहीं है।

किसी वस्तु की बिक्री अथवा व्यावसायिक हित को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से किसी **प्रतियोगिता, लॉटरी, भाग्य या कौशल का खेल** आदि का आयोजन करना अनुचित व्यापार है।

इसमें ऐसी योजना मे भागिता से रोकना भी सम्मिलित है जो कि उपहार, पुरस्कार अथवा अन्य निःशुल्क सामान प्रदान करती हो।

(IV) ऐसे माल की पूर्ति या बिक्री की आज्ञा प्रदान करना जिसके बारे में विनिर्माता यह जानता है कि माल के प्रयोग में आने वाली जोखिम को कम करने या रोकने की दृष्टि से वस्तु के कार्य निष्पादन, सामग्री, डिजाइन, निर्माण, फिनिशिंग अथवा पैकेजिंग के सम्बन्ध में **निर्धारित स्तर–मानों का प्रयोग नहीं किया जा रहा है।**

(IV) कीमत बढ़ाने के उद्देश्य से **माल की जमाखोरी करना, उसे नष्ट करना अथवा विक्रय से इन्कार करना** जिससे माल की आपूर्ति सीमित हो जाये।

13.9 उपभोक्ता संरक्षण परिषदें– [धारा 4 से 8 तक]

(I) केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद्

स्थापना [धारा (1)] – केन्द्रीय सरकार अधिसूचना जारी करके निर्धारित तिथि से केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् की स्थापना करेगी।

गठन [धारा 4 (1)] – केन्द्रीय सरकार इस परिषद् में विभिन्न विभागों व क्षेत्रों के सरकारी तथा गैर–सरकारी सदस्यों को नामांकित करेगी। केन्द्रीय सरकार के खाद्य व नागरिक आपूर्ति मन्त्री इसके अध्यक्ष होंगे।

केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् का कार्यकाल तीन वर्ष रहेगा।

इस परिषद् के किसी पद के खाली हो जाने पर उस पद पर पुनः उसी वर्ग का प्रतिनिधि सदस्य नियुक्त किया जायेगा तथा ऐसे सदस्य का कार्यकाल परिषद् के कार्यकाल की समाप्ति पर समाप्त हो जायेगा। आवश्यकता के समय चाहे जब इसकी सभा बुलायी जा सकती है किन्तु एक वर्ष में कम से कम तीन सभाएँ होना आवश्यक है तथा सभा का समय व स्थान अध्यक्ष द्वारा निर्धारित किया जायेगा।

धारा 5 के अनुसार, सभा में भाग लेने के लिए कम से कम 10 दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक है।

केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद के उद्देश्य [धारा 6]

इसका उद्देश्य देश मे उपभोक्ताओं के निम्न अधिकारों का संवर्द्धन एवं संरक्षण करना है जैसे–

(i) घातक माल के विपणन के विरूद्ध संरक्षण पाने का अधिकार।

(ii) माल की किस्म, मात्रा, शुद्धता तथा मूल्य के बारे में सूचना पाने का अधिकार।

(iii) उपभोक्ताओं को सुनने तथा विश्वास दिलाने का अधिकार।

(iv) अनुचित व्यापार–व्यवहार के विरूद्ध निवारण पाने का अधिकार तथा

(v) उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार।

(II) **राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषदें**

धारा 7 (1) के अनुसार, राज्य सरकार अधिसूचना में निर्दिष्ट विधि से राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद् की स्थापना करेगी।

गठन– राज्य परिषद का गठन निम्न प्रकार से किया जाये।

(i) राज्य सरकार के उपभोक्ता मामलों का प्रभारी मन्त्री अध्यक्ष।

(ii) सरकारी या गैर–सरकारी सदस्य जो राज्य सरकार द्वारा समय–समय पर अधिसूचना किये जायें।

(iii) अन्य अधिकारियों, सरकारी अथवा गैर–सरकारी अधिकारीयों की संख्या 10 से अधिक नहीं होगी। इनकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जायेगी।

इसकी सभा आवश्यकता के समय बुलायी जा सकती है। एक वर्ष में कम से कम 2 सभाएँ होना आवश्यक है।

राज्य परिषद् की सभाएँ ऐसे समय एवं स्थान पर आयोजित की जायेगी जो अध्यक्ष उपयुक्त समझें।

उद्देश्य– प्रत्येक राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद् के उद्देश्य वही होंगे जिनका वर्णन धारा 6 में है।

जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद् [धारा 8 A (1)]– राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले में जिला उपभोक्ता समिति की स्थापना करेगी। अधिसूचना में इंगित की गयी तिथि से काम करना शुरू कर देगी।

जिला उपभोक्ता संरक्षण समिति के सदस्य निम्नलिखित होते है–

(अ) जिला कलेक्टर, अध्यक्ष।

(ब) राज्य सरकार द्वारा निर्धारित अन्य सरकारी तथा गैर–सरकारी सदस्य। ये राज्य सरकार का प्रतिनिधित्व करेंगे।

(स) जिला उपभोक्ता संरक्षण समिति की सभा जिले में कलेक्टर द्वारा निर्धारित स्थान पर सम्पन्न होगी।

13.10 विवाद निवारण एजेन्सीज [धारा 9 से 27 तक]

धारा 9 में उपभोक्ताओं के विवादो के निवारण के लिए निम्नलिखित अर्द्ध–न्यायिक व्यवस्था की गई है–

I. जिला मंच,

II. राज्य आयोग,

III. राष्ट्रीय आयोग।

उपरोक्त को विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया जा रहा है–

I. जिला मंच–

स्थापना– धारा 9 (a) के अनुसार, प्रत्येक राज्य की राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले में एक उपभोक्ता विवाद निवारण मंच स्थापित करेगी जिसे जिला मंच के नाम से जाना जायेगा।

राज्य सरकार एक जिले में एक से अधिक जिला मंच भी स्थापित कर सकती है।

गठन धारा 10 (1) के अनुसार

जिला मंच में निम्नलिखित को शामिल किया जाता है–

(i) व्यक्ति जो जिला न्यायाधीश हो या रहा हो बनने की योग्यता रखता हो, इसका अध्यक्ष होगा।

(ii) योग्यता, सत्यनिष्ठा और ख्याति प्राप्त दो व्यक्ति–सदस्य। इनमें एक महिला होगी।

ऐसे व्यक्ति के पास किसी स्नातक डिग्री का होना आवश्यक है तथा व्यक्ति की आयु कम से कम 35 वर्ष होना आवश्यक है। व्यक्ति के पास अर्थशास्त्र, विधि, वाणिज्य, लेखांकन, उद्योग, जनसम्पर्क अथवा प्रकाशन का ज्ञान एवं 10 वर्ष का अनुभव होना चाहिए।

अयोग्यताएँ– निम्नलिखित को अयोग्य माना जाता है–

(i) नैतिक किस्म के अपराध का दोषी पाया गया हो।

(ii) अमुक्त दिवालिया व्यक्ति।

(iii) सरकारी या किसी समामेलित संस्था की नौकरी से बर्खास्त व्यक्ति।

(iv) अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति।

नियुक्तियाँ राज्य सरकार द्वारा एक चयन समिति की सिफारिश पर की जायेगी।

सदस्यों का कार्यकाल धारा 10 (2) के अनुसार

जिला मंच के सदस्य का कार्यकाल 5 वर्ष अथवा 65 वर्ष तक की आयु (इन दोंनो मे से जो पहले हो) होगा एवं इनकी पुनर्नियुक्ति नहीं हो सकेगी। यदि कोई सदस्य त्याग–पत्र देना चाहे तो वह इस आशय की सूचना राज्य सरकार को देगा तथा त्याग–पत्र स्वीकार होने पर उसका स्थान खाली हो जायेगा।

परिश्रमिक व सेवा शर्तें आदि

धारा 10 (a) के अनुसार, जिला मंच के सदस्यों को देय पारिश्रमिक व भत्ते तथा सेवा–शर्तें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की गई होंगी।

जिला मंच का क्षेत्राधिकार–[धारा (11)]

जिला मंच के क्षेत्राधिकार में उन माल अथवा सेवाओं से सम्बन्धित शिकायतों की सुनवाई की जाती है जिनकी क्षतिपूर्ति की कुल राशि 20 लाख रूपये से अधिक न हो।

जिला मंच के क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं में शिकायत की जा सकती है–

(i) जहाँ विरोधी पक्ष अथवा एक से अधिक विरोधी पक्ष होने पर प्रतिपक्ष दलों का प्रत्येक विरोधी पक्षकार शिकायत करते समय रहता हो या व्यवसाय चलाता हो या निजी लाभ हेतु कार्य करता हो।

(ii) एक से अधिक विरोधी पक्षकार होने पर उनमें से कोई रहते हो या व्यवसाय चलाते हो या उसका शाखा कार्यालय हो या लाभ के लिए कार्य करते हों।

(iii) जहाँ कार्यवाही का कारण उत्पन्न होता हो।

शिकायतकर्ता

शिकायत निम्नलिखित द्वारा प्रस्तुत की जा सकती है–

(अ) उपभोक्ता जिसे माल बेचा या सुपुर्द किया गया हो या ऐसी सेवाएँ दी गयी हों।

(ब) मान्य संघ, चाहे वह व्यक्ति जिसे माल बेचा या सुपुर्द किया गया है या सेवा प्रदान की है, उक्त संस्था का सदस्य हो या न हो।

(स) जिला मंच की अनुमति से एक या अधिक उपभोक्ताओं द्वारा।

(द) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा।

शिकायत निपटारे की प्रक्रिया– (A) जिला मंच माल के सम्बन्ध में उपभोक्ता विवाद को निपटाने के लिए निम्नलिखित कार्यविधि अपनायेगा–

1. **विरोधी पक्षकार के पास शिकायत की प्रति भेजना–** जिला मंच को जब शिकायत प्राप्त होती है तो वह सबसे पहले उसकी एक प्रति प्रतिपक्ष के पास भेजेगा तथा अपना पक्ष 30 दिन के अन्दर या जिला मंच की स्वीकृति से बढ़ी हुई अवधि, जो 15 दिन से अधिक नही हो,

2. **प्रतिपक्ष द्वारा अवहेलना करने पर–** यदि प्रतिपक्ष उल्लिखित आरोपों से इन्कार करता है अथवा विवाद करता है या अपना पक्ष प्रस्तुत करने में असफल रहता या चूक करता है तो ऐसी स्थिति मे जिला मंच उपभोक्ता विवाद का निपटारा करने के लिए निम्नलिखित कार्यवाही करेगा–

(a) यदि शिकायत किसी ऐसे दोष के सम्बन्ध में हो जिसका निर्धारण माल का विश्लेषण या जाँच के बिना सम्भ्व नही हो तो जिला मंच शिकायतकर्ता से उक्त माल का नमूना प्राप्त करेगा और उसका विश्लेषण या जाँच करने के लिए उपयुक्त प्रयोगशाला के पास भेज देगा। प्रयोगशाला द्वारा 45 दिन में या बढ़ी हुयी अवधि में रिपोर्ट दी जायेगी।

(b) प्रयोगशाला के पास नमूना भेजने से पहले शिकायतकर्ता को जिला मंच द्वारा निर्देशित शुल्क जिला मंच के पास जमा कराना होगा। प्रतिवेदन की प्रति, अपनी उपयुक्त टिप्पणियों सहित, प्रतिपक्ष के पास भेज देगा।

3. **प्रतिपक्ष तथा शिकायतकर्ता की सुनवाई–** जिला मंच प्रतिपक्ष तथा शिकयतकर्ता को प्रयोगशाला द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन के सम्बन्ध में की गई आपत्तियों की सुनवाई का पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाता है तत्पश्चात् ही जिला मंच उचित आदेश देता है।

(B) सेवा सम्बन्धी शिकायतों के निवारण की प्रक्रिया– ऐसी स्थिति में जिल मंच निम्नलिखित कार्यविधि अपनायेगा–

(i) **प्रतिपक्ष के पास शिकायत की प्रति भेजना**— जिला मंच शिकायत प्राप्त होने पर उसकी एक प्रति प्रतिपक्ष के पास भेजेगा जिसमें यह उल्लेख होगा कि वह इस मामले में अपना पक्ष 30 दिन के अन्दर या जिला मंच द्वारा बढ़ाई गई अवधि, जो 15 दिन से अधिक की नहीं हो सकती, के अन्दर प्रस्तुत करें।

(ii) **प्रतिपक्ष द्वारा इन्कार या अवहेलना करने पर**— यदि शिकायत की प्रति प्राप्त होने पर प्रतिपक्ष शिकायत में उल्लिखित आरोंपों से मना करता है या विवाद करता है या दी गई अवधि में अपना पक्ष प्रस्तुत करने में चूक करता है तो ऐसी स्थिति में जिला मंच निम्नलिखित कार्यवाही करता है—

यदि प्रतिपक्ष शिकायत में उल्लिखित आरोपों से मना करता है, विवाद का निपटारा करेगा।

जिला मंच के अधिकार [धारा 13 (4)]— जिला मंच को निम्नलिखित मामलों में वही अधिकार है जो कि नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन एक सिविल न्यायालय को है—

(i) प्रतिवादी अथवा साक्षी को सम्मन जारी करना,

(ii) उपस्थित होने के लिए बाध्य करना,

(iii) गवाह का शपथ—पत्र स्वीकार करना,

(iv) प्रयोगशाला से किसी माल की जाँच करना,

(v) गवाहों की जाँच करने का आदेश निर्गमित करना।

जिला मंच के समक्ष प्रस्तुत की गई सम्पूर्ण कार्यवाही को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 193 व 228 के अधीन न्यायिक कार्यवाही माना जायेगा तथा जिला मंच को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 के लिए सिविल न्यायालय माना जायेगा।

जिला मंच के आदेश— जब जिला मंच सन्तुष्ट हो जाता है कि जिस माल के दोषो के विरूद्ध शिकायत की गई है, उनमे कोई भी दोष विद्यामन है अथवा सेवाओं के विरूद्ध लगाये गये आरोप सिद्ध होते है वह प्रतिपक्ष को निम्नलिखित बातों का पालन करने को कह सकता है—

(i) माल के सम्बन्ध में दोष को दूर करना,

(ii) माल को दोष रहित माल से बदलना,

(iii) माल की कीमत वापस लौटाना,

(iv) क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान करना,

(v) अनुचित व्यवहार अथवा प्रतिबन्धात्मक व्यापार—व्यवहार को बन्द करना,

(vi) खतरनाक माल बेचने का प्रस्ताव न करना।

कार्यवाही का संचालन जिला मंच के अध्यक्ष द्वारा कम से कम एक सदस्य के साथ बैठकर किया जाता है तथा यदि कोई ऐसा सदस्य कार्यवाही के संचालन में भाग नही ले पाता है तो अन्य सदस्य के साथ मिलकर कार्यवाही का संचालन किया जाता है।

जब कार्यवाही का संचालन अध्यक्ष तथा किसी एक सदस्य द्वारा किया गया हो और वे एकमत न हो तो वे अपने मतभेद को अन्य सदस्य के समक्ष प्रस्तुत करेंगे तथा बहुमत से ही जिला मंच का आदेश माना जायेगा।

जिला मंच के आदेश के विरूद्ध अपील— धारा 15 के अनुसार, जिला मंच के

आदेश से पीड़ीत व्यक्ति राज्य आयोग के समक्ष आदेश की तिथि से 30 दिन के अन्दर, अपील कर सकता है। किन्तु यदि राज्य आयोग चाहे तो 30 दिन के बाद भी अपील स्वीकार कर सकता है।

II. **राज्य आयोग**

राज्य आयोग के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान है–

स्थापना धारा 19 (b)– राष्ट्र के संविधान के ढाँचे के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य में राज्य सरकार उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग की स्थपना कर सकती है जिसे राज्य आयोग कहा जाता है। राज्य आयोग की स्थापना उपभोक्ता निवारण हेतु राज्य सरकार द्वारा की जाती है। इसके लिए राज्य सरकार अधिसूचना निर्गमित करती है।

आयोग का गठन– धारा 16 (a) के अनुसार, राज्य आयोग का गठन निम्नवत् किया जायेगा–

(i) व्यक्ति जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या रह चुका हो और जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाये, वह राज्य आयोग का अध्यक्ष होगा। अध्यक्ष की नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह के बिना नहीं की जायेगी।

(ii) दो अन्य सदस्य जो योग्यता, सत्यनिष्ठा और ख्याति प्राप्त हो तथा ऐसे व्यक्ति अर्थशास्त्र, लेखाशास्त्र, कानून, उद्योग, जनसम्पर्क या प्रशासन का ज्ञान अथवा अनुभव रखते हो। इन दो सदस्यों में से एक महिला होगी।

(iii) ऐसे व्यक्ति की कम से कम आयु 35 वर्ष हो।

(iv) स्नातक डिग्री हों।

अधिक से अधिक 50% सदस्य ऐसे होने चाहिए जिनकी न्यायिक पृष्ठभूमि हो।

अयोग्यताएँ

निम्नलिखित व्यक्तियों को आयोग का सदस्य नहीं बनाया जा सकता–

(i) व्यक्ति नैतिक अपराध का दोषी पाया गया हो और कारावास की सजा हुई हो,

(ii) अमुक्त दिवालिया हो,

(iii) अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति हो,

(iv) यदि राज्य सरकार की सम्पत्ति में उसका कोई वित्तीय अथवा अन्य प्रकार का हित हो जिससे उसकी निष्पक्षता के प्रभावित होने की सम्भावना हो,

(v) व्यक्ति जिसे सरकारी अथवा समामेलित संस्था की नौकरी से हटाया गया हो या निष्कासित किया गया हो,

(vi) यदि उसमें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित कोई अन्य अयोग्यता हो।

सदस्यों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा एक चयन समिति की सिफारिश पर की जायेंगी।

वेतन, भत्ते व सेवा शर्तें आदि– सदस्यों को देय वेतन अथवा मानदेय राशि एवं अन्य भत्ते तथा सेवा शर्तें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जायेगी।

कार्यकाल धारा 16 (3)– इस अधिनियम के अनुसार, राज्य आयोग के सदस्य का कार्यकाल 5 वर्ष या 67 वर्ष की आयु तक, जो भी पहले रहेगा, सदस्यों की पुनर्नियुक्ति नहीं की जा सकेगी।

न्यायिक क्षेत्राधिकार– [धारा 17] राज्य आयोग का न्यायिक क्षेत्राधिकार इस प्रकार है–

(i) प्रत्यक्ष रूप से ऐसी शिकायतों पर विचार करना जिनमें माल या सेवा का मूल्य तथा क्षतिपूर्ति 5 लाख रू0 या उससे अधिक किन्तु 20 लाख रूपये से कम हो।

(ii) उस राज्य के किसी जिला मंच द्वारा दिये गये निर्णय के विरूद्ध की गई याचिका पर विचार करना।

(iii) जिला मंच के अधीन कोई उपभोक्ता विवाद जो विचाराधीन हो या निर्णय दे दिया गया हो और उसके सम्बन्ध मे राज्य आयोग को यह लगता हो कि सम्बन्धित जिला मंच ने अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया हो या क्षेत्राधिकार का पालन करने में असमर्थ रहा हो तो वांछित अभिलेखों को मँगवाना तथा आदेश निर्गमन करना।

राज्य आयोग द्वारा अपनायी जाने वाली उपभोक्ता विवादों के निपटारे की प्रक्रिया– उपभोक्ता विवादों का निपटारा करने हेतु राज्य आयोग द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया जिला मंच द्वारा शिकायतों का निपटारा करने के लिए अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के समान होगी।

धारा 18 के अनुसार, यदि जिला मंच की कार्यविधि में कोई संशोधन किया जाता है तो वे संशोधन ज्यों के त्यों राज्य आयोग की प्रक्रिया पर भी प्रभावी होते है।

अध्यक्ष का पद रिक्त होना [धारा 18 (A)]– यदि राज्य आयोग के अध्यक्ष का पद रिक्त है अथवा अन्य किसी कारण से वह अपने कर्तव्यों का निष्पादन करने में असमर्थ है तो राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पास भेज देगी तथा जो अध्यक्ष के कार्य का निष्पादन करने के लिए उच्च न्यायालय क न्यायाधीश को मनोनीत करेगा।

राज्य आयोग के आदेश के विरूद्ध अपील किया जाना– [धारा 19] राज्य आयोग के आदेश से पीड़ित व्यक्ति आदेश की तिथि से 30 दिन के अन्दर राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील कर सकता है। ऐसी अपील निर्धारित प्रारूप एवं ढंग से की जानी चाहिए।

राष्ट्रीय आयोग 30 दिन की इस अवधि के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी अपील स्वीकार कर सकता है।

III. राष्ट्रीय आयोग

केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा **राष्ट्रीय आयोग** की स्थापना कर सकेगी। भारत में उपभोक्ता के विवादों को हल करने हेतु यह एक स्वतन्त्र एवं वैधानिक संस्था है। इसका पूरा नाम राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग है।

गठन– राष्ट्रीय आयोग में निम्नलिखित को शामिल किया जाता है–

(i) एक ऐसा व्यक्ति जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो या रह चुका हो और जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाये, वह इस आयोग का अध्यक्ष

होगा। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह के बिना अध्यक्ष की नियुक्ति नहीं की जा सकती है।

(ii) चार अन्य ऐसे सदस्य जो योग्यता, सत्यनिष्ठा एवं ख्यातिप्राप्त व्यक्ति होगें तथा अर्थशास्त्र, लेखाशास्त्र, जनसम्पर्क या प्रशासन का ज्ञान अथवा अनुभव प्राप्त व्यक्ति हो। इनमें से एक सदस्य महिला होगी।

योग्यताएँ– राष्ट्रीय आयोग के सदस्य के पास निम्नवत् योग्याताएँ होनी चाहिए–

(i) उसकी आयु कम से कम 35 वर्ष की हो।

(ii) उसके पास किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय की स्नातक डिग्री हो।

(iii) योग्य, सत्यनिष्ठा और कम से कम 10 वर्ष का अनुभव वाला व्यक्ति हो।

अयोग्यताएँ– निम्नलिखित को सदस्य बनने के अयोग्य माना जाता है–

(i) ऐसा व्यक्ति किसी नैतिक अपराध का दोषी पाया गया हो और सजा हुई हो, अथवा

(ii) व्यक्ति जो अमुक्त दिवालिया हो, अथवा

(iii) व्यक्ति जो अस्वस्थ मस्तिष्क वाला हो,

(iv) व्यक्ति जिसे किसी सरकारी अथवा समामेलित संस्था की नौकरी से हटाया अथवा निष्कासित किया गया हो, अथवा

सदस्यों की नियुक्तियाँ केन्द्रीय सरकार द्वारा एक चयन समिति की सिफारिश पर की जायेगी। चयन समिति में निम्न व्यक्ति होंगे–

(i) व्यक्ति जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो इसे भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नामांकित किया जायेगा जो कि इसका अध्यक्ष होगा।

(ii) भारत के विधि विभाग तथा उपभोक्ता मामलों के सचिव इसके सदस्य होंगे।

वेतन, भत्ते व सेवा शर्तें आदि– राष्ट्रीय आयोग के सदस्यो को देय वेतन, भत्ते एवं शर्तें केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित की गई होंगी।

कार्यकाल– राष्ट्रीय आयोग के सदस्य का कार्यकाल 5 वर्ष या 70 वर्ष की आयु तक, जो भी पहले हो, होगा। सदस्य की पुनर्नियुक्ति नहीं की जा सकती है।

आयोग का न्यायिक क्षेत्राधिकार– [धारा 21] राष्ट्रीय आयोग का क्षेत्राधिकार इस प्रकार होगा–

(i) ऐसी शिकायतों पर विचार करना जिनमें माल सेवा मा मूल्य तथा क्षतिपूर्ति 1 करोड़ रू0 से ज्यादा हो।

(ii) राज्य आयोग के आदेश के विरूद्ध की गई अपील पर सुनवाई करना।

(iii) राज्य आयोग के अधीन विचारधीन या निर्णीत कोई उपभोक्ता विवाद जिसके सम्बन्ध में राष्ट्रीय आयोग को यह लगता हो कि सम्बन्धित राज्य आयोग ने अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है या क्षेत्राधिकार का उपयोग करने में असमर्थ रहा है या अपने न्यायिक क्षेत्राधिकार का उपयोग करने में मौलिक अनियमितता की है तो सम्बन्धित अभिलेखों को मँगवाना एवं समुचित आदेश देना।

राष्ट्रीय आयोग द्वारा अपील की सुनवायी की प्रक्रिया–

राज्य आयोग के आदेशों के विरूद्ध अपील राष्ट्रीय आयोग के समक्ष की जाती है। उपभोक्ता संरक्षण नियम, 1987 के नियम 15 के अनुसार राष्ट्रीय आयोग राज्य आयोगों के आदेश के विरूद्ध अपीलों पर सुनवाई की निम्नलिखित प्रक्रिया अपनायेगा–

(i) **अपीलार्थी द्वारा अपील करना–** राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील करने के लिए अपीलार्थी या उसका एजेण्ट एक स्मरण–पत्र प्रस्तुत करता है। यह स्मरण पत्र व्यक्तिशः या पंजीकृत डाक से भेजा जा सकता है।

(ii) **स्मरण पत्र का प्रारूप–** स्मरण–पत्र पठनीय **लेख में या टाइप** किया हुआ, **विभिन्न शीषकों में बँटा हुआ** होगा तथा

(iii) **राज्य आयोग के आदेश की प्रतिलिपि करना–** स्मरण–पत्र के साथ राज्य आयोग के आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि भी संलग्न की जायेगी।

(iv) स्मरण–पत्र के साथ अपील आदेश का विरोध करने वाले आधारों के प्रमाण भी संलग्न किये जायें।

(v) **अपील की अवधि समाप्त होने के बाद अपील किया जाना–** अपील के लिए दी गई अवधि समाप्त हो जाने की स्थिति में तो अपील के स्मरण–पत्र के साथ उन तथ्यों का शपथ–पत्र भी संलग्न करना होगा जिनके आधार पर अपीलार्थी अपील स्वीकार करने के लिए राष्ट्रीय आयोग को सन्तुष्ट करना चाहता है।

(vi) **प्रतियों की संख्या–** अपीलार्थी को स्मरण–पत्र की छः प्रतियाँ संलग्न करनी पड़ती है।

(vii) **सुनवायी पर उपस्थिति–** प्रत्येक पक्षकार या उसके एजेण्ट को अपील की सुनवायी की निर्धारित तिथि पर राष्ट्रीय आयोग के समक्ष उपस्थित होना चाहिए। यदि अपीलार्थी या उसका एजेण्ट उपस्थित नहीं होते हैं तो आयोग उस अपील को निरस्त कर सकता है या एक पक्षकार को सुनकर निर्णय कर सकता है। यदि बचाव पक्ष या प्रतिनिधि उपस्थित नहीं होंगे तो आयोग एक पक्षकार को सुन लेगा तथा अपील का गुण–दोष के आधार पर निर्णय करेगा।

(viii) **अपील पर निर्णय स्थगन–** राष्ट्रीय आयोग जब भी चाहे अपील की सुनवाई स्थगित कर सकता है। राष्ट्रीय आयोग प्रथम सुनवाई की तिथि से 90 दिन के अन्दर अपना निर्णय देगा।

(ix) **आदेश पर हस्ताक्षर तथा संवहन–** राष्ट्रीय आयोग द्वारा दिये गये अपील के आदेश पर अध्यक्ष तथा सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए।

ऐसे आदेश की सूचना सम्बन्धित पक्षों को निःशुल्क दी जायेगी।

शिकायत निवारण की प्रक्रिया– उपभोक्ता संरक्षण नियम, 1987 के अनुरूप केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय आयोग द्वारा शिकायतों के निपटारे के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम तय किये है–

(1) **शिकायत प्रस्तुत करना–** राष्ट्रीय आयोग के समक्ष शिकायत करेन सम्बन्धी नियम निम्नवत् है–

(i) शिकायत को शिकायतकर्ता द्वारा स्वयं या एजेण्ट द्वारा प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(ii) शिकायत व्यक्तिगत रूप से या पंजीकृत डाक द्वारा की जा सकती है।

(iii) शिकायत में शिकायतकर्ता का नाम, पता तथा विवरण, विरोधी पक्षकार का नाम, पता एवं विवरण होना चाहिए।

(iv) शिकायत से सम्बन्धित तथ्य, शिकायत उत्पन्न होने का स्थान, समय आदि का उल्लेख हो।

(v) आरोपों को पुष्ट करने वाले प्रलेख हो।

(vi) शिकायत के लिए अपेक्षित राहत का दावा किया गया हो।

राष्ट्रीय आयोग शिकायत निवारण हेतु वही प्रक्रिया अपनायेगा जो जिला मंच अपनाता है।

(2) **सुनवाई की तिथि पर उपस्थिति**– सभी सम्बन्धित पक्षकार अथवा उसके एजेण्ट राष्ट्रीय आयोग के समक्ष निर्धारित या स्थगित की गई तिथि पर उपस्थित रहेंगे।

राष्ट्रीय आयोग शिकायत की सुनवाई को स्थगित भी कर सकता है परन्तु राष्ट्रीय आयोग की सुनवाई की तिथि से पाँच महीने के अन्दर अपना निर्णय दे देगा।

(3) **आदेश देना**– राष्ट्रीय आयोग सुनवाई की कार्यवाही पूरी हो जाने पर निम्नलिखित कार्यों को करने के सम्बन्ध में आदेश दे सकता है–

(i) माल में **दोष को दूर करने के लिए।**

(ii) उसी प्रकार का नया **दोषमुक्त माल देने के लिए।**

(iii) **चुकाये गये मूल्य को लौटाने के लिए।**

(iv) उपभोक्ता को हुई क्षति या हानि की पूर्ति के लिए **मंच द्वारा निर्धारित राशि देने के लिए।**

(v) सेवाओं के दोषों को दूर करने के लिए।

(vi) अनुचित व्यापार–व्यवहार या प्रतिबन्धात्मक व्यापार–व्यवहार को बन्द करने या उसकी पुनरावृत्ति न करने के।

(vii) खतरनाक माल के बेचने का प्रस्ताव नहीं करने तथा बेचने के लिए किये जा रहे प्रस्ताव को वापस लेने के लिए।

(4) राष्ट्रीय आयोग के आदेश के विरूद्ध याचिका दायर करना– राष्ट्रीय आयोग के आदेश से पीड़ित व्यक्ति उक्त आदेश की तिथि से 30 दिन में उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है।

धारा 23 कहती है कि उच्चतम न्यायालय 30 दिन की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् भी अपील को तब स्वीकार कर सकता है जब वह इस बात से सन्तुष्ट हो कि निर्धारित अवधि में अपील न करने के पर्याप्त कारण थे।

आदेशों की अन्तिमता [धारा 24]– किसी व्यक्ति द्वारा जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग में से किसी के भी आदेश के विरूद्ध अपील न करने की स्थिति में सम्बन्धित आदेश अन्तिम माना जाता है।

परिसीमा अवधि [धारा 24 (A)(i)]– जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग ऐसी शिकायतों को स्वीकार नहीं कर सकतें जो कार्यवाहीं के कारण के उत्पन्न होने की तिथि से 2 वर्ष के भीतर प्रस्तुत नहीं की जाती है।

जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग शिकायतों को उक्त अवधि के बाद भी स्वीकार कर सकेगा बशर्तें शिकायतकर्ता उन्हें सन्तुष्ट कर दे कि निर्धारित अवधि में अपील न करने के पर्याप्त कारण थे।

प्रशासनिक नियन्त्रण [धारा 24 (B)]– राष्ट्रीय आयोग का राज्य आयोगों पर प्रशासकीय नियन्त्रण निम्नलिखित के सम्बन्ध में होना है–

(i) दावों के संस्थापन, निपटारा, विचारण आदि के सम्बन्ध में प्रतिवेदन माँगना,

(ii) मामलों की सुनवाई में समान प्रक्रिया अपनाना।

राज्य आयोग का अपने क्षेत्राधिकार के सभी जिला मंचों पर प्रशासकीय नियन्त्रण होगा।

आदेशो को लागू करना [धारा 25]– जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग द्वारा दिये गये आदेशों को वैसे ही लागू किया जायेगा जैसे कि एक न्यायालय द्वारा अपने यहाँ प्रस्तुत किसी विवाद के सम्बन्ध में दिये गये आदेश या डिक्री को लागू किया जाता है। यदि आदेश को लागू कराना सम्भव न हो तो ऐसी स्थिति मे उसके द्वारा उक्त आदेश को स्थानीय क्षेत्राधिकार वाले किसी ऐसे न्यायालय के पास भेजाना वैधानिक होगा जिसके क्षेत्राधिकार में–

(i) कम्पनी का पंजीकृत कार्यालय स्थित हो।

(ii) जहाँ व्यक्ति स्वेच्छा से निवास करता हो या व्यापार करता हो या लाभ के लिए व्यक्तिगत कार्य करता हो।

तत्पश्चात् न्यायालय आदेश को उसी प्रकार से कार्यान्वित करेगा जिस प्रकार कि वह स्वयं के द्वारा दिये गये आदेश या डिक्री लागू करता है।

तुच्छ या तंग करने वाली शिकायतों को निरस्त किया जाना [धारा 26]– यदि शिकायत तुच्छ या तंग करने वाली पायी जाय तो जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग उक्त शिकायत को निरस्त कर सकता है तथा विरोधी पक्ष को शिकायतकर्ता द्वारा लागू जो कि 10,000रू0 से अधिक न हो देने का आदेश दे सकता है।

दण्ड सम्बन्धी प्रावधान [धारा 27]– जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय अयोग द्वारा दिये गये आदेश की अनुपालना करने में यदि कोई व्यापारी या व्यक्ति असफल रहता है तो ऐसा व्यापारी या व्यक्ति कम से कम एक महीना तथा अधिक से अधिक तीन वर्ष तक के कारावास अथवा कम से कम 2,000 रू0 तथा अधिकतम 10,000रू0 तक आर्थिक दण्ड अथवा दोनों का भागी हो सकता है।

यदि जिला मंच राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग मामले की परिस्थितियों को देखते हुए सन्तुष्ट हो जाता है तो न्यूनतम दण्ड से भी कम दण्ड दे सकते है।

13.11 विविध

सद्विश्वास में की गई कार्यवाही का संरक्षण [धारा 28 से 29 तक]–

धारा 28 के अनुसार, यदि जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग एवं उनके आदेशो के निर्गमन के सम्बन्ध में सद्विश्वास से कार्य किया है तो उक्त जिला मंच राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग के किसी सदस्य, अधिकारी या कार्य करने वाले किसी अन्य व्यक्ति के विरूद्ध कोई वैधानिक कार्यवाही नहीं की जा सकेगी।

नियम बनाने का अधिकार [धारा 30 से 31 तक]–

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में नियम बनाने के अधिकार केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों को दिये गये है–

(1) **केन्द्रीय सरकार के अधिकार–** केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के सम्बन्ध में [धारा 4] तथा [धारा 22] के सम्बन्ध में नियम संसद की मंजूरी से बना सकती है।

(2) **राज्य सरकार के अधिकार–** राज्य सरकार अधिसूचना निर्गमित करके इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के सम्बन्ध में धारा 10 (3), 12 (2), 13 (1) (c), 14 (3), 15 तथा 16 (2) के सम्बन्ध नियम बना सकती है।

13.12 सारांश

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 उपभोक्ता के हितों के संरक्षण के लिए तथा उपभोक्ता विवादों के निपटारे क लिए लागू किया गया। यह अधिनियम 1 जुलाई 1987 से समस्त भारत में (जम्मू और कश्मीर को छोड़कर) लागू हुआ। उक्त अधिनियम के अंतर्गत उपभोक्ताओं के विवादों को तय करने के उद्देश्य से जिला स्तर पर जिला फोरम, राज्य स्तर पर राज्य आयोग तथा राष्ट्र स्तर पर राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की गयी। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ता को उनके अधिकारों को बताना तथा उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना एवं उनके हितों का संरक्षण करना है।

यह अधिनियम सभी माल व सेवाओं पर लागू होता है। इस अधिनियम में सन् 1991, 1993, 1996 एवं सन् 2002 में हुए आधारभूत संशोधनो का यथा स्थान उल्लेख किया गया है।

उपर्युक्त उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 में कुल मिलाकर 31 धाराएँ है जो कि चार अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय है प्रारंभिक, जिसमें 1 से 3 तक धाराएँ है। दूसरा अध्याय है उपभोक्ता संरक्षण परिषदें जिसमें 4 से 8 तक की धाराएं है, तीसरा अध्याय है उपभोक्ता विवाद निवारण एजेन्सीज जिसमें 9 से लेकर 27 तक धाराएं है। तथा चौथा अध्याय है विविध, जिसमें 28 से लेकर 31 तक धाराएं है। प्रस्तुत अधिनियम उभोक्ता की शिकायतों को शीघ्रता से तथा कम व्यय पर दूर करने की व्यवस्था करता है। इस अधिनियम की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि अब सीधा क्रेता होना आवश्यक नहीं है, बल्कि अधिनियम के अंतर्गत किसी दोषपूर्ण वस्तु या उत्पादन का उपभोक्ता एवं उपभोक्ता संगठन भी माल अथवा सेवा में हुई कमियों के सिलसिले में सम्बंधित कम्पनी के विरूद्ध सादे कागज पर व्यक्तिगत रूप में या डाक के माध्यम से शिकायत दर्ज कराकर विविध परितोष के रूप में क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है।

13.13 शब्दावली

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986– उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 उपभोक्ता हितो के संरक्षण के लिए तथा उपभोक्ता विवादो के निपटारे के लिए 1 जुलाई 1987 से समस्त भारत (जम्मू और कश्मीर को छोड़कर) लागू हुआ।

उपभोक्ता– कोई ऐसा व्यक्ति जिसने प्रतिफल के बदले किसी माल को खरीदा हो तथा जिसका भुगतान कर दिया हो अथवा भुगतान करने का वचन दिया हो।

शिकायतकर्ता या परिवादी– वो कोई भी व्यक्ति या उपभोक्ता संघ, केन्द्र सरकार या राज्य सरकार या समान प्रकार का हित रखने वाला हो सकता है।

शिकायत– शिकायत का आशय शिकायतकर्ता द्वारा इस अधिनियम के अंतर्गत राहत पाने के लिए लिखित रूप से प्रस्तुत किये गये किसी दोषारोपण से है।

केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद– केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद केन्द्र सरकार द्वारा संचालित परिषद है।

राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद– राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद केन्द्र सरकार द्वारा संचालित परिषद है।

जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद– राज्य सरकार की अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले में जिला उपभोक्ता समिति की स्थापना करती है।

विवाद निवारण ऐजेन्सी– उपभोक्ता विवादों के निवारण के लिए बनाई गई अर्द्ध–न्यायिक व्यवस्था है।

जिला मंच– राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले में उपभोक्ता निवारण मंच बनाती है। जिला मंच के क्षेत्राधिकार में उन माल अथवा सेवाओ से संबंधित शिकायतों की सुनवाई की जाती है, जिसकी क्षतिपूर्ति की कुल राशि 20 लाख रू0 से अधिक न हो।

राज्य आयोग– राष्ट्र के संविधान के ढाँचे के अंतर्गत प्रत्येक राज्य में राज्य सरकार उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग की स्थापना कर सकती है। जिसे राज्य आयोग कहा जाता है। इस आयोग का काम प्रत्यक्ष रूप से ऐसी शिकायतों पर विचार करना है जिनमें माल या सेवा का मूल्य 5 लाख रू0 या उससे अधिक किन्तु 20 लाख रू0 से कम है।

राष्ट्रीय आयोग– केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा राष्ट्रीय आयोग की स्थापना होती है। इस आयोग का क्षेत्राधिकार ऐसी शिकायतों पर विचार करना होता है, जिनमें माल या सेवा का मूल्य तथा क्षतिपूर्ति की राशि 1 करोड़ रू0 ज्यादा हों।

13.14 बोध प्रश्न

यह बताइये कि निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही है या गलत।

(i) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1964 में पारित हुआ था।

(ii) जिला समिति में कम से कम दो स्त्री सदस्यों की नियुक्ति होना आवश्यक है।

(iii) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में सन् 2002 में महत्वपूर्ण संशोधन हुये है।

(iv) जिला मंच अंतरिम आदेश पारित कर सकते है।

(v) राज्य आयोग सदस्य की न्यूनतम उम्र 35 वर्ष होनी चाहिये।

(vi) जिला मंच के सदस्य का स्नातक होना आवश्यक है।

(vii) सामान्यतः उपभोक्ता द्वारा शिकायत प्रस्तुत करने पर तिथि से चार सप्ताह में उसकी सुनवाई होनी आवश्यक है।

(viii) जिला मंच 20 लाख रू0 तक के विवादों पर सुनवाई कर सकता है।

13.15 बोध प्रश्न के उत्तर

उत्तर– (i) असत्य (ii) असत्य (iii) सत्य (iv) सत्य
(v) सत्य (vi) सत्य (vii) असत्य (viii) सत्य

13.16 स्वपरख प्रश्न

1. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत उपभोक्ता के क्या अधिकार है ?
2. उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम 2002 के क्या प्रावधान है ?
3. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के प्रमुख प्रावधानों को बताइये।
4. उपभोक्ता कौन है ? बताइये।
5. जिला उपभोक्ता मंच क्या है ?
6. राज्य आयोग पर टिप्पणी लिखिए।
7. राष्ट्रीय आयोग क्या है ? बताइये।

13.17 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 14 विनिमय साध्य लेखपत्र अधिनियम 1881 (Negotiable Instrument Act 1881)

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 विनिमय साध्य लेखपत्र का अर्थ एवं परिभाषा
14.3 विनिमय साध्य लेखपत्र की विशेषतायें
14.4 विनिमय साध्य लेखपत्र की मान्यतायें
14.5 विनिमय साध्य लेखपत्र के प्रकार
 14.5.1 प्रतिज्ञा पत्र
 14.5.2 विनिमय विपत्र
 14.5.3 प्रतिज्ञा पत्र व विनिमय विपत्र में अन्तर
 14.5.4 चैक
 14.5.5 चैक व विनिमय विपत्र में अन्तर
14.6 विनिमय साध्य लेखपत्र के पक्षकार एवं उनके दायित्व
14.7 विनिमय साध्य लेखपत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन
14.8 बैंक द्वारा चैक का भुगतान करने से मना करना
14.9 धारक
14.10 यथाविधिधारी
14.11 यथाविधिधारी के विशेष अधिकार
14.12 सारांश
14.13 शब्दावली
14.14 बोध प्रश्न
14.15 बोध प्रश्नो के उत्तर
14.16 स्वपरख प्रश्न
14.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- विनिमय साध्य विलेख का अर्थ समझ सकें ।
- विनिमय साध्य विलेख के प्रकार तथा पक्षकारों को समझ सकें ।
- विनिमय साध्य विलेख में महत्वपूर्ण परिवर्तनों को समझ सकें ।
- बैंक कब चैक का भुगतान करने से मना कर सकता है, को समझ सकें
- विनिमय साध्य विलेख का धारक तथा यथाविधिधारी कौन होता है, उसे समझ सकें
- यथाविधिधारी के विशेष अधिकारों को समझ सकें ।

14.1 प्रस्तावना

भारत में विनिमय साध्य लेखपत्रों से सम्बन्धित अधिनियम 1881 में पारित हुआ। यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत में 1 मार्च 1881 से कार्यशील हुआ। यह अधिनियम सर्वाधिक प्रचलित तीन प्रकार के विनिमय साध्य लेखपत्रों जैसे– प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय विपत्र तथा चैक से सम्बन्धित नियमों का उल्लेख करता है। यह अधिनियम अन्य विनिमय विपत्रों जैसे– हुंडियों, ट्रेजरी बिल आदि पर भी लागू होता

है बशर्ते कि उनके प्रतिकूल कोई स्थानीय प्रथा प्रचलित न हो। इस इकाई में आप विनिमय साध्य लेखपत्रों की विशेषताओं, मान्यताओं, उनके प्रकार व पक्षकारों के साथ–साथ विनिमय विपत्रों के धारी तथा यथाविधिधारी का भी अध्ययन करेंगे।

14.2 विनिमय साध्य लेखपत्र का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and definition of Negotiable Instrument)

'विनिमयसाध्य' का शाब्दिक अर्थ सुपुर्दगी द्वारा हस्तांतरित और 'लेखपत्र' शब्द का अभिप्राय, किसी ऐसे लिखित दस्तावेज से है जिससे किसी व्यक्ति के पक्ष में किसी अधिकार का सृजन होता है। इस प्रकार शाब्दिक अर्थ में 'विनिमय साध्य लेखपत्र' एक ऐसा लिखित दस्तावेज होता है जिसका हस्तांतरण सुपुर्दगी द्वारा किया जा सकता है।

विनिमयसाध्य लेखपत्र अधिनियम 1881 की धारा 13 के अनुसार, "विनिमय साध्य लेखपत्र से अभिप्राय किसी ऐसे प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक से है जो किसी आदेशित व्यक्ति या वाहक को देय हो"।

उक्त परिभाषा के अर्न्तगत केवल प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक सम्मिलित है अन्य विनिमय साध्य विलेख नहीं। इसके अतिरिक्त उक्त परिभाषा विनिमयसाध्य लेखपत्रों के स्वभाव एवं विशेषताओं को भी स्पष्ट नहीं करती। इसके लिये विलिस द्वारा दी गई परिभाषा उत्तम मानी जाती है।

विलिस के अनुसार, "एक विनिमयसाध्य लेखपत्र वह है जिसका स्वामित्व किसी भी ऐसे व्यक्ति को प्राप्त हो जाता है जो उसे सद्भावना से तथा मूल्य के बदले में प्राप्त करता है, यद्यपि जिस व्यक्ति से उसने प्राप्त किया है उसके स्वत्व में कोई दोष हो।

14.3 विनिमयसाध्य लेखपत्र की विशेषतायें (Characteristics of Negotiable Instrument)

टामस के अनुसार, "एक विनिमयसाध्य लेखपत्र वह होता है जो कि व्यापार की रीति रिवाजों तथा कानून के अनुसार विनिमय साध्य है और जिसका हस्तांतरण, बिना उत्तरदायी पक्षकार को सूचित किये, सुपुर्दगी अथवा बेचान एवं सुपुर्दगी से इस प्रकार किया जा सकता है कि (अ) इसका धारक अपने नाम से वाद प्रस्तुत कर सकता है और (ब) इसका वास्तविक हस्तांतरिती उन सब दोषों से मुक्त हो जाता है जो कि उस व्यक्ति के स्वामित्व में थे जिससे वह उसे प्राप्त करता है"।

विनिमयसाध्य लेखपत्र के निम्नलिखित लक्षण अथवा विशेषतायें हैं :–

(1) **आसान विनिमयसाध्यता** – विनिमयसाध्य लेखपत्र एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरण करना आसान होता है। इसमें किसी औपचारिकता की आवश्यकता नहीं होती है। दूसरे शब्दों में विनिमय साध्य लेखपत्र के स्वामित्व का हस्तांतरण–(i)यदि वह आदेशानुसार देय है तो उसके केवल पृष्ठांकन एवं सुपुर्दगी द्वारा स्वामित्व हस्तांतरित हो जाता है और (ii) यदि वह वाहक को देय है तो केवल उसकी सुपुर्दगी देने से ही स्वामित्व का हस्तांतरण हो जाता है।

(2) **विनिमयसाध्य लेखपत्र लिखित होता है** – विनिमयसाध्य लेखपत्र लिखित होना चाहिये और उस पर बनाने वाले के हस्ताक्षर होने चाहिये।

(3) **धारक अपने नाम से वाद प्रस्तुत कर सकता है** – विनिमयसाध्य लेखपत्र के अनादृत हो जाने पर उसका धारक स्वयं अपने नाम से देनदार के विरूद्व वाद प्रस्तुत

करने का अधिकारी होता है। अर्थात देनदार यह नहीं कह सकता है कि मेरा आपसे (विनिमयसाध्य लेखपत्र के धारक) कोई सम्बन्ध नहीं है।

(4) **विनिमयसाध्य लेखपत्र मुद्रा के अनेक कार्य करता है** – विनिमयसाध्य लेखपत्र नकद रूपयों के समान ही एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित किया जाता है।

(5) विनिमयसाध्य लेखपत्र ऋण के अभिहस्तांकन (Assignment) का सबसे आसान तथा सुविधाजनक साधन है।

(6) विनिमयसाध्य लेखपत्र में मूल्यवान प्रतिफल का होना मान लिया जाता है अतः इसमें प्रतिफल का उल्लेख नहीं होता है।

(7) यह सद्भाव हस्तांतरिती (Bonofide transferee) को ऐसा अधिकार प्रदान करता है जिस पर हस्तांतरण करने वाले व्यक्ति के दोषों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(8) विनिमयसाध्य लेखपत्र हमेशा एक निश्चित रकम का होता है।

(9) विनिमयसाध्य लेखपत्र शर्त रहित होता है।

14.4 विनिमयसाध्य लेखपत्र की मान्यतायें (Presumptions as to Negotiable Instrument)

धारा 118 व 119 के अनुसार, किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में विनिमयसाध्य लेखपत्रों के सम्बन्ध में निम्नलिखित अनुमान या पूर्व धारणायें या मान्यतायें रहती हैं :–

प्रत्येक विनिमयसाध्य विलेख प्रतिफल के लिये लिखा गया है, हस्तांतरित (Negotiable) किया गया है, स्वीकृत (Accepted) किया गया है, पृष्ठाकन (Endorsed) किया गया है।

1) प्रत्येक विनिमयसाध्य विलेख में प्रतिफल का होना बिना प्रमाण दिये ही मान लिया जाता है।
2) प्रत्येक विनिमयसाध्य लेखपत्र उसी तिथि को लिखा गया या निष्पादित किया गया है जिस दिन वह लिखा गया है।
3) प्रत्येक विनिमयसाध्य विलेख उस पर लिखी तिथि के बाद परन्तु उसकी परिपक्वता से पूर्व उचित समय के अन्तर स्वीकृत किया गया था।
4) विनिमयसाध्य विलेख का प्रत्येक हस्तांतरण उसकी परिपक्वता से पहले किया गया था।
5) विनिमयसाध्य विलेख पर पृष्ठांकन उसी क्रम से किया गया है जिस क्रम में ये विलेख में दिखाये गये हैं।
6) यदि कोई विनिमय विलेख खो गया है या नष्ट हो गया है तो यह मान्यता कि उस पर यथोचित स्टाम्प था तथा खो जाने या नष्ट हो जाने पर उसे रद्द कर दिया गया है।
7) विनिमयसाध्य लेखपत्र का धारक यथाविधिधारी है किन्तु यदि किसी व्यक्ति ने कोई लेखपत्र अपराध या कपट के माध्यम से अथवा अवैध प्रतिफल के बदले प्राप्त किया हो तो उस सम्बन्ध में यह पूर्व धारणा समाप्त हो जाती है और उसे यह सिद्व करना होता है कि वह वास्तव में यथाविधिधारी है। यथाविधिधारी सिद्व करने के लिये निम्न तथ्यों के प्रमाण देने होते हैं :–

(अ) विनिमयसाध्य विलेख के लिये प्रतिफल दिया था।

(ब) विनिमयसाध्य विलेख के स्वत्व में दोष का उसे कोई ज्ञान नहीं था।

(स) विनिमयसाध्य विलेख में अंकित धन के देय होने से पूर्व ही वह धारक बन गया था अर्थात उसने प्राप्त कर लिया था।

14.5 विनिमयसाध्य लेखपत्र के प्रकार (Types of Negotiable Instrument)

1. प्रतिज्ञा पत्र
2. विनिमय विपत्र
3. चैक

इनके अतिरिक्त व्यापारिक प्रथा या प्रचलन द्वारा निम्न भी विनिमय विपत्र के समान माने जाते हैं–

ट्रेजरी बिल, लाभांश अधिपत्र, अंश अधिपत्र, वाहक ऋणपत्र, हुंडियां आदि।

14.5.1 प्रतिज्ञा पत्र – (Promissory Note)

धारा 4 के अनुसार, "प्रतिज्ञा पत्र एक लिखित प्रपत्र है (बैक नोट या करेंसी नोट को छोड़कर) जिस पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होते हैं और जिसमें लिखने वाला शर्तरहित यह वचन देता है कि वह निश्चित व्यक्ति को, अथवा उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को अथवा प्रपत्र के वाहक को एक निश्चित राशि का भुगतान करेगा"।

प्रतिज्ञा पत्र के आवश्यक तत्व (Essential Elements of Promissory Note)

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार प्रतिज्ञा पत्र में निम्नलिखित तत्वों का होना आवश्यक है :–

(1) **यह लिखित होना चाहिये** :– प्रतिज्ञा पत्र होने के लिये विलेख का लिखित होना आवश्यक है। किसी भुगतान करने का मौखिक रूप से दिया गया वचन प्रतिज्ञा पत्र का रूप नहीं ले सकता है। लेखन स्याही से हो सकता है और वह मुद्रण **(Printing)** या टंकण **(Typing)** के रूप में भी हो सकता है। प्रतिज्ञा पत्र के लिये जिस शब्दावली का प्रयोग किया जाये उसका अभिप्राय भुगतान करने का स्पष्ट वचन देना होना चाहिये परन्तु उसमें 'वचन' शब्द का प्रयोग करना आवश्यक नहीं है।

प्रतिज्ञा पत्र का नमूना (Specimen of Promissory Note)

रू. 5000

दिल्ली

20 जुलाई,2011

प्राप्त मूल्य के बदले मै श्री वी0 एम0 मिश्रा को अथवा उसके आदेशानुसार आज से 2 माह बाद 5000रू. (पांच हजार रू.) की धनराशि और उस पर 10 प्रतिशत वार्षिक दर पर ब्याज देने का वचन देता हूँ।

(2) **प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान करने का स्पष्ट वचन अथवा प्रतिज्ञा होनी चाहिये** – प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान करने का वचन स्पष्ट रूप से होना चाहिये। केवल ऋण की स्वीकृति पर्याप्त नहीं है।

उदाहरण– राम निम्न शब्दावली में लिखे गये प्रपत्र पर हस्ताक्षर करता है :–

i. "श्री राकेश मैं आपका 5000रू0 का ऋणी हूँ"।
ii. "श्री राकेश को 5000रू0 का भुगतान करना है"।
iii. "श्री राकेश से 5000रू0 लिये हैं और मुझे वे ब्याज सहित उसको लौटाने हैं"।

उपर्युक्त प्रपत्र प्रतिज्ञा पत्र नहीं है क्योंकि उनमें राम ने भुगतान करने का कोई वचन नहीं दिया है उनमें राम ने अपने ऋणी होने की बात स्वीकार की है।

(3) **भुगतान करने का वचन शर्तरहित होना चाहिये** – प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान का वचन शर्त रहित होना चाहिये। अर्थात भुगतान करने का वचन किसी अनिश्चित घटना के घटित होने पर अथवा किसी शर्त की पूर्ति पर निर्भर नहीं होना चाहिये। यदि किसी प्रपत्र में भुगतान करने का वचन किसी शर्त के पूरा होने पर निर्भर करता है तो वह वैध प्रतिज्ञा पत्र नहीं होगा और शर्त के पूरा होने के बाद भी वह विनिमय साध्य नहीं बनेगा।

उदाहरण– राम निम्न शब्दावली में लिखे गये प्रपत्रों पर हस्ताक्षर करता है :–

i. "मैं मोहन को अपने विवाह होने के 3 माह बाद 5000रू0 भुगतान करने का वचन देता हूँ"।
ii. "मैं मोहन को 5000रू0 भुगतान का वचन देता हूँ जब मैं नौकरी करूँगा"।
iii. "मैं मोहन को यथाशीघ्र जब भी सम्भव होगा 5000रू0 भुगतान का वचन देता हूँ"।

उपयुर्क्त प्रपत्र वैध प्रतिज्ञा पत्र नहीं हैं क्योंकि उनमें से प्रत्येक में भुगतान ऐसी अनिश्चित घटना पर आश्रित है जो सम्भवतः कभी भी घटित न हो और परिणाम स्वरूप रकम कभी भी देय न हो।

(4) **देय राशि निश्चित होनी चाहिये** – प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान की जाने वाली रकम निश्चित होनी चाहिये अर्थात देय राशि ऐसी नहीं होनी चाहिये जिसमें कमी या वृद्वि की जा सकती हो। उदाहरण– राम यह वचन देता है कि वह मोहन को 1000 रू0 और अन्य सभी देय राशियों को जो बाद में देय हो देने का वचन देता हूँ। यहाँ पर देय राशि निश्चित नहीं है इसलिये यह वचन वैध प्रतिज्ञा पत्र नहीं हुआ।

यदि प्रतिज्ञा पत्र में ब्याज सहित भुगतान का वचन हो और ब्याज की दर दी हो तो ऐसा प्रतिज्ञा पत्र वैध माना जाता है।

(5) **प्रतिज्ञा पत्र पर लिखने वाले (वचनदाता) के हस्ताक्षर होने चाहिये** – प्रतिज्ञा करने वाले को पत्र का लेखक कहते हैं और उसके प्रतिज्ञा पत्र पर स्पष्ट हस्ताक्षर होने चाहिये। यदि प्रतिज्ञा करने वाला अशिक्षित हो तो वह अंगूठा लगा सकता है और यही उसके हस्ताक्षर मान लिये जायेंगे, परन्तु नाम का मुद्रण (Printing) या द्विद्रण (Perforation) या किसी अन्य रूप से लगी अनुकृति छाप (Facsimile impression) तथा रबड़ स्टाम्प से लगी छाप हस्ताक्षर नहीं मानी जायेगी।

(6) **लेखक एक निश्चित व्यक्ति होना चाहिये** – प्रतिज्ञा पत्र में उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों का निश्चित रूप से उल्लेख किया जाना चाहिये जिसने या जिन्होंने भुगतान करने की देयता अपने ऊपर ली है। दूसरे शब्दों में प्रतिज्ञा पत्र में यह भी पूर्णतया स्पष्ट होना चाहिये कि कौन व्यक्ति भुगतान के लिये बाध्य हो रहा है। यदि एक से अधिक व्यक्ति भुगतान के लिये उत्तरदायी हो तो वे अपने आप को संयुक्त रूप से या, संयुक्त एवं पृथक रूप से दायी ठहरा सकते हैं किन्तु एक के बाद दूसरे के रूप में नहीं।

(7) **भुगतान पाने वाला व्यक्ति निश्चित होना चाहिये** – प्रतिज्ञा पत्र में किसी निश्चित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को अथवा वाहक को भुगतान करने का वचन होना चाहिये। यदि किसी प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान पाने वाले का नाम गलत लिखा गया है या केवल उसके पदनाम का उल्लेख किया गया है तो भी वह वैध माना जाता है बशर्ते कि वह साक्ष्य द्वारा अभिनिश्चित किया जा सकता हो। प्रतिज्ञा पत्र में दो या अधिक व्यक्तियों को संयुक्त रूप से या वैकल्पिक रूप से देय बनाया जा सकता है।

(8) **भुगतान की जाने वाली रकम देश की वैधानिक मुद्रा में होनी चाहिये** – कोई ऐसा दस्तावेज भी प्रतिज्ञा पत्र नहीं होता जिसमें विदेशी मुद्रा में भुगतान करने या माल की सुपुर्दगी का वचन दिया गया हो। प्रतिज्ञा पत्र होने के लिये यह भी आवश्यक है कि भुगतान करने का वचन ऐसी मुद्रा में होना चाहिये जो देश में प्रचलित है।

उदाहरण– (अ) यदि मोहन यह प्रतिज्ञा करे कि मैं सोहन को 50 क्विंटल चावल देने का वचन देता हूँ और इसको लिखित में दे तो यह प्रतिज्ञा पत्र नहीं कहलायेगा।

(ब) "मैं राम को अथवा आदेशित व्यक्ति को 500 रू0 देने का वचन देता हूँ"। यह प्रतिज्ञा पत्र है।

14.5.2 विनिमय–विपत्र / विनिमय–पत्र – (Bill of Exchange)

परिभाषा – धारा 5 के अनुसार "विनिमय–पत्र एक ऐसा लिखित प्रपत्र है जिस पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होते हैं और जिसमें एक शर्त रहित आज्ञा होती है जिसके द्वारा लिखने वाला किसी निश्चित व्यक्ति को यह आज्ञा देता है कि वह एक निश्चित रकम किसी निश्चित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को अथवा प्रपत्र के वाहक को भुगतान कर दे"।

विनिमय–पत्र में तीन पक्षकार होते हैं :–

i. विनिमय–पत्र का लिखने वाला या लेखक या आहर्त्ता (Drawer)
ii. जिस पर विनिमय–पत्र लिखा जाता है या देनदार या आहर्या (Drawee)
iii. जिसे रूपया अदा किया जाता है या लेनदार या आदाता (Payee)

यदि लेखक स्वयं ही लेनदार हो तो विनिमय–पत्र में दो ही पक्षकार रह जाते हैं। अर्थात तीन पक्षकारों का होना आवश्यक नहीं।

विनिमय–पत्र के आवश्यक तत्व या विशेषतायें (Essential Characteristics of Bill of Exchange)

विनिमय–पत्र की उपयुर्क्त परिभाषा का विश्लेषण करें तो उसमें निम्न तत्व होने चाहियेः–

(1) विनिमय–पत्र लिखित होना चाहिये।

(2) उसमें धनराशि को चुकाने का एक आदेश होना चाहिये। केवल भुगतान करने का निवेदन या अनुरोध वाला प्रपत्र विनिमय–पत्र नहीं होता। परन्तु आदेश नम्र भाषा में दिया जा सकता है।

(3) भुगतान देने का आदेश शर्त रहित होना चाहिये। अर्थात प्रपत्र में कोई शर्त नहीं होनी चाहिये।

(4) विनिमय–पत्र पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होने चाहिये।

(5) जिस व्यक्ति पर प्रपत्र लिखा जाये, वह व्यक्ति भी निश्चित होना चाहिये। कोई विनिमय–पत्र वैकल्पिक रूप से दो या अधिक व्यक्तियों के नाम पर नहीं लिखा जा सकता है।

(6) विनिमय–पत्र में देय रकम निश्चित होनी चाहिये।

(7) भुगतान चालू मुद्रा में होना चाहिये।

(8) विनिमय–पत्र पर आवश्यक मुद्रांक (stamp) भी होने चाहिये।

(9) विनिमय–पत्र पर आज्ञा पालन करने की स्वीकृति भी होनी चाहिये।

(10) विनिमय–पत्र पर तिथि व स्थान भी लिखा होना चाहिये।

(11) विनिमय–पत्र में "मूल्य या प्रतिफल प्राप्त हो गया है" भी लिखा होना चाहिये।

विनिमय–विपत्र /विनिमय पत्र का नमूना (Specimen of Bill of Exchange)

रू. 5000

नैनीताल

17 जुलाई, 2011

आज से 2 माह पश्चात मोहन को अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को 5000रू. (पांच हजार रू.) दे देना,जिसका प्रतिफल मिल चुका है।

हस्ताक्षर

स्वीकृत
ह0 राजकुमार

सुरेश

उपरोक्त विनिमय पत्र में सुरेश लेखक है, राजकुमार देनदार है तथा मोहन लेनदार है।

14.5.3 प्रतिज्ञा–पत्र एवं विनिमय–पत्र में अन्तर (Difference Between Promissory Note and Bill of Exchange)

(1) **पक्षकारों की संख्या** :– विनिमय पत्र में तीन पक्षकार होते हैं (यदि कोई तीसरा व्यक्ति लेनदार हो,) लेखक, देनदार तथा लेनदार। प्रतिज्ञा पत्र में केवल दो पक्षकार होते हैं लेखक तथा देनदार।

(2) **प्रतिज्ञा–पत्र में लेखक आदाता (लेनदार) नहीं बन सकता** :– प्रतिज्ञा–पत्र में लेखक स्वयं आदाता (लेनदार) नहीं बन सकता है क्योंकि एक ही व्यक्ति वचनदाता तथा वचनगृहिता नहीं हो सकता है जब कि विनिमय–पत्र में एक ही व्यक्ति लेखक तथा आदाता बन सकता है यदि विनिमय पत्र इस शब्दावली में लिखा गया हो– "मुझे या मेरे आदेशानुसार भुगतान करें।

(3) **वचन और आदेश** :– प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान करने का वचन दिया जाता है जब कि विनिमय–पत्र में भुगतान करने का आदेश दिया जाता है।

(4) **स्वीकृति** :– प्रतिज्ञापत्र के लिये स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि जिसे भुगतान करना होता है वही उस पर हस्ताक्षर कर भुगतान करने का वचन देता है। विनिमय विपत्र में भुगतान के लिये प्रस्तुत किये जाने से पूर्व उस पर ऋणी (देनदार) की स्वीकृति अवश्य होनी चाहिये। क्योंकि विनिमय विपत्र को लेनदार लिखता है।

(5) **देयता की प्रकृति** :– प्रतिज्ञा पत्र में लेखक का दायित्व प्रधान, प्राथमिक तथा पूर्ण रूप से होता है जब कि विनिमय विपत्र में लेखक का दायित्व गौण, द्वितीयक (स्वीकर्ता के बाद) होता है अर्थात विनिमय विपत्र में जब स्वीकृर्ता धन देने में असफल रहता है या विनिमय विपत्र अनादरित हो जाता है तभी लेखक भुगतान हेतु दायी होता है।

(6) **लेखक की स्थिति** :– प्रतिज्ञा पत्र में लेखक का लेनदार से सीधा सम्बन्ध होता है जब कि विनिमय पत्र के लेखक का स्वीकृर्ता से सीधा सम्बन्ध होता है न कि लेनदार से।

(7) **वाहक को देय** :– प्रतिज्ञा पत्र 'वाहक को देय' प्रपत्र के रूप में नहीं लिखा जा सकता है जब कि विनिमय विपत्र इस प्रकार लिखा जा सकता है।

(8) **अनादरण की सूचना** :– प्रतिज्ञा पत्र के अनादरण होने पर सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं होती है जबकि विनिमय विपत्र के अनादरण होने पर विपत्र के धारक का यह कर्तव्य होता है कि वह लेखक तथा पृष्ठाकनकर्त्ताओं को अनादरण की सूचना दें।

(9) **नियमों का लागू होना** :– विनिमय विपत्र में विपत्र को स्वीकृति के लिये प्रस्तुत करने तथा स्वीकृति से सम्बन्धित नियम लागू होते है जब कि प्रतिज्ञा पत्र में कोई नियम लागू नहीं होते है

अनुग्रह अथवा सहायतार्थ विनिमय विपत्र (Accommodation Bill)

अनुग्रह विनिमय विपत्र दिखने में किसी सामान्य व्यापारिक विनिमय विपत्र जैसा ही होता है परन्तु इसके अर्न्तगत न तो कोई प्रतिफल दिया जाता है और न ही कोई व्यापारिक व्यवहार किया जाता है यह तो एक मित्र द्वारा दूसरे मित्र की सहायतार्थ स्वीकार किया जाता है। अर्थात जब कोई व्यक्ति बिना किसी प्रतिफल के किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता करने के उददेश्य से स्वीकर्त्ता के रूप में हस्ताक्षर करता है तो ऐसे विनिमय–विपत्र को 'अनुग्रह विनिमय विपत्र' कहते हैं। कभी–कभी ऐसा होता है कि वास्तव में बिना रूपया दिये–लिये ही कुछ व्यापारी आपस में एक दूसरे के ऊपर कुछ विपत्र लिख देते हैं जैसे–कोई भी व्यक्ति आर्थिक संकट में या ऐसे समय में जब उसे रूपये की बहुत आवश्यकता हो, अपने मित्र से अनुग्रह कर सकता है कि वह उसकी सहायता करे और मित्र एक विनिमय विपत्र लिख देता है तथा उसका मित्र उसे स्वीकार कर लेता है। ऐसे विपत्र को अनुग्रह विपत्र कहते हैं इन विपत्रों में कोई प्रतिफल नहीं दिया जाता है और न ही इसके द्वारा कोई मूल्य चुकाया जाता है यह तो केवल इसलिये होता है कि जिससे कि जरूरत वाला व्यक्ति इसको बट्टे (छूट) पर भुना कर रूपया प्राप्त कर ले। इस प्रकार के विपत्रों में वह व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति की सहायतार्थ अपना नाम देता है 'अनुग्रहकर्त्ता पक्ष' कहलाता है और वह व्यक्ति जो इस प्रकार सहायता प्राप्त करता है 'अनुग्रहीत पक्ष कहलाता है।

उदाहरण के लिये– राम को तीन माह के लिये 20000रू0 की आवश्यकता है। वह अपने मित्र मोहन से उधार मांगता है परन्तु मोहन भी उधार देने की स्थिति में नहीं है परन्तु वह राम की सहायता करने के लिये सहमत हो जाता है इस पर राम 20 हजार रू0 का एक विनिमय विपत्र मोहन के नाम लिखता है जो तीन माह बाद देय होगा तथा मोहन उसे स्वीकार कर राम को लौटा देता है इस प्रकार राम के पास 20 हजार रू0 का विनिमय पत्र आ गया। राम इस विनिमय पत्र को बैंक से बट्टे पर

भुना कर रकम प्राप्त कर अपनी आवश्यकता पूरी कर लेगा। विनिमय विपत्र के परिपक्व होने पर राम इस राशि को मोहन को दे देगा। इस प्रकार राम तीन माह के लिये आवश्यक रकम प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार के विनिमय विपत्र को 'अनुग्रह या सहायतार्थ विनिमय विपत्र ' कहते हैं।

14.5.4 चैक (Cheque) -

धारा 6 के अनुसार– "चैक एक ऐसा विनिमय–पत्र होता है जो किसी विशिष्ट बैंक के नाम लिखा जाता है और जो स्पष्ट रूप से मांग किये जाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से देय नहीं होता।"

इस परिभाषा से चैक की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं :–

(1) चैक एक विनिमय पत्र है इसलिये इसमें वे सभी विशेषतायें या लक्षण होनें आवश्यक है जो कि एक विनिमय–विपत्र में होती है। (विनिमय–विपत्र की विशेषतायें पहले बताई गई हैं)

(2) यह सदैव किसी विशिष्ट बैंक के नाम लिखा जाता है।

(3) यह सदैव मांग पर देय होता है।

(4) यह शर्त रहित होता है।

सभी चैक विनिमय पत्र होतें हैं परन्तु सभी विनिमय पत्र चैक नहीं होते हैं।

14.5.5 चैक व विनिमय पत्र में अन्तर (Difference Between Cheque and Bill of Exchange)

चैक (Cheque)	विनिमय पत्र (Bill of Exchange)
(1) चैक सदैव किसी निश्चित बैंक के नाम पर ही लिखा जाता है।	(1) विनिमय–पत्र किसी भी व्यक्ति, जिसमें बैंक भी शामिल है, के नाम लिखा जा सकता है।
(2) चैक सदैव मांग पर ही देय होता है।	(2) विनिमय–पत्र मांग पर भी देय होता है और निश्चित अवधि के बाद भी देय हो सकता है।
(3) चैक में स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं होती है।	(3) विनिमय–पत्र में स्वीकृति अनिवार्य होती है । बिना स्वीकृति भुगतान नहीं किया जा सकता है।
(4) चैक में अनुग्रह के दिन नहीं दिये जाते हैं।	(4) विनिमय–पत्र में अनुग्रह के तीन दिन दिये जाते हैं।
(5) चैक रेखांकित किया जा सकता है।	(5) विनिमय–पत्र कभी भी रेखांकित नही होता।
(6) चैक में मुद्रांक या स्टाम्प लगाना आवश्यक नहीं है।	(6) विनिमय पत्र में उचित मूल्य का स्टाम्प लगाना आवश्यक है।
(7) चैक के अनादरण होने पर सूचना देने की आवश्यकता नही होती।	(7) विनिमय–पत्र के अनादरित होने पर इसकी सूचना देना आवश्यक होता है।
(8) चैक के अनादरण होने पर उसके नोटिंग कराने की आवश्यकता नही होती है।	(8) विनिमय–पत्र के अनादरण होने पर नोटिंग तथा प्रोटेस्टिंग कराया जाता है।
(9) चैक का लेखक भुगतान को	(9) विनिमय–पत्र में लेखक उसके

रोकने का आदेश दे सकता है।	भुगतान को रोकने का आदेश नहीं दे सकता है।
(10) चैक को भुगतान की तिथि पर प्रस्तुत न किये जाने पर इसका आहर्त्ता अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाता।	(10) विनिमय विपत्र को भुगतान की तिथि पर प्रस्तुत न करने पर इसका आहर्त्ता अपने दायित्वों से मुक्त हो जाता है।

14.6 विनिमयसाध्य लेखपत्रों के पक्षकार एवं उनके दायित्व (Parties of Negotiable Instrument and Their Liabilities)

विनिमय पत्र के पक्षकार (Parties of Bill of Exchange)

(1) **आहर्त्ता या लेखक** – वह व्यक्ति जो विनिमय पत्र आहरित या लिखता है यदि लेखक ने ही धनराशी लेनी हो तो लेखक ही लेनदार भी होगा।

(2) **आहार्यी या देनदार** – वह व्यक्ति जिस पर विनिमय पत्र आहरित किया जाता है जो उसे स्वीकार करता है अर्थात देनदार जिसने धनराशि का भुगतान करना होता है कभी– कभी कोई अन्य व्यक्ति भी उस बिल को देनदार की ओर से स्वीकार कर सकता है।

(3) **स्वीकर्त्ता** – वह व्यक्ति जो विनिमय–पत्र को स्वीकार करता है साधारणतया देनदार ही स्वीकर्त्ता होता है परन्तु कोई अन्य व्यक्ति भी देनदार की ओर से विनिमय–पत्र को स्वीकार कर सकता है इस दशा में देनदार तथा स्वीकर्त्ता अलग–अलग व्यक्ति हो जायेंगे।

(4) **आदाता या लेनदार** – वह व्यक्ति जिसे विनिमय–पत्र की रकम भुगतान की जानी है। लेखक अथवा उसका आदेशित व्यक्ति लेनदार हो सकता है।

(5) **धारक** – वह व्यक्ति जो विनिमय–पत्र का अधिकारी होता है जिसने उसके आधार पर धनराशि प्राप्त करनी है। ऐसा व्यक्ति या तो लेखक होता है या कोई अन्य व्यक्ति जिसे लेखक या आदाता ने विनिमय–पत्र पृष्ठांकित कर दिया है। यदि विनिमय–पत्र वाहक को देय है तो वाहक ही उसका धारक होगा।

(6) **पृष्ठांकक** – जब किसी विनिमय पत्र का धारक उस विनिमय–पत्र को किसी अन्य व्यक्ति के नाम पृष्ठांकित (हस्तांतरित) कर देता है तो ऐसा व्यक्ति पृष्ठांकक कहलाता है।

(7) **पृष्ठांकिकी** – वह व्यक्ति जिसके नाम में विनिमय–पत्र हस्तांतरित या पृष्ठांकित किया जाता है उसे पृष्ठांकिकी कहते हैं।

(8) **आवश्यकता की दशा में आहार्यी या देनदार** – उपरोक्त पक्षों के अतिरिक्त आहार्ता यदि चाहे तो किसी ऐसे व्यक्ति का नाम भी दे सकता है। जो आवश्यकता पड़ने पर देनदार बन सके। ऐसे व्यक्ति को ही 'आवश्यकता पड़ने पर आहार्यी' कहते हैं ऐसे व्यक्ति का नाम या तो आहार्ता द्वारा या किसी पृष्ठांकक (बेचान करने वाला) के द्वारा इसलिये दिया जा सकता है कि यदि विनिमय–पत्र अस्वीकृत या भुगतान न करके अनादरित कर दिया जाये तो ऐसी दशा में ऐसे व्यक्ति की सहायता ली जा सकती है।

(9) **प्रतिष्ठा के लिये स्वीकर्त्ता** – कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा से विनिमय–पत्र का स्वीकर्त्ता के रूप में एक पक्ष बन सकता है। जब एक विनिमय–पत्र को प्रमाणित करने वाले अधिकारी द्वारा कोई अच्छी जमानत मांगी जाती है और

जमानत देने से इन्कार कर देने पर, मूल आहार्यी द्वारा स्वीकार करने से मना कर दे और ऐसी दशा में तीसरा व्यक्ति आहार्ता या बेचान करने वाले की प्रतिष्ठा के लिये ऐसे विनिमय–पत्र को स्वीकार कर लेता है तो ऐसे व्यक्ति को प्रतिष्ठा के स्वीकर्त्ता कहते हैं।

<u>प्रतिज्ञा–पत्र के पक्षकार</u> **(Parties of Promissory Note)**

(1) **निर्माता या लेखक** – लेखक वह व्यक्ति होता है जो प्रतिज्ञा–पत्र को लिखता है तथा जिसमे वह किसी दूसरे व्यक्ति को एक निश्चित रकम का भुगतान करने की प्रतिज्ञा करता है।

(2) **आदाता या लेनदार या भुगतान पाने वाला** – वह व्यक्ति जिसे प्रतिज्ञा–पत्र में लिखी रकम का भुगतान पाना होता है।

(3) **धारक** – वह मूल लेनदार होता है अथवा कोई दूसरे व्यक्ति भी हो सकता है जिसे उसने प्रतिज्ञा–पत्र पृष्ठांकित कर दिया हो।

(4) **पृष्ठांकक या बेचानकर्त्ता** – जब प्रतिज्ञा–पत्र का धारक प्रतिज्ञा–पत्र का बेचान दूसरे व्यक्ति के नाम करता है तो उसे बेचानकर्त्ता कहते हैं।

(5) **पृष्ठांकिकी** – वह व्यक्ति होता है जिसके नाम पर प्रतिज्ञा–पत्र बेचान किया जाये।

<u>चैक के पक्षकार</u> **(Parties of Cheque)**

(1) **आहर्त्ता या लेखक** –वह व्यक्ति जो चैक लिखता है, या आहरित करता है।

(2) **आहार्यी या देनदार** – यह सदैव बैंक होता है जिसे चैक का भुगतान करना होता है या जिस पर चैक आहरित किया जाता है।

(3) **आदाता या लेनदार** – उसी प्रकार जिस प्रकार विनिमय–पत्र या प्रतिज्ञा पत्र में होते हैं।

(4) **धारक** – उसी प्रकार जिस प्रकार विनिमय–पत्र या प्रतिज्ञा पत्र में होते हैं।

(5) **पृष्ठांकक** – उसी प्रकार जिस प्रकार विनिमय–पत्र या प्रतिज्ञा पत्र में होते हैं।

(6) **पृष्ठांकिकी** – उसी प्रकार जिस प्रकार विनिमय–पत्र या प्रतिज्ञा पत्र में होते हैं।

विनिमयसाध्य लेख पत्रों के पक्षकारों का दायित्व (Liabilities of Negotiable Instrument)

(1) **चैक के आहर्त्ता या लेखक का दायित्व** – यदि किसी चैक का आहार्यी या देनदार अर्थात बैंक चैक को अनादरित कर देता है अथवा उस चैक का भुगतान नही करता है तो चैक का लेखक उसके धारक को उसका भुगतान करने के लिये उत्तरदायी है परन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि चैक के अनादरण की सूचना लेखक को दे दी जाये। (धारा 30)

(2) **विनिमय–पत्र के आहर्त्ता या लेखक का दायित्व** – धारा 30 के अनुसार, विनिमय–पत्र का लेखक प्रारम्भिक रूप से धारक के प्रति उत्तरदायी नहीं होता, वह तो इस बात का दायित्व लेता है कि जब विनिमय–पत्र स्वीकृति के लिये उपस्थित किया जायेगा तो आहार्यी उसे स्वीकार करेगा और जब विनिमय–पत्र परिपक्वता पर भुगतान के लिये प्रस्तुत किया जायेगा तो स्वीकर्त्ता उसका भुगतान करेगा। इसलिये यदि आहार्यी विनिमय–पत्र को स्वीकार नहीं करता अथवा स्वीकृति के बाद उसका भुगतान नहीं करता तो विनिमय पत्र का आहार्ता किसी भी वास्तविक

धारक को उसका भुगतान करने के लिये उत्तरदायी होगा। इसके लिये यह आवश्यक है कि अनादरण की सूचना आहर्त्ता को दे दी जाये।

(3) **प्रतिज्ञा–पत्र के लेखक का दायित्व** – धारा 32, प्रतिज्ञा–पत्र का लेखक प्रतिज्ञा–पत्र के परिपक्व होने पर उसके धारक को प्रतिज्ञा–पत्र की रकम का भुगतान करने के लिये उत्तरदायी होता है। यदि वह भुगतान न करे तो वह प्रभावित पक्षकार को होने वाली क्षति की पूर्ति के लिये भी उत्तरदायी होगा।

(4) **चैक के आहार्यी या देनदार का दायित्व** – धारा 31, के अनुसार चैक का आहार्यी अर्थात बैंक को चैक का भुगतान उसी समय कर देना चाहिये जब चैक भुगतान के लिये प्रस्तुत किया जाये बशर्ते कि चैक के लिखने वाले के खाते में बैंक के पास पर्याप्त रूपया जमा है तथा चैक अनादरण के योग्य नहीं। यदि बैंक बिना किसी उचित कारण के चैक का भुगतान करने से मना कर देता है तो वह (आहार्यी,बैंक) आहर्त्ता को होने वाली क्षति को पूरा करने के लिये उत्तरदायी होगा।

(5) **विनिमय–पत्र के स्वीकर्त्ता का दायित्व** – धारा 32, यदि कोई विनिमय–पत्र को स्वीकार कर लेता है तो वह अपनी स्वीकृति के अनुसार परिपक्वता पर उसका भुगतान करने के लिये उत्तरदायी होता है। यदि वह इस प्रकार भुगतान करने में त्रुटि करे तो इस कारण हुई किसी भी क्षति को पूरा करने के लिये धारक के प्रति उत्तरदायी होगा।

(6) **पृष्ठांकक या वेचानकर्त्ता का दायित्व** – धारा 35, पृष्ठांकन करने वालों का दायित्व भी ठीक उसी प्रकार होता है जैसे कि विनिमय–पत्र के लिखने वाले का, जब कोई लेख पत्र उचित रूप से उपस्थित किया गया हो, और अनादरित हो गया हो तो पृष्ठांकक धारक की क्षतिपूर्ति करने के लिये उत्तरदायी होगा, यदि अनादरण की सूचना पृष्ठांकक को दे दी गई हो या उसे मिल गई हो, पृष्ठांकक पृष्ठांकन करते समय स्पष्ट शब्दों द्वारा अपने दायित्व को समाप्त कर सकता है।

14.7 विनिमय साध्य लेखपत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन (Material Alteration)

ऐसा परिवर्तन जो विनिमय साध्य लेख पत्र के किसी महत्वपूर्ण अंश या पक्षकारों के दायित्व को बदल दे, जिसके परिणाम स्वरूप लेख पत्र की प्रकृति बदल जाती है 'महतवपूर्ण परिवर्तन' कहलाता है।

इस प्रकार महत्वपूर्ण परिवर्तन के द्वारा लेख पत्र का वैधानिक स्वरूप ही बदल जाता है । निम्न परिवर्तन महत्वपूर्ण या मूलभूत परिवर्तन माने जाते हैंः–

1– लेखपत्र की तिथि में परिवर्तन
2– भुगतान के समय में परिवर्तन
3– भुगतान के स्थान में परिवर्तन
4– लेखपत्र की राशि में परिवर्तन
5– ब्याज की दर में परिवर्तन
6– विनिमय की दर में परिवर्तन
7– भुगतान के माध्यम में परिवर्तन
8– पक्षकारों में परिवर्तन

किन्तु निम्न परिवर्तन महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं माने जाते हैंः–

1– लेखपत्र के सुपुर्दगी से पहले किया गया परिवर्तन
2– पक्षकारों की अनुमति से किया गया परिवर्तन

3– यथाविधि धारी द्वारा अपूर्ण लेखपत्र को पूर्ण करने से परिवर्तन

4– साधारण पृष्ठाकान को विशेष पृष्ठाकान मे परिवर्तन

5– चैक को रेखांकित करना

14.8 परिस्थितियां जब बैंक चैक का भुगतान करने से मना कर सकता है (Circumstances When Banker May Refuse the Payment of Cheque)

एक बैंक को यह अधिकार है कि यदि चैक में कुछ शर्ते पूरी नहीं की गई हैं तो बैंक उस चैक के भुगतान को देने से मना कर सकता है। अर्थात चैक तिरस्कृत या अनादृत हो जाता है। अर्थात निम्नलिखित दशाओं में बैंक चैक का भुगतान करने से मना कर सकता है :–

(1) जब चैक लिखने वाला बैंक का ग्राहक ही चैक के भुगतान को रोकने का बैंक को आदेश दे देता है।

(2) जब चैक लिखने वाले की मृत्यु हो जाये और बैंक को सूचना मिल जाये तो सूचना मिलने के बाद ऐसे चैकों का भुगतान नहीं करता। परन्तु मृत्यु की सूचना से पूर्व बैंक द्वारा किये गये भुगतान मान्य होते हैं।

(3) जब ग्राहक दिवालिया हो जाता है, तो दिवालिया व्यक्ति के चैकों का बैंक भुगतान करने से मना कर देता है।

(4) जब ग्राहक पागल हो जाये और बैंक को चैक लिखने वाले ग्राहक के पागल होने की सूचना मिल जाये तो बैंक उसके चैकों का भुगतान नहीं करता।

(5) जब बैंक को न्यायालय की निषेधाज्ञा प्राप्त हो जाये, दूसरे शब्दों में जब न्यायालय बैंक को यह आदेश दे कि किसी विशेष चैकों का भुगतान न किया जाये तो बैंक ऐसे चैकों का भुगतान नहीं करता है।

(6) यदि बैंक को यह पता लग जाये कि चैक का धारी अर्थात चैक प्रस्तुत करने वाले के अधिकार में कुछ त्रुटि है तो उसे ऐसे चैकों का भुगतान नहीं करना चाहिये।

(7) जब बैंक को ग्राहक से यह सूचना मिल जाती है कि हिसाब बन्द कर दिया जाये तो ऐसी सूचना के बाद उस ग्राहक के चैकों का भुगतान बैंक नहीं करेगा।

(8) जब चैक 3 माह से अधिक पुराना हो जाता है।

(9) जब चैक पर लिखी तिथि से पहले ही चैक भुगतान हेतु प्रस्तुत किया जाये तो बैंक चैक का भुगतान नहीं करता है।

(10) जब ग्राहक के खाते में जमा राशि अपर्याप्त हो अर्थात ग्राहक के खाते में चैक की रकम से कम रकम शेष हो।

(11) जब चैक फटा हुआ हो।

(12) जब चैक उचित रूप से प्रस्तुत न किया जाये जैसे बैकिंग कार्य समय के बाद प्रस्तुत हो।

(13) जब चैक पर ग्राहक के हस्ताक्षर नमूने के हस्ताक्षर से भिन्न हो।

(14) जब खाता संयुक्त नाम से हो तथा सभी का चैक पर हस्ताक्षर अपेक्षित हो तो यदि सभी के हस्ताक्षर नहीं हो तो बैंक चैक का भुगतान मना कर देता है।

(15) जब चैक पर महत्वपूर्ण परिर्वतन कर दिया गया हो।

(16) जब चैक पर हस्ताक्षर ही न हों।

(17) यदि चैक पर काट–छांट की गई हो और उस काट–छांट पर लिखने वाले के हस्ताक्षर न हों।

(18) जब कोई चैक खो जाये और ग्राहक उसकी सूचना बैंक को दे दे।

14.9 धारक अथवा धारी (Holder)

धारा 8 के अनुसार, किसी भी विनिमयसाध्य लेखपत्र (प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक) का धारी वह व्यक्ति है जो अपने नाम से उसे रखने तथा सम्बन्धित पक्षकारों से देय धनराशि प्राप्त करने का अधिकार रखता हो। यदि कोई विनिमयसाध्य लेखपत्र खो जाता है या नष्ट हो जाता है तो ऐसे लेखपत्र का धारी वह व्यक्ति समझा जाता है जो ऐसी हानि या विनाश के समय उसका स्वामी था।

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि विनिमयसाध्य लेखपत्र का धारी या धारक होने के लिये किसी भी व्यक्ति को निम्न दो अधिकार होने आवश्यक हैं :–

(1) उसे उस विनिमयसाध्य लेखपत्र को अपने नाम में (आदाता, पृष्ठाकिती अथवा वाहक के रूप में) रखने का अधिकार होना चाहिये।

(2) उसे अपने नाम में ही रूपया प्राप्त करने या वसूल करने का भी अधिकार होना चाहिये। अतः लेखपत्र के किसी चोर या खोये हुये लेखपत्र को पाने वाला व्यक्ति धारी नहीं हो सकता है क्योंकि वह उस लेखपत्र का रूपया वसूल करने का अधिकार नहीं रखता है, यद्यपि लेखपत्र उसके अधिकार में है।

14.10 यथाविधिधारी (Holder in Due Course)

धारा 9 के अनुसार, यथाविधिधारी से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो प्रतिफल के बदले में, लेखपत्र में लिखित धन के देय होने से पूर्व और इस विश्वास के लिये पर्याप्त कारण न रखते हुये कि जिस व्यक्ति से उसने अपना अधिकार प्राप्त किया है उसके अधिकार में कोई दोष विद्यमान था, किसी प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक का अधिकारी हो जाता है जो वाहक को देय हो अथवा आदेशानुसार देय हो तो उसका प्राप्त कर्त्ता अथवा पृष्ठांकिती यथाविधिधारी हो जाता है।

यथाविधिधारी होने के लिये निम्न बातें सिद्व करनी होती हैं:–

i. **प्रतिफल के बदले में** – विनिमयसाध्य लेखपत्र यदि वाहक को देय है तो उसका अधिकारी अथवा यदि आज्ञा पर देय है तो उसका लेनदार या पृष्ठांकिती बननें के पहले प्रतिफल दे दिया है। दूसरे शब्दों में वह (यथाविधिधारी) प्रतिफल के बदले में उसका धारी हुआ है।
ii. **परिपक्वता की तिथि से पहले** – विनिमयसाध्य लेखपत्र देय (परिपक्वता) होने से पहले प्राप्त किया गया हो।
iii. **हस्तांतरक का अधिकार** – उसे इस बात का कुछ भी सन्देह न था कि उस व्यक्ति के अधिकार में जिससे कि उसने अधिकार प्राप्त किया है कोई दोष था।
iv. **लेख पत्र पर अधिकार** – वह लेखपत्र का धारक है अर्थात लेखपत्र उसके अधिकार में है।
v. **परिपूर्ण दशा में** – विनिमयसाध्य लेखपत्र प्रत्यक्ष दृष्टि से पूर्ण एवं नियमित होना चाहिये। यदि उसके प्रारूप मे कोई महत्वपूर्ण दोष है तो उसका धारक, यथाविधिधारी नहीं हो सकता।

14.11 यथाविधिधारी के विशेष अधिकार (Special Privileges of Holder in Due course)

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि यथाविधिधारी का अधिकार हस्तांतरक के विरूद्व किसी भी अधिकार से स्वतंत्र होता है अर्थात यथाविधिधारी का अधिकार 'सुरक्षित'

अधिकार है। विनिमयसाध्य लेखपत्र अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के अनुसार, यथाविधिधारी को निम्नलिखित विशेष अधिकार प्राप्त हैंः–

(1) **अपूर्ण स्टाम्पयुक्त लेख पत्र की दशा में** – यदि किसी यथाविधिधारी को स्टाम्प लगा हस्ताक्षर युक्त अपूर्ण लेखपत्र प्राप्त होता है तो यथाविधिधारी उसे पूर्ण कर लेखपत्र की धनराशी (जितने के लिये लेखपत्र में स्टाम्प पर्याप्त हो) वसूल कर सकता है। लेखपत्र देने वाला व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि लेखपत्र उसके द्वारा दिये गये अधिकारो के अनुसार पूर्ण नहीं किया गया है।

उदाहरण के लिये–A ने एक लेख पत्र पर स्टाम्प लगा कर हस्ताक्षर करके B को दिया परन्तु उस पर रकम नहीं लिखी और B को केवल 1500 रू0 लिखने के लिये कहता है। लेखपत्र पर जो स्टाम्प लगे हैं उसके अनुसार उस पर 2000 रू0 भरे जा सकते हैं। B ने उस पर 2000 रू0 भर कर M को हस्तांतरित कर दिया जो मूल्य के बदले सद्भावना से उसे लेता है। अतः M उस विलेख का यथाविधिधारी हुआ और वह A से 2000 रू0 वसूल कर सकता है।

(2) **पूर्व पक्षकारों का दायित्व** – विनिमयसाध्य लेखपत्र का प्रत्येक पूर्व पक्षकार (लेखक, आहर्त्ता,स्वीकर्त्ता तथा पृष्ठांकक) यथाविधिधारी के प्रति उस समय तक उत्तरदायी रहते हैं जब तक कि लेखपत्र का यथोचित रूप से भुगतान न हो जाये।

(3) **कल्पित नाम में आहरित लेख पत्र की दशा में** – किसी कल्पित नाम से बिल लिखे जाने पर भी यथाविधिधारी को स्वीकर्त्ता से बिल का भुगतान कराने का अधिकार है। स्वीकर्त्ता यथाविधिधारी के विरूद्व यह नहीं कह सकता है कि वह नाम कल्पित था।

(4) **कपट की दशा में सुरक्षा** – यदि पूर्व पक्षकारों के मध्य विनिमयसाध्य लेखपत्र का हस्तांतरण कपट से किया गया हो परन्तु जब यथाविधिधारी उसे प्राप्त करता है या अन्य व्यक्ति को देता है तो लेखपत्र सम्पूर्ण दोषों से मुक्त हो जाता है और कोई भी व्यक्ति जो उसे प्राप्त करता है उस विलेख को दोष रहित प्राप्त करता है अर्थात यथाविधिधारी को पहले के किसी भी कपट का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(5) **अवैधानिक प्रतिफल के बदले लेखपत्र को प्राप्त करना** – किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र का उत्तरदायी पक्षकार यथाविधिधारी के विरूद्व यह नहीं कह सकता है कि लेखपत्र अवैध प्रतिफल के बदले प्राप्त किया गया है अर्थात यथाविधिधारी लेखपत्र के आधार पर भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी है।

(6) **शर्तयुक्त सुपुर्दगी** – जब कोई लेखपत्र किसी यथाविधिधारी को हस्तांतरित किया गया है तो उससे सम्बद्व दूसरे पक्षकार अपने दायित्व से यह कह कर मुक्त नहीं हो सकते हैं कि लेखपत्र की सुपुर्दगी शर्तयुक्त अथवा किसी विशेष प्रयोजन के लिये की गई थी।

14.12 सारांश

विनिमयसाध्य लेखपत्र से अभिप्राय किसी ऐसे प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक से है जो किसी आदेशित व्यक्ति या वाहक को देय होता है। विनिमय साध्य लेखपत्र लिखित होना चाहिए। यदि लेखपत्र आदेशानुसार देय हो जो उसका हस्तान्तरण पृष्ठाकन एवम् सुपुर्दगी द्वारा और यदि वाहक हो देय हो तो केवल सुपुर्दगी देने से ही स्वामित्व का हस्तान्तरण हो जाता है। लेखपत्र का धारक अपने नाम से वाद प्रस्तुत कर सकता है। लेखपत्र मुद्रा के अनेक काम करता है। विनिमय

साध्य लेखपत्र में प्रतिफल का होना बिना प्रमाण दिये ही मान लिया जाता है। विनिमयसाध्य लेख पत्र तीन प्रकार के होते है – प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र एवम् चैक। प्रतिज्ञा पत्र एक लिखित प्रपत्र है जिस पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होते है और जिसमें लिखने वाला शर्त रहित यह वचन देता है कि वह निश्चित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को अथवा विपत्र के वाहक हो एक निश्चित धनराशि का भुगतान करेगा। विनिमय पत्र एक ऐसा लिखित प्रपत्र है जिस पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होते है और जिसमें एक शर्त रहित आज्ञा होती है जिसके द्वारा लिखने वाला किसी निश्चित व्यक्ति को यह आदेश देता है कि वह एक निश्चित रकम किसी निश्चित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को अथवा प्रपत्र के वाहक को भुगतान कर दे। चैक एक ऐसा विनिमय पत्र है जो किसी विशिष्ट बैंक के नाम लिखा जाता है और जो स्पष्ट रूप से मांग किये जाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से देय नहीं होता है।

विनिमयसाध्य लेखपत्र का धारी वह व्यक्ति है जो अपने नाम से उसे रखने तथा सम्बन्धित पक्षकार से देय धनराशि प्राप्त करने का अधिकार रखता हो। यथाविधिधारी से आशय एक ऐसे व्यक्ति से है जो प्रतिफल के बदले में, लेखपत्र में लिखे धन के देय होने से पूर्व और इस विश्वास के लिए पर्याप्त कारण न रखते हुए कि जिस व्यक्ति से उसने प्राप्त किया है उसके अधिकार में कोई दोष विद्यमान था, किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र का अधिकारी हो जाता है जो वाहक को देय है अथवा आदेशानुसार देय हो तो उसका प्राप्तकर्ता अथवा प्रष्ठांकिती यथाविधिधारी हो जाता है।

14.13 शब्दावली

विनिमय साध्य लेखपत्रः से अभिप्राय किसी ऐसे प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक से है जो किसी आदेशित व्यक्ति या वाहक को देय हो।

अनुग्रह विनिमय विपत्रः जब कोई व्यक्ति बिना किसी प्रतिफल के किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता करने के उददेश्य से स्वीकर्त्ता के रूप में हस्ताक्षर करता है तो ऐसे विनिमय–विपत्र को 'अनुग्रह विनिमय विपत्र' कहते हैं।

चैकः यह एक ऐसा विनिमय–पत्र होता है जो किसी विशिष्ट बैंक के नाम लिखा जाता है और जो स्पष्ट रूप से मांग किये जाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से देय नहीं होता।

14.14 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न – 'क'

निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत –

1. विनिमयसाध्य लेखपत्र का लिखित होना आवश्यक नहीं है।
2. विनिमय पत्र पर आवश्यक मुद्रांक भी लगा होना चाहिए।
3. विनिमय पत्र में तीन पक्षकारों का होना आवश्यक नहीं है।
4. प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान का वचन शर्त रहित होना चाहिए।
5. प्रतिज्ञा पत्र की स्वीकृति आवश्यक होती है।
6. विनिमय पत्र रेखाकिंत नहीं होता है।
7. चैक के अनादरण होने पर उसके नोटिंग कराने की आवश्यकता नहीं होती है।

8. जब चैक तीन माह से अधिक पुराना हो जाता है तो बैंक उसका भुगतान करने से मना कर सकता है।

बोध प्रश्न – 'ख'

रिक्त स्थान को भरिये –

1. विनिमय विपत्र में अनुग्रह के .... दिन दिये जाते है।
2. चैक में स्टाम्प लगाना आवश्यक .... ।
3. विनिमय विपत्र में भुगतान के लिए प्रस्तुत किये जाने से पूर्व उस पर ऋणी की .... अवश्य होनी चाहिए।
4. विनिमय विपत्र के अनादरण होने पर इसकी सूचना देना .... होता है।
5. यथाविधिधारी होने के लिए यह आवश्यक है कि उसे विनिमय विपत्र .... के बदले प्राप्त किया हो।

14.15 बोध प्रश्न के उत्तर

(क)

1. गलत 2. सही 3. सही 4. सही

5. गलत 6. सही 7. सही 8. सही

(ख)

1. तीन 2. नही है 3. स्वीकृति 4. आवश्यक 5. प्रतिफल

14.16 स्वपरख प्रश्न

1. विनिमयसाध्य लेखपत्र की परिभाषा दीजिये तथा उसकी विशेषताएं बताइये।
2. विनिमयसाध्य लेखपत्र कितने प्रकार के होते है तथा उनके कौन–कौन पक्षकार होते है?
3. चैक को परिभाषित कीजिये। बैंक कब किसी चैक का भुगतान करने से मना कर सकता है?
4. प्रतिज्ञा–पत्र तथा विनिमय पत्र में अन्तर बताइये। और चैक व विनिमय पत्र में अन्तर कीजिए?
5. यथाविधिधारी कौन होता है? उसे क्या अधिकार प्राप्त होते है?

14.17 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 15 चैक का परक्रामण, पृष्ठाकंन एवं रेखांकन
(Negotiation, Endorsement and Crossing of Cheques)

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 परक्रामण का अर्थ
15.3 परक्रामण के तरीके
15.4 पृष्ठाकन का अर्थ
15.5 पृष्ठाकन के प्रकार
15.6 चैक का रेखांकन
15.7 रेखांकन के प्रकार
15.8 विनिमय साध्य लेखपत्र का अनादरण
15.8.1 अनादरण पर नोटिंग तथा प्रोटेस्ट
15.8.2 अनादरण पर क्षतिपूर्ति
15.9 सारांश
15.10 शब्दावली
15.11 बोध प्रश्न
15.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.13 स्वपरख प्रश्न
15.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- चैक के परक्रामण एवं पृष्ठाकन को समझ सके।
- पृष्ठाकन कितने प्रकार से हो सकता है, को समझ सके।
- चैक का रेखांकन क्या होता है और कैसे होता है, को समझ सके।
- चैक के रेखांकन के लाभ समझ सके।

15.1 प्रस्तावना

इकाई 14 में आप पढ़ चुके है कि विनिमयसाध्य विलेख का अर्थ, उसकी विशेषताएं व मान्यताएं क्या है? विपत्र का धारी तथा यथाविधिधारी कौन होता है? विनिमयसाध्य विलेख कितने प्रकार के होते है। इस इकाई में चैक का परक्रामण तथा पृष्ठाकन कैसे होता है और साथ ही चैक के रेखांकन का अध्ययन करेगें।

15.2 परक्रामण का अर्थ (Meaning of Negotiation)

विनिमयसाध्य विलेख को भुगतान करने और कारोबारी दायित्वों को पूरा करने के उद्वेश्य से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित कर सकता है। विनिमयसाध्य विलेख का धारक विलेख को परिपक्व होने तक अपने पास न रखकर, अपने ऋण की अदायगी के रूप में किसी लेनदार को हस्तांतरित कर सकता है, उक्त लेनदार उसे फिर अपने किसी लेनदार को हस्तांतरित कर सकता है और इस प्रक्रिया के अनुसार विनिमय साध्य विलेख का स्वामित्व एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित होता रहता है। स्वामित्व हस्तान्तरण की यह प्रक्रिया परक्रामण कहलाती है।

परक्रामण की परिभाषा

धारा 14 के अनुसार ''जब कोई प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक किसी व्यक्ति को इस प्रकार हस्तांतरित किया जाता है कि वह व्यक्ति उसका धारक बन जाता है तो विलेख के ऐसे हस्तांतरण को परक्रामण कहते है।'' इस प्रकार परक्रामण से तात्पर्य विनिमय साध्य लेखपत्र के ऐसे हस्तांतरण से है जिसके फलस्वरूप उसका धारक उस पर देय राशि वसूल करने का अधिकारी हो जाता है तथा उस पत्र के सम्बन्ध में अपने नाम से मुकदमा दायर करने का अधिकारी हो जाता है।

परक्रामण कौन कर सकता है? जब तक कि विनिमयसाध्य विलेख के परक्रामण का अधिकार अधिनियम द्वारा प्रतिबन्धित न कर दिया गया हो तो विलेख का लेखक, आदेशक, आदाता अथवा पृष्ठांकिती विलेख का परक्रामण कर सकते है। जब किसी विलेख के संयुक्त लेखक, आहार्ता, आदाता हो तो उन सभी के द्वारा परक्रामण किया जा सकता है। परन्तु किसी विलेख का परक्रामण किसी के द्वारा उसी दशा में किया जा सकता है जब विपत्र कानूनी रूप से उनके कब्जे में हो अथवा वह विलेख का धारक हो। (धारा 51)

15.3 परक्रामण के तरीके (Types of Negotiation)

विनिमयसाध्य विलेख का परक्रामण निम्नलिखित दो तरीकों से किया जा सकता हैं –

1. **सुपुर्दगी द्वारा परक्रामण** – वाहक को देय विनिमयसाध्य विलेख का परक्रामण केवल उसकी सुपुर्दगी करके किया जा सकता है ऐसी सुपुर्दगी द्वारा परक्रामण के लिये सुपुर्दगी देने वाले पक्षकार को उस पर हस्ताक्षर करने की आवश्यकता नहीं होती है केवल सुपुर्दगी करने मात्र से ही सुपुर्दगी लेने वाला व्यक्ति उसका धारक बन जाता ह ै सुपुर्दगी का आशय विनिमयसाध्य विलेख के अधिकार का स्वेच्छा पूर्ण हस्तांतरण होता है। (धारा 47)
2. **पृष्ठांकन एवं सुपुर्दगी द्वारा परक्रामण** – जब कोई विनिमयसाध्य विलेख आदेशानुसार देय हो तो उसका परक्रामण पहले पृष्ठांकन तत्पश्चात उसकी सुपुर्दगी द्वारा किया जा सकता है।

15.4 बेचान या पृष्ठाकन (Endorsement)

धारा 15, जब किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र का लेखक या धारक, लेखक के रूप में नहीं बल्कि हस्तांतरण के आशय से उसकी पीठ पर या मुख पर या संलग्न कागज की चिट पर अपने हस्ताक्षर करता है अथवा उसी उद्देश्य से किसी स्टाम्प लगे हुये ऐसे कागज पर हस्ताक्षर करता है जो कि बाद में विनिमयसाध्य लेखपत्र के रूप में पूरा किया जाता है, तो वह उसका पृष्ठाकन कहलाता है और उस व्यक्ति को लेखपत्र का पृष्ठाकक कहते हैं। अतः पृष्ठांकन से तात्पर्य किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र के हस्तांतरण के उद्देश्य से उसके धारक द्वारा सामान्यतः लेखपत्र के पीछे किये गये हस्ताक्षर से होता है। यदि विनिमयसाध्य लेखपत्र के पीछे पृष्ठाकन करने के लिये स्थान नहीं बचता है तो लेखपत्र के साथ नत्थी कागज की पर्ची पर पृष्ठांकन किया जाता है। कागज की ऐसी पर्ची 'बेचान पर्ची' (Allonge)कहलाती है, और लेखपत्र का ही एक हिस्सा बन जाती है। जो व्यक्ति लेख पत्र का पृष्ठाकन करता है उसे 'पृष्ठांकनकर्ता' और जिस व्यक्ति के नाम पृष्ठाकन किया जाता उसे 'पृष्ठाकिती' कहते हैं।

वैध पृष्ठांकन के लिये यह आवश्यक है कि वह स्याही से ही किया जाये। पैन्सिल या रबड़ स्टाम्प से किया गया पृष्ठाकन मान्य नहीं होता है। पृष्ठांकनकर्ता को हस्ताक्षर करते समय अपने नाम या हस्ताक्षर वैसे ही करने चाहिये जैसे कि लेखपत्र के मुख पर अथवा पूर्ववर्ती पृष्ठांकन में किये हैं, यदि वह निरक्षर है तो लेख पत्र पर अपने बांये हाथ के अंगूठे की छाप लगा कर उसका पृष्ठांकन कर सकता है, परन्तु ऐसे पृष्ठांकन का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, जिसने अपना पूरा पता दिया हो, यथाविधि सत्यापित किया जाना आवश्यक है। विनिमयसाध्य लेखपत्र पर किये गये पृष्ठाकन उसी क्रम में किये गये माने जाते हैं जिसमें वे उस पर दिखाई देते हैं जब तक कि इसके विपरीत कोई तथ्य सिद्व न कर दिया जाये।

पृष्ठाकन का प्रभाव

धारा 50, पृष्ठाकन का निम्न प्रभाव होता है –

(1) विनिमयसाध्य लेखपत्र का स्वामित्व पृष्ठाकन करने वाले से उस व्यक्ति को हस्तांतरित हो जाता है जिसके नाम पृष्ठाकन किया गया है।

(2) जिस व्यक्ति के नाम पर पृष्ठाकन किया गया है वह व्यक्ति भविष्य में किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरण कर सकता है।

(3) जिस व्यक्ति के नाम पृष्ठाकन हुआ है वह व्यक्ति अपने नाम से लेखपत्र के अन्य पक्षकारों के विरूद्व वाद प्रस्तुत कर सकता है।

15.5 पृष्ठाकन के प्रकार (Types of Endorsement)

पृष्ठाकन निम्न प्रकार से किया जा सकता है :–

(1) **कोरा या साधारण पृष्ठाकन** – जब पृष्ठाकक लेखपत्र पर पृष्ठांकिती का नाम नहीं लिखता है केवल अपने हस्ताक्षर कर देता है तो इसे कोरा या साधारण पृष्ठाकन कहते हैं। इस प्रकार के पृष्ठाकन से लेखपत्र वाहक (Bearer) बन जाता है और केवल सुपुर्दगी द्वारा ही हस्तांतरित हो जाता है।

(2) **पूर्ण या विशेष पृष्ठाकन** – जब पृष्ठाकक लेखपत्र पर केवल अपने हस्ताक्षर ही नहीं करता, बल्कि हस्ताक्षर के साथ लेखपत्र में लिखित धनराशि को किसी निर्दिष्ट व्यक्ति को या उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति को देने का एक आदेश भी लिख देता है तो ऐसे पृष्ठाकन को पूर्ण या विशेष पृष्ठाकन कहते हैं।

उदाहरण के लिये– यदि किसी विनिमय पत्र का धारक 'राम' उसका मोहन को पूर्ण पृष्ठाकन करना चाहता है तो उसे विनिमय पत्र के पीछे इस प्रकार लिखना चाहिये। "मोहन को अथवा उसके आदेशानुसार भुगतान कर दे," ह0 राम। लेखपत्र में ऐसा पृष्ठाकन करने के उपरान्त पृष्ठाकिती अर्थात मोहन ही एक ऐसा व्यक्ति है जो उस लेखपत्र में उल्लिखित राशि का भुगतान प्राप्त कर सकता है और अपने पृष्ठाकन द्वारा लेखपत्र का हस्तांतरण किसी अन्य व्यक्ति को कर सकता है। कोरा पृष्ठाकन बहुत आसानी से पूर्ण या विशेष पृष्ठाकन में परिवर्तित हो सकता है। किसी ऐसे विनिमयसाध्य लेखपत्र का धारक जिस पर कोरा पृष्ठाकन हुआ है, पृष्ठाकक के हस्ताक्षर के ऊपर किसी अन्य व्यक्ति का नाम लिख दे तो वह विशेष पृष्ठांकन हो जायेगा।

(3) **प्रतिबन्धात्मक पृष्ठांकन** – विनिमयसाध्य लेखपत्र का पृष्ठाकन करते समय उसमें भविष्य के लिये प्रतिबन्ध भी लगाये जा सकते हैं अर्थात पृष्ठाकक स्पष्ट शब्दों द्वारा (अ) आगे के हस्तांतरण पर रोक लगा सकता है (ब) पृष्ठाकिती को लेखपत्र पृष्ठाकन करने के लिये केवल एक एजेन्ट बनाकर अथवा (स) लेखपत्र के

धन को पृष्ठाकक अथवा किसी अन्य व्यक्ति के लिये प्राप्त करके ऐसा कर सकता है। इस प्रकार के पृष्ठाकन को प्रतिबन्धित पृष्ठाकन कहते हैं। जैसे पृष्ठाकन में निम्न लिखा जाये :–

(A) Pay to Ram only

(B) Pay Ram for my use

(C) Pay Ram or order for the account of Ram

उपरोक्त पृष्ठाकन Ram के आगामी हस्तांतरण या पृष्ठाकन के अधिकार को छीन लेते हैं।

(4) **शर्त सहित पृष्ठाकन** – धारा 52, यदि किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र का पृष्ठाकक, पृष्ठाकन में अपनी देयता को किसी निर्दिष्ट घटना के घटित होने पर आश्रित बना देता है तो ऐसा पृष्ठाकन 'शर्त सहित पृष्ठाकन' कहलाता है। जैसे– "मोहन के विवाह पर मोहन को अथवा उसके आदेशानुसार भुगतान कर दें"।

(5) **आंशिक पृष्ठाकन** – कोई विनिमयसाध्य लेखपत्र उस पर देय रकम के किसी अंश के लिये पृष्ठांकित नहीं किया जा सकता है (धारा 56)। इसलिये ऐसा पृष्ठाकन जो किसी लेखपत्र की आंशिक रकम का ही पृष्ठाकन करता है तो उसे 'आंशिक पृष्ठाकन' कहते हैं और ऐसा पृष्ठाकन वैध नहीं होता है। परन्तु यदि किसी लेखपत्र की रकम का कुछ भाग चुका दिया हो, तो इस तथ्य को भी लेखपत्र में लिख कर शेष रकम के लिये पृष्ठाकन किया जा सकता है।

उदाहरण के लिये– राम 5000 रू0 के विनिमय पत्र का धारक है और वह इस प्रकार पृष्ठाकन करता है :–

(1) Pay M or order Rs 2000

(2) Rs 1000 to N or order

उक्त दशाओं में पृष्ठाकन आंशिक है और वैधानिक नहीं है। यदि इस 5000 रू0 के लेखपत्र में से 3000 रू0 का भुगतान हो चुका है तो "Pay Rs 2000 being the unpaid residue of the bill" तो ऐसा पृष्ठाकन वैध है।

15.6 चैक का रेखांकन (Crossing of Cheque)

चैक दो प्रकार के होते हैं :

1– **खुला चैक** – खुला चैक ऐसा चैक है जिसका भुगतान आदेशित बैंक के काउन्टर पर प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे चैक खतरे से खाली नही होते। क्योंकि वह खो सकता है या किसी गलत व्यक्ति के हाथ में पड़ सकता है जो उसे बैंक को दे कर के काउन्टर से भुना सकता है।

2– **रेखांकित चैक** – खुले चैक की हानि को दूर करने के लिये चैक को रेखांकित किया जाता हैं। रेखांकित चैक वह चैक होता है जिसके मुख पर दो तिरछी समान्तर रेखायें खींच दी जाती हैं समान्तर रेखायों के बीच कुछ लिखा भी जा सकता है और नहीं भी, रेखांकित चैक का भुगतान बैंक के काउन्टर से सीधे प्राप्त नहीं किया जा सकता है। रेखांकित चैक का भुगतान वसूली कर्ता बेंकर (collecting banker) के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है सीधे बैंक के काउन्टर पर नही। अर्थात पहले बैंक उस चैक की राशि को लिखने वाले के खाते से निकाल कर उस व्यक्ति के खाते में जमा करता है जिसके नाम चैक है तत्पश्चात ग्राहक उस पैसे को निकाल सकता है। इससे इस बात का पता आसानी से लगाया

जा सकता है कि धन किसके खाते में जमा हुआ है अर्थात रेखांकित चैक का भुगतान किसी अन्य व्यक्ति को नहीं हो सकता है।

जब किसी चैक के ऊपरी बांये कोने में दो तिरछी समान्तर रेखायें खींच दी जाती है तो उसे चैक का रेखांकन कहते हैं और ऐसा चैक रेखित चैक कहलाता है इन दो तिरछी समान्तर रेखाओं के बीच कुछ शब्द लिखे भी जा सकते हैं और नही भी। वास्तव में रेखांकन का उद्वेश्य यह होता है कि चैक का भुगतान असली मालिक को ही हो। अतः चैक का रेखन धारक की सुरक्षा व बचाव का साधन है। चैक के रेखन से उसकी परक्राम्यता या विनिमय साध्यता (Negotiability) पर कोई प्रभाव नहीं पडता है।

यदि किसी रेखित चैक के धारक का किसी बैंक में खाता नहीं है और वह उसका भुगतान प्राप्त करना चाहता है तो उसके सामने दो विकल्प है :

1. वह किसी बैंक में अपना खाता खोल कर उस चैक को पहले अपने खाते में जमा कर ले और तत्पश्चात अपने खाते से पैसे निकाल ले।
2. वह चैक का पृष्ठांकन किसी ऐसे व्यक्ति के नाम करके भुगतान प्राप्त कर सकता है जिसका बैंक में खाता हो।

15.7 रेखांकन के ढंग या प्रकार (Types of Crossing)

चैक का रेखांकन निम्न प्रकार से किया जा सकता है –

1 साधारण या सामान्य रेखांकन – धारा 123 के अनुसार, यदि किसी चैक के मुख भाग पर (साधारणतया चैक के ऊपरी बांये कोने पर) दो समान्तर तिरछी रेखायें खींच दी जाती हैं और उसके मध्य (a)या तो कोई शब्द न लिखे जायें या (b)'एण्ड कम्पनी'(and company 0r & Co.)शब्द लिख दिये जाते हैं (c)या/और 'अपर– काम्य' (Not Negotiable) शब्द लिख दिये जायें तो ऐसे रेखांकन को साधारण रेखांकन कहते हैं ।

साधारण रेखंकन निम्न किसी भी तरीके से किया जा सकता है

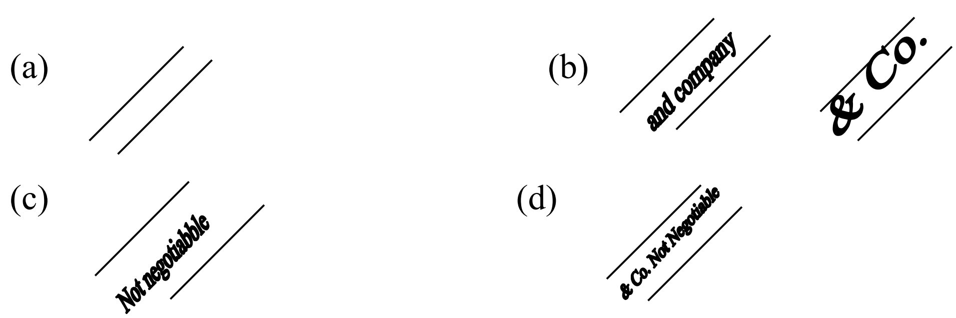

साधारण रेखांकित चैक का भुगतान आदेशित बैंक किसी अन्य को नही करेगा। अतः साधारण रेखांकित चैक का धारक उसकी वसूली किसी बैंक के माध्यम से करा सकता है। धारक अपनी इच्छानुसार किसी भी बैंक के माध्यम से वसूली करा सकता है।

2 **विशेष रेखांकन –** धारा 124 के अनुसार, यदि किसी चैक के मुख पर दो समांतर रेखाओं के बीच (not Negotiable शव्द हो या न हो)किसी बैंक का नाम लिख दिया जाये, तो इसे विशेष रेखांकन कहते हैं। (दो समान्तर रेखायें खींचना

आवश्यक नहीं है परन्तु व्यवहार में खींची जाती है)। विशेष रेखांकन में चैक का भुगतान केवल उसी बैंक को होता है जिसका नाम रेखाओं के अन्दर लिखा हैं।
विशेष रेखांकन निम्न किसी भी तरीके से किया जा सकता हैः—

(a) (b) (c)

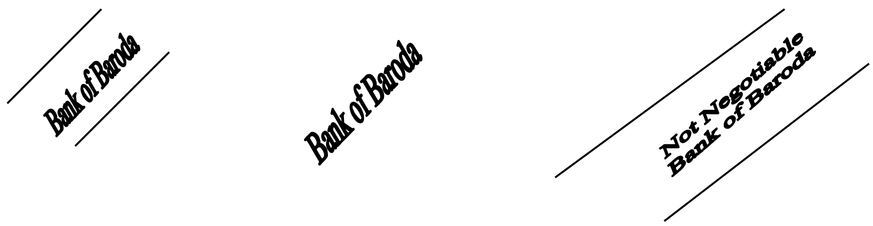

सामान्य रेखांकन की तुलना में विशेष रेखांकन की दशा में चैक अधिक सुरक्षित हो जाता है क्योंकि विशेष रेखांकित चैक के चोरी हो जाने पर चोर को उसका भुगतान लेने के लिये विशेष रेखांकन में उल्लिखित बैंक का ही कोई खाताधारी तलाश करना पड़ेगा जो कि उसके लिये सामान्यतः कठिन होगा।

(3) **प्रतिबन्धक या प्रतिबंधात्मक रेखांकन** — कुछ बैंकों एवं व्यापारियों द्वारा चैक की जोखिम को कम करने के लिये अथवा चैक को अधिक सुरक्षा प्रदान करने के लिये रेखांकन के उपरोक्त दो ढंगों के अतिरिक्त एक तीसरा ढंग भी अपनाया गया है जिसके अन्तर्गत चैक में रेखांकन की दो समानान्तर रेखाओं के बीच कुछ और शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे—'Account Payee, Only या Account Ramesh Bansal Only प्रतिबन्धक रेखांकन निम्न किसी भी तरीके से किया जा सकता है।

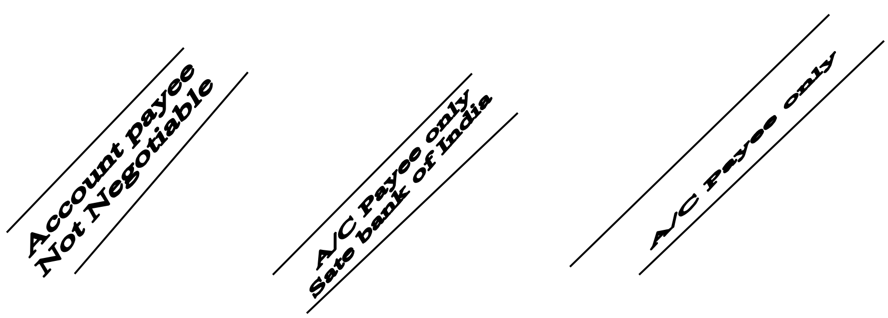

चैक के 'Account Payee' रेखांकन होने पर बैंक से यह आशा की जाती है कि वह चैक की रकम केवल आदाता के खाते में ही जमा करे किसी अन्य के खाते में नहीं। परन्तु ऐसे रेखांकित चैक का भी पृष्ठाकन किसी अन्य व्यक्ति के नाम किया जा सकता है।

चैक का रेखांकन कौन कर सकता है ?— धारा 125 के अनुसार एक चैक का रेखाकन निम्न व्यक्तियों के द्वारा किया जा सकता है :—

1— चैक का लिखने वाला चैक को रेखांकित कर सकता है।

2— यदि चैक रेखांकित नहीं है तो चैक का धारक इसको रेखांकित कर सकता है।

3— यदि चैक पर साधारण रेखांकन है तो धारक उस पर विशेष रेखांकन कर सकता है।

4– यदि चैक पर साधारण या विशेष रेखांकन है तो धारक उसमें Not negotiable शब्द और लिख सकता है।

5– यदि चैक पहले से ही विशेष रेखांकित है तो वह बैंक जिसके नाम यह पहले ही रेखांकित हो चुका है इसका भुगतान संग्रह कराने के लिये दूसरे बैंक के नाम विशेष रूप से रेखांकित कर सकता है।

15.8 विनिमय साध्य लेखपत्र का अनादरण या अप्रतिष्ठा (धारा 91–98) (Dishonour of Negotiable Instrument)

जब किसी विनिमय साध्य विलेख का आहार्यी उसको स्वीकार करने अथवा भुगतान करने से इन्कार कर देता है तो इसे विनिमय साध्य विलेख का अनादरण कहते हैं। दूसरे शब्दों में प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र या चैक का अनादरण भुगतान न करने पर किया जा सकता है परन्तु अस्वीकृति द्वारा केवल विनिमय पत्रों का ही अनादरण किया जा सकता है क्योंकि वे ही स्वीकृति के लिये प्रस्तुत करने आवश्यक होते हैं। इस प्रकार अनादरण दो प्रकार से हो सकता है। (1) अस्वीकृति द्वारा (2) भुगतान न करने पर

(1) **अस्वीकृति द्वारा अनादरण** – एक विनिमय–पत्र निम्नलिखित दशाओं में अस्वीकृति द्वारा अनादृत हुआ माना जाता है :–

i. जब कोई विनिमय–पत्र स्वीकृति के लिये प्रस्तुत किये जाने पर, उसे स्वीकार करने से मना कर दिया हो अथवा प्रस्तुत करने के बाद 48 घण्टे के अन्दर–अन्दर स्वीकार नहीं करता हो।
ii. जब स्वीकृति के लिये प्रस्तुति आवश्यक न हो और विनिमय–पत्र स्वीकार न किया गया हो।
iii. जब आहार्यी अनुबन्ध करने की क्षमता न रखता हो।
iv. जब विनिमय–पत्र पर सशर्त अर्थात प्रतिबन्धित स्वीकृति दी हो।
v. जब आहार्यी कोई कृत्रिम व्यक्ति हो अथवा उचित खोज के बावजूद न मिल सका हो।

(2) **भुगतान न करने पर अनादरण** – यदि प्रतिज्ञा पत्र का बचनदाता अथवा विनिमय–पत्र का स्वीकर्त्ता अथवा चैक का आदेशिती (आहार्यी) (Bank) भुगतान की यथाविधि मांग करने पर भुगतान नहीं करता तो वह 'भुगतान न करने पर अनादरण' माना जाता है। और तीनों विलेख, प्रतिज्ञा–पत्र, विनिमय–पत्र तथा चैक भुगतान न किये जाने पर अनादरित हुए कहे जाते हैं।

अनादरण की सूचना – अनादरण की सूचना से अभिप्राय अनादरण के तथ्य की औपचारिक सूचना देने से है। अनादरण की सूचना इस बात की चेतावनी होती है कि वह विपत्र के अधीन देय राशि के लिये दायी ठहराया जा सकता है। अनादरण की सूचना का उद्देश्य सूचना प्राप्त करने वाले व्यक्ति को यह अवसर प्रदान करना भी है कि वह अन्य पूर्विक पक्षकारों के विरूद्व अपने हितों की रक्षा कर सके।

अनादरण की सूचना किस व्यक्ति द्वारा – विनिमय साध्य विलेख के अनादरण की सूचना विलेख के धारक को उन सभी पक्षकारों को जिन्हें वह उत्तरदायी ठहराना चाहता है दी जानी चाहिये। अनादरण की सूचना प्राप्त करने वाले पक्षकार का भी यह कर्तव्य है कि वह अनादरण के तथ्य की सूचना उचित समय के भीतर सभी पूर्विक पक्षकार (prior parties) को भेज दे ताकि वह उन्हें दायी बना सके। वह

किसी भी ऐसे पूर्विक पक्षकार पर मुकद्मा नहीं चला सकता जिसे उसने अनादरण की सूचना नही भेजी है। अनादरण की सूचना अधिकृत प्रतिनिधि द्वारा भी दी जा सकती है।

अनादरण की सूचना किस व्यक्ति को (धारा 95) – किसी विनिमय साध्य विलेख के धारक का यह कर्तव्य है कि विलेख के अनादरण की सूचना (प्रतिज्ञा पत्र के बचनदाता अथवा विनिमय–पत्र के स्वीकर्त्ता अथवा चैक के आदेशिती को छोड़कर) उन समस्त व्यक्तियों या उनके अधिकृत प्रतिनिधियों को दें जिन्हें वह उत्तरदायी ठहराना चाहता है। यदि किसी विपत्र के एक से अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से उत्तरदायी हो तो उनमें से किसी एक को अनादरण की सूचना देना पर्याप्त होता है। प्रतिज्ञा पत्र के बचनदाता अथवा विनिमय–पत्र के स्वीकर्त्ता अथवा चैक के आदेशिती (बैंक) को अनादरण की सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि उन्हीं के द्वारा विपत्र का अनादरण किया जाता है। यदि विपत्र के सम्बन्ध में उत्तरदायी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो अनादरण की सूचना उसके वैधानिक प्रतिनिधि को और यदि कोई उत्तरदायी पक्ष दिवालिया घोषित हो जाता है तो अनादरण की सूचना उसके सरकारी प्रापक को दी जानी चाहिये।

अनादरण की सूचना देने का तरीका (धारा 94) – विनिमय साध्य–लेख पत्र के अनादरण की सूचना मौखिक या लिखित रूप में दी जा सकती है। लिखित होने की दशा में वह डाक द्वारा भेजी जा सकती है। सूचना का प्रारूप चाहे कुछ भी हो परन्तु उसमें प्रयुक्त भाषा से यह स्पष्ट होना चाहिये कि विपत्र का अनादरण हो गया है और सूचना प्राप्त करने वाला व्यक्ति इसके लिये उत्तरदायी होगा। अनादरण की सूचना अनादरण के बाद उचित समय के अन्दर, कारोबार के स्थान पर अथवा यदि उसका कारोबार नहीं है तो उसके निवास स्थान पर दी जानी चाहिये।

अनादरण की सूचना कब अनावश्यक होती है ?

धारा 98 के अनुसार विनिमय साध्य–लेख पत्र के अनादरण होने पर निम्नलिखित दशाओं में अनादरण की सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती अर्थात विपत्र के पक्षकार अनादरण की सूचना प्राप्त किये बिना भी उत्तरदायी होते हैं :–

(1) जब लेख पत्र का पक्षकार अनादरण की सूचना प्राप्त करने के अपने अधिकार का परित्याग कर दे।

(2) जब चैक के आदेशक ने बैंक को चैक का भुगतान न करने का आदेश दे दिया हो तो आहर्त्ता (चैक लिखने वाला) को अनादरण की सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती (क्योंकि वह स्वयं ही भुगतान न करने का आदेश दे रहा है।)

(3) जब उत्तरदायी पक्षकार को अनादरण की सूचना न देने पर कोई हानि नहीं पहुंचती है तो ऐसी दशा में अनादरण की सूचना देना आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ – जब चैक के आदेशक ने बैंक में अपना खाता बन्द कर दिया हो जिस कारण चैक अनादरित हुआ हो अथवा चैक लिखते समय उसके खाते में धन न हो।

(4) जब विनिमय साध्य–लेख पत्र के अनादरण की सूचना प्राप्त करने का अधिकारी पक्षकार उचित ढूंढ खोज करने के बाद भी नहीं मिलता अथवा जब

सूचना देने के लिये बाध्य पक्षकार, किसी अन्य न्यायोचित कारण से (जैसे मृत्यु, दुर्घटना आदि) उक्त सूचना देने में असमर्थ रहे।

(5) जब किसी विनिमय साध्य–लेख पत्र का आदेशक एवं स्वीकर्त्ता एक ही व्यक्ति हो जैसे – जब कोई फर्म अपनी किसी शाखा पर अथवा जब कोई साझेदार, साझेदारी फर्म पर कोई विनिमय पत्र लिखे।

(6) जब कोई प्रतिज्ञा पत्र विनिमय–साध्य न हो, ऐसा प्रतिज्ञा पत्र पृष्ठांकित नहीं किया जा सकता। यदि वह पृष्ठांकित कर दिया जाता है तो उसका पृष्ठांकिती को उसके लेखक तथा पृष्ठाकनकर्त्ता के विरूद्व दावा करने का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता है इसलिये ऐसे प्रतिज्ञा पत्र के अनादरण होने पर उसकी सूचना देना आवश्यक नहीं है क्योंकि सूचना न दिये जाने से किसी को भी कोई हानि नहीं होती।

(7) जब विनिमय साध्य–लेख पत्र के अनादरण की सूचना पाने का अधिकारी पक्षकार, तथ्यों को जानते हुये भी लेख पत्र पर देय रकम शर्त रहित भुगतान करने का बचन दे देता है।

15.8.1 **नोटिंग तथा प्रोटेस्ट** (धारा 99–104) **(Noting and Protest)**

नोटिंग या अवलोकन –नोटिंग किसी विनिमय साध्य–लेख पत्र के अनादरण का प्रामाणिक (Authentic) तथा आधिकारिक (official) सबूत (Proof) होता है। विनिमय साध्य–लेख पत्र अधिनियम के अनुसार, नोटिंग अनादरण के तथ्य को प्रमाणित कराने का सुविधाजनक ढंग है। किसी चैक के अनादरण के तथ्य के नोटिंग का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि जब बैंक चैक का भुगतान करने से मना करता है तो वह चैक के अनादरण करने के कारणों को लिखित रूप से चैक के साथ नत्थी करके चैक को वापस कर देता है ऐसी स्थिति में खुद चैक अपने अनादरण का प्रामाणिक साक्ष्य बन जाता है।

जब कोई प्रतिज्ञा पत्र अथवा विनिमय पत्र अस्वीकृति द्वारा अथवा भुगतान न होने के कारण अनादरित हो जाये, तो उसका धारक नोटरी पब्लिक (नोटरी पब्लिक एक ऐसा अधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति विनिमय साध्य अधिनियम में वर्णित 'नोटिंग एवं साक्ष्य' के प्रयोजनार्थ सरकार द्वारा की जाती है।) से अनादरण के तथ्य का नोटिंग सम्बन्धित लेख पत्र पर अथवा उसके साथ नत्थी पर्ची पर अथवा आंशिक रूप से लेख पत्र और पर्ची दोनों पर करा सकता है। इसके लिये लेख पत्र का धारक विनिमय पत्र अथवा प्रतिज्ञा पत्र को नोटरी पब्लिक के पास ले जाता है नोटरी पब्लिक लेख पत्र को यथास्थिति सम्बन्धित पक्षकार के समक्ष स्वीकार करने या भुगतान करने की मांग हेतु प्रस्तुत करता है और यदि पक्षकार ऐसा करने से मना कर देता है तो नोटरी पब्लिक उसके इन्कार करने के तथ्य का नोटिंग सम्बन्धित लेख पत्र पर कर देता है। इस प्रकार अनादरण के तथ्य का अनादृत लेख पत्र पर अथवा नत्थी पर्ची पर अभिलेखन नोटिंग कहलाता है। नोटिंग लेख पत्र के अनादरण के पश्चात उचित समय के अन्दर की जानी चाहिये। नोटिंग में निम्न बातें होनी चाहिये–

I. अनादरण की तिथि।
II. अनादरण किये जाने का कारण।
III. यदि लेख पत्र का अनादरण स्पष्ट रूप से नहीं हुआ है तो लेख पत्र का धारक उसको किस कारण अनादरित मानता है।

IV. नोटरी पब्लिक का पारिश्रमिक तथा व्यय का उल्लेख किया जाना चाहिये।

प्रोटेस्ट, या प्रसाक्ष्य या प्रमाणन (धारा 100) –

प्रोटेस्ट अनादरण के तथ्य का नोटिंग के पश्चात एक औपचारिक प्रमाण पत्र होता है जिसे नोटरी पब्लिक विनिमय पत्र अथवा प्रतिज्ञा पत्र के धारक को, उसकी मांग पर प्रदान करता है। प्राप्त किये हुये ऐसे प्रमाण पत्र को 'प्रोटेस्ट' कहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि प्रोटेस्ट एक प्रमाण पत्र है जो कि अनादरण के तथ्य को प्रमाणित करता है और यह अनादरण के सम्बन्ध में किये गये नोटिंग के आधार पर तैयार किया जाता है।

अच्छी जमानत के लिये प्रोटेस्ट (धारा 100) (Protest for better Security)

जब किसी विनिमय–पत्र का स्वीकर्त्ता उसके परिपक्व होने से पूर्व दिवालिया हो गया हो अथवा उसकी साख जनता में गिर गई हो तो धारक नोटरी पब्लिक के द्वारा उचित समय के भीतर स्वीकर्त्ता से अच्छी जमानत मांग सकता है और उसके इन्कार करने पर उचित समय के अन्दर इस तथ्य को नोट तथा प्रमाणित करा सकता है ऐसे प्रमाण पत्र को ही 'अच्छी जमानत के लिये प्रोटेस्ट' कहते हैं।

प्रोटेस्ट या प्रमाणन की विषय सामग्री या आवश्यक बातें (धारा 101) –

प्रमाणन में निम्नलिखित विवरण सम्मिलित होना चाहिये –

1) विपत्र मूल रूप में अथवा उसकी प्रतिलिपि,
2) उस व्यक्ति का नाम जिसके लिये तथा जिसके विरूद्व लेख पत्र का प्रोटेस्ट किया गया हो।
3) इस तथ्य का विवरण कि नोटरी पब्लिक द्वारा सम्बन्धित व्यक्ति भुगतान, स्वीकृति या अच्छी जमानत की मांग की थी और उस व्यक्ति ने उसकी मांग ठुकरा दी थी, अथवा उसने कोई उत्तर नहीं दिया अथवा वह व्यक्ति ही नहीं मिल सका था।
4) अनादरण का स्थान एवं समय और यदि अच्छी जमानत से इन्कार किया गया हो उसका स्थान व समय।
5) नोटरी पब्लिक का लेख एवं हस्ताक्षर।
6) यदि प्रतिष्ठा हेतु स्वीकृति या प्रतिष्ठा हेतु भुगतान हुआ हो तो किसने और किसकी प्रतिष्ठा के लिये और किस विधि से स्वीकृति और भुगतान का प्रस्ताव किया गया लिखना चाहिये।

15.8.2 क्षतिपूर्ति (धारा 117) (Compensation)

जब कोई विनिमय–पत्र, प्रतिज्ञा पत्र अथवा चैक अनादरित हो जाता है तो उसके धारक अथवा बेचानकर्त्ता को देय क्षतिपूर्ति निम्नलिखित नियमों के आधार पर निर्धारित होती है :–

(1) विनिमय साध्य लेख पत्र के धारक को लेख पत्र की रकम उसे प्रस्तुत करने, नोटिंग तथा प्रोटेस्ट कराने में उचित रूप से किये गये व्ययों को प्राप्त करने का अधिकार होता है। यदि उत्तरदायी पक्षकार किसी दूसरे देश में रहता है तो धारक दोनों देशों के बीच चालू विनिमय दर के अनुसार क्षतिपूर्ति की उक्त रकम पाने का अधिकारी है।

(2) जब बेचान कर्त्ता या पृष्ठांकक ने लेख पत्र पर देय रकम का भुगतान कर दिया हो, तो वह चुकाई गई रकम, भुगतान करने की तिथि से लेकर उसको प्राप्त करने की तिथि तक का 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज, तथा अनादरण व भुगतान सम्बन्धी सभी व्ययों को प्राप्त करने का अधिकारी होता है। जब उत्तरदायी पक्षकार दूसरे देश का हो तो पृष्ठांकक दोनों देशों के बीच प्रचलित विनिमय दर के

अनुसार उक्त रकम (लेख पत्र की रकम + ब्याज +व्यय) पाने का अधिकारी होता है।

(3) क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी पक्षकार लेख पत्र की रकम तथा उस पर किये उचित व्ययों के लिये 'मांग पर देय' लिख सकता है ऐसे विनिमय पत्र को पुर्नलेख (Re-draft) कहते हैं। पुर्नलेख के साथ अनादरित विलेख तथा उसका प्रमाण पत्र (प्रोटेस्ट) संलग्न होना आवश्यक है। यदि पुर्नलेख भी अनादरित कर दिया जाये तो अनादरण करने वाला पक्षकार इसके लिये क्षतिपूर्ति करने का दायी होगा।

15.9 सारांश

जब विनिमय साध्य विलेख इस प्रकार हस्तातरित किया जाता है कि वह व्यक्ति उस विलेख का धारक बन जाता है तो ऐसे हस्तातरण को परक्रामण कहते है। वाहक को देय विलेख का परक्रामण केवल विलेख की सुपुर्दगी द्वारा हो जाता है परन्तु यदि विलेख आदेशानुसार देय हो तो ऐसे विलेख का परक्रामण विलेख के पृष्ठांकन तथा उसकी सुपुर्दगी के द्वारा होता है।

जब विनिमय साध्य विलेख का धारक हस्तातरण के आशय से विलेख की पीठ पर या मुख पर या संलग्न कागज की चिट पर अपने हस्ताक्षर करता है तो इसे विलेख का पृष्ठांकन कहते है। जो व्यक्ति पृष्ठाकंन करता है उसे पृष्ठांकक या पृष्ठांकन कर्ता और जिस व्यक्ति के नाम पृष्ठांकन किया जाता है उसे पृष्ठाकिती कहते है। पृष्ठांकन स्याही से ही किया जाना चाहिए। पृष्ठांकन – साधारण, विशेष, प्रतिबंधात्मक तथा शर्त सहित हो सकता है।

रेखांकित चैक वह चैक जिसके मुख पर दो तिरक्षी समान्तर रेखायें खींच दी जाती है समान्तर रेखाओं के बीच कुछ लिखा भी जा सकता है और नहीं भी। रेखांकित चैक का भुगतान बैंक के काउन्टर से सीधे प्राप्त नहीं किया जा सकता है अर्थात पहले रेखांकित चैक का पैसा खाते में जमा होता है और फिर खाते से पैसे निकाले जा सकते है। चैक का रेखांकन अनेक प्रकार से किया जा सकता है जैसे सामान्य रेखाकंन, विशेष रेखांकन तथा प्रतिबन्धात्मक रेखांकन। चैक का रेखांकन लिखने वाला तथा उसका धारक भी कर सकता है। चैक के साधारण रेखांकन का उसका धारक विशेष रेखांकन कर सकता है।

15.10 शब्दावली

परक्रामणः जब कोई प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक किसी व्यक्ति को इस प्रकार हस्तांतरित किया जाता है कि वह व्यक्ति उसका धारक बन जाता है तो विलेख के ऐसे हस्तांतरण को परक्रामण कहते है।''

पृष्ठांकनः इससे तात्पर्य किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र के हस्तांतरण के उद्देश्य से उसके धारक द्वारा सामान्यतः लेखपत्र के पीछे किये गये हस्ताक्षर से होता है।

खुला चैकः ऐसा चैक है जिसका भुगतान आदेशित बैंक के काउन्टर पर प्राप्त किया जा सकता है।

विलेख का अनादरणः जब किसी विनिमय साध्य विलेख का आहार्यी उसको स्वीकार करने अथवा भुगतान करने से इन्कार कर देता है तो इसे विनिमय साध्य विलेख का अनादरण कहते हैं।

15.11 बोध प्रश्न और उनके उत्तर

बोध प्रश्न 'क'

निम्न कथनों में कौन सा सत्य है और कौन सा अस्तय बताइयें –

1. एक विनिमय साध्य विलेख का उसके मूल्य के कुछ भाग के लिये पृष्ठांकन किया जा सकता है।
2. जब पृष्ठांकन कर्ता विनिमय साध्य विलेख पर केवल अपना हस्ताक्षर कर देता है और पृष्ठांकिती का नाम नहीं लिखता तो यह वैध पृष्ठांकन नहीं माना जाता है।
3. वाहक को देय चैक का केवल सुपुर्दगी कर देना परक्रामण माना जाता है।
4. दिवालिया व्यक्ति द्वारा जारी चैक के भुगमात को बैंक मना कर सकता है।
5. जब चैक तीन माह से अधिक पुराना हो जाता है तो ऐसे चैक का भुगतान करने से बैंक मना नहीं कर सकता है।

बोध प्रश्न 'ख' – रिक्त स्थानों को भरिये –

1. भावी तिथि के चैक .... विनिमय साध्य विलेख नहीं होते है।
2. एक आदेशित विनिमय साध्य विलेख का हस्तांतरण .... द्वारा हो सकता है।
3. विनिमय साध्य विलेख का आंशिक पृष्ठांकन .... जा सकता है।
4. एक चैक पर महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया गया हो तो बैंक ऐसे चैक का भुगतान .... सकता है।
5. एक चैक .... माह तक वैध रहता है।

15.12 बोध प्रश्न के उत्तर

क)

1. असत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

ख)

1. वैध 2. पृष्ठांकन एवं सुपुर्दगी 3. नहीं किया 4. नहीं कर 5. तीन

15.13 स्वपरख प्रश्न

1. विनिमय साध्य विलेख के परक्रामण से आप क्या समझते है ? ये कितने प्रकार के होते है?
2. चैक के रेखांकन से आप क्या समझते है? रेखांकन के विभिन्न प्रकार कौन–कौन से है?
3. विनिमय साध्य विलेख के पृष्ठांकन का अर्थ समझाइये। पृष्ठांकन कितने प्रकार से किया जा सकता है?
4. विनिमय साध्य लेखपत्र के अनादरण से क्या अभिप्राय है ? अनादरण पर नोटिंग व प्रोटेस्ट के सम्बन्ध में क्या नियम हैं ?

15.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई –16 भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 (Indian Partnership Act, 1932)

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 साझेदारी की परिभाषा
16.3 साझेदारी संलेख
16.4 साझेदारों के प्रकार
16.5 साझेदारी तथा सहस्वामित्व में अन्तर
16.6 साझेदारी तथा सयुक्त हिन्दु परिवार में अन्तर
16.7 साझेदारी तथा कम्पनी में अन्तर
16.8 लाभ में हिस्सा पाना किसी व्यक्ति को साझेदार नहीं बना देता
16.9 अवयस्क साझेदार की स्थिति
16.10 साझेदारों के अधिकार
16.11 साझेदारों के कर्तव्य
16.12 सारांश
16.13 शब्दावली
16.14 बोध प्रश्न
16.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.16 स्वपरख प्रश्न
16.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- साझेदारी का अर्थ और उसकी विशेषताओं को समझ सके।
- साझेदारी, सहस्वामित्व, सयुक्त हिन्दु परिवार तथा कम्पनी में अन्तर समझ सके।
- साझेदारी संलेख क्या होता है, को समझ सके।
- एक अवयस्क साझेदार की साझदारी फर्म में क्या स्थिति होती है, को समझ सके।
- सझेदारों के आपसी सम्बन्धों को अर्थात उनके अधिकारों व कर्त्तव्यों को समझ सके।

16.1 प्रस्तावना

अन्य प्रकार के अनुबन्धों की भॉति साझेदारी भी एक विशेष प्रकार का व्यापारिक अनुबन्ध है इस अनुबन्ध से सम्बन्धित व्यवस्थायें भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 में सन्निहित है। 1932 से पूर्व साझेदारी अनुबन्ध से सम्बन्धित नियम, भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 के ग्यारवें अध्याय की धारायें 139 से 166 के अर्न्तगत दिये गये थे। सन् 1932 में नवीन अधिनियम में महत्वपूर्ण संशोधन किए गए तथा यह 1 अक्तूबर 1932 से लागू हुआ। यह भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 कहलाया, जो जम्मू तथा कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू है। साझेदारी फर्मो पर भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के उपबन्ध भी उस सीमा तक लागू होते है जिस तक वे साझेदारी अधिनियम के अभिव्यक्त उपबन्धों

से असंगत नहीं होते। इस इकाई में आप साझेदारी का अर्थ तथा उसकी विशेषताओं के साथ साथ साझेदारों के अधिकारों व कर्तव्यों का अध्ययन करेंगे।

16.2 साझेदारी की परिभाषा (Definition of Partnership)

धारा 4 के अनुसार "साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध है जिन्होने किसी ऐसे कारोबार से उपार्जित लाभ को बांटने का ठहराव किया है जिसे वे सब अथवा उन सबकी ओर से एक संचालित करता है"। ऐसे व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से साझेदार और सामुहिक रूप से फर्म कहते हैं।

प्रो0 हैने के अनुसार, "साझेदारी विभिन्न व्यक्तियों में जो अनुबन्ध करने के योग्य है, परस्पर ठहराव करते हैं जिसके अनुसार वह अपने लाभ के लिये कोई न कोई व्यवसाय करते हैं"।

किम्बोल के अनुसार,"साझेदारी दो या दो से अधिक ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिन्होने किसी व्यावसायिक उद्देश्य से परस्पर पूंजी लगाई है"।

उपरोक्त परिभाषाओं के अनुसार साझेदारी के लिये निम्नलिखित लक्षण आवश्यक हैं :–

साझेदारी के लक्षण या विशेषतायें (Characteristics of Partnership)

(1) **दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना** – साझेदारी होने के लिये कम से कम दो व्यक्तियों (साझेदार) का होना आवश्यक है क्योंकि साझेदारी पारस्परिक ठहराव द्वारा अस्तित्व में आती है। एक व्यक्ति स्वयं से ठहराव या साझेदारी नहीं कर सकता। साझेदारों की अधिकतम संख्या कम्पनी अधिनियम द्वारा निर्धारित की गई है साझेदारी अधिनियम द्वारा नहीं। जो साझेदारी फर्म बैंकिंग के व्यवसाय में संलग्न होगी उसमें अधिकतम 10 साझेदार हो सकते है। और अन्य कारोबार में संलग्न हो तो अधिकतम 20 साझेदार हो सकते हैं। अधिकतम संख्या से अधिक साझेदार होने पर साझेदारी अवैध समझी जायेगी और न्यूनतम 2 से कम होने पर साझेदारी फर्म समाप्त हो जायेगी।

(2) **ठहराव का होना** – साझेदारी की स्थापना साझेदारों के बीच स्पष्ट अथवा गर्मित ठहराव द्वारा होती है। व्यक्तियों की स्थिति से साझेदारी की स्थापना नहीं होती। ठहराव लिखित या मौखिक हो सकता है। साझेदारी अनुबन्ध में भी वे सभी गुण या विशेषतायें होनी चाहिये जो कि एक वैध अनुबन्ध में होते हैं। इसी विशेषता के कारण ही संयुक्त हिन्दू परिवारों के सदस्यों को साझेदार नहीं कहा जाता क्योंकि उनके बीच कोई ठहराव नहीं होता। अतः 'साझेदारों के मध्य अनुबन्ध' साझेदारी का मूलाधार होता है।

(3) **कारोबार का होना** – साझेदारी होने के लिये यह भी आवश्यक है कि साझेदारों के मध्य जो ठहराव हो वह किसी कारोबार या व्यवसाय को चलाने के लिये होना चाहिये। कारोबार के अर्न्तगत व्यापार, व्यवसाय तथा पेशे सम्मिलित हैं। यदि ठहराव पुण्यार्थ कार्य के लिये हो या माल व सम्पत्ति खरीद कर आपस में बांटने के लिये हो तो उसे साझेदारी नहीं कहेंगे।

(4) **कारोबार का उद्देश्य लाभ कमाना तथा बांटना होना चाहिये** – साझेदारी के लिये यह भी आवश्यक है कि साझेदारों के बीच हुए ठहराव में कारोबार का उद्देश्य लाभ कमाना होना चाहिये तथा लाभ को आपस में बांटना होना चाहिये। इसलिये कोई भी ठहराव जिसका उद्देश्य परोपकारी कार्य करना है तो उसे

साझेदारी नहीं कहेंगे। लाभ कमाने के साथ–साथ उसे परस्पर बांटना भी साझेदारी के लिये आवश्यक है।

यदि किसी कारोबार के पूरे लाभ को केवल एक साझेदार लेने का अधिकारी होता है तो उसे साझेदारी नहीं कहा जा सकता। हॉ, साझेदार अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी अनुपात में आपस में लाभ का बटवारा करने का अनुबन्ध कर सकते है।

हानि का बटवारा आवश्यक नहीं है – साझेदारी के लिए साझेदारों का हानि को परस्पर बाटने के लिए सहमत होना आवश्यक नहीं है कोई एक या एक से अधिक साझेदार कारोबार की सम्पूर्ण हानि को परस्पर बाटने के लिए सहमत हो सकते है। इस प्रकार साझेदारी अधिनियम साझेदारों द्वारा हानि को परस्पर बाटने के लिए अनुबन्ध करने को साझेदारी के अस्तित्व की कसौटी नहीं मानता। अर्थात साझेदार आपस में ऐसा अनुबन्ध कर सकते है कि कुछ निश्चित साझेदार ही हानि के लिए उत्तरदायी होगें शेष नहीं तो ऐसी स्थिति में हानि का बटवारा सभी साझेदारों में नहीं होगा। साझेदारी अधिनियम के अनुसार यदि साझेदारों ने अन्यथा अनुबन्ध न किया हो तो फर्म के साझेदार कारोबार के लाभ को बराबर बराबर बाटने के अधिकारी होगें और कारोबार की हानियां भी बराबर बराबर सहन करेंगे।

(5) **साझेदारी के कारोबार को सब साझेदार अथवा उनमें से कोई एक भी चला सकता है** – साझेदारी के लिये यह आवश्यक नहीं है कि कारोबार के संचालन में सभी साझेदार सक्रिय रूप से भाग लें। इसके लिये इतना आवश्यक है कि कारोबार का संचालन सभी साझेदारों की ओर से एक साझेदार कर सकता है और उस एक साझेदार के कार्यों से सभी साझेदार बाध्य होंगे। क्योंकि साझेदारी का मूल सिद्वान्त यह है कि प्रत्येक साझेदार अपनी फर्म का एजेन्ट है और वह अपने सभी अधिकृत कार्यों से फर्म को बाध्य कर सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक साझेदार एजेन्ट के साथ–साथ नियोक्ता भी होता है। इस प्रकार साझेदारों के कार्यो से अन्य सब साझेदार भी बाध्य होते हैं अर्थात एक साझेदार का कार्य फर्म का कार्य माना जाता है।

16.3 साझेदारी विलेख या संलेख (Partnership Deed)

साझेदारी की स्थापना ठहराव द्वारा होती है। ठहराव लिखित या मौखिक हो सकता है। ठहराव के लिखित होने से साझेदारों तथा फर्म दोनों को लाभ होता है लिखित ठहराव होने पर कर्तव्य, अधिकार व दायित्वों का निर्धारण सरल हो जाता है इसी लिखित ठहराव को साझेदारी संलेख या विलेख कहते हैं। इसे बहुत सावधानी से तैयार किया जाना चाहिये, इसमें सभी साझेदारों के हस्ताक्षर होने चाहिये। भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अनुसार इस पर उचित स्टाम्प लगाये जाने चाहिये। प्रत्येक साझेदार के पास इस विलेख की प्रति होनी चाहिये। जब फर्म का रजिस्ट्रेशन होता है तो साझेदारी विलेख की एक प्रति रजिस्ट्रार के कार्यालय में भी जमा करायी जानी चाहिये। क्योंकि फर्म का पंजीकरण न कराये जाने पर कोई साझेदार उक्त विलेख मे वर्णित शर्तों का पालन कराने के लिये अन्य साझेदारों के विरूद्व न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है। फर्म का पंजीकरण हो जाने पर साझेदारी विलेख की शर्तो को साझेदार न्यायालय द्वारा लागू करा सकते हैं। साझेदारी संलेख से भविष्य में होने वाले मन मुटाव को या अन्य समस्याओं का समाधान करने में सहायता मिलती है। साझेदारी संलेख में

निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित विवरण होना चाहिये अर्थात साझेदारी विलेख की विषय सामग्री निम्न प्रकार है :–

1) साझेदारी फर्म का नाम तथा साझेदारों के नाम व पते।
2) फर्म के कारोबार की प्रकृति तथा क्षेत्र, (वे स्थान जहाँ फर्म द्वारा कारोबार किया जाता है)।
3) साझेदारी प्रारम्भ करने की तिथि।
4) साझेदारी की अवधि (यदि साझेदारी निश्चित अवधि के लिये है)।
5) फर्म के प्रत्येक साझेदार द्वारा लगाई गई पूँजी की मात्रा।
6) फर्म को भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर पूँजी एकत्र करने के तरीके।
7) साझेदारों द्वारा लगाई गई पूँजी पर ब्याज की दर।
8) साझेदारों द्वारा पूँजी के अतिरिक्त दिये गये ऋण पर ब्याज दर।
9) साझेदारों के मध्य लाभ–हानि के बटवारे का अनुपात।
10) फर्म का हिसाब किताब रखने का तरीका।
11) साझेदारों को देय वेतन, कमीशन, बोनस आदि।
12) साझेदारों के कर्तव्य, तथा अधिकारों का विभाजन तथा साझेदारों के दायित्वों का विवरण।
13) साझेदारों के मध्य कार्यों का विभाजन।
14) फर्म में नये साझेदार के प्रवेश सम्बन्धी नियम।
15) साझेदारों के रिटायर होने के नियम।
16) साझेदारी फर्म की ख्याति के मूल्यांकन की विधि।
17) फर्म के किसी साझेदार की मृत्यु होने पर क्या व्यवस्था होगी।
18) कर्तव्य भंग अथवा कपट करने वाले साझेदार के निष्कासन सम्बन्धी नियम।
19) साझेदारी के विघटन सम्बन्धी परिस्थितियाँ।
20) साझेदारों के आपसी विवादों को पंच–निर्णय के अनुसार निपटाने की व्यवस्था।

उपरोक्त विवरणों के अतिरिक्त साझेदार अन्य बातों का भी समावेश कर सकते हैं जिन्हें वे उचित समझे। परन्तु कोई भी बात साझेदारी अधिनियम के विपरीत न हो। साझेदारी संलेख में लिखी गई शर्तों को सभी साझेदार सहमति से परिवर्तित कर सकते हैं। साझेदारी संलेख मे स्टैम्प अधिनियम के अनुसार स्टैम्प लगाये जाते हैं।

16.4 साझेदारों के प्रकार (Types of Partner)

किसी साझेदारी फर्म में निम्नलिखित प्रकार के साझेदार हो सकते हैं :–

(1) सक्रिय साझेदार या वास्तविक साझेदार –

ऐसे साझेदार जो ठहराव द्वारा साझेदार बनते हैं तथा जो साझेदारी कारोबार के संचालन में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, वास्तविक या सक्रिय साझेदार कहलाते हैं। सक्रिय साझेदार के कार्यो से सक्रिय साझेदार स्वयं तथा अन्य सभी साझेदार तृतीय पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। सक्रिय साझेदार के लिये यह आवश्यक होता है कि वह रिटायर होने पर इसकी सार्वजनिक सूचना दे। यदि रिटायरमेन्ट की सार्वजनिक सूचना नहीं देता है तो वह रिटायर होने के बाद भी अन्य साझेदारों

के कार्यो के प्रति उत्तरदायी होगा। सक्रिय साझेदार के स्थायी अयोग्य होना विघटन का आधार बन जाता है।

(2) निष्क्रिय अथवा सुप्त साझेदार –

ऐसे साझेदार जो साझेदारी फर्म के कारोबार के संचालन में सक्रिय रूप से भाग न लेकर, केवल अपनी पूँजी लगाकर लाभ हानि में भागी होता है निष्क्रिय साझेदार कहलाता है। ऐसा साझेदार फर्म के प्रबन्ध में परामर्श देते हैं परन्तु सर्वसाधारण को उनके फर्म में साझेदार होने के तथ्य को प्रकट नहीं किया जाता। ऐसा साझेदार किसी अप्रकट नियोक्ता की भांति फर्म के सभी कार्यो के लिये तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होता है। ऐसे साझेदार को रिटायर होते समय सार्वजनिक सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती ऐसे साझेदार के दायित्व रिटायर होने पर समाप्त हो जाते हैं। निष्क्रिय साझेदार के स्थायी अयोग्य होना विघटन का आधार नहीं बनता है।

(3) नाममात्र का साझेदार –

एक ऐसा व्यक्ति जिसका नाम फर्म में एक वास्तविक साझेदार की तरह होता है, जब कि वास्तव में वह साझेदार नहीं है, नाममात्र का साझेदार कहलाता है। ऐसा व्यक्ति अपना नाम साझेदार के रूप में रखने को सहमत होता है इससे फर्म को यह लाभ होता है कि उसकी ख्याति के कारण फर्म को ऋण मिलने में आसानी होती है। वह न तो फर्म में कोई पूँजी लगाता है और न ही फर्म के लाभ–हानि में हिस्सा लेता है। परन्तु ऐसा साझेदार फर्म के कार्यो के लिये तीसरे पक्षकारों के प्रति उसी प्रकार उत्तरदायी होता है जैसे कि वह वास्तविक साझेदार हो। ऐसा साझेदार फर्म के कारोबार के संचालन में भी भागीदारी नहीं करता है। व्यवहार में ऐसा साझेदार वही व्यक्ति बनते हैं जो कि वास्तविक साझेदारों के मित्र या सम्बन्धी होते हैं।

(4) केवल लाभ के लिये साझेदार –

ऐसा साझेदार जो फर्म के लाभ में निश्चित भाग पाने का अधिकारी होता है परन्तु हानि के लिये उत्तरदायी नहीं होता 'केवल लाभ के लिये साझेदार' कहलाता है। ऐसा साझेदार फर्म के प्रबन्ध एवं संचालन में भाग नहीं लेता है परन्तु ऐसे साझेदार तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(5) प्रदर्शन द्वारा साझेदार –

यदि कोई व्यक्ति अपने मौखिक या लिखित शब्दों से या अपने आचरण से अन्य व्यक्तियों के सम्मुख यह प्रकट करता है कि वह अमुक साझेदारी फर्म में साझेदार है, (जब कि वास्तव में वह साझेदार नहीं है) तो वह ऐसे व्यक्ति के प्रति साझेदार के रूप में दायी होगा जिसने उसके प्रर्दशन पर विश्वास करके फर्म के साथ व्यवहार किया या ऋण दिया हो। ऐसा व्यक्ति प्रर्दशन द्वारा साझेदार कहलाता है। ऐसा साझेदार अन्य साझेदारों के साथ न ठहराव करता है, न लाभ–हानि में हिस्सा बांटता है, न फर्म के संचालन में भाग लेता है, फर्म के कार्यो के प्रति सामान्यतः उत्तरदायी भी नहीं होता है। वह केवल ऐसे व्यक्तियों के प्रति उत्तरदायी होता है जिन्होने उसके प्रर्दशन पर विश्वास करके फर्म के साथ व्यवहार किया हो।

साझेदारी की विद्यमानता का निर्णय –

प्रायः इस बात पर एक समस्या उत्पन्न हो जाती है कि दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच साझेदारी विद्यमान है या नहीं। इसके लिये हमें साझेदारी की

परिभाषा, उसके विभिन्न लक्षणों तथा साझेदारी अधिनियम की धारा 5 व 6 से सहायता मिलती है। दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच साझेदारी है या नहीं इसकी विद्यमानता के लिये सभी सम्बन्धित बातों पर ध्यान देना होगा। जैसे– साझेदारों के बीच ठहराव, साझेदारों का ठहराव कारोबार हेतु, लाभ का बटवारा, कारोबार का संचालन आदि बातों पर ध्यान देना होता है।

16.5 साझेदारी एवं सह–स्वामित्व में अन्तर (Difference between Partnership and Co-ownership)

जब किसी सम्पत्ति के दो या अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से स्वामी होते हैं तो उन्हें सह–स्वामित्व कहते हैं, यदि ये व्यक्ति इस प्रकार की सम्पत्ति को बेच कर धनराशि आपस में बांट लेते हैं तो इन्हें भी साझेदार नहीं कहेंगे। क्योंकि साझेदारी होने के लिये साझेदारों द्वारा कारोबार के लाभ को आपस में बांटना होना चाहिये। यदि दो या अधिक व्यक्ति किसी ठहराव के अर्न्तगत सम्पत्ति को खरीदने या बेचने का कार्य करते हैं और लाभ आपस में बाटते हैं तो इसे साझेदारी कहेंगे। इस प्रकार साझेदारी व सह–स्वामित्व में निम्न अन्तर हैं –

i. सह–स्वामित्व के लिये परस्पर अनुबन्ध का होना आवश्यक नहीं है जब कि साझेदारी के लिये अनुबन्ध का होना आवश्यक है।
ii. सह–स्वामित्व में परस्पर लाभ–हानि बांटना आवश्यक नहीं है जब कि साझेदारी के लिये आवश्यक है।
iii. एक सह–स्वामी अन्य सह–स्वामियों की सहमति के बिना अपना हित किसी अन्य को हस्तांतरित कर सकता है जब कि साझेदारी में एक साझेदार अपना हित इस प्रकार हस्तांतरित नहीं कर सकता।
iv. एक सह–स्वामी अन्य सह–स्वामी का एजेन्ट नहीं होता जब कि साझेदारी में प्रत्येक साझेदार दूसरे साझेदार का एजेन्ट होता है।
v. एक सह–स्वामी को संयुक्त सम्पत्ति की लागत एवं अन्य कार्यो को पाने के लिये संयुक्त सम्पत्ति को अपने कब्जे में रखने का अधिकार नहीं होता जब कि साझेदार को इस प्रकार का अधिकार प्राप्त होता है।
vi. सह–स्वामित्व में लाभ अर्जित करने का उद्‌देश्य आवश्यक नहीं होता जब कि साझेदारी में एक मात्र उद्‌उेश्य लाभ कमाना होता है।
vii. सह–स्वामित्व में सहस्वामियों की अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं होती जब कि साझेदारी में अधिकतम संख्या (बैंकिंग कारोबार में 10, अन्य कारोबार में 20) निर्धारित है।
viii. सह–स्वामित्व के लिये किसी कारोबार का किया जाना आवश्यक नहीं होता जब कि साझेदारी के लिये कारोबार का होना आवश्यक है।

16.6 साझेदारी एवं संयुक्त हिन्दू परिवार में अन्तर (Difference between Partnership and Hindu Undivided Family)

इन दोनों का अन्तर जानने से पूर्व संयुक्त हिन्दू परिवार का अर्थ समझना आवश्यक है । एक संयुक्त हिन्दू परिवार के सदस्य जो परिवार का कारोबार कर रहे हैं साझेदार नहीं कहलाते इन्हें सह–भागी कहते हैं। जब कि साझेदारी फर्म के सदस्यों को साझेदार कहा जाता है। संयुक्त हिन्दू परिवार पूर्वजों से विरासत में मिले कारोबार को चलाते हैं इसके सदस्य परिवार में जन्म लेने के कारण सह–भागी बनते हैं किसी ठहराव द्वारा नहीं। संयुक्त हिन्दू परिवार की विशेषतायें निम्न हैं :–

i. प्रत्येक व्यक्ति परिवार में जन्म लेते ही संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यवसाय में सह–भागी बन जाता है।

ii. संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यवसाय का संचालन सबसे बड़े व्यक्ति के द्वारा होता है जिसे कर्त्ता कहते हैं।

iii. संयुक्त हिन्दू परिवार में कर्त्ता का दायित्व असीमित होता है अन्य सदस्यों का दायित्व सीमित होता है।

अन्तर :– साझेदारी तथा संयुक्त हिन्दू परिवार में निम्न अन्तर हैं –

i. साझेदारी फर्म में भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 लागू होता है जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार पर हिन्दू लॉ के सिद्वान्त लागू होते हैं।

ii. साझेदारी फर्म की उत्पत्ति अनुबन्ध के परिणाम स्वरूप होती है जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार की उत्पत्ति कानून के लागू होने से होती है।

iii. साझेदारी फर्म में नये साझेदार का प्रवेश तब तक नहीं हो सकता जब तक कि सभी साझेदारों की सहमति न हो। संयुक्त हिन्दू परिवार में जन्म लेते ही सदस्य बन जाता है।

iv. साझेदारी फर्म में महिलायें भी साझेदार बन सकती है जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार में महिलायें सह–भागी नहीं हो सकती है।

v. साझेदारी फर्म में साझेदारों की अधिकतम संख्या बैंकिंग कारोबार में संलग्न फर्म के लिये 10 तथा अन्य में अधिकतम 20 हो सकती हैं जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार में अधिकतम संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

vi. साझेदारी फर्म में साझेदार एजेन्ट भी होते हैं इसलिये एक साझेदार के कार्य से अन्य सभी साझेदार बाध्य होते हैं। संयुक्त हिन्दू परिवार में सभी अधिकार कर्त्ता के पास होते हैं वह परिवार का प्रतिनिधि होता है वह अपने कार्यो से दूसरों को बाध्य कर सकता है परन्तु अन्य सह–भागी अपने कार्यो से दूसरों को बाध्य नहीं कर सकते हैं।

vii. साझेदारी में प्रत्येक साझेदार का दायित्व संयुक्त एवं पृथक तथा असीमित होता है जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार में केवल कर्त्ता का दायित्व असीमित होता है।

viii. साझेदारी में प्रत्येक साझेदार को फर्म के लाभ में हिस्सा मांगने का अधिकार होता है, जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार में परिवार के सदस्यों को लाभ मांगने का अधिकार नहीं होता वे परिवार की सम्पत्तियों में अपने हिस्से के लिये विभाजन की मांग कर सकते हैं।

ix. साझेदारी में विपरीत अनुबन्ध के अभाव में किसी साझेदार की मृत्यु होने पर साझेदारी फर्म विघटित हो जाती है, परन्तु संयुक्त हिन्दू परिवार की दशा में सह–भागी की मृत्यु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

x. साझेदारों तथा बाहरी व्यक्तियों के विरूद्व वाद प्रस्तुत करने के लिये साझेदारी फर्म का पंजीयन आवश्यक है, परन्तु संयुक्त हिन्दू परिवार की दशा में पंजीयन आवश्यक नहीं है।

xi. साझेदारी में अवयस्क साझेदार नही बन सकता है वह केवल लाभ में सम्मिलित हो सकता है, जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार में अवयस्क भी सह–भागी बन सकता है।

xii. साझेदारों को यह अधिकार है कि साझेदारी से अलग होते समय वह अन्य साझेदारों से पिछला हिसाब ले सकता है। संयुक्त हिन्दू परिवार की दशा में ऐसा अधिकार नहीं होता है।

16.7 साझेदारी तथा कम्पनी में अन्तर (Difference between Partnership and Company)

अन्तर का आधार	कम्पनी **(Company)**	साझेदारी **(Partnership)**
1. पृथक अस्तित्व होना	कम्पनी का अस्तित्व अपने सदस्यों से पृथक होता है।	साझेदारी का अस्तित्व अपने सदस्यों से पृथक नहीं माना जाता है।
2. अधिनियम	भारतीय कम्पनियों का कार्य कम्पनी अधिनियम 1956 तथा 2013 के अनुसार चलाया जाता हैं।	साझेदारी संस्था भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 के अनुसार चलायी जाती है।
3. पंजीयन	प्रत्येक कम्पनी का पंजीयन अनिवार्य होता है।	साझेदारी का पंजीयन अनिवार्य नहीं है।
4. पार्षद सीमानियम व अन्तर्नियम	कम्पनी अधिनियम के अतिरिक्त पार्षद सीमानियम तथा अन्तर्नियमों द्वारा कम्पनियां बाध्य होती है।	साझेदारी अधिनियम के अतिरिक्त साझेदारी संलेख द्वारा साझेदारी संस्थाएं बाध्य रहती है।
5. सदस्यों की संख्या	सदस्यों की न्यूनतम संख्या निजी कम्पनी में दो तथा सार्वजनिक कम्पनी में सात निधार्रित है (कम्पनी अधिनियम 2013 में एक व्यक्ति वाली कम्पनी का प्रावधान भी है,) सदस्यों की अधिकतम संख्या निजी कम्पनी में 200 तथा सार्वजनिक कम्पनी के लिए अधिकतम संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।	साझेदारी में सदस्यों की न्यूनतम संख्या 2 तथा अधिकतम संख्या बैंकिग व्यवसाय के लिए 10 तथा अन्य प्रकार के व्यवसाय में संलग्न साझेदारी के लिए 20 है।
6. दायित्व	कम्पनियों में अंशधारियों का दायित्व सीमित होता है।	साझेदारी में प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है।
7. प्रतिनिधि व्यवस्था	कम्पनी में प्रत्येक अंशधारी कम्पनी का प्रतिनिधि नहीं होता है।	प्रत्येक साझेदार फर्म का प्रतिनिधि होता है।
8. व्यवसाय के प्रबन्ध में भाग लेना	प्रत्येक अंशधारी कम्पनी के प्रबन्ध में भाग नहीं ले सकता है। उनके द्वारा चुने हुए संचालक ही प्रबन्ध में भाग ले सकते है।	प्रत्येक साझेदार फर्म के व्यवसाय के प्रबन्ध में भाग ले सकता है।
9. बाध्य करना	एक अंशधारी अपने कार्य से अन्य अंशधारियों को बाध्य नहीं कर सकता।	एक साझेदार फर्म को तथा फर्म के साझेदारों को अपने कार्य से बाध्य कर सकता है।
10. अंकेक्षण	कम्पनी अधिनियम के अनुसार सीमित दायित्व कम्पनी को लेखाकर्म का अंकेक्षण करना अनिवार्य है।	अंकेक्षण कराना अनिवार्य नहीं है।
11. हस्तांतरण	सार्वजनिक कम्पनी में अंशों के हस्तांतरण पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है जबकि निजी कम्पनी	साझेदारी में बिना सभी साझेदारों के सहमति के कोई साझेदार अपना हिस्सा

	के अंशों के हस्तांतरण नहीं किए जा सकते।	हस्तांतरण नहीं कर सकता है।
12. स्थायी अस्तित्व	अंशधारियों की मृत्यु या दिवालिया होने पर कम्पनी का अंत नहीं होता क्योंकि कम्पनी का अस्तित्व स्थायी होता है।	किसी साझेदार की मृत्यु या दिवालिया होने पर (विपरीत अनुबन्ध के अभाव में) साझेदारी समाप्त हो जाती है अर्थात फर्म का अस्तित्व स्थायी नहीं होता।
13. सम्पत्ति पर अधिकार	कम्पनी की सम्पत्ति कम्पनी के नाम होती है इस पर सदस्यों का अधिकार नहीं होता।	साझेदारी फर्म की सम्पत्ति सब साझेदारों की सयुक्त रूप से सम्पत्ति होती है।

16.8 लाभ में हिस्सा पाना किसी व्यक्ति को साझेदार नहीं बना देता है (Sharing of profit is not a decisive test of Partner)

किसी व्यक्ति द्वारा लाभ में हिस्सा पाना या ऐसा भुगतान पाना जो लाभ में निर्भर हो उसे साझेदार नहीं बना देता। किसी कारोबार के लाभ (शुद्व लाभ) में भाग लेने से प्रत्यक्षतः तो ऐसा लगता है कि साझेदारी होगी, किन्तु केवल लाभ में भाग लेना ही साझेदारी का निश्चयात्मक प्रमाण नहीं है। ऐसे अनेक उदाहरण या व्यक्ति हैं जो लाभ में हिस्सा पाते हैं परन्तु वे फर्म के साझेदार नहीं होते जैसे –

i. जब कोई व्यक्ति किसी साझेदारी फर्म को ऋण इन शर्तो पर देता है कि वह ब्याज के अतिरिक्त फर्म के लाभ में भी निश्चित प्रतिशत लाभ लेगा ऐसा व्यक्ति केवल ऋणदाता है फर्म का साझेदार नहीं माना जायेगा।
ii. जब फर्म का कोई एजेन्ट या कर्मचारी पारिश्रमिक के अतिरिक्त लाभ में भी हिस्सा पाते हैं तो वे फर्म के साझेदार नहीं माने जायेंगे।
iii. जब किसी मृत साझेदार की विधवा या उसके बच्चों को लाभ का हिस्सा दिया जाये तो विधवा या बच्चे फर्म के साझेदार नहीं माने जायेंगे।
iv. वर्तमान फर्म ने जिस व्यक्ति से कारोबार खरीदा है उस भूतपूर्व मालिक को यदि लाभ में हिस्सा दिया जाये तो वह फर्म का साझेदार नहीं माना जायेगा।

16.9 अवयस्क साझेदार की स्थिति (Position of a Minor Partner)

भारतीय साझेदारी अधिनियम के अनुसार अवयस्क व्यक्ति साझेदार नहीं बन सकता, क्योंकि अवयस्क में अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं होती (साझेदारी अनुबन्ध द्वारा स्थापित होती है, अनुबन्ध के लिये पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिये)। तथापि सभी वर्तमान साझेदारों की स्पष्ट अनुमति या सहमति से अवयस्क व्यक्ति को साझेदारी के लाभों में हिस्सा पाने के लिये सम्मिलित किया जा सकता है। अवयस्क के संरक्षक द्वारा साझेदारों के साथ अनुबन्ध किया जा सकता है। साझेदारी अधिनियम की धारा 30 के अनुसार अवयस्क साझेदार के सम्बन्ध में निम्न नियम हैं –

i. अवयस्क व्यक्ति को फर्म के लाभों में हिस्सा प्राप्त करने के लिये अन्य सभी साझेदारों की सहमति से सम्मिलित किया जा सकता है।
ii. अवयस्क को फर्म की सम्पतियों एवं लाभों में ऐसा हिस्सा पाने का अधिकार है जो पहले ही निश्चित किया गया हो।

iii. अवयस्क साझेदार को फर्म के खातों तक पहुंचने, उनका निरीक्षण करने तथा उनकी प्रतिलिपि लेने का अधिकार है। खातों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों तक पहुचने तथा उनकी प्रतिलिपि लेने का अधिकार नहीं है क्योंकि उनमें ऐसी भी गुप्त सूचनायें होती है जो केवल साझेदारों तक ही सीमित रहनी चाहिये।

iv. अवयस्क अपने हिस्से के लाभ तथा सम्पत्ति के भाग प्राप्त करने के लिये अन्य साझेदारों के विरूद्व वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है। हाँ, फर्म से सम्बन्ध विच्छेद करने के उपरान्त वह वाद प्रस्तुत कर सकता है।

v. फर्म के कार्यो, दायित्वों एवं हानि के लिये अवयस्क का फर्म के लाभों में भाग तथा सम्पत्ति में भाग ही उत्तरदायी होगा, अवयस्क व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होगा।

vi. अवयस्क को वयस्कता प्राप्त होने पर फर्म में साझेदार बने रहने अथवा साझेदारी स्वीकार न करने का विकल्प प्राप्त होता है।

vii. अवयस्क को, वयस्क होने की तिथि से अथवा इस बात की जानकारी होने की तिथि से कि वह साझेदारी के लाभों में सम्मिलित किया जा चुका है, जो भी तिथि बाद की हो, उससे 6 माह के भीतर ही इस बात की सार्वजनिक सूचना देनी पड़ती है कि वह उस फर्म में साझेदार बनना चाहता है अथवा उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद करना चाहता है। यदि अवयस्क ऐसी सार्वजनिक सूचना नहीं देता है तो 6 माह के पश्चात वह फर्म में साझेदार माना जायेगा।

viii. जब अवयस्क साझेदार फर्म में साझेदार बन जाता है तो –

(अ) साझेदार बनने के बाद उसका दायित्व अन्य साझेदारों की भांति असीमित हो जाता है ओैर वह फर्म के कार्यो के लिये व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

(ब) ऐसे साझेदार का फर्म के लाभों व सम्पत्ति में हिस्सा वही रहेगा जो कि अवयस्क के रूप मे उसे प्राप्त थे।

ix. जब अवयस्क, फर्म में साझेदार बनना स्वीकार न करें तो –

(अ) सार्वजनिक सूचना देने की तिथि तक उसके अधिकार व दायित्व वही रहेंगे जो अवयस्क के रूप में थे।

(ब) सार्वजनिक सूचना देने के बाद फर्म के किसी भी कार्य के लिये उसका भाग भी दायी नही होगा।

(स) वह फर्म में अपने हिस्से (लाभ व सम्पत्ति में) के लिये साझेदारों पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(द) जब कोई अवयस्क साझेदार, वयस्कता प्राप्त करने पर यह प्रदर्शित करे कि वह अभी भी साझेदार है तो वह तीसरे पक्षकारों के प्रति साझेदारों की भांति उत्तरदायी होगा, भले ही उसने साझेदार न होने की सूचना दे दी हो।

16.10 साझेदारों के अधिकार (Rights of Partners)

साझेदारों के बीच किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, साझेदारी अधिनियम फर्म के साझेदारों को निम्नलिखित अधिकार प्रदान करता है :–

(1) **फर्म के संचालन में भाग लेने का अधिकार** – फर्म के प्रत्येक साझेदार को, चाहे उसने कितनी भी पूँजी लगाई हो, फर्म के कारोबार के संचालन एवं प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार होता है।

(2) परामर्श देने का अधिकार – फर्म के प्रत्येक साझेदार का यह अधिकार है कि किसी भी मामले के तय किये जाने से पूर्व उससे परामर्श लिया जाये और उसकी बात भी सुनी जाये। फर्म के कारोबार से सम्बन्धित सामान्य मामलों में मतभेद होने पर बहुमत से निर्णय लिया जाता है परन्तु साझेदारी की प्रकृति या गठन में कोई

परिवर्तन (जैसे नये साझेदार का प्रवेश, किसी साझेदार द्वारा अपने हिस्से का हस्तांतरण, लाभ में अवयस्क को शामिल करना आदि) हो तो सभी साझेदारों की सहमति अर्थात सर्व सम्मति के बिना निर्णय नहीं ले सकते हैं ऐसे मामलों में सभी साझेदारों को राय देने का अधिकार होता है।

(3) फर्म की पुस्तकों तक पहुँच रखने का अधिकार – प्रत्येक साझेदार को फर्म की पुस्तकों तक पहुँच रखने, उनका निरीक्षण करने तथा उनकी नकल लेने का अधिकार होता है। ऐसे अधिकार का प्रयोग साझेदार स्वयं अथवा अपने एजेन्ट द्वारा कर सकता है। धारा 12 (d)

(4) लाभ में हिस्सा पाने का अधिकार – फर्म के प्रत्येक साझेदार को फर्म द्वारा अर्जित लाभ में बराबर हिस्सा पाने का अधिकार होता है, चाहे उसने फर्म के कारोबार में कितनी भी पूँजी लगाई हो या उसके पास कितनी भी योग्यता व निपुणता हो। धारा 13 (b)

(5) पूँजी पर ब्याज पाने का अधिकार – यदि साझेदारी संलेख में साझेदारों को पूँजी पर ब्याज पाना हो तो साझेदार पूँजी में ब्याज केवल फर्म के लाभ में से ही पा सकते हैं हानि की दशा में पूँजी पर ब्याज पाने का अधिकार नहीं होता है। धारा 13(c)

(6) फर्म को दिये ऋण पर ब्याज पाने का अधिकार – फर्म का कोई साझेदार पूँजी के अतिरिक्त फर्म को ऋण भी देता है तो उसे फर्म से 6 प्रतिशत वार्षिक की दर से दिये गये ऋण पर ब्याज पाने का अधिकारी होता है। धारा 13 (a)

(7) **क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार** – फर्म के प्रत्येक साझेदार को निम्न दशाओं में किये गये भुगतानों तथा स्वीकार किये गये दायित्वों के लिये फर्म से क्षतिपूर्ति की मांग करने कर अधिकार होता है :–

(अ) फर्म के कारोबार के सामान्य एवं उचित संचालन के दौरान।

(ब) संकट काल में फर्म को हानि से बचाने के लिये कोई ऐसा कार्य करते हुए, जिसे सामान्य बुद्विं का मनुष्य अपने स्वयं के मामले में करता। धारा 13 (e)

(8) साझेदारी सम्पत्तियों के प्रयोग का अधिकार – साझेदारों को अधिकार है कि फर्म की सम्पत्ति को फर्म के कार्यो के लिये प्रयोग कर सकते हैं। फर्म की सम्पत्ति सभी साझेदारों की होती है अतएव उसका प्रयोग सद्‌भावना से सबके हित के लिये होना चाहिये। धारा (15)

16.11

विपरीत अनुबन्ध न होने पर साझेदारों के निम्नलिखित कर्तव्य होते हैं :–

(1) कारोबार को सर्वाधिक सामान्य लाभ के लिये चलाने का कर्तव्य – फर्म के प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह अपने ज्ञान एवं कौशल का प्रयोग फर्म के लाभ के लिये करे, अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये नहीं। दूसरे शब्दों में प्रत्येक साझेदार को सामान्य हित के लिये सद्‌भावना पूर्ण तरीके से कार्य करना चाहिये। (धारा 9)

(2) आपस में निष्कपट और सत्यनिष्ट रहने का कर्तव्य – फर्म के सभी साझेदारों को आपस में विश्वास, निष्कपट, सहायता और सद्‌भावपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। प्रत्येक साझेदार को दूसरे साझेदार के प्रति निष्कपट, सत्यनिष्ट होना चाहिये, तथा आपस में पूर्ण विश्वास के साथ कार्य करना चाहिये। (धारा 9)

(3) सही हिसाब देने का कर्तव्य – प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह फर्म के अन्य साझेदारों को साझेदारी सम्बन्धी व्यवहारों का सही और उचित हिसाब दे। दूसरे साझेदारों द्वारा पूछे जाने पर उन्हें भली भांति हिसाब समझायें। हिसाब सम्बन्धी उचित रसीदें या वाउचर प्रस्तुत करें। (धारा 9)

(4) पूर्ण सूचना देने का कर्तव्य – फर्म के प्रत्येक साझेदार का यह भी कर्तव्य है कि वह अपने अन्य साझेदारों को ऐसी प्रत्येक बात की पूर्ण सूचना दे जिससे फर्म के हित प्रभावित होते हों अथवा फर्म से सम्बन्धित हो। साझेदारी फर्म से सम्बन्धित कोई भी सूचना अन्य साझेदारों से नहीं छुपानी चाहिये। (धारा 9)

(5) कपट से होने वाली हानियों की पूर्ति करने का कर्तव्य – यदि किसी साझेदार के कपट से फर्म को हानि होती है तो साझेदार का ऐसी हानि की पूर्ति करने का कर्तव्य होता है। साझेदार के इस दायित्व को किसी भी दशा में कम नहीं किया जा सकता और न ही ऐसी हानि को अन्य साझेदारों में बाँटा जा सकता है। (धारा 10)

(6) जानबूझ कर की गयी लापरवाही के कारण होने वाली हानि की पूर्ति करने का कर्तव्य – प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि फर्म के कारोबार के संचालन में उनके द्वारा जानबूझ कर की गई लापरवाही के कारण फर्म को हुई हानि की पूर्ति करे। ऐसी हानि की पूर्ति से कोई भी साझेदार मुक्त हो सकता है यदि सभी साझेदार सहमत हो जायें।(धारा 13)

(7) फर्म की हानियों में हिस्सा बांटने का कर्तव्य – फर्म का प्रत्येक साझेदार फर्म की हानियों को बराबर–बराबर वहन करने के लिये बाध्य है चाहे उसने फर्म में कितनी ही पूँजी लगाई हो।

(8) बिना पारिश्रमिक के कार्य करना – फर्म के प्रत्येक साझेदार का कर्तव्य है कि वह फर्म का कार्य बिना पारिश्रमिक लिये करे। (धारा 13 a)

(9) अपने कर्तव्यों का पूर्णलगन एवं परिश्रम से पालन करना – फर्म के प्रत्येक साझेदार का कर्तव्य है कि वह अपने कार्यो को पूरी लगन एवं परिश्रम से करे। उसे उतनी लगन व मेहनत से कार्य करना चाहिये जितना कि एक सामान्य बुद्दि का मनुष्य अपने निजी कार्य में करता है। (धारा 12 b)

(10) फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग केवल फर्म के कार्यो के लिये ही करना – प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग केवल फर्म के संचालन के लिये ही करे, फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग अपने निजी लाभ के लिये न करे। (धारा 15)

(11) व्यक्तिगत या गुप्त लाभों का हिसाब देना – यदि किसी साझेदार ने फर्म के कारोबार से या फर्म के नाम से या फर्म की सम्पत्ति से कोई व्यक्तिगत या गुप्त लाभ कमाया है, तो उसे ऐसे लाभ का हिसाब देना चाहिये और ऐसे लाभ से प्राप्त रकम का फर्म को भुगतान करना चाहिये। (धारा 16 a)

(12) फर्म से प्रतिस्पर्द्वा करने वाला कारोबार न करना – प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह कोई भी ऐसा व्यवसाय न करे जिसकी फर्म के साथ प्रतिस्पर्द्वा हो अर्थात फर्म के कारोबार जैसा कारोबार न करे। यदि कोई साझेदार ऐसा कारोबार करता है तो ऐसे कारोबार के लाभ को उसे फर्म को देना होगा। (धारा 16 b)

(13) **अपना हित हस्तांतरित न करना (धारा 29) –** कोई भी साझेदार अन्य सभी साझेदारों की सहमति के बीना फर्म में अपना हिस्सा किसी तृतीय पक्षकार को हस्तांतरित नही कर सकता है।

16.12 सारांश

साझेदारी कम से कम दो और अधिकतम 20 व्यक्तियों (बैंकिग व्यवसाय करने वाली फर्म में 10) के बीच के ठहराव है जो ऐसे कारोबार के लाभ को आपस में बाटते है जिसे वे सभी या उनमें से एक संचालित करता है। समस्त साझेदारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिये। यदि कोई अवयस्क साझेदारी में सम्मिलित होना चाहता है तो सभी साझेदार सहमत होने पर उसे लाभ में हिस्से के लिए साझेदारी में सम्मिलित कर सकते है। सभी साझेदारों को फर्म के संचालन में भाग लेने, परामर्श देने, फर्म की पुस्तकों तक पहुॅच रखने, लाभ में हिस्सा पाने, फर्म को दिये ऋण पर ब्याज पाने, साझेदारी सम्पत्तियों का प्रयोग करने तथा क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार होता है।

सभी साझेदारो का कर्तव्य होता है कि वे फर्म के कारोबार को सामान्य लाभ के लिये चलाये, आपस मे सत्यनिष्ठ रहे, सही हिसाब व सूचना दे, कपट व लापरवाही के कारण होने वाली हानि की पूर्ति करे, बिना पारिश्रमिक के कार्य करें, फर्म का कार्य पूर्ण लगन, परिश्रम व ईमानदारी से करे। फर्म की सम्पत्ति क प्रयोग फर्म के कार्यों के लिए ही करें तथा फर्म से प्रतिस्पर्धा करने वाला कारोबार न करें।

16.13 शब्दावली

साझेदारी: यह उन व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध है जिन्होने किसी ऐसे कारोबार से उपार्जित लाभ को बांटने का ठहराव किया है जिसे वे सब अथवा उन सबकी ओर से एक संचालित करता है"।

निष्क्रिय साझेदारः ऐसे साझेदार जो साझेदारी फर्म के कारोबार के संचालन में सक्रिय रूप से भाग न लेकर, केवल अपनी पूँजी लगाकर लाभ हानि में भागी होता है निष्क्रिय साझेदार कहलाता है।

16.14 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 'क'

निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत –

1. साझेदारी के लिए 'साझेदारी संलेख बनाना आवश्यक होता है।
2. भारतीय साझेदारी अधिनियम 1 अक्टूबर 1932 से प्रभाव में आया।
3. एक साझेदारी फर्म में (बैंकिग व्यवसाय के अतिरिक्त) अधिकतम साझेदार 20 हो सकते है।
4. जब तक ठहराव न हो, कोई भी साझेदार फर्म के कार्य के लिए पारिश्रमिक की मांग नहीं कर सकता।
5. एक साझेदारी फर्म एक विशेष कार्य के लिए नहीं बनाई जा सकती है।

बोध प्रश्न 'ख'

रिक्त स्थानों को भरिए –

1. यदि साझेदारों को पूँजी पर ब्याज देय है तो ऐसे ब्याज केवल .... में से ही दिया जा सकता है।

2. बैंकिग व्यवसाय करने वाली साझेदारी फर्म में साझेदारों की अधिकतम संख्या .... हो सकती है।
3. साझेदारी संलेख में सभी साझेदारों के हस्ताक्षर होने .... है।
4. यदि किसी साझेदार ने फर्म को ऋण दिया है तो वह .... प्रतिशत वार्षिक ब्याज पाने का अधिकारी है।
5. पृथक ठहराव के अभाव में प्रत्येक साझेदार फर्म द्वारा अर्जित लाभ में .... हिस्सा पाने का अधिकारी होता है।

16.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

(क)	1. गलत	2. सही	3. सही	4. सही	5. गलत
(ख)	1. लाभ	2. 10	3. आवश्यक	4. 6	5. बराबर

16.16 स्वपरख प्रश्न

1. साझेदारी की परिभाषा दीजिये तथा उसकी विशेषताएं बताइये?
2. अन्तर बताइये –
   अ – सहस्वामित्व एवं साझेदारी
   ब – संयुक्त हिन्दू परिवार एवं साझेदारी
   स – कम्पनी एवं साझेदारी
3. साझेदारों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का वर्णन कीजिये?
4. क्या अवयस्क साझेदार बन सकता है? साझेदारी फर्म में अवयस्क की स्थिति स्पष्ट कीजिये?

16.17 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 17 फर्म का रजिस्ट्रेशन तथा विघटन (Registration and Dissolution of a Firm)

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना
17.2 फर्म का रजिस्ट्रेशन या पंजीयन
17.2.1 रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया
17.2.2 परिवर्तन का रजिस्ट्रेशन
17.2.3 रजिस्ट्रेशन न कराने का प्रभाव
17.3 फर्म का विघटन
17.4 फर्म की विघटन की विधियां
17.5 फर्म के विघटन के परिणाम
17.6 फर्म के विघटन के पश्चात हिसाब का निपटारा
17.7 सारांश
17.8 शब्दावली
17.9 बोध प्रश्न
17.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
17.11 स्वपरख प्रश्न
17.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- फर्म के रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया को समझ सकें।
- फर्म का रजिस्ट्रेशन न होने का प्रभाव समझ सकें।
- फर्म के विघटन तथा साझेदारी के विघटन का अन्तर समझ सकें।
- फर्म का विघटन किस प्रकार होता है, को समझ सकें।
- न्यायालय किन परिस्थितियों में किसी फर्म के विघटन का आदेश दे सकती है, को समझ सकें।

17.1 प्रस्तावना

इकाई 16 में साझेदारी का अर्थ उसकी विशेषताएं तथा साझेदारों के अधिकार व कर्तव्यों के बारे में पढ़ चुके है। इस इकाई में साझेदारी फर्म का रजिस्ट्रेशन कैसे होता है रजिस्ट्रेशन न होने का क्या प्रभाव पड़ता है तथा एक साझेदारी फर्म का विघटन किस प्रकार हो सकता हैं। इस सबका अध्ययन करेंगे।

17.2 साझेदारी फर्म का पंजीकरण या रजिस्ट्रेशन (धारा 56–59) Registration of Partnership Firm)

भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 से पूर्व साझेदारी फर्मो के रजिस्ट्रेशन की कोई वैधानिक व्यवस्था नहीं थी जिसके परिणामस्वरूप तीसरे पक्षकारों द्वारा साझेदारों के विरूद्व देयता के लिये दावा करना कठिन हो जाता था। परन्तु साझेदारी अधिनियम 1932 पारित हो जाने से साझेदारी फर्मो को पंजीयन की सुविधा उपलब्ध हो गयी। साझेदारी फर्मो का पंजीयन कराना अनिवार्य नहीं है अथार्त पंजीयन कराना स्वैच्छिक है। जो फर्मे पंजीयन नहीं कराती है उन्हें अनेकों कठिनाईयों व हानियों का सामना करना पड़ता है। इसलिये व्यवहारिक रूप में

सभी फर्में पंजीयन करा लेती हैं। साझेदारी अधिनियम के अनुसार राज्य सरकारों को अधिकार दिया गया है कि वे अपने–अपने राज्यों में फर्मों की रजिस्ट्री करने के लिये रजिस्ट्रार की नियुक्ति कर सकती है और रजिस्ट्रारों के क्षेत्र भी उल्लिखित कर सकती है अर्थात एक रजिस्ट्रार पूरे राज्य के लिये अथवा भिन्न–भिन्न क्षेत्र के लिये एक से अधिक रजिस्ट्रार की नियुक्ति कर सकती है।

फर्मो के रजिस्ट्रार के कार्यालय में फर्म का नाम तथा आवश्यक सूचनाओं को 'फर्म के रजिस्टर' में अंकित करना पंजीयन कहलाता है। पंजीयन से फर्म की विद्यमानता को सरकारी मान्यता मिलती है। फर्म के निर्माण के समय अथवा फर्म अपने जीवन काल में कभी भी पंजीयन करा सकती है।

17.2.1 पंजीयन की प्रक्रिया (Procedure of Registration)

फर्म के पंजीयन की प्रक्रिया अत्यन्त सरल है। पंजीयन कराने के लिये निर्धारित प्रारूप में निर्धारित शुल्क सहित एक विवरण सम्बन्धित क्षेत्र के रजिस्ट्रार के कार्यालय में प्रस्तुत करना होता है इसे डाक द्वारा या स्वयं सुपुर्द किया जा सकता है। इस प्रारूप में निम्नलिखित सूचनायें होनी चाहिये :–

1) फर्म का नाम (ऐसा नाम न हो जिसके लिये प्रान्तीय सरकार से लिखित आज्ञा लेनी होती हो) यदि ऐसा नाम है तो पहले अनुमति लेनी होगी।
2) फर्म के कारोबार का स्थान या मुख्य स्थान का नाम व पता।
3) फर्म के कारोबार करने के अन्य स्थानों के नाम व पते (यदि फर्म मुख्य स्थान के अलावा अन्य स्थानों पर भी व्यापार संचालित करती हो)।
4) प्रत्येक साझेदार के फर्म में सम्मिलित होने की तिथि।
5) सभी साझेदारों के नाम तथा स्थायी पते।
6) फर्म का कार्यकाल (यदि फर्म की स्थापना निश्चित अवधि के लिये हो)।

पंजीयन आवेदन पत्र अर्थात उपरोक्त प्रारूप में सभी साझेदारों अथवा उनके अधिकृत प्रतिनिधि के हस्ताक्षर होने चाहिये। (प्रतिनिधि को विशेष रूप से इसी कार्य के लिये अधिकृत किया हो)। इसके अतिरिक्त विवरण में हस्ताक्षर करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को नियत ढंग से प्रमाणित करना होता है। (धारा 58)

धारा 59 के अनुसार, जब रजिस्ट्रार इस बारे में पूर्णरूप से सन्तुष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त सभी व्यवस्थाओं का यथाविधि पालन कर लिया गया है, तो वह उक्त विवरणों की प्रविष्टि 'फर्मो के रजिस्टर' में कर लेता है और आवेदन पत्र को फाइल में लगा देगा। इस प्रकार फर्म की रजिस्ट्री हो जाती है। रजिस्ट्रार इसके पश्चात फर्म को पंजीयन का प्रमाण पत्र निर्गत कर देता है।

17.2.2 परिवर्तनों की रजिस्ट्री कराना (Registration of Alteration)

फर्म के पंजीयन होने के पश्चात उक्त विवरणों या सूचनाओं में कोई परिवर्तन होता है, तो उसकी सूचना नियत शुल्क के साथ रजिस्ट्रार के पास भेजनी चाहिये ताकि रजिस्ट्रार इन परिवर्तनों को रजिस्टर में अंकित कर दे। रजिस्ट्रार को निम्नलिखित परिवर्तनों की सूचना देनी आवश्यक होती है :–

i. जब फर्म का नाम बदल जाये।
ii. जब फर्म का मुख्य व्यापार का स्थान परिवर्तित हो जाये।
iii. जब फर्म किसी स्थान पर अपना कारोबार बन्द कर दे।
iv. जब फर्म किसी नये स्थान पर अपना कारोबार प्रारम्भ करे।
v. जब फर्म का कोई साझेदार अपना नाम अथवा स्थायी पता परिवर्तित कर दे।

vi. जब फर्म की बनावट में परिवर्तन हो, जैसे कोई नया साझेदार प्रवेश कर ले, कोई साझेदार पृथक हो जाये, जब साझेदार दिवालियेपन या मृत्यु के कारण साझेदार नहीं रहता।

vii. लाभों में हिस्से वाला अवयस्क साझेदार जब वयस्क हो जाता है तो उसके फर्म में साझेदार रहने या न रहने की सूचना।

viii. न्यायालय किसी भी रजिस्टर्ड फर्म के सम्बन्ध में फैसला देते समय रजिस्ट्रार को 'फर्मो के रजिस्टर' में निर्णय के अनुसार संशोधन करने का निर्देश दे सकता है और रजिस्ट्रार को न्यायालय के आदेशानुसार परिर्वतन कर सुधार करना।

यदि कोई व्यक्ति रजिस्ट्रार को मिथ्या या अपूर्ण या गलत विवरण भेजने का दोषी पाया जायेगा तो उसे धारा 70 के अनुसार तीन माह तक के कारावास या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जा सकेगा।

17.2.3 रजिस्ट्री या पंजीयन न कराने का प्रभाव (Effects of Non-Registration)

जब कोई साझेदारी फर्म पंजीयन नहीं कराती है तो उसे कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है अर्थात फर्म व साझेदारों को निम्नलिखित असुविधायें होंगी –

(1) **कोई भी साझेदार फर्म के विरूद्व तथा दूसरे साझेदारों के विरूद्व दीवानी न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता** – यदि किसी अपंजीकृत फर्म के साझेदारों में आपस में या किसी साझेदार तथा फर्म के मध्य अथवा किसी साझेदार व भूतपूर्व साझेदार के मध्य साझेदारी संलेख के अर्न्तगत या साझेदारी अधिनियम के अनुसार विवाद उत्पन्न हो जाता है तो ऐसा साझेदार दिवानी न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है। परन्तु एक साझेदार दूसरे साझेदार के विरूद्व फौजदारी न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(2) **फर्म तीसरे पक्षकारों के विरूद्व दीवानी न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकती** – एक अपंजीकृतफर्म किसी अनुबन्ध के अर्न्तगत उत्पन्न होने वाले अधिकारों का प्रर्वतन दीवानी न्यायालय द्वारा नहीं करा सकती है अर्थात फर्म किसी तीसरे पक्ष के विरूद्व दीवानी न्यायालय में दावा प्रस्तुत नहीं कर सकती है। परन्तु ऐसे तृतीय पक्षकारों को अधिकार होता है कि वे फर्म के विरूद्व तथा साझेदारों के विरूद्व वाद प्रस्तुत कर सकते हैं।

(3) **देय धन में से प्राप्य धन काटने का अधिकार न होना** – एक अपंजीकृत फर्म ने 'राम' को 40000 रू0 देने हैं तथा उधार माल बिक्री के 10000 रू0 लेने हैं राम 40 हजार वसूल करने के लिये दीवानी न्यायालय में मुकदमा दायर करता है यहाँ पर फर्म 40 हजार रू0 में से अपने 10 हजार रू0 नहीं घटा सकती है अर्थात उसे 40 हजार रू0 देने के लिये बाध्य किया जा सकता है।

(4) **कोई भी अन्य कार्यवाही करने का अधिकार नहीं** – एक अपंजीकृत फर्म को अनुबन्ध के अधीन किसी भी प्रकार के अधिकार को प्राप्त करने के लिये कोई कार्यवाही करने का अधिकार नहीं होता है।

अपवाद – बिना पंजीकृत फर्म के निम्न अधिकारों पर प्रभाव नहीं –

1. तीसरे पक्षकार का फर्म या साझेदारो के विरूद्व मुकदमा चलाने का अधिकार ।

2. साझेदारों का फर्म के विघटन, विघटित फर्म के हिसाब मांगने के लिये वाद प्रस्तुत करने का अधिकार।

3. किसी सरकारी प्रापक के दिवालिया साझेदार की सम्पत्ति को बेचने का अधिकार ।
4. किसी ऐसी फर्म या उसके साझेदारों के अधिकार जिनके कारोबार का स्थान भारतवर्ष में नहीं है।
5. ऐसे दावे जिनकी राशि 100 रू0 से अधिक न हो।

17.3 फर्म की समाप्ति या विघटन (Winding up or Dissolution of Firm)

अधिनियम के अनुसार 'फर्म की समाप्ति' और 'साझेदारी की समाप्ति' में अन्तर है।

फर्म की समाप्ति – धारा 39 के अनुसार, "फर्म की समाप्ति उस समय होती है जब सभी साझेदारों का सम्बन्ध एक दूसरे से टूट जाता है"।

साझेदारी की समाप्ति – साझेदारी की समाप्ति उस समय होती है जब कोई एक या अधिक साझेदार फर्म से पृथ्क हो जाता है । ऐसी दशा में उसका सम्बन्ध दूसरे साझेदार से टूट जाता है लेकिन शेष साझेदार पुराने फर्म के नाम से ही फर्म को पुनः निर्मित करके व्यापार करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि फर्म का विघटन होने पर साझेदारी भी अनिवार्यतः समाप्त हो जाती है परन्तु साझेदारी का विघटन होने पर फर्म का विघटन होना आवश्यक नहीं है।

उदाहरण के लिये, 'अ' 'ब' 'स' तथा 'द' किसी फर्म के साझेदार हैं। 'अ' (मृत्यु, दिवालिया, रिटायर होने के कारण) फर्म का साझेदार नहीं रहता है तो विपरीत अनुबन्ध न होने पर साझेदारी तथा साझेदारी फर्म दोनों ही समाप्त हो जायेंगे। परन्तु साझेदारों ने यह अनुबन्ध कर रखा हो कि किसी साझेदार के न रहने पर शेष साझेदार व्यापार चालू रख सकते हैं तो ऐसी स्थिति में 'अ' के न रहने पर 'साझेदारी' तो समाप्त हो जायेगी परन्तु 'साझेदारी फर्म' समाप्त नहीं होगी क्योंकि शेष साझेदार फर्म के नाम से ही कारोबार चालू रख सकते हैं।

17.4 फर्म के विघटन की विधियाँ (Modes of Dissolution of Firm)

फर्म की समाप्ति निम्नलिखित किसी भी एक तरीके या परिस्थिति में हो सकती है :–

(1) ठहराव द्वारा समाप्ति – धारा (40) जिस प्रकार साझेदारी की स्थापना साझेदारों के आपसी ठहराव द्वारा होती है उसी प्रकार जब सभी साझेदार साझेदारी फर्म को समाप्त करने के लिये सहमत हो जाते हैं अर्थात साझेदारी फर्म की समाप्ति का ठहराव कर लेते हैं तभी साझेदारी फर्म समाप्त हो जाती है।

(2) अनिवार्य समाप्ति – धारा (41) के अनुसार, निम्न दशाओं में साझेदारी फर्म अनिवार्य रूप से समाप्त हो जाती है :–

(अ) यदि किसी फर्म के सभी साझेदार या एक को छोड़कर अन्य सभी साझेदार दिवालिया घोषित कर दिये जाये तो ऐसी फर्म का अनिवार्य रूप से विघटन हो जाता है।

(ब) जब कोई ऐसी घटना घटित हो गयी हो जिसके कारण साझेदारी फर्म के कारोबार का संचालन या कारोबार का चालू रखना अवैधानिक हो जाये तो ऐसी स्थिति में साझेदारी फर्म का अनिवार्य रूप से विघटन हो जाता है।

उदाहरण के लिये, फर्म जिस वस्तु का व्यवसाय कर रही हो उसके करने पर निषेध हो जाये तो ऐसी दशा में फर्म की अनिवार्य समाप्ति हो जाती है।

(3) कुछ आकस्मिकताओं के घटित होने पर –

i. यदि साझेदारी फर्म की स्थापना निश्चित अवधि के लिये की गई है तथा वह निश्चित अवधि बीत जाने पर।
ii. यदि साझेदारी फर्म की स्थापना किसी विशिष्ट कार्य के लिये की गई हो और वह विशिष्ट कार्य पूर्ण हो जाये।
iii. किसी साझेदार की मृत्यु हो जाने पर।
iv. किसी साझेदार के दिवालिया घोषित हो जाने पर।

(4) ऐच्छिक साझेदारी की दशा में सूचना द्वारा समाप्ति – जब साझेदारी ऐच्छिक होती है तो कोई भी साझेदार अन्य सभी दूसरे साझेदारों को फर्म समाप्त करने की अपनी इच्छा की लिखित सूचना दे कर फर्म को समाप्त कर सकता है। सूचना में दी गई तिथि से फर्म समाप्त मानी जायेगी। यदि सूचना में तिथि नहीं दी गई हो तो सूचना के संवहन के तिथि से फर्म समाप्त हुई मानी जायेगी।

(5) न्यायालय द्वारा समाप्ति – किसी साझेदारी फर्म का न्यायालय द्वारा विघटन कराने की आवश्यकता तब पड़ती है जब फर्म के विघटन के सम्बन्ध में सभी साझेदारों में सहमति न बने अथवा साझेदारों के मध्य मतभेद हो जायें। ऐसी स्थिति में कोई भी साझेदार न्यायालय में फर्म की समाप्ति हेतु वाद प्रस्तुत कर सकता है। न्यायालय प्रत्येक मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रख कर फर्म का विघटन किये जाने या न किये जाने का आदेश दे सकता है।

धारा 44 के अनुसार, किसी साझेदार द्वारा मुकदमा दायर करने पर न्यायालय निम्नलिखित आधारों में से किसी भी आधार पर फर्म की समाप्ति का आदेश दे सकता है :–

(i) किसी साझेदार के पागल हो जाने पर – यदि किसी फर्म में कोई साझेदार पागल हो जाता है तो फर्म का कोई भी साझेदार अथवा पागल साझेदार का निकट सम्बन्धी या मित्र भी फर्म के विघटन के लिये वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(ii) किसी साझेदार के स्थायी रूप से अयोग्य हो जाने पर – जब फर्म का कोई साझेदार अपने कर्तव्यों को पूरा करने में स्थायी रूप से अक्षम या अयोग्य हो जाता है तो कोई अन्य साझेदार फर्म की समाप्ति के लिये न्यायालय में मुकदमा दायर कर सकता है। अयोग्यता शारीरिक हो सकती है जैसे– किसी साझेदार का अन्धा हो जाना या किसी साझेदार को आजीवन कारावास की सजा हो जाना।

(iii) किसी साझेदार के दुराचरण के आधार पर – जब फर्म का कोई साझेदार दुराचरण का दोषी होता है जिससे फर्म के व्यवसाय के संचालन पर विपरीत प्रभाव पड़ने की आशंका हो अथवा साझेदार के दुराचरण के कारण साझेदारों को कारोबार करना उचित रूप से असम्भव लग रहा हो और फर्म के व्यापार में हानि की आशंका हो तो किसी अन्य साझेदार द्वारा न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने पर न्यायालय फर्म के समाप्ति का आदेश दे सकता है।

(iv) किसी साझेदार द्वारा लगातार साझेदारी ठहराव भंग करने के आधार पर – जब कोई साझेदार जानबूझ कर या लगातार साझेदारी अनुबन्ध का खण्डन करता है अथवा ऐसा आचरण करता है जिससे दूसरे साझेदारों को साझेदारी के कारोबार को चलाना असम्भव लगने लगता है तो कोई भी अन्य साझेदार न्यायालय में

मुकदमा दायर कर सकता है और न्यायालय फर्म के विघटन का आदेश दे सकता है।

(v) किसी साझेदार द्वारा अपना हिस्सा हस्तांतरण करने पर – यदि कोई भी साझेदार फर्म में अपने हिस्से को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरण कर देता है तो कोई भी अन्य साझेदार न्यायालय में फर्म को समाप्त करने हेतु वाद दायर कर सकता है।

(vi) किसी साझेदार की कुरकी होने पर – यदि फर्म के किसी साझेदार पर बकाया राशि की वसूली के लिये कुरकी का आदेश हुआ हो और ऐसा साझेदार कुरकी के लिये फर्म में अपने हिस्से को बेचने की अनुमति दे देता है तो ऐसी स्थिति में कोई भी साझेदार फर्म के विघटन के लिये न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(vii) फर्म को लगातार हानि होने पर – यदि किसी फर्म की स्थिति ऐसी हो जाये कि उसे लगातार हानि ही हो रही है, और लाभ होने की आशंका न हो तो कोई भी साझेदार फर्म को समाप्त करने के लिये न्यायालय में मुकदमा दायर कर सकता है।

(viii) अन्य न्यायोचित आधार पर – यदि कोई साझेदार फर्म के विघटन के लिये वाद प्रस्तुत करता है तो न्यायालय उपरोक्त आधारों के अलावा ऐसे आधार पर भी फर्म के समापन का आदेश दे सकता है जो न्यायालय को न्यायोचित या न्यायपूर्ण लगे।

17.5 फर्म के विघटन के परिणाम (Consequences of Dissolution of Firm)

1. फर्म के विघटन के बाद साझेदारों के पूर्ववत् दायित्व (धारा 45)

फर्म का विघटन हो जाने के बाद, उसके साझेदार फर्म के कार्यो के लिये तब तक उत्तरदायी होंगे जब तक कि विघटन की सार्वजनिक सूचना न दी जाये। विघटन की सार्वजनिक सूचना फर्म द्वारा या किसी साझेदार द्वारा दी जा सकती है। रजिस्टर्ड फर्म की दशा में यह सार्वजनिक सूचना फर्मों के रजिस्ट्रार को , सरकारी राजपत्र में और उस जिले में जहाँ फर्म के कारोबार का मुख्य स्थान हो कम से कम एक स्थानीय भाषा वाले समाचार पत्र में भी दी जानी चाहिये।

2. समापन के प्रयोजनार्थ साझेदारो का पूर्ववत प्राधिकार (धारा 47)

निम्नलिखित दो कार्यो के लिये जिन्हें समापन के बाद करना आवश्यक होता है, साझेदारों का फर्म को बाध्य करने तथा साझेदारों के पारस्परिक अधिकार व कर्तव्य पूर्ववत रहते है–

अ – फर्म के कारोबार को बन्द करना, जिसके लिये सम्पत्ति का निपटारा, देनदारों से रकम की वसूली और लेनदारो को भुगतान आदि करना।

ब – उन व्यवहारों या अनुबन्धों को पूरा करना जो विघटन के समय अधूरे हो जैसे – विघटन से पूर्व प्राप्त आदेशानुसार माल की सुपुर्दगी लेने और उसके मूल्य का भुगतान करना।

3. साझेदारों का समापन को लागू कराने का अधिकार (धारा 46)

फर्म का समापन हो जाने पर प्रत्येक साझेदार या उसके प्रतिनिधि को यह अधिकार है कि वह फर्म की सम्पत्तियों को बेच कर सर्वप्रथम फर्म के ऋणों तथा

दायित्वों का भुगतान करे तथा अवशेष बची हुई राशि को साझेदारों और उनके प्रतिनिधियों में उनके अधिकारों के अनुपात में वितरित करायें।

4. **व्यक्तिगत लाभों को बाटने का दायित्व (धारा 50)**

फर्म के विघटन के पश्चात कारोबार के समापन की प्रक्रिया चालू रहती है इस अवधि में प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य होता है कि वह फर्म से सम्बन्धित व्यवहारों से कोई व्यक्तिगत लाभ न उठाये। यदि किसी साझेदार ने व्यक्तिगत लाभ कमाया है तो उसे ऐसे लाभ का फर्म को हिसाब देना तथा अन्य साझेदारो के साथ लाभ का बटवारा करना होगा।

5. **प्रीमियम वापस मागने का अधिकार (धारा 51)**

यदि किसी साझेदार ने निश्चित अवधि के लिये फर्म में सम्मिलित होते समय कोई प्रीमियम दिया है और फर्म उक्त अवधि के समाप्त होने से पूर्व ही विघटित हो जाती है तो ऐसे में साझेदार को प्रीमियम की आनुपातिक रकम वापस पाने का अधिकार है निम्न परिस्थितियों मे प्रीमियम वापस पाने का अधिकार नहीं होगा –

अ – जब फर्म निश्चित अवधि के लिये न बनी हो।

ब – जब फर्म का विघटन किसी साझेदार की मृत्यु के कारण हुआ हो।

स – जब फर्म का विघटन ऐसे साझेदार के दुराचरण के कारण हुआ हो।

द – जब फर्म का विघटन सभी साझेदारों के बीच अनुबन्ध द्वारा हुआ हो जिसमे प्रीमियम वापसी की व्यवस्था न की गई हो।

6. **कपट आदि के आधार पर साझेदारी अनुबन्ध को खंडित किये जाने पर साझेदारों के अधिकार (धारा 52)**

एक सामान्य अनुबन्ध की भॉति साझेदारी अनुबन्ध में भी किसी साझेदार के साथ कपट या मिथ्यावर्णन किया जा सकता है, जिस साझेदार के साथ कपट आदि किया गया है उसे क्षतिपूर्ति के लिये दावा करने का अधिकार के अलावा निम्न अधिकार भी प्राप्त होते है–

अ – ऐसे साझेदार को फर्म के ऋणों को चुकाने के बाद शेष सम्पत्ति पर ग्रहणाधिकार (Lien) प्राप्त होता है।

ब – यदि उसने फर्म के ऋणों का भुगतान किया है तो वह ऐसे भुगतानों के लिये फर्म के लेनदार की स्थिति में आने का अधिकारी है।

स – उसने फर्म के जितने ऋणों का भुगतान किया है, उन सबके लिये दोषी साझेदार से क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार होता है।

7. **विघटन के दौरान प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार (धारा 53)**

यदि साझेदारों के बीच कोई विपरीत अनुबन्ध न हुआ हो तो प्रत्येक साझेदार या उसका प्रतिनिधि को अन्य साझेदारों पर यह प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार होता है कि वे तब तक फर्म के नाम से न तो कोई व्यवसाय करे और न ही फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग स्वयं के लाभ के लिये करें, जब तक कि फर्म के कारोबार का पूर्ण रूप से समापन न हो जायें। ऐसा प्रतिबन्ध उस साझेदार के विरूद्व नही लगाया जा सकता है जिसने फर्म की ख्याति खरीदी हो।

8. **भविष्य के लिये प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार (धारा 54)**

साझेदार विघटन की दशा में ऐसा ठहराव कर प्रतिबन्ध लगा सकते है कि कोई भी साझेदार भविष्य में निश्चित अवधि या निश्चित सीमा में फर्म के समान व्यापार नही करेगे।

17.6 विघटन के पश्चात हिसाब किताब के निपटारे की विधि (Modes of Settlement of Account after Dissolution)

फर्म के विघटन के पश्चात साझेदारों के बीच हिसाब किताब का निपटारा 'साझेदारी संलेख' में दी गई व्यवस्थाओं के अनुसार किया जाता है। परन्तु साझेदारी संलेख में कोई व्यवस्था नहीं दी गई है अर्थात इस स्थिति में निपटारे के सम्बन्ध में साझेदारों ने आपस में कोई अनुबन्ध नहीं किया हो तो साझेदारी अधिनियम की धारा 48 के अनुसार हिसाब किताब के निपटारे के सम्बन्ध में निम्न नियम लागू होंगे –

(1) फर्म की हानियों की पूर्ति सर्वप्रथम लाभों में से की जायेगी, लाभ अप्रर्याप्त होने पर साझेदारों की पूँजी में से की जायेगी और फिर भी हानियाँ शेष रह जाये तो साझेदारों द्वारा व्यक्तिगत रूप से उसी अनुपात में पूरा किया जायेगा जिस अनुपात में लाभों का बटवारे करने के अधिकारी थे।

(2) फर्म की सम्पत्ति को बेचकर जो धनराशि उपलब्ध होगी उसका उपयोग निम्न रीति या क्रम से किया जायेगा।

(अ) तीसरे पक्षकारों द्वारा फर्म को दिये गये ऋणों या अन्य का भुगतान करने में।

(ब) फर्म के प्रत्येक साझेदार द्वारा पूँजी के अतिरिक्त फर्म को जो ऋण दिया है तथा जो अभी भी बकाया है उसका आनुपातिक रूप से भुगतान करने में।

(स) फर्म के प्रत्येक साझेदार को उसकी शेष पूँजी का आनुपातिक रूप से भुगतान करने में।

(द) उपरोक्त भुगतानों के बाद भी यदि फर्म के पास धन शेष रहता है तो उसे लाभ–विभाजन के अनुपात में साझेदारों को बांट देना।

फर्म के एवं साझेदारों के ऋणों का भुगतान –

यदि फर्म द्वारा लिये गये ऋण तथा साझेदारों द्वारा अपनी व्यक्तिगत उपयोग हेतु लिये गये ऋण संयुक्त रूप से लिये गये हो और बकाया हो तो उनके भुगतान के सम्बन्ध में धारा 49 के नियम निम्न प्रकार लागू होंगेः–

(1) फर्म की सम्पत्ति बेचने से मिली राशि का प्रयोग सर्वप्रथम फर्म के ऋण चुकाने में किया जायेगा तथा शेष बची राशि साझेदारों के हिस्से के अनुपात में उनके व्यक्तिगत ऋणो को चुकाने में किया जायेगा। जिस साझेदार ने व्यक्तिगत ऋण नहीं लिया है उसे धनराशि का भुगतान कर दिया जायेगा।

(2) यदि साझेदार की व्यक्तिगत सम्पत्ति का प्रयोग ऋण चुकाने के लिये करना हो तो पहले साझेदार के व्यक्तिगत ऋण चुकाने में तथा बाद में फर्म के ऋणों के लिये धनराशि का प्रयोग किया जाता है।

17.7 सारांश

साझेदारी फर्म का रजिस्ट्रेशन कराना अनिवार्य नहीं है अर्थात रजिस्ट्रेशन स्वैच्छिक है। साझेदारी फर्म अपने जीवन काल में कभी भी रजिस्ट्रेशन करवा सकती है। रजिस्ट्रेशन के लिए निर्धारित प्रारूप में निर्धारित शुल्क सहित एक

विवरण रजिस्ट्रार के कार्यालय में जमा करना होता है जिसमें सभी साझेदारों या उनके अधिकृत प्रतिनिधि के हस्ताक्षर होते है। जब रजिस्ट्रार पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जाता है कि सभी व्यवस्थाओं की पूर्ति हो गयी है तो वह फर्म का रजिस्ट्रेशन कर प्रमाण पत्र निर्गत कर देता है। रजिस्ट्रेशन के पश्चात यदि फर्म के नाम, स्थान, बनावट आदि में परिवर्तन होते है तो उन परिवर्तनों का भी रजिस्ट्रेशन कराना होता है। यदि फर्म का रजिस्ट्रेशन न हो तो कोई भी साझेदार फर्म के विरूद्व, साझेदारों के विरूद्व तथा तृतीय पक्षकार के विरूद्व न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता।

जब सभी साझेदारों का सम्बन्ध एक दूसरे से टूट जाता है तो उसे फर्म का विघटन कहते है और यदि एक या अधिक साझेदार पृथक हो जाते है तो उसे साझेदारी का विघटन कहते है। साझेदारी के विघटन में शेष साझेदार फर्म के व्यवसाय को चलाते रहते है। फर्म का विघटन अनेक तरीकों से हो सकता है जैसे – सभी साझेदार आपस में ठहराव कर फर्म का समापन कर सकते है, यदि एक को छोडकर सभी दिवालिया हो जाए तो फर्म का अनिवार्य समापन हो जाता है, यदि फर्म निश्चित अवधि या निश्चित कार्य के लिए बनी हो तो निश्चित अवधि के समाप्त होने पर या निश्चित कार्य के पूर्ण होने पर फर्म का विघटन हो सकता है। एच्छिक साझेदारी में विघटन की सूचना देने पर फर्म विघटित हो जाती है। फर्म की किसी साझेदार द्वारा न्यायालय में फर्म को विघटित करने के लिए मुकदमा दायर किया जाए तो न्यायालय उचित कारण होने पर फर्म के विघटन का आदेश दे सकती है।

17.8 शब्दावली

फर्म की समाप्ति – फर्म की समाप्ति उस समय होती है जब सभी साझेदारों का सम्बन्ध एक दूसरे से टूट जाता है।

साझेदारी की समाप्ति – साझेदारी की समाप्ति उस समय होती है जब कोई एक या अधिक साझेदार फर्म से पृथ्क हो जाता है ।

17.9 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 'क'

निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य –

1. साझेदारी अधिनियम के अन्तर्गत साझेदारी फर्म का रजिस्ट्रेशन अनिवार्य है।
2. फर्म के लेनदार द्वारा आवेदन करने पर न्यायालय फर्म का विघटन के आदेश दे सकती है।
3. साझेदारी फर्म का रजिस्ट्रेशन केवल फर्म के निर्माण के समय हो सकता है।
4. फर्म के रजिस्ट्रेशन आवेदन पत्र पर सभी साझेदारों के ही हस्ताक्षर होने आवश्यक है।
5. फर्म का रजिस्ट्रेशन न होने पर भी तीसरा पक्षकार फर्म या साझेदारों के विरूद्व मुकदमा चला सकता है।
6. निश्चित समय के लिए स्थापित फर्म का अनिवार्य विघटन हो जाता है यदि निश्चित समय समाप्त हो जाए।

7. एच्छिक साझेदारी का विघटन केवल विघटन की सूचना देकर किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 'ख'

रिक्त स्थानों के भरिए –

1. साझेदारी फर्म का रजिस्ट्रेशन कराना .... है।
2. एक साझेदार को छोड़कर अन्य सभी साझेदारों के दिवालिया धोषित होने पर फर्म का .... रूप से विघटन हो जाता है।
3. किसी .... द्वारा न्यायालय में फर्म के विघटन हेतु वाद प्रस्तुत किया जा सकता है।
4. साझेदारी फर्म का रजिस्ट्रेशन फर्म के स्थापना के बाद भी .... जा सकता है।
5. फर्म जिसका रजिस्ट्रेशन नहीं हुआ है, उसका साझेदार दूसरे साझेदार के विरूद्व वाद प्रस्तुत .... कर सकता है।

17.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

'क'

1. असत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. सत्य 6. असत्य 7. सत्य

'ख'

1. स्वैच्छिक 2. अनिवार्य 3. साझेदार 4. कराया 5. नहीं

17.11 स्वपरख प्रश्न

1. साझेदारी फर्म के रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया समझाइयें।
2. क्या फर्म का रजिस्ट्रेशन कराना आवश्यक है? किसी फर्म का रजिस्ट्रेशन न कराने के क्या प्रभाव होते है?
3. फर्म के विघटन और साझेदारी के विघटन में क्या अन्तर है? उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिसके अन्तर्गत न्यायालय साझेदारी फर्म का विघटन कर सकता है?
4. साझेदारी फर्म के विघटन के विभिन्न तरीकों का वर्णन कीजिए।
5. साझेदारी फर्म के विघटन के बाद हिसाब किताब के निपटारें के नियमों का वर्णन कीजिए।

17.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 18 सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम (Limited Liability Partnership Act)

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 सीमित दायित्व साझेदारी का स्वभाव
18.3 सीमित दायित्व साझेदारी का समामेलन
18.4 साझेदारों के आपसी सम्बन्ध (अधिकार, कर्तव्य)
18.5 सीमित दायित्व साझेदारी तथा साझेदारों के दायित्व
18.6 अंशदान
18.7 वित्तीय प्रकटीकरण
18.8 सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच
18.9 फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन
18.10 प्राइवेट कम्पनी का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन
18.11 असूचीबद्ध सार्वजनीक कम्पनी का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन
18.12 सीमित दायित्व साझेदारी का समापन
18.13 सारांश
18.14 शब्दावली
18.15 बोध प्रश्न
18.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.17 स्वपरख प्रश्न
18.18 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- सीमित दायित्व तथा असीमित दायित्व का अर्थ समझ सके।
- सीमित दायित्व साझेदारी क्या होती है, इसे समझ सकें।
- सीमित दायित्व साझेदारी का स्वभाव समझ सकें।
- सीमित दायित्व साझेदारी के साझेदारों के अधिकार व कर्तव्य समझ सकें।

18.1 प्रस्तावना

भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 के अनुसार साझेदारी में प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है और प्रत्येक साझेदार साझेदारी फर्म के सभी ऋणों के भुगतान के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। प्रत्येक साझेदार, फर्म में साझेदार बने रहने के समय तक के फर्म के कार्यो के सम्बन्ध में तीसरे पक्षकारों के प्रति अन्य सभी साझेदारों के साथ सयुक्त रूप से और व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। साझेदारों की देयता असीमित होने के कारण ही फर्म का लेनदार अपनी कर्ज की पूरी रकम की वसूली के लिए सभी साझेदारों पर एक साथ अथवा प्रत्येक साझेदार पर अलग अलग कानूनी कार्यवाही कर सकता है। दूसरे शब्दों में फर्म का लेनदार अपने कर्ज की सम्पूर्ण रकम एक साझेदार से भी वसूल कर सकता हैं। इस प्रकार उत्तरदायी साझेदार अन्य साझेदारों से उनके हिस्से की रकम कि मांग कर सकता है इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 सीमित दायित्व साझेदारी को मान्यता नहीं

देता परन्तु 2008 में सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम के बनने से सीमित दायित्व साझेदारी को मान्यता मिली है, इससे पेशेवरों जैसे – चार्टड एकाउन्टेण्ट, कम्पनी सचिवों तथा व्यवसायियों को ऐसी साझेदारी बनाने का अवसर मिल गया है जिसमें साझेदारों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है तथा साझेदार का दायित्व भी सीमित है। इस इकाई में आप सीमित दायित्व साझेदारी के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

18.2 सीमित दायित्व साझेदारी का स्वभाव (Nature of Limited Liability Partnership)

सीमित दायित्व साझेदारी एक निगमित निकाय है जो कि सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम 2008 के अन्तर्गत निर्मित एवं समामेलित होती है जिसका पृथक वैधानिक अस्तित्व होता है अर्थात सीमित दायित्व साझेदारी का अपने साझेदारों से पृथक वैधानिक अस्तित्व होता है इसलिए सीमित दायित्व साझेदारी अपने साझेदारों से किसी भी प्रकार का अनुबन्ध कर सकती है और अपने साझेदारों के प्रति वाद प्रस्तुत कर सकती है। पृथक अस्तित्व के कारण ही सीमित दायित्व साझेदारी तथा इसके साझेदारों की सम्पत्ति पृथक पृथक मानी जाती है। सीमित दायित्व साझेदारी अपने नाम में सम्पत्ति क्रय कर सकती है, रख सकती है, बेच सकती है और साझेदार भी सीमित दायित्व साझेदारी पर वाद प्रस्तुत कर सकते है।

सीमित दायित्व साझेदारी का स्थायी अस्तित्व होता है जिससे सीमित दायित्व साझेदारी में किसी भी परिवर्तन का इस साझेदारी के अस्तित्व, अधिकार व दायित्व पर प्रभाव नहीं पड़ता है । दूसरें शब्दों में सीमित दायित्व साझेदारी का कोई साझेदार साझेदारी छोड़ता है, अथवा मर जाता है अथवा दिवालिया या पागल हो जाता है तो भी सीमित दायित्व साझेदारी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। सीमित दायित्व साझेदारी में साझेदारी अधिनियम 1932 के प्रावधान लागू नहीं होते है। सीमित दायित्व साझेदारी में कोई भी व्यक्ति अथवा निगमित निकाय साझेदार बन सकता है, परन्तु कोई ऐसा व्यक्ति इसका साझेदार बनने के योग्य नहीं होगा–

अ – यदि उसे न्यायालय अस्ववस्थ मस्तिष्क का मानता है।

ब – यदि वह दिवालिया घोषित हो।

स – यदि उसने दिवालिया घोषित करने हेतु आवेदन किया हो और आवेदन अभी विचाराधीन हो ।

प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी में कम से कम दो साझेदार होने आवश्यक है। यदि सीमित दायित्व साझेदारी में किसी समय साझेदारों की संख्या दो से कम अर्थात केवल एक ही साझेदार रह जाए और ऐसा एकल साझेदार जानकारी रखते हुए भी साझेदारी के व्यवसाय को छः माह से अधिक चालू रखता है तो ऐसे समय में सीमित दायित्व साझेदारी से सम्बन्धि सभी दायित्वों के लिए वह एक एकल साझेदार व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

सीमित दायित्व साझेदारी में कम से कम दो व्यक्ति नामित साझेदार होंगे जिनमें से एक भारत का निवासी होगा। भारत में निवासी का आशय एक ऐसे व्यक्ति से है जो पूर्व के एक वर्ष में कम से कम 182 दिन भारत में रहा हो। यदि सीमित दायित्व साझेदारी में सभी साझेदार निगमित निकाय के रूप में हो या एक या अधिक साझेदार व्यक्ति के रूप में और अन्य निगमित निकाय के रूप में साझेदार हो तो ऐसी दशा में कोई दो व्यक्तिगत साझेदार अथवा निगमित निकाय

का नामाकिंत प्रतिनिधि सीमित दायित्व साझेदारी के नामित साझेदार बन सकते है।

यदि समामेलन के दस्तावेज में यह उल्लेखित हो कि नामित साझेदार कौन होगा तो तद्नुसार ही ऐसा व्यक्ति समामेलन पर नामित साझेदार बनेगा अर्थात सीमित दायित्व साझेदारी के ठहराव के अनुसार नामित साझेदार बनेंगे तथा हटाये जायेंगे। एक व्यक्ति जिसने सीमित दायित्व साझेदारी में नामित साझेदार बनने के लिए अपनी सहमति निर्धारित प्रारूप में नहीं दी हो तो ऐसा व्यक्ति नामित साझेदार नहीं बन सकता। प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को ऐसे प्रत्येक व्यक्ति का विवरण रजिस्ट्रार के पास निर्धारित प्रारूप में निर्धारित तरीकें से भेजना होता है जिसने नामित साझेदार बनने की सहमति दी हो। ऐसा विवरण उसकी नियुक्ति के 30 दिन के अन्दर भेजना होता है।

प्रत्येक नामित साझेदार केन्द्रीय सरकार से एक नामित साझेदार परिचय नम्बर प्राप्त करेगा। नामित साझेदार का दायित्व है कि वह सीमित दायित्व साझेदारी द्वारा अधिनियम के प्रावधानों की पूर्ति हेतु जो कार्य करने होते है उन्हे करे जैसे – दस्तावेज प्रस्तुत करना, अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत विवरण प्रस्तुत करना तथा अन्य विशिष्ट कार्य जो सीमित दायित्व साझेदारी ठहराव में दिये है। सीमित दायित्व साझेदारी पर प्रावधानों के विपरीत कार्य करने पर लगाये गये दण्ड के लिए नामित साझेदारी उत्तरदायी होगें।

यदि नामित साझेदार का स्थान रिक्त हो तो सीमित दायित्व साझेदारी को ऐसे रिक्त होने की तिथि से 30 दिनों के अन्दर नया नामित साझेदार नियुक्त करना होता है। अधिनियम के प्रावधान के अनुसार यदि नामित साझेदार की नियुक्ति नहीं होती है या किसी समय केवल एक ही नामित साझेदार रह गया हो तो ऐसी दशा में सभी साझेदार नामित साझेदार माने जायेगें। यदि सीमित दायित्व साझेदारी नामित साझेदार के सम्बन्ध में प्रावधान का उल्लधन करती है तो सीमित दायित्व साझेदारी तथा उसके प्रत्येक साझेदार पर कम से कम दस हजार रू तथा अधिकतम पांच लाख रू तक का अर्थदण्ड लगाया जा सकता है।

18.3 सीमित दायित्व साझेदारी का समामेलन (Incorporation of Limited Liability Partnership)

धारा 11 (1) अनुसार, एक सीमित दायित्व साझेदारी के समामेलन हेतु –

(अ) दो या अधिक व्यक्ति मिलकर लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से वैधानिक व्यापार प्रारम्भ करने के लिए समामेलन दस्तावेज में अपना नाम सदस्य के रूप में देते है।

(ब) समामेलन दस्तावेज को निर्धारित तरीके से निर्धारित शुल्क के साथ उस राज्य के रजिस्ट्रार के पास फाइल करते है जहां सीमित दायित्व साझेदारी का रजिस्टर्ड कार्यालय है।

(स) समामेलन दस्तावेज के साथ, एक कथन इस आशय का कि अधिनियम तथा नियमों के अन्तर्गत उन सभी औपचारिकताओं कि पूर्ति कर दी गयी है जो समामेलन तथा उससे सम्बन्धित है, भेजना होता है। यह कथन निर्धारित प्रारूप में दाखिल करना पड़ता है जिसे सीमित दायित्व साझेदारी में संलिप्त एक एडवोकेट या एक कम्पनी सचिव या एक चार्टड एकाउन्टेण्ट या लागत लेखाकार तथा एक

सदस्य जिसका नाम समामेलन दस्तावेज में है द्वारा बनाया जाता है तथा हस्ताक्षरित होता है।

समामेलन दस्तावेज –

अ – एक निर्धारित प्रारूप में होता है।

ब – उसमें सीमित दायित्व साझेदारी का नाम होगा

स– उसमें सीमित दायित्व साझेदारी के प्रस्तावित व्यवसाय का उल्लेख होगा।

द – उसमें सीमित दायित्व साझेदारी के रजिर्स्टड कार्यालय का पता होगा।

य – उसमें उन सभी साझेदारों के नाम व पतें होगें जो सीमित दायित्व साझेदारी के समामेलन के समय साझेदार बनते है।

र – उन व्यक्तियों के नाम व पतें जो समामेलन पर सीमित दायित्व साझेदारी के नामित साझेदार बने हों।

ल – प्रस्तावित सीमित दायित्व साझेदारी से सम्बन्धित अन्य निर्धारित सूचनाएं।

एक व्यक्ति जिसने धारा 11 (1) के वाक्य 'स' में जो कथन दिया है उसे वह –

अ – असत्य समझता हो या

व – उसे सत्य समझने का विश्वास भी न करता हो तो ऐसे व्यक्ति को दो साल की अवधि तक का कारावास और दस हजार रू से पांच लाख रू तक का अर्थदण्ड से दण्डित किया जा सकता है।

धारा 12 (1) के अनुसार, जब धारा 11 (1) के वाक्याशं 'ब' तथा 'स' के सभी औपचारिकतों की पूर्ति हो जाती है, वाक्याशं 'अ' की पूर्ति होनी मान ली जाती है क्योंकि समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति का वचन दिया रहता है, तो रजिस्ट्रार समामेलन दस्तावेजों को अपने पास रख लेता है और चौदह दिनों के अन्दर – (अ) – समामेलन दस्तावेजों को रजिस्टर में दर्ज कर तथा (ब) – सीमित दायित्व साझेदारी के दिये गये नाम से एक प्रमाण निर्गत कर देता है। निर्गत प्रमाण–पत्र में रजिस्ट्रार के हस्ताक्षर होते है तथा कार्यालय की मुहर लगायी जाती है। यह प्रमाण–पत्र इस बात का प्रमाण होता है कि सीमित दायित्व साझेदारी का दिये गये नाम से रजिस्ट्रेशन द्वारा समामेलन हो गया है।

धारा 13 के अनुसार, प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी का एक रजिर्स्टड कार्यालय होगा जहां प्रत्राचार किये जायेगें तथा उन्हें प्राप्त किया जायेगा। सीमित दायित्व साझेदारी अपने रजिर्स्टड कार्यालय का स्थान परिवर्तित कर सकती है ऐसा परिवर्तन रजिस्ट्रार को सूचना देने पर ही प्रभावशील होगा यदि सीमित दायित्व साझेदारी इन प्रावधानों का उल्लधन करती है तो उसे तथा उसके प्रत्येक साझेदार को कम से कम दो हजार रू और अधिकतम पच्चीस हजार रू के अर्थदण्ड से दण्डित किया जा सकता है।

रजिस्ट्रेशन का प्रभाव – धारा 14 के अनुसार, सीमित दायित्व साझेदारी रजिस्ट्रेशन के पश्चात अपने नाम से वाद प्रस्तुत कर सकती है तथा उस पर वाद प्रस्तुत किया जा सकता है। सीमित दायित्व साझेदारी अपने नाम से चल व अचल, वास्तविक तथा अवास्तविक सम्पत्ति रख सकती है उसके पास अपनी सार्व मुद्रा होगी वह अन्य ऐसे सभी वैधानिक कार्य कर सकती है जो कि एक निगमित निकाय कर सकती है।

धारा 15 के अनुसार, प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को अपने नाम के अंत में ' सीमित दायित्व साझेदारी ' अथवा 'LLP' लिखना होगा।

एक सीमित दायित्व साझेदारी ऐसे नाम से रजिर्स्टड नहीं हो सकती है जो केन्द्रीय सरकार की राय में आपत्तिजनक हो, जो नाम दूसरी साझेदारी फर्म या अन्य निगमित निकायों या सीमित दायित्व साझेदारी के समान हो अथवा उससे मिलता जुलता हो।

यदि कोई सीमित दायित्व साझेदारी प्रस्तावित नाम या परिवर्तित नाम को सुरक्षित रखवाना चाहता है तो उसे निर्धारित प्रारूप में निर्धारित शुल्क के साथ रजिस्ट्रार के पास आवेदन करना होता है। रजिस्ट्रार ऐसे आवेदन को प्राप्त करने के पश्चात यदि वह संतुष्ट होता है कि नाम केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के अनुरूप है तो वह नाम सुरक्षित रखने की सूचना दे देता है । यह नाम सूचना देने की तिथि से तीन माह तक सुरक्षित रहता है।

यदि केन्द्रीय सरकार इस बात से संतुष्ट होती है कि सीमित दायित्व साझेदारी का नाम आपत्तिजनक है या दूसरी सीमित दायित्व साझेदारी या अन्य से मिलता जुलता है तो केन्द्रीय सरकार ऐसी सीमित दायित्व साझेदारी को नाम बदलने का निर्देश दे सकती है। ऐसा निर्देश देने के तीन माह के अन्दर या केन्द्रीय सरकार द्वारा बढ़ाये गये समय के अन्दर सीमित दायित्व साझेदारी को निर्देशों का पालन करना होगा। सीमित दायित्व साझेदारी निर्देश का पालन करने में असफल रहती है तो उस पर कम से कम दस हजार रू दण्ड लगाया जा सकता है जिसे पांच लाख रू तक बढ़ाया जा सकता है। और सीमित दायित्व साझेदारी के नामित साझेदार पर भी कम से कम दस हजार रू जिसे एक लाख रू तक बढ़ाया जा सकता है अर्थदण्ड लगाया जा सकता है।

एक सीमित दायित्व साझेदारी के समामेलन के पश्चात कोई दूसरी साझेदारी का रजिस्ट्रेशन उससे मिलते जुलते नाम से हो जाए तो पहली साझेदारी रजिस्ट्रार को नाम बदलने का निर्देश देने के लिए आवेदन कर सकती है। ऐसा आवेदन दूसरी साझेदारी के रजिस्ट्रेशन के चौबीस माह के अन्दर दिया जाना चाहिए। कोई भी सीमित दायित्व साझेदारी जिस नाम से रजिर्स्टड है उसे बदलने के लिए निर्धारित प्रारूप में निर्धारित शुल्क के साथ रजिस्ट्रार को सूचना दे सकती है।

यदि कोई व्यक्ति सीमित दायित्व साझेदारी के रूप में बिना रजिर्स्टड हुए अपना ऐसे नाम से व्यवसाय चला रहा है जिसके अंत में 'सीमित दायित्व साझेदारी' या 'LLP' लिखा हो तो ऐसे व्यक्ति पर न्यूनतम पचास हजार रू अर्थदण्ड लगाया जा सकता है जिसे पांच लाख रू तक बढ़ाया जा सकता है।

प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को अपने बिलों, कार्यालय पत्राचारों और अन्य प्रकाशनों में साझेदारी का नाम, रजिस्टर्ड कार्यालय का पता तथा रजिस्ट्रेशन नम्बर लिखना होगा तथा सीमित दायित्व के रूप में रजिस्टर्ड है यह कथन भी लिखना होगा। कोई भी सीमित दायित्व साझेदारी इसका उल्लधन करती है तो उस पर कम से कम दो हजार रू जिसे बीस हजार रू तक बढ़ाया जा सकता है, अर्थदण्ड का जुर्माना लगाया जा सकता है।

18.4 साझेदारों के आपसी सम्बन्ध (अधिकार, कर्तव्य) (Mutual Relation of Partners (Rights and Duties)

सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम 2008 की धारा 23 के अनुसार साझेदारों के आपसी अधिकार व कर्तव्य तथा सीमित दायित्व साझेदारी एवं उसके

साझेदारों के मध्य अधिकार एवं कर्तव्यों का निर्धारण ' सीमित दायित्व साझेदारी ठहराव' द्वारा निर्धारित होते है। सीमित दायित्व साझेदारी के समामेलन से पूर्व उक्त ठहराव लिखित रूप में उन सभी व्यक्तियों द्वारा बनाया जाता है जिनके नाम समामेलन के प्रपत्र में होते है। ऐसा ठहराव तथा इसमें हुआ परिवर्तन को रजिस्ट्रार के पास दाखिल करना होता है।

धारा 23 (4) के अनुसार उक्त ठहराव के न होने की दशा में साझेदारों के आपसी अधिकार कर्तव्य तथा साझेदारी व उसके साझेदारों के बीच अधिकार व कर्तव्य का निर्धारण अधिनियम की प्रथम अनुसूची के अनुसार निर्धारित होते है। अधिनियम की प्रथम अनुसूची में साझेदारों के आपसी सम्बन्धों को निम्न प्रकार निर्धारित किया गया है –

1. सीमित दायित्व साझेदारी की पूंजी, लाभ तथा हानि में सभी साझेदार बराबर के हिस्सेदार होगें।
2. सीमित दायित्व साझेदारी को प्रत्येक साझेदार द्वारा किए गये भुगतान तथा उनके द्वारा लिये गये व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों की क्षतिपूर्ति करनी होगी जो

अ– सीमित दायित्व साझेदारी के व्यापार को सामान्य तथा उचित प्रकार से चलाने पर किये हो अथवा

ब– सीमित दायित्व साझेदारी के व्यवसाय अथवा सम्पत्ति की सुरक्षा हेतु किए हो।

3. सीमित दायित्व साझेदारी के व्यवसाय के संचालन में साझेदार द्वारा किए गये कपट के कारण होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति साझेदार को करनी होगी।
4. प्रत्येक साझेदार को अधिकार है कि वह सीमित दायित्व साझेदारी के प्रबन्ध में हिस्सा ले सकता है।
5. किसी भी साझेदार को सीमित दायित्व साझेदारी के प्रबन्ध एवं व्यवसाय में कार्य करने के लिए पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा।
6. किसी भी साझेदार को अन्य सभी साझेदारों की सहमति के बिना किसी को साझेदारी में सम्मिलित करने का अधिकार नहीं होगा।
7. सीमित दायित्व साझेदारी में किसी भी मामले या विवाद का निपटारा बहुमत द्वारा प्रस्ताव पारित कर किया जाएगा, प्रत्येक साझेदार का एक वोट होगा। परन्तु सीमित दायित्व साझेदारी के व्यवसाय के स्वभाव में परिवर्तन बिना सभी साझेदारों की सहमति के नहीं किया जा सकता है।
8. सीमित दायित्व साझेदारी के लिए यह आवश्यक है कि उसके द्वारा लिए गये निर्णयों को निर्णय की तिथि से तीस दिनों के अन्दर उसके सूक्ष्म (Minutes) को सूक्ष्म पुस्तिका में लिखा जाना चाहिए। तथा निर्णयों को कार्यालय के रजिस्टर में संभाल कर रखना चाहिए।
9. सभी साझेदारों का यह कर्तव्य है कि वे इस प्रकार की सभी सूचनाएं तथा लेखा प्रस्तुत करें जो कि सीमित दायित्व साझेदारी अथवा किसी भी साझेदार या उसके कानूनी प्रतिनिधि को प्रभावित करते हो।
10. यदि किसी साझेदार ने सीमित दायित्व साझेदारी की बिना सहमति के कोई ऐसा व्यापार किया हो जो कि सीमित दायित्व साझेदारी से प्रतिस्पर्द्धी करता हो तो ऐसे साझेदार को ऐसे प्रतिस्पद्धी व्यापार के लाभ का हिसाब देना होगा।

11. यदि किसी साझेदार ने सीमित दायित्व साझेदारी की बिना सहमति के साझेदारी से सम्बन्धित किसी व्यवहार से अथवा साझेदारी की सम्पत्ति के प्रयोग से अथवा साझेदारी के नाम या साझेदारी के व्यवसाय से संबन्ध रखने वाले से कोई लाभ कमाया हो तो उसे ऐसे लाभ का हिसाब देना होगा।

12. किसी भी साझेदार को बहुमत वाले साझेदार नहीं निकाल सकते है। यदि साझेदारों ने स्पष्ट ठहराव द्वारा किसी या किन्ही साझेदारों को ऐसा अधिकार दिया है तो ऐसा साझेदार या साझेदारों द्वारा किसी भी साझेदार को निकाला जा सकता है।

13. साझेदारों के मध्य उत्पन्न विवाद जो सीमित दायित्व साझेदारी ठहराव द्वारा सुलझाये नहीं जा सके हो उन्हें 'पंचनिर्णय एवं संराधन अधिनियम 1996' के अन्तर्गत पंचनिर्णय हेतु प्रेषित किया जाएगा। अर्थात कोई भी साझेदार सीधे विवाद को न्यायालय में नहीं ले जा सकता है।

14. प्रत्येक साझेदार जो अपने नाम या पते में परिवर्तन करता है उसे ऐसे परिवर्तन के पन्द्रह दिनों के अन्दर इसकी सूचना सीमित दायित्व साझेदारी को देनी होती है।

साझेदार द्वारा साझेदारी से पृथक होना

धारा 24 के अनुसार, कोई भी साझेदार अन्य साझेदारों के साथ हुए ठहराव के अनुसार सीमित दायित्व साझेदारी से पृथक हो सकता है। ठहराव के अभाव में कोई भी साझेदार अन्य सभी साझेदारों को इस आशय की एक लिखित सूचना कि वह साझेदारी से सेवा निवृत हो रहा है देगा। यह सूचना कम से कम तीस दिन पूर्व देनी होगी। इस प्रकार वह सीमित दायित्व साझेदारी से पृथक या सेवा निवृत हो जाएगा। निम्न दशाओं में एक व्यक्ति की साझेदारी समाप्त हो जाती है यदि –

अ– उसकी मृत्यु हो जाए या सीमित दायित्व साझेदारी समाप्त हो जाए।

ब– किसी सक्षम न्यायालय द्वारा उसे अस्वस्थ मस्तिष्क का धोषित कर दिया जाए।

स– उसने दिवालिया धोषित करने हेतु आवेदन किया हो अथवा व दिवालिया धोषित हो गया हो।

उपरोक्त दशाओं में जब तक ऐसे साझेदार को नोटिस न दिया गया हो या उसके साझेदार न रह जाने की सूचना रजिस्ट्रार को न भेज दी जाए तब तक वह साझेदार रहेगा। कोई भी व्यक्ति जो साझेदार की मृत्यु या दिवालिया होने पर उसके भाग का अधिकारी होता है उसे सीमित दायित्व साझेदारी के प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता है।

सीमित दायित्व साझेदारी को नया साझेदार बनने या पुराने साझेदार की साझेदारी समाप्त होने अथवा साझेदारों के नाम व पते में परिवर्तन होने पर इसकी सूचना तीस दिनों के अन्दर रजिस्ट्रार को देनी होती है। इस सूचना के साथ निर्धारित शुल्क जमा करना होता है, इस पर नामित साझेदार के हस्ताक्षर होते है। इस व्यवस्था का उल्लंघन करने पर प्रत्येक नामित साझेदार तथा सीमित दायित्व साझेदारी पर न्यूनतम 2000 रू तथा अधिकतम 25000 रू तक अर्थदण्ड लगाया जा सकता है।

18.5 सीमित दायित्व साझेदारी तथा साझेदारों के दायित्व (Liabilities of Limited Liability Partnership and Partners)

धारा 26 के अनुसार, सीमित दायित्व साझेदारी के सभी साझेदार साझेदारी व्यवसाय के लिए उसके एजेन्ट होते है, परन्तु एक साझेदार दूसरे साझेदार का एजेन्ट नहीं होता है। इसका आशय यह है कि यदि कोई साझेदार अधिकार के अन्दर साझेदारी व्यवसाय से सम्बन्धित कोई व्यवहार तृतीय पक्षकार के साथ करता है तो इस व्यवहार के लिए सीमित दायित्व साझेदारी उत्तरदायी होगी। दूसरी ओर एक साझेदार द्वारा किये गये साझेदारी व्यवसाय के कार्य से उत्पन्न दायित्व के लिए अन्य साझेदार उत्तरदायी नहीं होगें क्योकि एक साझेदार दूसरे का एजेन्ट नहीं होता है।

यदि एक साझेदार सीमित दायित्व साझेदारी का ऐसा कार्य करता है जिसे करने का उसे अधिकार नहीं है तथा ऐसा व्यवहार जिस व्यक्ति से उसने किया है उसे उसके अधिकार होने या न होने की जानकारी नहीं है तो ऐसे कार्य से उत्पन्न दायित्वों के लिए सीमित दायित्व साझेदारी बाध्य नहीं होगी परन्तु यदि कोई साझेदार अपने अधिकार की सीमा के अन्दर सीमित दायित्व साझेदारी के व्यवसाय के दौरान कोई कार्य करता है और उसके दोष पूर्ण कार्य अथवा भूल के फलस्वरूप वह तृतीय पक्ष के प्रति उत्तरदायी हो जाता है तो इसके दायित्व के लिए सीमित दायित्व साझेदारी बाध्य होगी। साझेदार तृतीय पक्ष के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होगा। एक साझेदार के दोषपूर्ण कार्य के लिए दूसरे साझेदार उत्तरदायी नहीं होते है। (धारा 27 व 28)

यदि कोई व्यक्ति स्वयं को, मौखिक या लिखित या व्यवहार द्वारा, किसी सीमित दायित्व साझेदारी का प्रतिनिधि बताता है और दूसरा व्यक्ति उस पर विश्वास कर सीमित दायित्व साझेदारी से व्यवहार कर लेता है तो सीमित दायित्व साझेदारी ने इस प्रकार के व्यवहार से जितना लाभ कमाया है उस सीमा तक उत्तरदायी होगी। जब किसी साझेदार की मृत्यु के बाद भी सीमित दायित्व साझेदारी उसी नाम से तथा मृत साझेदार का नाम भी सम्मिलित करते हुए व्यवसाय को चालू रखते है तो मृत साझेदार का कानूनी प्रतिनिधि या उसकी सम्पत्ति ऐसे कार्यो के लिए उत्तरदायी नहीं होगी। (धारा 29)

यदि सीमित दायित्व साझेदारी या उसके साझेदार द्वारा अपने लेनदारों या अन्य व्यक्ति के साथ कपट किया हो या कपट पूर्ण प्रयोजन के आशय से कोई कार्य किया हो तो ऐसी दशा में सीमित दायित्व साझेदारी तथा कपट करने वाले साझेदार का दायित्व ऐसे लेनदारों के प्रति असीमित हो जाएगा। जहां कपट मय कार्य किसी साझेदार द्वारा किया जाए और सीमित दायित्व साझेदारी यह सिद्व कर दे कि ऐसा कार्य सीमित दायित्व साझेदारी की जानकारी या अनुमति से नहीं हुआ था तो इस दशा में सीमित दायित्व साझेदारी उत्तरदायी नहीं होगी केवल साझेदार का दायित्व असीमित होगा।

कपटमय कार्य करने वाले साझेदार तथा अन्य पक्षकार जिन्हें इसकी जानकारी थी वे दो वर्ष के कारावास तथा न्यूनतम पचास हजार रू और अधिकतम पांच लाख रू तक के अर्थदण्ड के भागीदार होगें। जहां किसी सीमित दायित्व साझेदारी या उसके किसी साझेदार या नामित साझेदार या किसी कर्मचारी ने कपटपूर्ण कार्य किया है तो ऐसे में इसके लिए आपराधिक दायित्व के अतिरिक्त ये

सभी ऐसे व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगें जिसे ऐसे कार्य के कारण हानि हुई है। सीमित दायित्व साझेदारी इस दायित्व से बच सकती है जब वह सिद्व कर दे कि ऐसा कार्य उसकी जानकारी के बिना हुआ है। (धारा 30)

न्यायालय या न्यायाधिकरण किसी सीमित दायित्व साझेदारी के किसी साझेदार या कर्मचारी पर लगाए गए अर्थदण्ड को कम कर सकता है या अर्थदण्ड से मुक्त कर सकता है यदि वह संतुष्ट हो जाए कि – (क)– ऐसे साझेदार या कर्मचारी ने सीमित दायित्व साझेदारी के जांच के दौरान उपयोगी जानकारी उपलब्ध करायी है, (ख) – जब किसी साझेदार या कर्मचारी द्वारा दी गई जानकारी से सीमित दायित्व साझेदारी, साझेदार या कर्मचारी को सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम या अन्य अधिनियम के अन्तर्गत दोषी सिद्व करती हो।

किसी साझेदार या कर्मचारी जिसनें सूचना उपलब्ध करायी हो उसे न कार्य से निकाला जा सकता है ना उसका पदावनत किया जा सकता है ना निलंबन तथा ना उसे धमकाया या उसका शोषण किया जा सकता है, उसके साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा सकता है।

18.6 अंशदान (Contributions)

किसी साझेदार के अंशदान के अन्तर्गत उसके द्वारा अपने भाग के लिए सीमित दायित्व साझेदारी के संचालन हेतु दिया गया धन, सम्पत्ति या अन्य चीजें सम्मिलित होती है। धारा 32 के अनुसार, अंशदान में वास्तविक या मूर्त, चल या अचल या अमूर्त सम्पत्ति या सीमित दायित्व साझेदारी से सम्बन्धित कुछ अन्य लाभ हो सकते है जिसमें मुद्रा, प्रतीज्ञा पत्र, मुद्रा या सम्पत्ति के अंशदान करने के अन्य ठहराव तथा निष्पादित किये गये या निष्पादित किये जाने वाले अनुबन्ध सम्मिलित है।

प्रत्येक साझेदार के अंशदान के मौद्रिक मूल्य की गणना इस प्रकार से की जायेगी तथा सीमित दायित्व साझेदारी में इस तरीके से दिखाया जाएगा जैसा की निर्धारित किया गया है। किसी साझेदार द्वारा धन, सम्पत्ति, सेवा या अन्य प्रकार के अंशदान उसी प्रकार से किया जाएगा जैसा कि सीमित दायित्व साझेदारी समझौते में उल्लेखित है।

18.7 वित्तीय प्रकटीकरण (Financial Disclosures)

धारा 34 के अनुसार, सीमित दायित्व साझेदारी को अपने कामकाज से सम्बधित ऐसी लेखा पुस्तकें रखनी पड़ती है जैसा कि निर्धारित किया गया है, ये लेखे प्रत्येक वर्ष नकद या अर्जन के आधार पर तथा दोहरा लेखा विधि के अनुसार होने चाहिए। उन्हें सीमित दायित्व साझेदारी के रजिस्टर्ड कार्यालय में ऐसी अवधि हेतु रखना होगा जैसा कि निर्धारित किया जाए। प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अंत से छः माह के अन्दर निर्धारित प्रारूप में खातों का विवरण तथा शोधनक्षमता का विवरण तैयार करना होता है, इन विवरणों पर सीमित दायित्व साझेदारी के नामित साझेदार के हस्ताक्षर होते है। प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को प्रत्येक वर्ष निर्धारित समय के अन्दर, निर्धारित तरीके एवं प्रारूप में तथा निर्धारित फीस के साथ खातों का विवरण तथा शोधनक्षमता का विवरण रजिस्ट्रार के पास दाखिल करना पड़ता है।

निर्धारित नियमों के अनुसार सीमित दायित्व साझेदारी को अपने लेखों का अंकेक्षण कराना होता है। केन्द्रीय सरकार सरकारी गजट में अधिसूचना जारी करके कुछ वर्ग के सीमित दायित्व साझेदारी को अंकेक्षण से छूट दे सकती है। ऐसी सीमित दायित्व साझेदारी जो धारा 34 का पालन करने में असफल रहती है उस पर अर्थदण्ड लगाया जा सकता है जो पच्चीस हजार रू से प्रारम्भ होकर बढ़कर पांच लाख रू तक हो सकता है। प्रत्येक नामित साझेदार पर भी जुर्माना लगाया जा सकता है जो दस हजार रू से प्रारम्भ होकर बढ़कर एक लाख रू तक हो सकता है।

धारा 35 के अनुसार, प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को अपने वित्तीय वर्ष समाप्त होने से साठ दिनों के अन्दर रजिस्ट्रार के पास निर्धारित तरीके तथा प्रारूप में प्रमाणित वार्षिक विवरण निर्धारित शुल्क के साथ दाखिल करना पड़ता है। यदि सीमित दायित्व साझेदारी वार्षिक विवरण दाखिल करने में असफल रहती है तो उस पर अर्थदण्ड लगाया जा सकता है जो पच्चीस हजार रू से प्रारम्भ होकर पांच लाख रू तक हो सकता है। वार्षिक विवरण दाखिल करने के प्रावधान का उल्लधन करने पर नामित साझेदार पर भी जुर्माना लगाया जा सकता है जो दस हजार रू से प्रारम्भ होकर एक लाख रू तक हो सकता है।

धारा 36 के अनुसार, प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी द्वारा रजिस्ट्रार के पास दाखिल किया गया समामेलन दस्तावेज, साझेदारों के नाम एवं उनमें परिवर्तन यदि हुआ है, लेखे एवं शोधनक्षमता का विवरण और वार्षिक विवरण का कोई भी व्यक्ति निर्धारित तरीके से शुल्क देकर निरीक्षण कर सकता है।

धारा 37 के अनुसार, इस अधिनियम के अन्तर्गत वांच्छित विवरणों या दस्तावेजों में कोई व्यक्ति जानते हुए भी असत्य विवरण दे अथवा जानते हुए भी महत्वपूर्ण तथ्यों को छोड़ देता है तो ऐसे व्यक्ति को दो वर्ष तक का कारावास तथा जुर्माना जो न्यूनतम एक लाख रू तथा अधिकतम पांच लाख रू तक हो सकता है, से दण्डित किया जा सकता है।

धारा 38 के अनुसार, यदि रजिस्ट्रार अधिनियम के पालन के लिए आवश्यक समझे तो वह सीमित दायित्व साझेदारी के वर्तमान या पूर्व के साझेदार, नामित साझेदार या कर्मचारी से जानकारी मांग सकता है या अपने पास बुलाकर जानकारी ले सकता है तथा समन भी जारी कर सकता है। यदि कोई इसका पालन नहीं करता तो उस पर अर्थदण्ड जो दो हजार रू से प्रारम्भ होकर पच्चीस हजार रू तक हो सकता है, लगाया जा सकता है। यदि कोई सीमित दायित्व साझेदारी रजिस्ट्रार के पास लेखे, विवरण या दस्तावेज दाखिल करने में चूक करती है अथवा दस्तावेजों में सुधार कर पुनः जमा करने में चूक करती है तो रजिस्ट्रार द्वारा न्यायाधिकरण में प्राथर्ना पत्र देने के आधार पर न्यायाधिकरण सीमित दायित्व साझेदारी को निश्चित समय के अन्दर चूक को सही करने का निर्देश दे सकती है तथा इस सम्बन्ध में सभी व्यय सीमित दायित्व साझेदारी को वहन करने होगें।

साझेदार द्वारा अपना हित हस्तांतरण करना

धारा 42 के अनुसार, सीमित दायित्व साझेदारी का साझेदार अपना लाभ हानि में हिस्सा सम्पूर्ण या अंशतः किसी अन्य को हस्तातरित कर सकता है। साझेदार द्वारा अपने अधिकार का हस्तांतरण सीमित दायित्व साझेदारी के विघटन

या समाप्ति का कारण नहीं होता है। जिस व्यक्ति को साझेदार ने अपना हिस्सा हस्तांतरित किया है वह स्वतः ही सीमित दायित्व साझेदारी के प्रबन्ध में भाग लेने या साझेदारी की अन्य गतिविधियों की जानकारी लेने का अधिकारी नहीं हो जाता।

18.8 सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच (Investigation of Affairs of Limited Liability Partnership)

धारा 43 के अनुसार, केन्द्रीय सरकार दो मामलों में सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच करने हेतु एक या अधिक सक्षम निरीक्षकों की नियुक्ति करती है जिन्हें केन्द्रीय सरकार के निर्देशानुसार रिर्पोट देनी होती है :

(क) न्यायाधिकरण के आदेश पर – जहां न्यायाधिकरण अपने आप से या फिर सीमित दायित्व साझेदारी के कम से कम 1/5 साझेदारों से प्राप्त आवेदन पत्र पर एक आदेश द्वारा धोषित करता है कि सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच होनी चाहिए।

(ख) न्यायालय के आदेश पर – जब कोई न्यायालय आदेश द्वारा यह धोषित करता है कि सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच होनी चाहिए।

उपरोक्त के अलावा भी केन्द्रीय सरकार निम्न दशाओं में भी निरीक्षक की नियुक्ति कर सकती है–

1. जब सीमित दायित्व साझेदारी के कम से कम 1/5 साझेदार साक्ष्य तथा निर्धारित प्रतिभूति राशि के साथ आवेदन करें।
2. जब सीमित दायित्व साझेदारी स्वयं आवेदन करें।
3. जब केन्द्रीय सरकार के विचार से ऐसी परिस्थितियां विद्यमान है जो दर्शाती है कि –

अ– सीमित दायित्व साझेदारी का कामकाज उसके लेनदारों, साझेदारों या किसी अन्य व्यक्ति से कपट करने अथवा सीमित दायित्व साझेदारी की रचना किसी कपट पूर्ण या अवैध उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई थी या

ब– सीमित दायित्व साझेदारी का कामकाज अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नहीं किया जा रहा हो, या

स– जब रजिस्ट्रार या अन्य निरीक्षक की रिर्पोट के आधार पर जांच कराना आवश्यक प्रतीत होता हो।

धारा 45 के अनुसार, कोई फर्म, निगमित निकाय या अन्य संघ को निरीक्षक के रूप में नियुक्त नहीं किया जायेगा।

निरीक्षकों के अधिकार – यदि निरीक्षक आवश्यक समझे कि ऐसा करना सीमित दायित्व साझेदारी की जांच के लिए सुसंगत है तो वह किसी ऐसे अस्तित्व (Entity) के कामकाज की भी जांच कर सकता है जो सीमित दायित्व साझेदारी या किसी वर्तमान या भूतपूर्व साझेदार या नामित साझेदार से भूतकाल में सम्बद्व रहा हो। तथा उसे इन सब के कामकाज पर रिर्पोट देने का अधिकार होता है। ऐसी जांच करने के पूर्व निरीक्षक को केन्द्रीय सरकार से अनुमति लेनी होगी तथा उक्त अस्तित्व, भागीदार या नामित साझेदार को भी सूचित करना होगा। (धारा 46)

सीमित दायित्व साझेदारी के नामित साझेदार तथा अन्य साझेदारों का यह कर्तव्य है कि वे सीमित दायित्व साझेदारी एवं अन्य अस्तित्व से सम्बन्धित सभी

लेखों एवं दस्तावेजों जो उनके अभिरक्षण में है उन्हें निरीक्षकों के समक्ष प्रस्तुत करें तथा निरीक्षकों को जांच से सम्बन्धित सभी प्रकार की सहायता करें।

केन्द्रीय सरकार से पूर्व अनुमोदन लेकर निरीक्षक किसी भी अस्तित्व से ऐसी सूचना तथा दस्तावेज पेश करने को कह सकता है जिन्हें वह जांच के उद्देश्य से आवश्यक समझे। निरीक्षक खातों व दस्तावेजों को तीस दिन तक अपने पास रख सकता है उसके बाद उन्हें लौटाना होगा। निरीक्षक उन्हें पुनः ले सकता है यदि उसे उनकी आवश्यकता पड़ती है। निरीक्षक को अधिकार है कि वह सम्बन्धित व्यक्तियों की शपथ पर परीक्षण कर सकता है तथा अपने समक्ष उपस्थित होने के लिए कह सकता है।

यदि कोई व्यक्ति उचित कारण के बिना मांगे गये खातों, दस्तावेजों को प्रस्तुत नहीं करता तथा बुलाने पर उपस्थित नहीं होता, सूचनायें नहीं देता, परीक्षण की टिप्पणियों पर हस्ताक्षर नहीं करता तो उस पर न्यूनतम दो हजार रू जो बढ़कर पच्चीस हजार रू तक हो सकता है अर्थदण्ड लगाया जा सकता है यदि चूक जारी रहती है तो अतिरिक्त दण्ड प्रतिदिन न्यूनतम पचास रू और अधिकतम पांच सौ रू तक लगाया जा सकता है।

जब जांच के दौरान निरीक्षक के पास विश्वास करने का उचित आधार होता है कि सीमित दायित्व साझेदारी या अन्य व्यक्ति खातों एवं दस्तावेजों को नष्ट, परिवर्तित या छिपा सकते है तो निरीक्षक उन्हें अपने अधिकार में लेने के लिए प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के पास आवेदन कर सकता है। आवेदन पर सुनवाई के बाद मजिस्ट्रेट निरीक्षक को अधिकृत कर सकता है कि उचित सहायता लेकर उस संस्थान में प्रवेश कर सकता है तथा तलाशी ले सकता है जहां दस्तावेज रखे है तथा निरीक्षक उन दस्तावेजों को अपने पास रख सकता है। जांच पूर्ण होने के बाद उसे दस्तावेज वापस करने होते है और इसकी सूचना मजिस्ट्रेट को देनी होती है। ये दस्तावेज छः माह से अधिक निरीक्षक नहीं रख सकता है। दस्तावेज वापस करने पर निरीक्षक उन दस्तावेजो पर पहचान के चिन्ह भी लगा सकता है।

निरीक्षक केन्द्रीय सरकार के निर्देशानुसार अन्तरिम रिपोर्ट तथा अन्तिम रिपोर्ट केन्द्रीय सरकार के पास प्रेषित करता है। केन्द्रीय सरकार (अन्तरिम रिपोर्ट को छोड़कर) रिपोर्ट की प्रति सीमित दायित्व साझेदारी के रजिस्र्टड कार्यालय, अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों जिनका नाम रिपोर्ट में है, के पास भी भेजती है। रिपोर्ट से प्रभावित होने वाले व्यक्ति रिपोर्ट की प्रति खरीद सकते है। (धारा 49)

यदि रिपोर्ट के आधार पर केन्द्रीय सरकार को यह प्रतीत होता है कि सीमित दायित्व साझेदारी या अन्य सम्बन्धित व्यक्ति किसी अपराध के दोषी है तो केन्द्रीय सरकार उस अपराध के लिए अभियोजन कर सकती है। इसमें सीमित दायित्व साझेदारी, सभी साझेदार, नामित साझेदार, कर्मचारी या अन्य अस्तित्व का कर्तव्य है कि वे अभियोजन से सम्बन्धित मामलों में सहायता करें। (धारा 50)

निरीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर यदि केन्द्रीय सरकार को यह प्रतीत होता है कि सीमित दायित्व साझेदारी का समापन होना चाहिए तो वह समापन हेतु आवेदन देने के लिए कह सकती है। यदि केन्द्रीय सरकार को यह प्रतीत होता है कि सीमित दायित्व साझेदारी या अन्य अस्तित्व जिनकें कार्यों की जांच करायी गयी थी रिपोर्ट में उनकें द्वारा कपट सिद्व होता है तो केन्द्र सरकार क्षतिपूर्ति या सम्पत्ति की वसूली हेतु कार्यवाही कर सकती है।

जांच के व्यय प्रथम बार केन्द्र सरकार द्वारा चुकाये जाते है परन्तु बाद में दोष सिद्व हो जाने पर दोषी पक्ष केन्द्रीय सरकार को प्रतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगें तथा यह राशि भूमि–राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जा सकती है। निरीक्षक की रिपोर्ट जो कि निर्धारित तरीके से प्रमाणित हो वह कानूनी कार्यवाही में साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य होगी।

18.9 फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन (Conversionn of Firm into Limited Liability Partnership)

फर्म से तात्पर्य भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 4 में दी गयी परिभाषा के अनुसार फर्म से तात्पर्य साझेदारी फर्म से है अर्थात् 'साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध है जिन्होंने किसी ऐसे कारोबार से अर्जित लाभ को बाटंने का ठहराव किया है जिसे वे सब अथवा उनकी ओर से एक संचालित करता है।'

धारा 55 के अनुसार, फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन के अन्तर्गत फर्म की सभी सम्पत्ति, हितों, अधिकारों, विशेषाधिकारों, दायित्वों और अन्य सभी चीजों का सीमित दायित्व साझेदारी को हस्तांतरण होने से है। किसी भी फर्म को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन करने के लिए द्वितीय अनुसूची की आवश्यकताओं को पूर्ण करना होगा। फर्म के सभी साझेदार इस अनुसूची के प्रावधानों से बाध्य होगें फर्म के परिवर्तन में फर्म के सभी साझेदार एकमत होने चाहिए, एक भी साझेदार अलग न हो।

साझेदारी फर्म को परिवर्तन करने के लिए रजिस्ट्रार के पास आवेदन करना होता है। सभी साझेदारों को केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित शुल्क के साथ विवरण देना होता है जिसमें निम्न बातें होंगी –

1. फर्म का नाम तथा रजिस्ट्रेशन संख्या।
2. साझेदारी अधिनियम 1932 अथवा अन्य अधिनियम के अन्तर्गत फर्म के रजिस्ट्रेशन की तिथि ।
3. धारा 11 के अनुसार समामेलन दस्तावेज तथा विवरण।

सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन करने के लिए जो दस्तावेज या विवरण दिए गये है । रजिस्ट्रार चाहे तो अपने तरीके से उनका सत्यापन करा सकता है। रजिस्ट्रार द्वारा उक्त दस्तावेजों को प्राप्त करने के पश्चात अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत दस्तावेजों को रजिस्टर में दर्ज कर परिवर्तन का रजिस्ट्रेशन प्रमाण–पत्र निर्गत कर देगा। सीमित दायित्व साझेदारी को उक्त रजिस्ट्रेशन की तिथि से पन्द्रह दिनों के अन्दर फर्मो के रजिस्ट्रार जहां वह साझेदारी अधिनियम 1932 के अन्तर्गत रजिर्स्टड थी, को परिवर्तन की सूचना तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित प्रारूप में सीमित दायित्व साझेदारी का विवरण देना होता है।

यदि रजिस्ट्रार दिये गये विवरणों अथवा सूचनाओं से सन्तुष्ट नहीं होता है तो वह किसी फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन का रजिस्ट्रेशन करने से मना कर सकता है। रजिस्ट्रार द्वारा इस प्रकार मना करने पर ट्रिव्यूनल के समक्ष अपील की जा सकती है।

साझेदारी फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी के रूप में रजिस्ट्रेशन का प्रभाव –

1. जिस तिथि को उपरोक्त रजिस्ट्रेशन का प्रमाण–पत्र निर्गत होता है उस तिथि से परिवर्तित फर्म सीमित दायित्व साझेदारी के नाम से ही मानी जाएगी।

2. साझेदारी फर्म की सभी वास्तविक सम्पत्ति चल एवं अचल तथा अवास्तविक सम्पत्ति, विशेषाधिकार, दायित्व तथा सम्पूर्ण व्यवसाय सीमित दायित्व साझेदारी को हस्तांतरित हो जाते है। इसके लिए पृथक से कोई कार्यवाही करनी नहीं होती है।

3. साझेदारी फर्म समाप्त मान ली जाती है। यदि भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 के अन्तर्गत पहले रजिस्र्टड है तो उसे रिर्काड से हटा दिया जाता है।

रजिस्ट्रेशन की तिथि पर फर्म द्वारा या फर्म के विरूद्व कोई मामला न्यायालय, न्यायाधिकरण अथवा किसी अधिकारी के समक्ष विचाराधीन हो तो ऐसे मामले आगे को चालू रहेगें तथा पूर्ण होने पर इनके निर्णय सीमित दायित्व साझेदारी के पक्ष में हो या विरूद्व हो कार्यान्वित किए जाएगें। परिवर्तन की तिथि से पूर्व किये गये फर्म द्वारा ठहराव सीमित दायित्व साझेदारी द्वारा किये गये माने जायेगें और ये सीमित दायित्व साझेदारी द्वारा अथवा उनकें विरूद्व लागू किये जायेगें।

साझेदारी फर्म ने रोजगार के जो अनुबन्ध किये है वे रजिस्ट्रेशन के बाद भी इस प्रकार चालू रहेंगे जैसे कि सीमित दायित्व साझेदारी ही उनकी नियोक्ता हो। साझेदारी फर्म ने जिस कार्य के लिये अथवा जिस पद पर किसी को नियुक्त किया है वे भी उसी तिथि से सीमित दायित्व साझेदारी द्वारा नियुक्त किये गये समझे जाएगें।

जिस फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन हुआ है उसके समस्त साझेदार पृथक तथा संयुक्त रूप से सीमित दायित्व साझेदारी के साथ उन अनुबन्धों से उत्पन्न दायित्वों के लिए भी उत्तरदायी होगें जो कि फर्म ने परिवर्तन से पूर्व किये थे। यदि कोई साझेदार उपरोक्त दायित्वों को पूरा करता है तो (विपरीत अनुबन्ध न होने पर) सीमित दायित्व साझेदारी इस प्रकार के दायित्वों की क्षतिपूर्ति साझेदार को करेगी।

सीमित दायित्व साझेदारी के लिए यह भी आवश्यक है कि रजिस्ट्रेशन की तिथि से चौदह दिनों बाद से बारह माह तक प्रत्येक कार्यालय पत्राचार में यह उल्लेख करेगी कि सीमित दायित्व साझेदारी का रजिस्ट्रेशन साझेदार फर्म से परिवर्तन कर हुआ है तथा साझेदारी फर्म का नाम व रजिस्ट्रेशन नम्बर भी लिखना होगा। यदि कोई सीमित दायित्व साझेदारी इस प्रावधान का पालन नहीं करती है तो उसे कम से कम दस हजार रू तक अर्थदण्ड लगाया जाएगा जिसे एक लाख रू तक बढ़ाया जा सकता है यदि दोष जारी रहता है तो पचास रू प्रतिदिन जिसे पांच सौ रू प्रतिदिन तक बढ़ाया जा सकता है अतिरिक्त अर्थदण्ड लगाया जा सकता है।

18.10 प्राइवेट कम्पनी का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन (Conversion of Private Company into Limited Liability Partnership)

धारा 56 –

प्राइवेट कम्पनी – कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 3(I)(III) के अनुसार, प्राइवेट कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जो अपने अन्तर्नियमों द्वारा :

(1) अपने अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध लगाती है।

(2) अपने सदस्यों की संख्या 50 तक सीमित रखती है (जो सदस्य कम्पनी के कर्मचारी है या थे को छोड़कर)।

(3) अपने अंशों और ऋण पत्रों में पूंजी लगाने के लिए जनता को आमंत्रित करने की मनाही कर दे।

प्राइवेट कम्पनी बनाने के लिये कम से कम दो व्यक्ति होने चाहिये ओर अधिकतम 50। यदि दो या अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से एक या अधिक अंश ले लेते है तो वे एक सदस्य की तरह गिने जायेगें। कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 2(68) तथा संशोधन मई 2015 के अनुसार, प्राइवेट कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जिसकी प्रदत्त पूंजी न्यूनतम एक लाख रूपये अथवा निर्धारित की गई अधिक राशि है जो अपने अन्तर्नियमों द्वारा –

1. अपने अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध लगाती है।
2. अपने सदस्यों की संख्या 200 तक सीमित रखती है (एक व्यक्ति कम्पनी को छोड़कर)
3. कम्पनी प्रतिभूतियों में धन लगाने के लिए जनता को आमंत्रित करने की मनाही करती है।

एक प्राइवेट कम्पनी को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन अधिनियम की धारा 56 के तृतीय अनुसूची का अनुपालन करके किया जा सकता है परिवर्तन का आशय प्राइवेट कम्पनी की सम्पत्तियां, इसका हित, अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व व देनदारियां एवं उसका सम्पूर्ण व्यापार सीमित दायित्व साझेदारी को हस्तांतरण से होता है। परिवर्तन के लिए एक निजी कम्पनी को तृतीय अनुसूची के अनुसार आवेदन करना होता है निजी कम्पनी के सभी अंशधारी सीमित दायित्व साझेदारी के साझेदार माने जाएगे अन्य कोई नहीं। ऐसे परिवर्तन से निजी कम्पनी के अंशधारी, सीमित दायित्व साझेदारी तथा उसके साझेदार तृतीय अनुसूची के प्रावधानों से बाध्य होंगे। कम्पनी को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन के लिए रजिस्ट्रार के पास निर्धारित शुल्क के साथ आवेदन करना होता है। जिसमें निम्न बातें हो –

1. कम्पनी का नाम तथा रजिस्ट्रेशन संख्या।
2. कम्पनी के समामेलन की तिथि।
3. धारा 11 में निद्रिष्ट समामेलन दस्तावेज व विवरण संलग्न करना होता है।

उक्त दस्तावेजों के प्राप्त होने पर रजिस्ट्रार उन्हें रजिस्टर करेगा और रजिस्ट्रेशन प्रमाण पत्र निर्गत कर देगा। रजिस्ट्रेशन की तिथि से 15 दिन के अन्दर सीमित दायित्व साझेदारी को उस रजिस्ट्रार के पास जहां कम्पनी का समामेलन हुआ था, परिवर्तन की सूचना निर्धारित प्रारूप में देनी होगी।

यदि रजिस्ट्रार दी गई सूचनाओं से सन्तुष्ट नहीं होता तो वह परिवर्तन की रजिस्ट्री करने से मना कर सकता है। मना करने पर न्यायाधिकरण के पास अपील की जा सकती है।

रजिस्ट्रार प्रस्तुत दस्तावेजों का सत्यापन भी करवा सकता है शेष व्यवस्थाए उसी प्रकार से है व लागू होगी जैसे पूर्व में साझेदारी फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन के सम्बन्ध में बताया गया है। जैसे – पुराने विवादो

के सम्बन्ध में, सम्पत्ति के सम्बंध में कर्मचारियों के सम्बन्ध में, पुराने अपूर्ण अनुबंधों के सम्बन्ध में, पूर्व की व्यवस्थाए लागू होंगी।

18.11 असूचीबद्ध सार्वजनिक कम्पनी का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन (Conversion of Unlisted Public Company into Limited Liability Partnership)

धारा 57 के अनुसार, कम्पनी का अभिप्राय असूचीबद्ध सार्वजनिक कम्पनी से है। सूचीबद्ध कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जो भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम 1992 के अन्तर्गत सूचीबद्ध हो । असूचीबद्ध कम्पनी वह है जो सूचीबद्ध नहीं है।

कम्पनी का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन का आशय कम्पनी की सम्पत्तियां, दायित्व, अधिकार, विशेषाधिकार और सम्पूर्ण उपक्रम का सीमित दायित्व साझेदारी में हस्तांतरण से है। कम्पनी को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन करने के लिए अनुसूची चतुर्थ का पालन करना होगा। कम्पनी के अंशधारी तथा सीमित दायित्व साझेदारी के समस्त साझेदार अनुसूची के प्रावधानों से बाध्य होगें। कोई कम्पनी सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन के लिए आवेदन तभी दे सकती है जब आवेदन के समय सम्पत्तियों में कोई प्रतिभूति हित विद्यमान न हो। सीमित दायित्व साझेदारी के साझेदारों में सभी अंशधारी सम्मिलित हो।

परिवर्तन की कार्यवाही उसी प्रकार की है जैसा कि निजी कम्पनी को या फर्म को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन करने की होती है और परिवर्तन के पश्चात भी उन्हीं प्रावधानों का पालन करना होता है जो कि पूर्व में समझाये गये है। संक्षेप में –

1. रजिस्ट्रार के पास शुल्क के साथ विवरण प्रस्तुत करना जिसमें समामेलन दस्तावेज व विवरण संलग्न करने होते है।
2. रजिस्ट्रार आवेदन तथा दस्तावेजों की जांच कर उसकों रजिस्ट्रेशन का प्रमाण पत्र दे देता है।
3. रजिस्ट्रार रजिस्ट्रेशन से मना भी कर सकता है और मना करने पर न्यायाधिकरण के पास अपील की जा सकती है।
4. रजिस्ट्रेशन के पश्चात कम्पनी की सभी सम्पत्तियां व दायित्व सीमित दायित्व साझेदारी को हस्तांतरण मान लिया जाता है तथा कम्पनी का समापन हो जाता है।
5. रजिस्ट्रेशन की तिथि पर यदि कोई विवाद विचाराधीन हो तो वह आगे को चालू रहेगा तथा सीमित दायित्व साझेदारी उसके लिए उत्तरदायी होगी। इसी प्रकार कोई अनुबंध जो कम्पनी ने किया था पूर्ण नहीं हुआ हो तो उसे भी सीमित दायित्व साझेदारी पूर्ण करेगी।
6. कम्पनी के सभी कर्मचारी सीमित दायित्व साझेदारी के कर्मचारी माने जायेगें।
7. प्रावधानों का पालन न करने पर आर्थिक दण्ड लगाया जा सकता है।
8. परिवर्तन की सूचना उस रजिस्ट्रार के पास देनी होती है जहां कम्पनी का समामेलन हुआ था।

18.12 सीमित दायित्व साझेदारी का समापन तथा विघटन (Winding up and Dissolution of Limited Liability Partnership)

धारा 63 के अनुसार, एक सीमित दायित्व साझेदारी का समापन या तो स्वैच्छिक हो सकता है या न्यायाधिकरण द्वारा हो सकता है इस प्रकार से समापित सीमित दायित्व साझेदारी को विघटित किया जा सकता है। निम्नलिखित परिस्थितियों में न्यायाधिकरण द्वारा एक सीमित दायित्व साझेदारी का समापन किया जा सकता है– (धारा 64)

1. जब सीमित दायित्व साझेदारी स्वयं यह निर्णय करती है कि न्यायाधिकरण द्वारा समापन होना है।
2. जब सीमित दायित्व साझेदारी में छः माह से अधिक समय तक साझेदारों की संख्या दो से कम रही हो।
3. जब सीमित दायित्व साझेदारी अपने ऋणों को चुकाने में असमर्थ हों।
4. जब सीमित दायित्व साझेदारी ने भारत की सार्वभौमिकता एवं एकता, राज्य की सुरक्षा या पब्लिक आदेश के विरूद्व कार्य किया हो।
5. जब सीमित दायित्व साझेदारी ने निरन्तर पांच वर्षो का वार्षिक विवरण, लेखे एवं शोधनक्षमता का विवरण रजिस्ट्रार के पास जमा करने में चूक ही हो।
6. जब न्यायाधिकरण के विचार में सीमित दायित्व साझेदारी का समापन न्यायपूर्ण हो।

धारा 65 के अनुसार, केन्द्रीय सरकार सीमित दायित्व साझेदारी के समापन एवं विघटन से सम्बन्धित प्रावधानों हेतु नियम बना सकती है।

18.13 सारांश

सीमित दायित्व साझेदारी एक निगमित निकाय है इसीलिए इसका अस्तित्व अपने साझेदारों से पृथक होता है। न्यूनतम दो व्यक्तियों द्वारा किसी वैद्य कारोबार हेतु, समामेलन दस्तावेज पर हस्ताक्षर करके तथा रजिस्ट्रार के पास इसे रजिस्ट्रीकृत कराके सीमित दायित्व साझेदारी की रचना की जा सकती है। सीमित दायित्व साझेदारी में साझेदार आपसी समझौते द्वारा अपने अधिकारों, कर्तव्यों व दायित्वों को परिभाषित कर सकते है यदि ऐसा समझौता न किया जाए तो इस सम्बन्ध में अधिनियम के प्रावधान लागू होते है।

सीमित दायित्व साझेदारी के साझेदार अपने द्वारा सहमत योगदान की सीमा तक दायी होगें। कोई भी साझेदार अन्य साझेदार के अनाधिकृत कार्यो या बूरे आचरण के लिए उत्तरदायी नहीं होगें। सीमित दायित्व साझेदारी में कम से कम दो नामित साझेदार होगें, उनमें से कम से कम एक भारत का निवासी होना चाहिए।

सीमित दायित्व साझेदारी को व्यवसाय या कामकाज की सच्ची एवं उचित स्थिति दर्शातें हुए वार्षिक लेखें तैयार करने पड़ते है, इनका अंकेक्षण होने के पश्चात रजिस्ट्रार के पास भेजने पड़ते है। केन्द्र सरकार अंकेक्षण से छूट दे सकती है। केन्द्रीय सरकार उचित समझे तो सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज का निरीक्षण करने हेतु निरीक्षकों की नियुक्ति कर सकती है। किसी साझेदारी फर्म, निजी कम्पनी या असूचीबद्ध सार्वजनीक कम्पनी को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन करने की व्यवस्था है। एक सीमित दायित्व साझेदारी का एच्छिक रूप से

या न्यायाधिकरण द्वारा समापन किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों को सीमित दायित्व साझेदारी पर लागू कर सकती है।

18.14 शब्दावली

सीमित दायित्व साझेदारीः एक निगमित निकाय है जो कि सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम 2008 के अन्तर्गत निर्मित एवं समामेलित होती है जिसका पृथक वैधानिक अस्तित्व होता है

साझेदार के अंशदानः इस अंशदान के अन्तर्गत साझेदार द्वारा अपने भाग के लिए सीमित दायित्व साझेदारी के संचालन हेतु दिया गया धन, सम्पत्ति या अन्य चीजें सम्मिलित होती है।

18.15 बोध प्रश्न

'क' निम्नलिखित कथनो में से कौन सा कथन सत्य है कौन सा असत्य –

1. सीमित दायित्व साझेदारी में कम से कम 7 साझेदार होने चाहिए।
2. सीमित दायित्व साझेदारी में अधिकतम साझेदारों की संख्या 200 है।
3. एक निजी कम्पनी को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन किया जा सकता है।
4. न्यायालय द्वारा सीमित दायित्व साझेदारी का समापन किया जा सकता है।
5. साझेदारों के मध्य विवाद होने पर कोई भी साझेदार सीधे न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है।
6. सीमित दायित्व साझेदारी को वित्तीय वर्ष समाप्त होने के 60 दिनों के अन्दर प्रमाणित वार्षिक विवरण रजिस्ट्रार के पास दाखिल करना होता है।
7. केन्द्रीय सरकार किसी सीमित दायित्व साझेदारी को अंकेक्षण से छूट दे सकती है।
8. सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच करने के लिए किसी फर्म या निगमित निकाय को निरीक्षक के रूप में नियुक्त किया जा सकता है।
9. साझेदारी फर्म को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन करने के लिए केन्द्र सरकार के पास आवेदन प्रस्तुत करना होता है।
10. सीमित दायित्व साझेदारी का समापन न्यायालय द्वारा किया जा सकता है।

'ख' रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1. सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम .... वर्ष में पारित हुआ।
2. सीमित दायित्व साझेदारी में कम से कम .... साझेदार होगें जिनमें से एक भारत का निवासी होगा।
3. जब समामेलन की सभी औपचारिकताएं पूर्ण हो जाती है तो रजिस्ट्रार .... दिनों के अन्दर रजिस्ट्रेशन प्रमाण पत्र निर्गत कर देता है।
4. सीमित दायित्व साझेदारी का समापन ऐच्छिक या .... द्वारा हो सकता है।
5. सीमित दायित्व साझेदारी में किसी भी साझेदार को बहुमत वाले साझेदार . ... सकते है।
6. सीमित दायित्व साझेदारी में एक साझेदार दूसरे का .... होता है।

7. प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को वित्तिय वर्ष के अंत से छः माह के अन्दर खातों का विवरण तथा .... का विवरण तैयार करना होता है।
8. सीमित दायित्व साझेदारी का साझेदार अपना लाभ हानि में हिस्सा पूर्णतः या अन्तः अन्य को .... कर सकता है।
9. जब सीमित दायित्व साझेदारी के कम से कम .... साक्ष्य तथा प्रतिभूति राशि के साथ आवेदन करें तो केन्द्रीय सरकार निरीक्षक की नियुक्ति कर सकती है।
10. एक प्राइवेट कम्पनी को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन .... जा सकता है।

18.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

'क'

1. असत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य
6. सत्य 7. सत्य 8. असत्य 9. असत्य 10. असत्य

'ख'

1. 2008 2. नामित 3. 14 4. न्यायाधिकरण 5. नहीं निकाल
6. एजेंट नही 7. शोधनक्षमता 8. हस्तांतरित 9. 1/5 साझेदार 10. किया

18.17 स्वपरख प्रश्न

1. सीमित दायित्व साझेदारी का रजिस्ट्रेशन कैसे होता है? रजिस्ट्रेशन के प्रभाव को समझाइयें?
2. सीमित दायित्व साझेदारी के साझेदारों के अधिकारों व कर्तव्यों की व्याख्या कीजिए?
3. सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच कराने के क्या प्रावधान है?
4. एक साझेदारी फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन की विधि समझाइये?
5. सीमित दायित्व साझेदारी की प्रकृति को समझाइयें?

18.18 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.